श्रीभागवत पत्रिकाके ४७वें वर्षकी विषय–सूची

विषय	संख्या–पृष्ठ
आशीर्वाद–पत्र	१२/२८४
उदारता और संकीर्णता	८/१७९
उलट जले मछली चले	११/२५८
ओ हंस! इतना कहना जरा	३/६६, ४/८८
कुञ्जविहारी द्वितीयाष्टकम्	९/१९३
कृष्ण नामाष्टकम्	६/१२१
गिलहरीका सेतुबन्ध	९/२०३
गुरु–परम्परा और सम्प्रदाय प्रणाली	३/५७, ४/८२, ५/११०
गुरु पूर्णिमा महोत्सव	६/१३७
गोपालराजस्तोत्रम्	१२/२६५
गौराङ्ग स्तवकल्पतरु	१/१
गौराङ्ग–सुधा	१/९, २/३७, ३/६२, ४/८४, ५/११२, ६/१३३, ७/१५५, ८/१८१, ९/२०४, १०/२२९, १२/२८०
चातुर्मास्य	५/१०५
ठाकुर प्रतिष्ठा, श्रीरमणबिहारीगौड़ीय मठ	१०/२३९
तुलसी माहात्म्य	२/४०
दान निर्वर्तन–कुण्डाष्टकम्	१०/२१७
धर्माडम्बर	२/२७
नरोत्तम–प्रभोरष्टकम्	३/४९
नवाष्टकम्	४/७३
नित्यानन्द–त्रयोदशी	११/२५१, १२/२७६
नृसिंह–स्तवः	७/१४५
प्रचार–प्रसङ्ग	२/४७, ४/९१, ५/११७, ६/१३९, ८/१८७, ११/२५९
प्रभुपादजीका उपदेशामृत	१/६, २/२८, ३/५४, ४/७९, ५/१७२, ६/१२७, ७/१५०, ८/१७४, ९/१९८, १७/२२२, ११/२४५, १२/२७१
प्रश्नोत्तर	१/४, ३/५१, ४/७५, ५/१००, ६/१२४, ७/१४८, ८/१७१, ९/१९५, १०/२१९, ११/२४२, १२/२६८
प्रार्थनाश्रय–चतुर्दशकम्	५/९७
प्रार्थना पद्धतिः	११/२४१
ब्रजमण्डल परिक्रमा	६/१४४, ८/१९०, ९/२११
भजन	२/४८, ४/९६
मानद उपाधिसे सम्मानित, डा. चतुर्वेदी	६/१४३
मुकुन्दाष्टकम्	१/२५
महाप्रभोरष्टकम्	८/१६९
मेढ़कका फटना	८/१८६
यस नो वैरी गुड	१२/२८३
रूप गोस्वामीका विरह तिथि महोत्सव	६/१३९
विरह तिथि	८/१८९
विविध सम्वाद	१/१३, ७/१५८, १०/२३३, १२/२८५
विशेष विज्ञप्ति	११/२६३
विश्वशान्तिमें गीताकी भूमिका	३/६८
विषय–सूची	१२/२८८
व्यासपूजाका निमन्त्रण	१०/२४०
श्रीभक्तिवेदान्त नारायण महोदयाष्टकम्	११/२६४
सन्दर्भ–सार	२/३२
सावनकी आई बहार	५/११४, ८/१८४
स्वधाममें भक्तिवेदान्त राद्धान्तीमहाराज	१/२१
स्वधाममें श्रीकालाचाँद ब्रह्मचारी	६/१४२
स्वधाममें श्रीभक्तिवेदान्त यति महाराज	८/१८९
स्वधाममें श्रीभक्तिवेदान्त त्रिदण्डि महाराज	१०/२३९
हरिकथा, श्रील वामन गोस्वामी महाराजजीकी	६/१३०, ७/१५२, ८/१७६, ९/२०१, १०/२२५, ११/२४८, १२/२७३
हाथी चले बाजार, कुत्ते भोंके हजार	१०/२३३

श्रीश्रीगुरु–गौराङ्गौ–जयतः

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे

वैकुण्ठ–वार्त्तावह

बृहत्–मृदङ्ग

श्रीभागवत–पत्रिका

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः।
ज्ञान वैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना॥

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा॥

आराध्यो भगवान् व्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावनं, रम्या काचिदुपासना व्रजवधूवर्गेण या कल्पिता।
श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान्, श्रीचैतन्य महाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो नः परः॥

एक भागवत बड़ भागवत शास्त्र । आर एक भागवत भक्तिरसपात्र॥
दुई भागवत द्वारा दिया भक्तिरस । ताहाँर हृदये तार प्रेमे हय वश॥

वर्ष ४७ } श्रीगौराब्द ५१७
वि. सं. २०६० चैत्र मास, सन् २००३, १९ मार्च—१६ अप्रैल { संख्या १

श्रीश्रीगौराङ्ग स्तवकल्पतरुः

[श्रीश्रील रघुनाथदास गोस्वामी–प्रभुवरेण विरचितः]

गतिं दृष्ट्वा यस्य प्रमदगजवर्येऽखिलजना मुखं च श्रीचन्द्रोपरि दधति थूत्कारनिवहम्।
स्वकान्त्या यः स्वर्णाचलमधरयच्छीधु च वचस्तरङ्गैर्गौराङ्गो हृदय उदयन्मां मदयति॥१॥
अलंकृत्यात्मानं नवविविधरत्नैरिव वलद्विवर्णत्वस्तम्भास्फुटवचनकम्पाश्रुपुलकैः।
हसन् स्विद्यन्नृत्यन् शितिगिरिपतेर्निर्भरमुदे पुरः श्रीगौराङ्गो हृदय उदयन्मां मदयति॥२॥
रसोल्लासैस्तिर्यग्गतिभिरभितो वारिभिरलं दृशोः सिञ्चँल्लोकानरुणजलयन्त्रत्वमितयोः।
मुदा दन्तैर्दष्ट्वा मधुरमधरं कम्पचलितैर्नटन् श्रीगौराङ्गो हृदय उदयन्मां मदयति॥३॥

क्वचिन्मिश्रावासे व्रजपतिसुतस्योरुविरहात् श्लथच्छ्रीसन्धित्वाद्दधदधिकदैर्घ्यं भुजपदोः।
लुठन् भूमौ काक्वा विकलविकलं गद्गदवचा रुदन् श्रीगौराङ्गो हृदय उदयन्मां मदयति॥४॥
अनुद्घाट्य द्वारत्रयमुरु च भित्तित्रमयमहो विलंघ्योच्चैः कालिङ्गिकसुरभिमध्ये निपतितः।
तनूद्यत्सङ्कोचात् कमठ इव कृष्णोरुविरहाद्विराजन् गौराङ्गो हृदय उदयन्मां मदयति॥५॥
स्वकीयस्य प्राणार्बुदसदृशगोष्ठस्य विरहात् प्रलापानुन्मादात् सततमति कुर्वन् विकलधीः।
दधद्वित्तौ शश्वद्वदनविधुघर्षेण रुधिरं क्षतोत्थं गौराङ्गो हृदय उदयन्मां मदयति॥६॥
क्व मे कान्तः कृष्णस्त्वरितमिह तं लोकय सखे त्वमेवेति द्वाराधिपमभिदधन्नुन्मद इव।
द्रुतं गच्छ द्रष्टुं प्रियमिति तदुक्तेन धृततद्भुजान्तो गौराङ्गो हृदय उदयन्मां मदयति॥७॥
समीपे नीलाद्रेश्चटकगिरिराजस्य कलनादये गोष्ठे गोवर्धनगिरिपतिं लोकितुमितः।
व्रजन्नस्मीत्युक्त्वा प्रमद इव धावन्नवधृतो गणैः स्वैर्गौराङ्गो हृदय उदयन्मां मदयति॥८॥
अलं दोलाखेलामहसि वरतन्मण्डपतले स्वरूपेण स्वेनापर निजगणेनापि मिलितः।
स्वयं कुर्वन्नाम्नामतिमधुरगानं मुरभिदः सरङ्गो गौराङ्गो हृदय उदयन्मां मदयति॥९॥
दयां यो गोविन्दे गरुड इव लक्ष्मीपतिरलं पुरीदेवे भक्तिं य इव गुरुवर्ये यदुवरः।
स्वरूपे यः स्नेहं गिरिधर इव श्रीलसुबले विधत्ते गौराङ्गो हृदय उदयन्मां मदयति॥१०॥
महासम्पद्दारादपि पतितमुद्धृत्य कृपया स्वरूपे यः स्वीये कुजनमपि मां न्यस्य मुदितः।
उरोगुञ्जाहारं प्रियमपि च गोवर्धनशिलां ददौ मे गौराङ्गो हृदय उदयन्मां मदयति॥११॥
इति श्रीगौराङ्गोद्रतविविधसद्भावकुसुमप्रभाभ्राजत्पद्यावलिललितशाखं सुरतरुम्।
मुहुर्योऽतिश्रद्धौषधिवरबलत्पाठसलिलैरलं सिञ्चेद् विन्देत् सरसगुरुतल्लोकनफलम्॥१२॥

जनसमूह जिनकी चलनेकी गति देखकर मदमत्त गजराजके ऊपर तथा जिनके श्रीमुखचन्द्रको देखकर पूर्णचन्द्रके ऊपर मुखके जलकणों (थूक) का परित्याग करता था तथा जो अपनी कान्ति द्वारा सुवर्णपर्वतको भी सुशोभित करते थे, वे श्रीगौराङ्गदेव अपनी अमृतमयी वाणी–तरङ्गोंके साथ मेरे हृदयमें उदित होकर मुझे प्रमोदित कर रहे हैं॥१॥

जिस प्रकार कोई व्यक्ति विविध प्रकारके नए–नए अलङ्कारोंसे अलंकृत होकर नृत्य करता है, उसी प्रकार जो माथुर–विरहिणी श्रीमती राधिकाके अकस्मात् श्रीकृष्णाविर्भावजन्य परमानन्द–भरपूर अन्तःकरणके भावोंसे विभावित होकर स्तम्भ, स्वेद, कम्प, अश्रु, वैवर्ण्य और रोमाञ्च आदि विविध प्रकारके नवीन–नवीन अष्टसात्त्विक भावरूपी अलङ्कारोंसे अलंकृत होकर नीलाचलपति श्रीजगन्नाथदेवके आगे अतिशय आनन्दवशतः हास्य करते–करते स्वेद–बिन्दुओंसे सुशोभित होकर नृत्य करते थे, वे श्रीगौराङ्गदेव मेरे हृदयमें उदित होकर मुझे हर्षित कर रहे हैं॥२॥

जो रसोल्लास–जन्य आनन्दसे विह्वल होकर अपने दोनों चरणकमलोंको इधर–उधर सब ओर सञ्चालन करनेके कारण कम्पित कलेवर हो तथा जो अरुण–रङ्गके जल–यन्त्र–सदृश

नयनोंसे प्रवाहित अश्रुधाराओंसे संसारको सींचते हुए दन्त-पंक्तिसे अपने सुमधर अधर-पल्लवका दंशन करते थे, वे श्रीगौराङ्गदेव मेरे हृदयमें उदित होकर मुझे आनन्दित कर रहे हैं॥३॥

किसी दिन काशीमिश्रके भवनमें श्रीनन्दनन्दनके अत्यन्त विरहके हेतु जिन भुजाओं और चरणोंका सौन्दर्य तथा सन्धिस्थान-समूह शिथिल हो रहे थे, उन भुजाओं और चरणोंको अत्यन्त लम्बा करते हुए जो भूमि पर लोटकर विकलसे भी विकल होकर गद्‌गद् वाणीसे कातर होकर रोदन करते थे, वे श्रीगौराङ्गदेव मेरे हृदयमें उदित होकर मुझे आह्लादित कर रहे हैं॥४॥

जो संकीर्तन समाप्त होनेपर क्लान्तिको दूर करनेके लिए अपने भक्तों द्वारा घरके भीतर सुलाए गए थे, वे परमोत्कण्ठाके कारण घरके भीतर रहनेमें असमर्थ होकर घरसे बाहर निकलनेका द्वार न पाकर तीन द्वारोंको खोले बिना ही अत्यन्त ऊँची-ऊँची तीन चहारदिवारियोंको ऊपरसे लाँघकर कलिङ्ग प्रदेशीय गायोंके बीचमें पड़े हुए थे और कृष्णविरहमें अतिशय कातर हानेके कारण शरीरमें कुबड़पन उभर आनेसे जो कछुवेकी भाँति सुशोभित हुए थे, वे श्रीगौराङ्गदेव मेरे हृदयमें उदित होकर मुझे आमोदित कर रहे हैं॥५॥

अपने असंख्य प्राणोंके समान प्रिय श्रीवृन्दावनीय-विरह जन्य उन्मादके कारण निरन्तर प्रलाप करते-करते व्याकुल होकर अपने मुख-चन्द्रको दिवालोंसे घर्षणकर घिसे अङ्गोंसे निकले हुए रुधिरको जिन्होंने अपने समस्त अङ्गोंमें धारण किया था, वे श्रीगौराङ्गदेव मेरे हृदयमें उदित होकर मुझे अति आश्चर्य-चकित कर रहे हैं॥६॥

किसी दिन श्रीचैतन्यदेव पुरीद्वार पर उपस्थित होकर उन्मत्तकी भाँति भ्रमवश द्वारपालको सखी समझकर बोले-"हे सखि! मेरे वे प्रिय कान्त श्रीकृष्ण कहाँ हैं? तुम उनको शीघ्र लाकर मुझे उनका दर्शन कराओ।" उनकी यह बात सुनकर द्वारपालने नम्रतापूर्वक उनसे कहा-"आप अपने प्रियतमके दर्शन करनेके लिए शीघ्र चलें।' द्वारपालके इस प्रकार कहने पर जो उसका हाथ पकड़े हुए थे, वे श्रीगोराङ्गदेव मेरे हृदयमें उदित होकर मुझे आनन्दसागरमें निमज्जित कर रहे हैं॥७॥

जिन्होंने नीलाचलके समीपवर्ती चटक पर्वतके दर्शनके लिए अपने प्रिय भक्तजनसे इस प्रकार कहा था-"हे स्वरूप आदि! मैं वृन्दावनस्थित गिरिराज गोवर्धनके दर्शन करनेके लिए श्रीक्षेत्रसे जा रहा हूँ।" ऐसा कहकर जो भक्तजनके सहित प्रमत्तकी भाँति दौड़ने लगे थे, वे श्रीगौराङ्गदेव मेरे हृदयमें उदित होकर मुझे आनन्द सागरमें निमज्जित कर रहे हैं॥८॥

जो झूला-खेल अर्थात् लीला-कौतुक द्वारा शोभाविशिष्ट मण्डपके नीचे अपने प्रिय स्वरूप दामोदर और दूसरे प्रियजनोंके साथ मुरारि श्रीकृष्णके नामोंका अतिशय मधुर स्वरसे गान करते-करते उसका अभिनय करते थे, वे श्रीगौराङ्गदेव मेरे हृदयमें उदित होकर मुझे आमोदित कर रहे हैं॥९॥

लक्ष्मीपति नारायणकी जैसी दया गरुड़ पर रहती है, वैसी ही दया जिन्होंने भक्तश्रेष्ठ

गोविन्दके ऊपर की थी, श्रीसान्दीपनि मुनिके प्रति श्रीकृष्णकी जैसी भक्ति थी, वैसी ही भक्ति जिनकी श्रीईश्वरपुरीके प्रति थी और श्रीसुबलके प्रति श्रीकृष्णका जैसा स्नेह था, वैसा ही स्नेह जिनका श्रीस्वरूप गोस्वामीके ऊपर था, वे श्रीगौराङ्गदेव मेरे हृदयमें उदित होकर मुझे आनन्दसे पुलकित कर रहे हैं॥१०॥

मुझ पतित और घृणितके ऊपर भी कृपा करके जो महासम्पत् स्वरूप हैं, कलत्र आदिसे मेरा उद्धार करके अपने स्वरूपके निकट मुझे स्थापित कर जो परमानन्दित हुए थे और जिन्होंने मुझे अपने प्रियपात्रके रूपमें स्वीकारकर मेरे वक्षःस्थलमें गुञ्जाहार तथा (भजनके उत्कर्षके लिए) मुझे श्रीगोवर्धन शिला प्रदान किया था, वे श्रीगौराङ्गदेव मेरे हृदयमें उदित होकर मुझे आनन्दित कर रहे हैं॥११॥

इस प्रकार श्रीगौराङ्गदेवमें विद्यमान नाना–प्रकारके सद्भावरूप कुसुमोंकी प्रभा एवं ललित श्लोक–श्रेणी जिसकी शाखाएँ हैं, इस प्रकारके सुरतरु सदृश इस स्तवको जो अतिशय श्रद्धारूप श्रेष्ठ औषधि द्वारा संशोधित पाठरूपी जलसे सींचते हैं वे परम रसिक श्रीगुरुदेवकी कृपादृष्टिरूप परम फलको प्राप्प करते हैं॥१२॥

प्रश्नोत्तर

वेदानुगब्रुव और वेदविरुद्ध अपसम्प्रदाय

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

(वर्ष ४६, संख्या १२, पृष्ठ २७१ से आगे)

प्र. ५८—व्यवसायी गायकोंके मुखसे हरिकीर्तन श्रवण करना क्या शुद्ध वैष्णव पसन्द करते हैं?

उ.—व्यवसायी–गायक वास्तविक साधुसङ्ग कभी नहीं करते और वे वैष्णव सिद्धान्तोंको भी ठीकसे नहीं जानते। अतएव उनके शब्द वैष्णवोंको वज्राघात जैसे प्रतीत होते हैं।

—'भक्तिसिद्धान्त विरुद्ध और रसाभास', स. तो. ६/२

प्र. ५९—अखाड़ाधारी महान्तोंका अवैध योषित्–सङ्ग क्या श्रीमन्महाप्रभु या वैष्णव–धर्मके द्वारा अनुमोदित है?

उ.—गोविन्ददास बाबाजी जैसे महान्तोंके कारण गौड़देशके सभी देवालय दूषित हो गए थे। हमारे प्राणनाथ श्रीचैतन्य महाप्रभुजीने ऐसे दोषोंकी आशङ्कासे ही छोटे हरिदासको वैष्णव समाजसे बहिष्कृत किया था। इसको देखकर भी धर्मध्वजियोंको भय नहीं होता?

—'श्रीनकुल ब्रह्मचारीका पाट', वि. प्र. १ म वर्ष

प्र. ६०–श्रील भक्तिविनोद ठाकुरके समय गौड़मण्डलकी क्या अवस्था थी?

उ.—वैष्णव–विरुद्ध–सिद्धान्त सर्वत्र देखे जा रहे हैं। कोई–कोई मायावादको ही वैष्णव धर्म कह रहे हैं, कोई–कोई शुद्ध धर्मके एक अङ्गको लेकर उसमें मायावाद ओर कर्मवादका मिश्रणकर एक प्रकारके विकृत वैष्णव–धर्मका प्रचार कर रहे हैं। जो निरीह हैं, वे

''अर्चायामेव हरये यः पूजां श्रद्धयेहते। न तद्भक्तेषु चान्येषु स भक्तः प्राकृतः स्मृतः॥'' के अनुसार कनिष्ठ वैष्णव हैं। बुद्धिमान शुद्धवैष्णवका नितान्त अभाव है। शिक्षकके अभावमें जीवोंकी जो गति होती है, वही आजकल गौड़मण्डलकी अवस्था है।

—'भक्तिसिद्धान्त विरुद्ध और रसाभास'

प्र. ६१—श्रीभक्तिविनोद ठाकुरके समय शुद्धवैष्णवधर्मका कहाँतक आदर था?

उ.—कलिकाल ऐसा भयानक है कि किसी सत्कार्यकी स्थिति अधिक दिन नहीं होती। उक्त आचार्यत्रय श्रीनिवास, श्रील नरोत्तम और श्रील श्यामानन्द तथा उनके अनुचर श्रीगोविन्ददासादि महाजनोंके अप्रकटके साथ-साथ यह परम धर्म पुनः नष्ट होने लगा। गौड़भूमिमें शुद्धभक्तिके विचारोंका क्रमशः ह्रास होने लगा। वैष्णव हो, शाक्त हो या कर्मकाण्डी भले ही क्यों न हो, आचार्य वंशीय व्यक्ति अपनेको वैष्णव धर्मका प्रचारक कहकर कार्य करने लगे। इसलिए श्रीचैतन्त महाप्रभु और श्रीनित्यानन्दाद्वैत प्रवर्तित शुद्ध वैष्णव धर्मका क्रमशः ह्रास होने लगा। एक तरफ तो ऐसा आचार्य-विप्लव हो रहा था और दुसरी ओर बाउल, सहजिया आदिका उपद्रव क्रमशः बढ़ने लगा था। इन्हीं सब कारणोंसे श्रीवैष्णवधर्मकी आज यह दुर्दशा देखी जा रही है।

—'भक्तिसिद्धान्त विरुद्ध और रसाभास',
स. तो. ६/२

प्र. ६२--श्रीचैतन्यमहाप्रभुके पश्चात् वैष्णव जगतमें कैसा विप्लव हुआ था?

उ.—श्रीचैतन्य महाप्रभुके पश्चात् वैष्णव जगतमें थोड़ा बहुत उपद्रव होने लगा। प्रभु-वंशमें उपयुक्त पात्र न रहनेसे और नाना मतवादोंके प्रवेश करनेसे गौड़भूमि आचार्य-शासनसे रहित हो पड़ी। प्रभु वीरचन्द्रजी अपने स्वतन्त्र स्वभावके कारण समस्त गौड़भूमिको शासनमें न ला सके। श्रील अद्वैताचार्यजीके सन्तानोंमें गड़बड़ी चल रही थी। महाप्रभुके पार्षद महान्तगण धीरे-धीरे अप्रकट होने लगे। इसे सुयोग मानकर बाउल, सहजिया, दरवेश, साँई आदि कुपथगामी प्रचारक जगह-जगह अपने मतका प्रचार करने लगे। श्रीचैतन्य नित्यानन्दके नामपर सर्वसाधारणका विश्वास था। अपने-अपने कार्योद्धारके लिए उनकी दुहाई देकर वे लोग दुर्भागे जीवोंको कुपथमें ले जाने लगे। श्रीजीव गोस्वामी उस समय एकमात्र वैष्णवाचार्य थे। वे ब्रजवासी होनेके कारण गौड़मण्डलकी ऐसी शोचनीय अवस्थासे दुःखित होकर उन्होंने श्रीनिवासाचार्य प्रभु, श्रीनरोत्तम ठाकुर और श्रील श्यामानन्द प्रभुको गौड़भूमिके धर्म संस्कारक आचार्यके रूपमें प्रतिष्ठितकर प्रभुके पार्षदोंके द्वारा रचित सभी सिद्धान्त-ग्रन्थोंको गौड़भूमिमें भेजा। महाप्रभुजीकी इच्छासे ये सभी ग्रन्थ रास्तेमें लूट लिये गए। प्रेरित प्रचारकगण बिना ग्रन्थोंके ही अपने-अपने शुद्ध वैष्णवधर्मका प्रचार करने लगे।

—"भक्तिसिद्धान्त विरुद्ध और रसाभास"

प्र. ६३—श्रीचैतन्य महाप्रभुजीके पश्चात् शुद्धभक्तिको विनष्ट करनेकी चेष्टा किन्होंने की थी?

उ.—श्रीचैतन्य महाप्रभुजीके अप्रकटके कुछ समय पश्चात् ही बाउल, सहजिया, कर्त्ताभजा आदि अपसम्प्रदाय, स्मार्त्त-कर्मी, ब्राह्मण, ज्ञानी और हेतुवादीगण वैष्णवोंको कलङ्कित करनेकी

चेष्टा करने लगे। अभी भी ऐसे व्यक्तियोंकी कमी नहीं है। क्रमशः ऐसे व्यक्तियोंकी संख्या बढ़ रही है। श्रीहरिदास ठाकुरको ब्राह्मण बनानेकी चेष्टा, श्रीईश्वरपुरीको शूद्र या ब्राह्मण वर्णमें भूषित करनेकी चेष्टा, ब्राह्मणोंको छोड़कर दूसरोंको वैष्णव-शिक्षा प्रदान करनेकी अक्षमताको स्थापन करनेकी चेष्टा आदि नितान्त अवैष्णवोचित सामाजिक उपद्रव बढ़ने लगे। इनसे भक्तिको कोई सहायता नहीं मिली। अतएव शुद्ध वैष्णवोंके लिए ये सब क्रियाएँ आदरणीय नहीं हैं।

—'श्रीवैष्णवोंका वर्णाश्रम', स. तो. ११/१०

प्र. ६४—अवतारकी अप्रकट लीलाके पश्चात् वञ्चनाका उदय हो, तो भजन प्रयासीको क्या करना चाहिए?

उ.—अवतार अप्रकट होनेपर जो सब वञ्चनाएँ जगतमें उदित होंगी, उनसे साधकका निश्चय ही पतन होगा। भजन प्रयासियोंको उन सब वञ्चनाओंसे सतर्क रहना चाहिए।

—आ. वि. भा. टी.

प्र. ६५—कलिके दास कौन हैं?

उ.—कृष्णमन्त्रमें गौर-पूजा या गौर-मन्त्रमें कृष्णपूजा दोनोंमें भेद नहीं है। जो इसमें भेदबुद्धि करते हैं, वे नितान्त अनभिज्ञ और कलिके दास हैं।

—जैवधर्म १४ वाँ अध्याय

प्र. ६६—बहुत-से व्यक्ति विद्ध वैष्णवधर्मको ही शुद्ध वैष्णवधर्म क्यों कहते हैं?

उ.—कलिके दोषसे बहुत-से व्यक्ति शुद्ध वैष्णवधर्मको न समझनेके कारण विद्ध वैष्णवधर्मको ही वैष्णवधर्म कहते हैं।

—जैवधर्म चौथा अध्याय

प्र. ६७—महाप्रभुजीके धर्ममें क्या किसी प्रकारके प्रकृति-सङ्गका समर्थन है?

उ.—छोटे हरिदास स्वयं प्रकृति होकर पुरुष भावसे दूसरी प्रकृतिसे सम्भाषण करनेके कारण दूर किए गए थे। धूर्त्त लोग "प्रकृति हइया करे प्रकृति सम्भाषण"—इस पद्यका दुष्ट-अर्थ कर इन्द्रियोंको चरितार्थ करते हैं। साधु वैष्णवगण उनकी उपेक्षा करते हैं। गृहस्थोंके लिए विवाहित स्त्रीसङ्ग भजनका अङ्ग नहीं है। केवल संसार-यात्रा निर्वाहके लिए उसे निष्पाप स्वीकार किया गया है।

—'सहजिया मतका हेयत्व', स. तो. ५/६

श्रील प्रभुपादजीका उपदेशामृत

(वर्ष ४६, सख्या १२, पृष्ठ २७३ से आगे)

प्र. ७९—कीर्तन क्या सर्वश्रेष्ठ भक्ति अङ्ग है?

उ.—भक्तिके जितने अङ्ग हैं, उनमें कृष्णसंकीर्तन ही एकमात्र प्रधान एवं आवश्यक है। श्रीकृष्णसंकीर्तनके द्वारा ही परमार्थ (भक्ति) जीवनमें अग्रसर होनेकी योग्यता प्राप्त होती है। श्रीकृष्णनाम सर्वशक्तिमान हैं। उनमें समस्त इच्छाओंको पूर्ण करनेकी तथा चरमफल कृष्णप्रेम प्रदान करनेकी क्षमता है।

श्रीकृष्णनामके द्वारा हमारी भक्तिके अतिरिक्त समस्त प्रकार क्रियाओंसे विरक्ति हो जाएगी तथा समस्त प्रकारकी जड़ चिन्ताएँ एवं जड़ धारणाएँ दूर हो जाएँगी। यदि सौभाग्यसे हमारी जिह्वापर कृष्णनाम उदित हो जाए, तभी हम

जड़जगतके प्रति अपने कर्तव्य जैसे—समाजसेवा, देशसेवा, माता-पिताकी सेवा आदिको त्यागकर सम्पूर्ण रूपसे भगवानकी सेवा कर सकते हैं तथा तभी हमारी भोग करनेकी लालसा भी दूर हो सकती है। कृष्णनामके द्वारा ही भक्तिमार्गमें आनेवाली समस्त प्रकारकी विघ्न-बाधाएँ सहजरूपमें ही दूर हो सकती हैं। यह कृष्णनाम केवल साधन ही नहीं है, अपितु साधनका चरमफल साध्य भी है। ऐसे कृष्णनामको गुरुके आनुगत्यमें पुनः-पुनः श्रद्धापूर्वक उच्चारण करना चाहिए। श्रीकृष्णनामसे समस्त प्रकारके मङ्गल उदित होते हैं। अतः ऐसे अद्भुत प्रभावशाली श्रीकृष्णनामके द्वारा ही जीवका कल्याण हो सकता है। एकमात्र कृष्णनाम ही हमें नित्यानन्द-सागरमें डुबा सकता है। यह नाम समस्त रसोंका आश्रय है।

श्रीगौरसुन्दर परम उपास्य वस्तु हैं। इस जगतमें जितने भी उपास्य हो सकते, ये उन समस्त उपास्योंके भी उपास्य हैं। स्वयं कृष्ण होकर भी श्रीचैतन्यमहाप्रभुने भागवत-धर्मका आचरणकर जगतवासियोंको दिखाया कि श्रीकृष्ण-संकीर्तन ही भागवतधर्मकी पराकाष्ठा है। कृष्णसंकीर्तन ही महाध्यान, महायज्ञ एवं महाअर्चन है। कृष्णका ध्यान, कृष्णका यज्ञ तथा कृष्णका अर्चन साधारण है, परन्तु कृष्णसंकीर्तनरूप महाध्यान, महायज्ञ एवं महार्चनके द्वारा ही वे विषय अर्थात् अर्चन, यज्ञ एवं ध्यान परिपूर्णताको प्राप्तकर चरमफलप्रद होते हैं।

प्र. ८०—गृहस्थोंका क्या कर्तव्य है?

उ.—यदि हम सर्वदा अपने शारीरिक सुखोंके लिए ही चेष्टा करते रहेंगे तो अवश्य ही गृहव्रती हो जाएँगे। सदा-सर्वदा केवल कृष्णकी सेवाके लिए ही चेष्टा करनेसे हमारा कल्याण हो सकता है। जो स्त्री, पुत्र, घर, परिवार एवं बन्धु-बान्धवोंको छोड़कर सम्पूर्णरूपसे निरन्तर कृष्णभजन करते हैं, गृहस्थभक्तोंको सदा-सर्वदा सब प्रकारसे उनकी सहायता तथा सेवामें लगे रहना चाहिए। तभी गृहस्थोंका कल्याण हो सकता है तथा संसारके प्रति उनकी आसक्ति कुछ कम हो सकती है। जो पारमार्थिक गृहस्थ अर्थात् गृहस्थ वैष्णव हैं, वे जिस प्रकार अपने स्त्री-पुत्र, कन्या आदिके लिए अथाह परिश्रम करते हैं, उसी प्रकार उन्हें भगवानकी सेवाके लिए भी करना चाहिए। यदि स्त्री-पुत्र तथा परिवारके अन्य सदस्य भजन करते हैं, तो उनका अच्छी प्रकारसे पालन-पोषण करना चाहिए, नहीं तो दूध पिलाकर साँपको पालना उचित नहीं है। उनका सङ्ग भजनके प्रतिकूल तथा बाधक जानकर उनसे अलग हो जाना चाहिए।

हमलोग जैसे ही प्रभु (भोक्ता) सजना चाहते हैं तथा दूसरोंपर अपना प्रभुत्व जमाना चाहते हैं, वैसे ही हम माया या प्रकृतिके वशीभूत हो जाते हैं। वर्तमान समयमें दुःखग्रस्त हमलोगोंका एकमात्र कल्याणप्रद कर्तव्य है कि हम संसारके प्रति आसक्ति त्यागकर कृष्णके संसारमें प्रवेश करें। निष्कपट रूपसे श्रीगुरुदेवके श्रीचरणोंका आश्रय लेनेपर ही हमारा संसारसे उद्धार हो सकता है, इसके अतिरिक्त दूसरा उपाय नहीं है। जिस गुरुकी कृपासे संसारसे किसीका उद्धार हो सकता है, क्या वे गुरु अभक्त, अन्याभिलाषी, कर्मी,

कपटी, नास्तिक मायावादी या योगी हो सकते हैं? यदि परमपुरुष भगवानमें किसीकी दृढ़भक्ति न हो तो क्या वह सद्गुरु हो सकता है?

यह बात नहीं है कि केवल त्यागियोंको ही गुरुसेवा करनी चाहिए, बल्कि गृहस्थ एवं त्यागी दोनोंको ही गुरुसेवा करनी चाहिए। श्रीगुरुदेवके श्रीमुखसे निकलनेवाली हरिकथा सेवोन्मुख कर्णोंमें पहुँचकर अज्ञानरूप अन्धकारको दूर करती है। तब हमारे नेत्र निर्मल हो सकते हैं, जिनके द्वारा सहजरूपसे ही कृष्णका दर्शन हो सकता है।

हमारे सर्वनाशका एकमात्र कारण है, हमारी प्रभु (भोक्ता) होनेकी इच्छा। यदि हम अपनी इच्छासे प्रेयपथ (जागतिक कामना) के मार्गपर चलकर संसार करनेके लिए दौड़ें तथा संसारमें ही व्यस्त रहें, तो त्रिताप-ज्वाला (आधिदैविक, आधिभौतिक, आध्यात्मिक) में हमें निश्चितरूपसे जलना ही पड़ेगा। अतः जो लोग मनकी बात तथा मनोधर्मी लोगोंकी बात सुनकर सदा-सर्वदा भगवानकी सेवामें लगे रहते हैं, उनके ही उपदेशोंको सम्पूर्णरूपसे निःसंकोचरूपसे ग्रहण करना चाहिए।

प्र. ८१—सेवा क्या वस्तु है?

उ.—सेवा देह तथा मनका धर्म या कार्य नहीं है। सेवा आत्माका धर्म है। सेवा बनियागिरि नहीं है। कृष्णके सुखके लिए सेवा ही कृष्णसेवा है। उसमें अपने सुखकी कामना लेशमात्र भी नहीं है। सेवा अव्यभिचारिणी, अहैतुकी तथा अप्रतिहता आत्माकी वृत्ति है। श्रीगुरुदेवकी अव्यभिचारिणी सेवाके बिना वेदान्तको समझना असम्भव है। भगवानके भक्तोंके अतिरिक्त कोई दूसरा गुरु नहीं हो सकता—यह हास-परिहासकी बात नहीं है, बल्कि सत्य बात है। गीतामें भगवान स्वयं कह रहे हैं—मेरी जो जिस प्रकारसे सेवा करता है, मैं भी उसीके अनुसार उसकी सेवा करता हूँ। कान्तारस (मधुर-रस) में सर्वाङ्गसे श्रीकृष्णकी सेवा होती है, इसीलिए श्रीकृष्ण भी स्वयंको उसका ऋणी मानते हैं। अतः कान्तारस (मधुर-रस) में ही शरणागतिकी परिपूर्णता तथा सेवाकी पराकाष्ठा है।

प्र. ८२—हमारी भक्ति कैसे बढ़ सकती है?

उ.—सेवा करते-करते सेवाकी प्रवृत्ति जागेगी। जहाँपर गुरुसेवाकी इच्छा ही नहीं है, वहाँ पर बढ़नेकी बात ही नहीं है। यदि हमारी चित्तवृत्ति गुरु-चरणोंमें होगी, तो हम कहीं भी क्यों न रहें, हमारी सेवा करनेकी इच्छा बढ़ेगी। नहीं तो संसार करनेकी प्रवृत्ति ही बढ़ेगी। सदा-सर्वदा भगवानकी सेवा करनेसे समस्त प्रकारकी असुविधाएँ दूर हो जाएँगी। परन्तु यदि हम भगवानकी सेवा न कर संसारकी सेवा, मायाकी सेवामें तथा अपनी भोगकी वस्तुओंको ही एकत्रित करनेमें लगे रहे तो, अवश्य ही नाना प्रकारके अमङ्गल एवं अशान्ति आकर हमें घेर लेंगे। भक्तोंका सङ्ग तथा उनकी सेवाके बिना भक्ति नहीं बढ़ सकती।

हमने गुरु एवं श्रीकृष्णके चरणोंमें आश्रय लिया, परन्तु उनकी सेवामें लेशमात्र भी रुचि नहीं है। यदि हम भक्तिमार्गका आश्रय लेकर भक्ति न करें, विभिन्न प्रकारसे उनकी सेवाकी चेष्टा न करें, तो हम अपने कल्याणकी आशा कैसे रख सकते हैं?

हमें सर्वप्रथम श्रीगुरुदेवके चरणोंका आश्रय लेना होगा। अर्थात् हमें छोटा होना होगा, यही आश्रयका अर्थ है। आश्रितका कार्य है, भृत्य (सेवक) होकर सेव्यकी सेवा करना। परन्तु क्या हम ऐसा कर रहे हैं? हमें अपना सर्वस्व गुरुपादपद्ममें अर्पण करना होगा, तभी हमें पूर्णवस्तु भगवानकी प्राप्ति हो सकती है। परन्तु बड़े दुर्भाग्यका विषय है कि गुरुचरणोंमें सर्वस्व-त्याग तो दूरकी बात है, हम लेशमात्र भी (कुछ भी) नहीं देना चाहते तथा मुख ही मुखमें बोलते हैं—हमें कृपा चाहिए, भगवान चाहिए। परन्तु भगवान तो अन्तर्यामी हैं। उन्हें हम धोखा नहीं दे सकते। गुरुसेवाकी प्रवृत्ति न जागने पर कृष्णसेवाकी प्रवृत्ति कैसे बढ़ सकती है? गुरुपादपद्मका दर्शन करने पर भी यदि स्त्रीसङ्गकी इच्छा, संसारकी प्रवृत्ति बढ़ती है, तो इसका तात्पर्य यह है कि हमारी उन्नति नहीं हो रही है, बल्कि हमारा पतन ही हो रहा है। यदि कोई वास्तवमें ही गुरुपदाश्रयकर प्रीतिपूर्वक उनकी सेवा करे, तो उसे अवश्य ही कृष्णसेवाकी प्राप्ति होगी, कृष्णके विषयमें दिव्यज्ञान प्राप्त होगा तथा उसकी सेवावृत्ति बढ़नेके कारण उसे सेवानन्द प्राप्त होगा।

अतः हमें वही कार्य करने चाहिए, जिनके द्वारा विषयोंको बढ़ानेकी प्रवृत्ति तथा संसारकी वासना कम हो। ऐसा होनेपर ही कर्त्ताभिमान या भोक्ताभिमान दूर हो सकता है। ऐसी अवस्थामें ही जगतको श्रीकृष्णके भोग्यवस्तुके रूपमें अनुभव किया जा सकता है। मैं कर्त्ता हूँ, भोक्ता हूँ—यह अभिमान दूर होनेपर ही भगवानकी सेवाकी प्रवृत्ति बढ़ती है। संसारकी वासना प्रबल रहने पर, संसारके लिए अधिक व्यस्त रहने पर भगवानकी सेवाप्रवृत्ति उदित नहीं हो सकती। भगवानकी सेवाके लिए उत्कण्ठा जागने पर मनुष्य स्वयंको गुरुका पुत्र मानता है। जिसके फलस्वरूप जागतिक माता-पिता, बन्धु-बान्धवोंसे उसका सम्बन्ध नष्ट हो जाता है। तभी उसका मङ्गल होता है अर्थात् उसका वास्तविक मठवास होता है। (क्रमशः)

श्रीगौराङ्ग-सुधा

—श्रीपरमेश्वरी दास ब्रह्मचारी

(वर्ष ४६, संख्या १२, पृष्ठ २८३ से आगे)

मुरारीगुप्तकी आत्महत्याकी चेष्टा

एक दिन मुरारीगुप्त भगवानके अवतारोंके विषयमें मन ही मन विचार कर रहे थे कि न जाने कृष्ण कब कौन-सी लीला करते हैं, यह निश्चित नहीं है। कैसे आश्चर्यकी बात है—जिस सीताके लिए श्रीरामने रावणको सवंश नष्ट किया, बादमें उसी सीताको बिना किसी कारणके वनमें छोड़ दिया। जो यादव श्रीकृष्णको अपने प्राणोंसे अधिक प्रिय थे, वे उन्हींके समक्ष आपसमें लड़कर मर गए, परन्तु उन्होंने उन्हें बचानेकी तनिक भी चेष्टा नहीं की। इसी प्रकार न जाने हमारे प्रभु श्रीगौरसुन्दर भी कब हमें छोड़कर चले जाएँगे, यह निश्चित नहीं है। इनके बिना मैं जीवित नहीं रह सकता। अतः इनके जानेसे पहले ही मुझे चले जाना चाहिए अर्थात् मुझे

अपना शरीर छोड़ देना चाहिए। ऐसा विचारकर वे बाजारसे एक धारदार खड्ग (तलवार) ले आए तथा उसे घरके भीतर छिपा दिया। उन्होंने विचार किया कि आज रात्रिके समय मैं इस खड्गसे अपनी जीवनलीला समाप्त कर दूँगा। इसलिए वे बहुत प्रसन्न थे।

परन्तु अन्तर्यामी प्रभु श्रीगौरसुन्दर मुरारीके हृदयकी बात जान गए थे। अतः वे अति शीघ्र मुरारीगुप्तके घर पहुँच गए। प्रभुको अपने घरपर देखकर मुरारीने प्रसन्न होकर प्रभुका आदर-सत्कार किया तथा उन्हें बैठनेके लिए एक उत्तम आसन प्रदान किया। आसन पर बैठकर प्रभु करुणापूर्वक कृष्णकथा कहने लगे। मुरारीके कठोर संकल्पसे उनका हृदय द्रवित हो गया था। अतः प्रभु बोले—"मुरारी! क्या तुम मेरी एक बात मानोगे?"

गुप्त—"प्रभो! यह मेरा शरीर आपका ही है। अतः निस्संकोचपूर्वक कहिए, मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ?"

प्रभु (मुस्कराते हुए)—"मुरारी! तुम सत्य कह रहे हो?"

गुप्त—"प्रभो! आप बोलकर तो देखिए।"

यह सुनकर प्रभु धीरेसे उसके कानमें बोले—"तुमने जो खड्ग अपने शरीरको नष्ट करनेके लिए छिपा रखा है, उसे मुझे दे दो।"

यह सुनते ही मुरारी दुःखी होकर 'हाय, हाय' करते हुए बोले—"प्रभो! आपसे यह असत्य बात किसने कही?"

प्रभु—"मुरारी! मुझे कौन कहेगा? परन्तु मैं जानता हूँ कि तुम मुझसे पहले शरीर छोड़कर जाना चाहते हो। इसीलिए तुम वह खड्ग लाए हो। मैं यह भी जानता हूँ कि तुमने उसे घरमें कहाँ रखा है।" ऐसा कहकर अन्तर्यामी प्रभु स्वयं ही घरके भीतर गए तथा जहाँपर वह कटारी छिपाकर रखी हुई थी, उसे वहाँसे निकालकर ले आए। उस खड्गको गुप्तको दिखाते हुए प्रभु रोते-रोते कहने लगे—"मुरारी! क्या यही तुम्हारी प्रीति है? पहले यह तो बताओ कि मैंने ऐसा कौन-सा दोष किया, जो तुम इस तरह मुझे छोड़कर अकेले जाना चाहते हो? क्या तुमने जरा-सा भी यह सोचा कि तुम्हारे बिना मेरी क्या अवस्था होगी तथा तुम्हारे जानेके बाद मैं किसके साथ लीलाएँ करूँगा? तुमको ऐसी दुर्बुद्धि किसने दी? अब तुम मुझे एक भिक्षा दो कि आजके बाद कभी भी तुम ऐसा अनर्थ करनेकी बात सोचोगे भी नहीं।"

ऐसा कहकर प्रभुने मुरारीको गलेसे लगा लिया तथा उनका हाथ अपने सिर पर रखकर कहने लगे—"मुरारी! तुम मेरे सिरकी कसम खाओ कि आजके बाद तुम ऐसा अन्याय नहीं करोगे।"

यह सुनकर मुरारीगुप्त भी फूट-फूटकर रोते हुए प्रभुके चरणोंमें गिर पड़े तथा अपने प्रेमके आँसुओंसे उनके श्रीचरणोंको धोने लगे। इस प्रकार जो सौभाग्य आज मुरारीगुप्तको प्राप्त हुआ, उसके लिए तो लक्ष्मी, शिव तथा ब्रह्मा आदि भी लालायित रहते हैं। मात्र एक बार यदि पशु-पक्षी भी श्रीगौरसुन्दरका नाम लेते हैं, तो वे श्रीगौरसुन्दरके धामको प्राप्त करते हैं। परन्तु यदि कोई संन्यासी होकर भी ऐसे श्रीगौरसुन्दरका नाम नहीं लेता है, तो उसमें तथा एक चाण्डालमें कोई भेद नहीं है। क्योंकि दोनों ही भगवानके विरोधी हैं—

प्रकटं पतितः श्रेयान् य एको यात्यधः स्वयम्।
वकवृत्तिः स्वयं पापः पातयत्यपरानपि॥

(नारदीय पुराण)

अर्थात् एक भगवद्विरोधी संन्यासीकी अपेक्षा एक चाण्डाल अच्छा है, क्योंकि वह चाण्डाल अपने दुष्कर्मोंके कारण अकेले ही नरका जाता है, परन्तु एक मायावादी संन्यासी भगवानके चिन्मय नाम, रूप, गुण, लीला तथा उनके परिकरोंको मायिक माननेके कारण स्वयं तो नरकमें जाता ही है, परन्तु अनेक लोगोंको ऐसी कुशिक्षा प्रदानकर उन्हें भी घोर नरकमें ले जाते हैं।

हरन्ति दस्यवोऽकुट्यां विमोह्यास्त्रैर्नृणां धनम्।
चारित्रैरतितीक्ष्णाग्रैर्वादैरेवं वकव्रताः॥

डाकूलोग तो निर्जन स्थानमें अस्त्र-शस्त्रोंके द्वारा पथिकोंका धन हरण करते हैं। परन्तु वकव्रती अर्थात् ढोंगी संन्यासीवृन्द अपने विषके समान मीठी-मीठी भाषाके द्वारा लोगोंका परमार्थ ही नष्ट कर देते हैं।

अतः जो मायावादी संन्यासियोंका सङ्ग करते हैं, उनका कल्याण सम्भव नहीं है। क्योंकि वे मायावादी लोग भगवान एवं वैष्णवोंको अनित्य मानकर घोर अपराध करते हैं। वैसे तो सारा जगत ही भगवानका वैभव है, अतः किसीकी भी निन्दा करनेसे श्रीकृष्ण रुष्ट हो जाते हैं, तो फिर वैष्णव जो कि निरन्तर तन, मन एवं वचनसे भगवानकी सेवामें नियुक्त हैं—उनकी निन्दा श्रीकृष्ण कैसे सह सकते हैं? यदि कोई वैष्णवोंकी तो बात ही क्या किसीकी भी निन्दा न कर हरिनाम करता है, तो श्रीकृष्ण निश्चितरूपसे उसका उद्धार करेंगे। परन्तु चारों वेदोंको जाननेवाला व्यक्ति भी यदि किसीकी निन्दा करता है, विशेषरूपसे वैष्णवोंकी, तो वह कुम्भीपाक नरकमें जाता है। इस प्रकार प्रभु मुरारीगुप्तको सान्त्वना प्रदानकर अपने घर चले आए।

देवानन्द पण्डित पर क्रोध

एक दिनकी बात है। प्रभु नगरमें भ्रमण करते-करते सार्वभौम भट्टाचार्यके पिता विशारद माहेश्वरके घर पहुँच गए। वहीं निकटमें एक भागवत-वक्ताका घर था। उसका नाम देवानन्दपण्डित था। वह जन्मसे ही विषयोंसे उदासीन था तथा परम ज्ञानी था। वह भागवत तो पाठ करता था, परन्तु था वह मोक्षकामी। अतः भागवत पाठ करने पर भी भक्ति महिमाको नहीं जानता था। यद्यपि एक जीव होनेके कारण भागवतको समझनेका सामर्थ्य उसमें था, परन्तु किसी अपराधके कारण वह भागवतकी वास्तविक व्याख्या नहीं समझ पा रहा था। अर्थात् जीवमात्र ही भगवानका दास है। अतः जीवमात्र ही वैष्णव होनेके कारण भागवतको समझनेका अधिकारी है, परन्तु यदि किसीसे कुछ महत् अपराध हो जाता है, तो उसका वह सामर्थ्य सुप्त अवस्थाको प्राप्त हो जाता है। ऐसी ही अवस्था देवानन्द पण्डितकी भी थी। सौभाग्यसे श्रीगौरसुन्दर उसी मार्गसे जा रहे थे, जहाँ पर वह भागवत पाठ कर रहा था। उसके मुखसे भागवतका फल मुक्ति सुनकर प्रभु क्रोधित होकर कहने लगे—"यह कैसी गलत व्याख्या कर रहा है? किसी जन्ममें भी यह भागवतका अर्थ नहीं समझ सकता। श्रीमद्भागवतमें इसका अधिकार नहीं है। भागवतके रूपमें स्वयं श्रीकृष्ण ही जगतमें अवतरित हुए हैं। चारों वेद घोषणा कर रहे हैं कि भागवतका चरमफल भक्ति है। चारों वेद दधि (दही) के समान तथा भागवत मक्खनके समान है। श्रीशुकदेवजीने ही वेदरूप दहीको मथा, जिससे भागवतरूप मक्खन निकला, जिसे परीक्षितजीने खाया। अतः भागवतको तो मेरा प्रिय शुक

(शुकदेव) ही जानता है। जो मुझमें, मेरे भक्तोंमें तथा ग्रन्थभागवतमें भेद देखता है, तो उसका सर्वनाश निश्चित है।" इस प्रकार प्रभु क्रोधके आवेशमें भागवतकी महिमाका गान कर रहे थे, जिसे सुनकर वहाँपर उपस्थित वैष्णववृन्द आनन्दित हो रहे थे। प्रभु बोले—"भक्तिके बिना यदि कोई व्यक्ति भागवतपाठ करता है, तो वह नीच कभी भी भागवतको नहीं समझ सकता। यह दुष्ट भी भक्तिहीन होकर भागवतपाठ करता है, अतः आज मैं इसके भागवतको फाड़कर फेंक देता हूँ।"

ऐसा कहकर प्रभु उसकी भागवतको फाड़नेके लिए जाने लगे। परन्तु सभी वैष्णवोंने प्रभुको पकड़ लिया। श्रीमद्भागवत महा-अचिन्त्य ग्रन्थ है, सभी शास्त्रोंमें ऐसा वर्णन है। इसे न जानकर यदि कोई विद्या, तप, प्रतिष्ठाकी आशासे भागवत पाठ करता है तथा समझता है कि मैं भागवतको समझ गया हूँ, तो यह सुनिश्चित है कि वह लेशमात्र भी भागवतको समझ नहीं सकता है।

भावाविष्ट होकर शराबीके घर जानेको उद्यत

एक दिन प्रतिदिनकी भाँति नगरमें भ्रमण करते-करते प्रभु अपने भक्तोंके साथ एक शराबीके घरके पाससे गुजर रहे थे, तभी उनके नाकमें मदिराकी गन्ध गई। उस गन्धसे उन्हें वारुणीका स्मरण हो आया तथा वे बलरामजीके भावमें आविष्ट हो गए। उनका बाह्यज्ञान लुप्त हो गया तथा वे उस शराबीके घरकी ओर जाने लगे। श्रीवासजी प्रभुके भावोंको समझ गए, अतः उन्होंने प्रभुके चरणोंको पकड़ लिया तथा वहाँ न जानेके लिए विनती करने लगे।

यह सुनकर प्रभु बोले—"क्या तुम मुझपर भी अपना शासन चलाओगे? क्या मैं भी विधि-निषेधके अधीन हूँ?"

परन्तु श्रीवासजीने फिर भी प्रभुके चरणोंको नहीं छोड़ा तथा वे रोते हुए कहने लगे—"हे प्रभो! आप जगतके पिता हैं। यदि आप ही किसीका विनाश करेंगे तो उसकी रक्षा कौन कर सकता है? प्रभु यदि आप वहाँ गए तो, आपके भावोंको न जानकर लोग आपकी निन्दा करेंगे, जिसके फलस्वरूप उन्हें कोटि जन्मों तक जन्म-मरणके चक्करमें पड़ना पड़ेगा। प्रभो! आप तो साक्षात् धर्मरूप हैं, परन्तु आपकी इस लीलाको कोई समझ नहीं पाएगा। यदि आप यहाँसे उठकर उस शराबीके घरमें गए, तो मैं अभी जाकर गंगाजीमें छलांग लगा दूँगा।"

अपने भक्तोंके संकल्पकी सदा ही रक्षा करनेवाले प्रभु हँसते हुए कहने लगे—"श्रीवास! यदि तुम्हारी इच्छा नहीं है कि मैं वहाँ जाऊँ तो मैं तुम्हारी इच्छाके विरुद्ध कुछ भी नहीं करूँगा।"

इस प्रकार श्रीवासजीकी बातोंको सुनकर प्रभुका आवेश कुछ कम होने लगा तथा अपने भक्तोंके साथ वे वहाँसे आगे चल दिए। रास्तेमें बहुत-से शराबी नशेमें मत्त होकर आ रहे थे। जब उन्होंने प्रभुको देखा तो वे सभी प्रभुको पुकारते हुए "निमाई पण्डित, हरिबोल, हरिबोल!" कहने लगे। कुछ शराबी कहने लगे—"अरे पण्डित! तुम हमें बहुत अच्छे लगते हो। तुम्हारा नृत्य तथा गान हमें बहुत अच्छा लगता है।" ऐसा कहकर कुछ शराबी नशेमें ही लड़खड़ाते हुए 'हरिबोल, हरिबोल' कहकर नाचने लगे।

उन शराबियोंकी इन हरकतोंसे प्रभु हँसने

लगे। यह देखकर आनन्दसे श्रीवासके नेत्रोंसे आँसु झरने लगे। वे विचार करने लगे—"मेरे प्रभुका दर्शनकर ये शराबी, जिन्हें कि अपना ही होश नहीं है, वे भी आनन्दसे नाच रहे हैं। केवल पापी मायावादी संन्यासी ही धर्ममय मेरे प्रभुकी निन्दा करते हैं। उनसे तो ये शराबी लोग ही शतगुणा श्रेष्ठ हैं, जो तमोगुणमें आविष्ट होनेपर भी मेरे प्रभुका सम्मान कर रहे हैं। परन्तु जो लोग साक्षात् धर्म-कर्म करनेमें लगे हैं, ऐसे संन्यासी लोग धर्मके मूल मेरे प्रभुकी निन्दा करते हैं। मेरे प्रभुका दर्शनकर जिसके मनमें दुःख होता है, चाहे वह किसी भी वर्णका हो या किसीके भी आश्रयमें हो, उसका नरकगमन निश्चित है। इसके विपरीत मेरे प्रभुका दर्शनकर जिसे आनन्द होता है, वह शराबी हो या चाण्डाल हो, अथवा किसी भी जातिका क्यों न हो, उसे मैं सैकड़ों बार प्रणाम करता हूँ।"

(क्रमशः)

विविध संवाद

विदेश प्रचार प्रसङ्ग

श्रीलमहाराज हवाई द्वीपमें प्रचार समाप्त कर अमेरिकामें Main Land के प्रधान-प्रधान महानगरियोंमें प्रचार करके ब्राजीलके Sau Paulo, Riodejenero, यूरोपके जर्मनी, Frankfurt, Berlin में प्रचार सेवाकर विगत २६-२-०३ तारीखको भारतमें पहुँच गए हैं।

इन समस्त स्थानों पर प्रचारके प्रधान आलोच्य विषय थे—मदीय परमाराध्य श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके वर्तमान सभापति और अध्यक्ष परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजके शुभ आविर्भाव तिथिके उपलक्ष्यमें उनके श्रीगुरुसेवाका आदर्श, अतिमर्त्य जीवन चरित्र, श्रीगुरु-तत्त्व, भक्तिके विभिन्न सोपान, मायवाद-खण्डन, श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रतिष्ठाता अस्मदीय परम गुरुदेव नित्यलीलाप्रविष्ट ॐविष्णुपाद श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीकी शिक्षा एवं विश्वव्यापी श्रीमन्महाप्रभुकी वाणी प्रचारके मूलपुरुष श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर प्रभुपादकी शिक्षा।

श्रीगुरुतत्त्वकी आलोचना करते समय दीक्षाकी आवश्यकताके विषयमें प्रसङ्ग आने पर श्रीपाद भक्तिवेदान्त पद्मनाभ महाराज और श्रीपाद भक्तिवेदान्त भक्तिसार महाराजजीने कुछ जिज्ञासा की।

प्रश्न (श्रीपद्मनाभ महाराज)—श्रीलगुरुदेव! परमपूज्यपाद श्रील भक्तिरक्षक श्रीधर गोस्वामी महाराजजीके श्रीमुखसे मैंने सुना है कि श्रीहरिनामके लिए दीक्षाकी कोई आवश्यकता नहीं है, किन्तु आप सदैव दीक्षा पर जोर देते हैं, बाह्यतः यह दोनों विचार विरोधी लगते हैं, इनका किस प्रकारसे सामञ्जस्य किया जाए?

श्रीभक्तिसार महाराज—श्रीलगुरुदेव! मैंने भी अपने गुरुदेवसे एक Room conver-sation में ऐसा ही सुना है।

उत्तर (श्रीलमहाराजजी)—प्रपूज्यचरण श्रील भक्तिरक्षक श्रीधर गोस्वामी महाराज और प्रपूज्यचरण श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी महाराज दोनों ही मेरे परमाराध्य गुरुदेवके सतीर्थ एवं जगद्गुरु श्रील सरस्वती ठाकुर प्रभुपादके

अनुगृहीत हैं। मैं उन दोनों शिक्षागुरुओंके श्रीचरणोंमें साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणति ज्ञापन करता हूँ। मेरे दोनों शिक्षागुरुओंने जो कहा है, वह शास्त्र अनुरूप ही है, तथापि दीक्षाग्रहण करना आवश्यक है। स्कन्ध पुराणमें कहा गया है—

अदीक्षितस्य वरोरु कृतं सर्वं निरर्थकम्।
पशुयोनिमवाप्नोति दीक्षा विरहितो जनः॥

अर्थात् राजा रुक्माङ्गद रोहिणीदेवीको कह रहे हैं—हे वरोरु! हे सुन्दरी! दीक्षाग्रहण किए बिना मनुष्यके समस्त शुभकर्म निरर्थक हो जाते हैं। दीक्षाविहीन व्यक्ति पशुयोनिको प्राप्त करता है।

षड्गोस्वामियोंमें अन्यतम श्रीलजीव गोस्वामी भक्तिसन्दर्भमें लिखते हैं कि जैसे उपनयन संस्कारविहीन ब्राह्मणोंकी सन्तानका शास्त्र-अध्ययन और यज्ञ आदिमें अधिकार नहीं होता, वैसे ही दीक्षाके बिना मन्त्र देवताके अर्चन-पूजन इत्यादिमें अधिकार प्राप्त नहीं होता।

यद्यपि भगवन्नामके महत्वके सम्बन्धमें शास्त्रोंमें वर्णन आता है कि भगवत् नाममें इतनी शक्ति है कि वह दीक्षा, पुरश्चरण, सत्क्रिया आदि विधि-विधानके बिना ही केवलमात्र जिह्वाके स्पर्शसे ही फल प्रदान करनेमें समर्थ है। षड् गोस्वामियोंमें प्रधान श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुके प्रिय-पार्षद श्रील रूप गोस्वामी अपने ग्रन्थमें लिखते हैं कि—

नो दीक्षां न च सत्क्रियां न च पुरश्चर्यां मनगीक्षते।
मन्त्रोऽयं रसनास्पृगेव फलति श्रीकृष्णनामात्वकः॥

इस विषयमें श्रीलजीव गोस्वामी पाद भक्तिसन्दर्भमें वर्णन करते हैं कि भगवन्नाम माहात्म्यमें ऐसा वर्णित होनेपर भी श्रीनारदादि पूर्व-पूर्व महाजनगणने जैसे गुरुदेवके निकट दीक्षा-मन्त्र आदि ग्रहण करके साधन-भजन किया है, वैसे ही उक्त महापुरुषोंके अनुगत व्यक्तियोंके लिए भी गुरुदेवके समीप दीक्षा ग्रहण करना ही कर्तव्य है। गुरुदेव सम्बन्ध-ज्ञान प्रदान करते हैं। दीक्षा ग्रहण किए बिना भगवानके साथ दास्य आदि सम्बन्ध स्थापित नहीं हो पाता। उक्त सम्बन्ध ज्ञान केवल मात्र गुरुपादपद्मके माध्यमसे ही स्थापित होता है। प्रेमपुरुषोत्तम श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु, उनके अनुगत गोस्वामियों एवं भक्तोंमें आज तक दीक्षाकी विधि प्रचलित है। श्रीलविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरने स्पष्ट रूपसे वर्णन किया है कि जो कर्मयोग, ज्ञानयोग, तपयोग आदि अन्यान्य साधनोंके अतिरिक्त केवलमात्र भगवन्नाम श्रवण, कीर्तन एवं स्मरण करते हैं एवं भगवानको ही अपने इष्टदेव मानते हैं, किन्तु किसी वैष्णव-गुरुसे दीक्षा ग्रहण नहीं की, वह कदापि भगवानको प्राप्त नहीं कर सकता। परन्तु दीक्षित न होनेपर भी उसे नरक नहीं जाने पड़गा, बल्कि पूर्व-पूर्व जन्मकृत भजनके प्रभावसे साधु-सङ्ग लाभ करके गुरुपदाश्रय, दीक्षा आदिके माध्यमसे भक्तिके क्रममार्गमें रहकर क्रमशः भगवत् प्रेम प्राप्त करेगा।

दूसरोंका तो कहना ही क्या, स्वयं लीला पुरुषोत्तम श्यामसुन्दर श्रीभागुरि मुनिसे, मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजीने वशिष्ठजीसे एवं प्रेम पुरुषोत्तम श्रीचैतन्य महाप्रभुने श्रीईश्वरपुरीपादसे दीक्षा ग्रहण करके दीक्षाकी प्रयोजनीयताके विषयमें जगतको शिक्षा दी है। श्रील कविराज गोस्वामी अपने श्रीचैतन्यचरितामृत ग्रन्थमें लिखते हैं कि कृष्णमन्त्रसे संसारकी आसक्ति दूर होती है, मनके सब बुरे विचार दूर जाएँगे, तब कृष्णनामके द्वारा कृष्णचरणोंकी प्राप्ति होगी।

मेरे दोनों शिक्षागुरु विशेष किसी कारणसे

किसी व्यक्तिको भजनमार्गमें अग्रसर कराने हेतु अथवा नाम-माहात्म्यके प्रसङ्गमें प्रथम उक्ति ही कहेंगे। उन्होंने स्वयं भी श्रीलप्रभुपादसे दीक्षा ग्रहण की है, जगतको भजनकी शिक्षा प्रदान की है और अपने आश्रित भक्तोंको दीक्षा भी प्रदान की है। श्रीब्रह्म-मध्व-गौड़ीय वैष्णव-सम्प्रदाय ही नहीं, अन्यान्य सम्प्रदायोंमें भी दीक्षाका प्रचलन था, है और रहेगा। अतः सभी युगोंमें, सभी देशोंमें, सभी समय सभीके लिए दीक्षा अत्यन्त आवश्यक है। दीक्षा ग्रहण किए बिना सिद्धि एवं सद्‌गतिकी प्राप्ति नहीं हो सकती। अतएव अत्यन्त यत्नपूर्वक दीक्षा ग्रहण करनी चाहिए। इसलिए शास्त्रोंमें कहा गया है कि

गुरुदीक्षाविहीनस्य न सिद्धिं न सद्गतिम्।
तस्मात् सर्व प्रयत्नेन गुरुना दीक्षिता भवेत्॥

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रतिष्ठाता नित्यलीलाप्रविष्ट ॐविष्णुपाद १०८ श्रीश्रीमद् भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीके अतिमर्त्य जीवन चरित्रकी आलोचना करते समय उनकी स्वाभाविक गुरुनिष्ठाके विषयमें श्रीलमहाराजजीने विशद रूपसे व्याख्या की। उन्होंने कैसे अपने प्राणोंकी बाजी लगाकर श्रीलप्रभुपादजीकी सेवा की, गौड़ीय इतिहासमें वह स्वर्ण अक्षरोंमें लिखा हुआ है। जब तक विश्व ब्रह्माण्ड रहेगा, चन्द्र-सूर्य रहेंगे, गौड़ीय गुरु-सेवकगण उनको देखकर प्रेरणा प्राप्त करेंगे। वे गौड़ीय जगतमें गुरुसेवाके ज्वलन्त स्तम्भ सदृश हैं। निष्कपट रूपसे गुरुसेवा करने पर क्या लाभ होता है, उन्होंने अपने चरित्र द्वारा जगतको शिक्षा दी है। प्राचीन कालमें अरुणी, उपमन्यु इत्यादिने गुरुसेवा द्वारा ब्रह्मज्ञानको प्राप्त किया है और इन महापुरुषने कृष्णप्रेमको प्राप्त किया है एवं अपने अनुगत भक्तोंको भी प्रदान किया है। उनके आश्रित भक्तोंकी ओर दृष्टिपात करने पर सहज रूपमें ही यह समझमें आता है। शास्त्रमें वर्णित है—

चिन्तामणि लोकसुखं सुरद्रुम स्वर्गसम्पदम्।
प्रयच्छति प्रीतो गुरुवैकुण्ठ योगीदुर्लभम्॥

अर्थात् चिन्तामणिके निकट चिन्ता करनेमात्रसे ही अभीष्ट फलकी प्राप्ति होती है। इस जगतका कोई भी फल चिरस्थायी नहीं है, क्षणभंगुर एवं दुःखोंसे परिपूर्ण है। कल्पवृक्ष क्या दे सकता है, क्या आप जानते हैं? इस जगतकी सुख-सम्पत्ति तो दे ही सकता है, यहाँ तक कि स्वर्ग पर्यन्त सुख भी प्रदान कर सकता है। किन्तु स्वर्ग सुख भी अकिञ्चित्कर, तुच्छ एवं क्षणभंगुर है। स्वर्ग भी स्थायी स्थान नहीं है, जैसे visa शेष होनेपर देवतागण वहाँसे गला पकड़कर बाहर कर देंगे, आपके passport आदि document को pack करनेका भी समय नहीं देंगे। इसलिए तो शास्त्रोंमें कहा गया है—*क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।* श्रीगुरुदेव प्रसन्न होनेपर वे वैकुण्ठके अन्तरतम प्रकोष्ठ वृन्दावनमें श्रीयुगलकिशोरकी सेवा प्रदान करते हैं, जो चिरस्थायी, नित्य, आनन्दमय है एवं वहाँ पर दुःखका लेशमात्र भी नहीं है। इसको आप उनकी वन्दनावाले श्लोकमें ही देखकर समझ सकते हैं। अन्तमें जिज्ञासु भक्तोंने परिप्रश्न किया—

प्रश्न—स्वामीजी! पहले आपके गौड़ीय गीति गुच्छमें श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीकी वन्दनाके दो श्लोक देखे थे, किन्तु अब उसमें चार श्लोक देख रहा हूँ, बादके दो श्लोकोंकी रचना क्या आपने की है?

श्रीलमहाराजजी—आप जानते हैं कि प्रथम दो श्लोकोंकी रचना श्रीलभक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराजजीने की है और बादके दो श्लोकोंकी रचना वर्तमान सभापति आचार्य अष्टोत्तरशत श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजजीने की है।

प्रश्न—बादके दो श्लोकोंका मर्मार्थ यदि आप थोड़ा-सा बताएँ, तब हम अवश्य ही उपकृत होंगे। यदि आप उचित समझें, तो कृपा करके व्याख्या कीजिए।

श्रीलमहाराजजी—रचयिता यदि स्वयं व्याख्या करे, तब अत्यन्त सुन्दर अर्थ प्रकाशित होता हैं। परमाराध्य श्रीगुरुपादपद्मकी वन्दना मैं अवश्य ही वर्णन करूँगा। पहले श्रीपाद माधव महाराज आपको वे दोनों श्लोक सुनाएँगे।

श्रीपाद माधव महाराज—

गौराश्रय-विग्रहाय कृष्णकामैक-तारिणे।
रूपानुग-प्रवराय विनोदेति-स्वरूपिणे॥
प्रभुपादान्तरङ्गाय सर्वसद्गुणशालिने।
मायावाद-तमोघ्नाय वेदान्तार्थविदे नमः॥

श्रीलमहाराजजी—बाह्य दृष्टिसे द्वितीय श्लोकका अर्थ अत्यन्त सहज-सरल तथा प्रथम भी वैसा ही है। किन्तु आन्तरिक दृष्टिसे उनका अर्थ भजनके अनुभव द्वारा ही जाना जा सकता है। इसकी व्याख्या सबके सामने प्रकाशित करनेमें लज्जादेवी भी लज्जित हो जाएँगी। तथापि मैं दिग्दर्शन मात्र कराऊँगा। प्रथम श्लोकका अर्थ—श्रीगौरसुन्दरके प्रकाश, श्रीकृष्णके काम अथवा इच्छा, जो श्रीकृष्णकी इच्छासे विचरण करते हैं। इसका गूढ़ अर्थ भजन द्वारा ही अनुभवयोग्य है। रूपानुगप्रवराय—जो रूपानुग गौड़ीय वैष्णवोंमें श्रेष्ठ हैं। विनोदेति स्वरूपिणे—जो स्वरूपतः विनोद नामसे परिचित हैं। द्वितीय श्लोकमें प्रभुपाद अन्तरङ्गाय—जो श्रीलप्रभुपादके अन्तरङ्ग परिकर हैं। सर्वसद्गुण-शालिने—समस्त प्रकारके सद्गुणोंके आकर हैं। मायावाद तमोघ्नाय—मायावादरूप अन्धकारका ध्वंस करनेवाले, मायावादकी जीवनी नामक ग्रन्थकी रचना द्वारा उन्होंने यह दिखाया है। वेदान्तार्थविदे नमः—वेदान्तके तात्पर्यके वास्तव ज्ञाताको नमस्कार करता हूँ।

प्रश्न—स्वामीजी! और थोड़ी व्याख्या करनेसे अच्छा होगा।

श्रीलमहाराजजी—पहले इसको तो हजम करो।

श्रीपाद पद्मनाभ महाराज—गुरुदेव! रूपानुग-प्रवरायका तात्पर्य क्या है?

श्रीलमहाराजजी—इसकी विशद व्याख्या नहीं करनेसे समझमें नहीं आएगा।

श्रीपाद कृष्णभजन प्रभु—गुरुदेव! कृपा करके विस्तृत रूपसे वर्णन कीजिए। हम जानते हैं कि हम इन गूढ़ रहस्योंको समझनेके लिए पूर्ण रूपसे अयोग्य है। हमारे गुरुदेवके समय मैं कुछ भी नहीं जानता था। अब भी यदि आपसे श्रवण नहीं करेंगे तो फिर कभी श्रवणका सुयोग प्राप्त नहीं होगा।

श्रीलमहाराजजी—आप सभी ध्यानपूर्वक श्रवण करो। जो योग्य हैं, वे अवश्य ही समझ जाएँगे। श्रीगौड़ीय वैष्णवोंकी आराध्या श्रीमती राधारानीकी सखियाँ पाँच प्रकारकी हैं। सखी, नित्यसखी, प्राणसखी, प्रियसखी, प्रियनर्मसखी—इन पाँच प्रकारकी सखियोंमें नित्यसखी और प्राणसखियोंको मञ्जरी कहते हैं। मञ्जरियोंमें भी श्रीरूप मञ्जरी प्रधान हैं। जो मञ्जरी भाव प्राप्तिकी अभिलाषासे साधक शरीरसे गोस्वामियोंकी तरह गौड़ीय गुरुवर्गके आनुगत्यमें संख्यापूर्वक नाम, गान, प्रणाम आदि करते हैं

और सिद्ध शरीरसे मञ्जरियों जैसे ताम्बुल अर्पण, पाद-मर्दन आदि भजन करते हैं अथवा जो साधक-साधिका साधक शरीरसे श्रीरूप गोस्वामीको, सिद्ध शरीरसे श्रीरूप मञ्जरीका अनुसरण करते हैं, वे ही रूपानुग वैष्णव हैं। श्रीरूपानुग वैष्णवोंमें अस्मदीय गुरुपादपद्म अपने समयमें श्रेष्ठ हैं।

श्रीपाद भक्तिसार महाराज—श्रील गुरुदेव! 'विनोदेति स्वरूपिणे' का तात्पर्य ठीकसे समझ नहीं पा रहा हूँ।

श्रीलमहाराजजी—क्या माधव महाराजजीने तुम्हें यह प्रश्न पूछनेके लिए कहा है?

श्रीभक्तिसार महाराज—नहीं, नहीं। उन्होंने कुछ नहीं कहा।

श्रीलमहाराजजी—आप सभी ध्यानपूर्वक श्रवण करना। नहीं तो हृदयमें धारण नहीं कर पाओगे। विनोदेति स्वरूपिणे का तात्पर्य— जो ब्रजलीलाकी विनोद मञ्जरी है, जो अपनी सेवाकी पराकाष्ठा द्वारा युगलकिशोर श्रीविनोद-विहारी, श्रीविनोदिनीको विनोद प्रदान करते हैं, वही विनोद मञ्जरी है। 'विनोद' का विशेष तात्पर्य श्रीलजीव गोस्वामी पाद एवं श्रीचक्रवर्ती ठाकुर बताते हैं—*'विनोद विलासः पक्षे दूरीकरण, विनोद आनन्दः पक्षे विशेषेण नोदो दूरीकरणं।'* अर्थात् जो युगलकिशोरके विलासमें सहायता करते हैं, आनन्द प्रदान करते हैं, अथवा श्रीविनोदको श्रीविनोदिनीसे दूर करते हैं।

क्या आप सोचते हैं कि मञ्जरियाँ युगलकिशोरको पृथक्-पृथक् रखना चाहती हैं? मिलन पसन्द नहीं करतीं? यदि ऐसा न हो, तो फिर गौड़ीय गुरुवर्ग ऐसा क्यों कहते हैं कि विनोद—वि-नोद दूरीकरण, गुरुवर्गकी लेखनीमें भूल नहीं हो सकती। वे भ्रम, प्रमाद, करणापाटव, विप्रलिप्सासे ऊपर हैं। ये सब दोष उनको स्वप्नमें भी स्पर्श नहीं कर सकते। तब दूरी करनेका तात्पर्य क्या है? श्रीकृष्ण श्रीगौड़ीयोंकी आराध्या श्रीराधा ठाकुरानीको छोड़कर अन्य किसी कुञ्जमें जाएँ—ऐसा अभिप्राय मञ्जरियोंका नहीं है। अन्य कुञ्जसे श्रीकृष्णको आते देखकर मञ्जरियाँ उनको श्रीमतीके कुञ्जमें प्रवेश नहीं करने देतीं। दूर रखती हैं एवं कहती हैं कि—हे हरि! हे हरि! यहाँ पर आनेका कोई प्रयोजन नहीं है। जहाँसे आए हो, वहीं जाओ। इस प्रकार मञ्जरियाँ श्रीमती राधाजीके प्रति श्रीकृष्णकी उत्कण्ठाको वर्द्धित करती हैं। श्रीविनोद मञ्जरी श्रीरूप, श्रीरति मञ्जरीके आनुगत्यमें श्रीविनोदिनी के प्रति श्रीविनोदविहारीकी उत्कण्ठाको वर्द्धित करती हैं—यही विनोदेति स्वरूपिणे का तात्पर्य है। मैंने केवलमात्र दिग्दर्शन कराया है, आप भजन द्वारा इसका अनुभव करनेकी चेष्टा करना। इसकी अपेक्षा अधिक व्याख्या करना सम्भव नहीं है। ***(संवाद प्रदाता—त्रिदण्डिस्वामी श्रीभक्तिवेदान्त माधव महाराज)***

ब्रजके कुण्डोंमें जल-शुद्धिका एक और प्रयास

[श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीसे डी. एम. की मन्त्रणा]

(६ मार्च २००३ को 'दैनिक जागरण' समाचारपत्रमें प्रकाशित)

ब्रजमें पौराणिक महत्वके कुण्ड व सरोवरोंकी शुद्धि व ब्रजके प्राकृतिक सौन्दर्यकी रक्षाके दृष्टिगत श्रीलनारायण महाराजजीने जिलाधिकारी डा. रमाकान्त शुक्लासे मन्त्रणा की।

हाल ही में श्रीकृष्णकी प्रेमभक्तिका प्रचार-प्रसारकर स्वदेश लौटे श्रीभक्तिवेदान्त

नारायण महाराजजीने जिलाधिकारीसे मुलाकात की। उन्होंने बताया कि जर्मनीमें उनके सम्पर्कमें आए वैज्ञानिकोंको उन्होंने ब्रजके कुण्ड व सरोवरोंमें अशुद्ध हो रहे जलके संकटसे अवगत कराया। जर्मन वैज्ञानिकोंने श्रीलमहाराजजीको जलशुद्धिके लिए मशीनें

दीं। मशीनोंको प्रयोग राधाकुण्डमें किया गया। इसमें जलको शुद्ध किए जानेमें सफलता मिली। वैज्ञानिकोंने अन्य कुण्ड व सरोवरोंके जलको प्रदूषण–मुक्त करनेके लिए मशीनें निःशुल्क देनेका संकल्प लिया है। श्रील नारायण महाराजजीने बताया कि ब्रजके स्थलोंकी रक्षाकी प्रेरणासे हमने नन्दगाँवस्थित उद्धव क्यारीमें चार लाख रुपयेका सहयोग प्रदानकर जीर्णोद्धारका प्रयास किया। उक्त क्यारीमें वन विभागने काम रोक दिया। उन्होंने गोवर्धन स्थित ब्रह्मकुण्डमें कराए गए जीर्णोद्धारकी जानकारी भी जिलाधिकारीको दी।

श्रीलमहाराजजीने कहा कि ब्रजके प्राकृतिक स्वरूपको नष्ट होनेसे बचानेमें सभीका सहयोग आवश्यक व अपेक्षित है। ब्रजको ब्रज ही रहने दिया जाए। इसमें वन, उपवन, सरोवर एवं प्राचीन महत्वपूर्ण स्मारकोंकी रक्षाके लिए वे भक्तोंसे धन धीरे–धीरे लाकर देंगे।

जिलाधिकारी डा. शुक्लाने श्रीलमहाराजजीके ब्रजकी सुरक्षाके सुझाव व उपायोंमें रुचि ली तथा सभी प्रकारसे सहयोगका वचन दिया।

डा. शुक्लाने श्रीलमहाराजजीके सुझाव पर अमल करनेके निर्देश जिला पंचायतके अपर मुख्य अधिकारी डा. प्रदीप कुमारको दिए। मन्त्रणामें डा. संजय गौड़ भी मौजूद थे।

श्रीश्रीनवद्वीप धामकी परिक्रमा और श्रीश्रीगौर–जन्मोत्सव

परमदयालु पतितपावन श्रीश्रीमन्नित्यानन्द प्रभु, श्रीलभक्तिविनोद ठाकुर एवं श्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर प्रभुपाद द्वारा प्रवर्त्तित तथा नित्यलीलाप्रविष्ट ॐविष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्ति–प्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीके वचनोंको मस्तक पर धारणकर श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति श्रीनवद्वीप धामकी परिक्रमा और श्रीचैतन्य महाप्रभुके जन्मोत्सवको अत्यधिक धूमधामके

साथ सम्पन्न करती है। श्रीसमितिके सभापति ॐविष्णुपाद १०८ श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजजीके नियामकत्व तथा ॐविष्णुपाद १०८ श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीकी अध्यक्षता तथा दोनोंकी पुनीत उपस्थितिमें अन्यान्य वर्षोंकी भाँति इस वर्ष भी यात्रियोंकी संख्या अत्यधिक होने पर भी यथायोग्य सुव्यवस्था की गई। दोनों महाभागवत व आचार्योंके दर्शन पाकर श्रद्धालु यात्रीगण अतीव प्रसन्न थे, फिर भी पूज्यपाद श्रीलभक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराजजीके विगत कार्तिक महीनेमें नित्यलीलाप्रवेशजनित साक्षात् रूपमें अनुपस्थिति इस साल प्रथम बार अनुभूत हो रही थी। १२ मार्च प्रातःकाल श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजी हजारों भक्तोंके साथ श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठसे कुछदूर गङ्गातीरपर स्थित श्रीत्रिगुणातीत समाधि-आश्रम परिसरमें समाधिस्थ श्रील त्रिविक्रम महाराजजीके दर्शनके लिए गए तथा वहाँ उन्होंने उनके प्रति अपनी श्रद्धा पुष्पाञ्जलि अर्पित की।

परिक्रमाके अधिवास तिथि १२ मार्च को श्रीइन्द्रदेवने परिक्रमाकारी भक्तोंके स्वागतके उद्देश्यसे अत्यधिक वृष्टिपातके साथ समग्र नवद्वीप धामको अभिषिक्त किया। ॐविष्णुपाद श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीने बताया कि श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु, श्रीलगुरुदेव और वैष्णवोंके आनुगत्यमें अनुष्ठित इस परिक्रमाको तीनों लोकोंकी कोई भी शक्ति प्रतिहत (रोक) नहीं कर सकती। हमारी परिक्रमा निश्चय ही सुष्ठुरूपसे सम्पन्न होगी। और ऐसा हुआ भी, रातके समय बारिश होती थी तथा दिनमें रुक जाती थी, अपितु बादलोंके द्वारा परिक्रमाकारी भक्तोंको इन्द्रदेव छाया प्रदान करते थे। यह तो बड़े विलक्षण-सी बात थी।

१३ मार्चसे परिक्रमाका शुभारम्भ श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठसे हुआ। श्रीमन्महाप्रभु अपने भक्तोंके कन्धोंपर विराजमान होकर परिक्रमामें सबसे आगे संकीर्तनके साथ चल रहे थे। प्रत्येक स्थलपर श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज, श्रील भक्तिवेदान्त पर्यटक महाराज, श्रीभक्तिवेदान्त त्रिदण्डि महाराज, श्रीभक्तिवेदान्त संन्यासी महाराज, श्रीभक्तिवेदान्त वैष्णव महाराज, श्रीपाद आचार्य महाराज, श्रीपाद गोस्वामी महाराज इत्यादि श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके लगभग ३० संन्यासी, शताधिक ब्रह्मचारी, गृहस्थ भक्त व श्रद्धालुओंको मिलाकर प्राय बीस हजार लोग उपस्थित रहते थे। ६००से अधिक विदेशी भक्त भी संकीर्तनके साथ परिक्रमामें सम्मिलित थे। प्रथम दिवस परिक्रमा गङ्गा पारकर सुरभिकुञ्ज, श्रील भक्तिविनोद ठाकुरकी भजनकुटी स्वानन्द सुखद कुञ्ज व उनकी समाधि, हरिहर क्षेत्र, सुवर्ण विहार, नृसिंहपल्ली होते हुए सन्धाके समय लौट आई। १४ मार्च एकादशी, द्वितीय दिन परिक्रमा समुद्रगढ़ और चम्पाहाटी गई।

समुद्रगढ़में श्रीगौरहरिके भक्त राजा समुद्रसेन व श्रीकृष्णभक्त भीमसेनके बीच युद्ध हुआ था। श्रीकृष्णके दर्शनकी अभिलाषासे समुद्रसेनने भीमसेनको पराजित कर दिया ताकि श्रीकृष्ण भीमसेनकी रक्षाके लिए निश्चय ही आएँगे और उनके दर्शन सुलभ हो जाएँगे। हर साल यहीं पर कथाके समय श्रीलमहाराजजी राजा समुद्रसेनका पक्ष लेते थे तथा श्रील त्रिविक्रम महाराजजी भीमसेनका। उनके बीच दिव्य वाणी व शास्त्र विचारोंको लेकर वाक्-युद्ध होता था, जिससे अनेक सुन्दर-सुन्दर विचार

सिद्धान्तके रूपमें श्रोताओंको श्रवण करनेका सौभाग्य प्राप्त होता था। इस साल श्रीपाद त्रिदण्डि महाराजजीने श्रील त्रिविक्रम महाराजजीकी कथाओंका उनके उच्छिष्टरूपसे परिवेषण किया। इसके प्रतिपक्षमें वक्तव्य प्रदान करनेके लिए जब श्रीलमहाराजजी खड़े हुए तो श्रील त्रिविक्रम महाराजजीका स्मरण करते ही उनका कण्ठ कुछक्षण तक स्तभित हो गया, आँखें छलछला उठीं। किसी प्रकार अपने भावोंको संवरणकर उन्होंने श्रीमन्महाप्रभुके कृपाप्राप्त राजा समुद्रसेनकी महिमाको स्थापित किया।

चम्पाहाटी प्रसिद्ध काव्य श्रीगीतगोविन्दके रचयिता कवि श्रीजयदेवजीका स्थान है। वहाँ पर श्रीगौरगदाधरजीके श्रीविग्रह विद्यमान हैं।

तीसरे दिन परिक्रमा ऋतुद्वीप, राधाकुण्ड, विद्यानगर (श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यजीका स्थान), जह्नुद्वीप (जह्नुमुनिका आश्रम, जिन्होंने गङ्गाजीको पान कर लिया था), रामलीलास्थल मोदद्रुम द्वीप गई। चौथे दिन कोलद्वीप स्थित प्रौढ़ामाया, वृद्धशिव, श्रीलजगन्नाथदास बाबाजी महाराजजीकी भजनकुटी व समाधि, रुद्रद्वीप, निर्दया घाट आदिके दर्शन किए गए। पाँचवे दिन परिक्रमा नौ द्वीपोंके हृदय अन्तर्द्वीप मायापुर गई। वहाँ पर चन्द्रशेखर भवन, ईशोद्यान, नित्य संकीर्तन रासस्थली श्रीवास आङ्गन, महाप्रभुका जन्मस्थान योगपीठ, आकर मठराज श्रीचैतन्य मठ, जगद्गुरु श्रील प्रभुपादकी समाधि, श्रील गौरकिशोरदास बाबाजी महाराजजीकी समाधि, चाँदकाजी समाधि आदिके दर्शन हुए तथा महिमा कीर्तित हुई।

श्रीनवद्वीप धाममें हुई हरिकथाओंमें श्री, ब्रह्म, रुद्र, सनक आदि चार सम्प्रदायके मत व आचार्योंके विषयमें अनेक संन्यासियोंने विवेचन प्रस्तुए किए। श्रीचैतन्यमहाप्रभुने ब्रह्म सम्प्रदायको स्वीकारकर चार सम्प्रदायके सार मतको लेकर कैसे सर्वश्रेष्ठ अचिन्त्यभेदाभेद मतवादकी स्थापना की, उस पर प्रकाश डाला गया। श्रीलमहाराजजीने श्रीनवद्वीप धामकी महिमाको बताते हुए कहा कि शास्त्रोंमें ऐसा वर्णन है कि कलियुगमें दूसरे–दूसरे धामोंके वैशिष्ट्य धीरे–धीरे क्षीण होते जाते हैं, लेकिन श्रीनवद्वीप धामका वैशिष्ट्य चारों दिशाओंमें बढ़ता जाता है, जिसका प्रमाण आपलोग देख रहे हैं कि कैसे समग्र विश्वसे अनेक देशोंसे भक्त यहाँ सम्मिलित होकर हरिनाम संकीर्तनके साथ धाम–परिक्रमा कर रहे हैं। धाम परिक्रमाकी महिमाके बारेमें उन्होंने बताया कि जैसे ही आप परिक्रमा करते जाएँगे, वैसे ही आपका संसार–बन्धन खुलता जाएगा।

१८ मार्च श्रीगौरपूर्णिमाके दिन अनेक भक्तोंको हरिनाम एवं दीक्षा दी गई। सायंकाल चन्द्रोदयके समय प्रेमपुरुषोत्तम श्रीशचीनन्दन गौरहरिके जन्मका महाभिषेक सम्पन्न हुआ। अगले दिन सुबह श्रीगौरजन्मोत्सवके उपलक्ष्यमें हजारों लोगोंको महाप्रसाद वितरित किया गया। श्रीगौरपूर्णिमाके अगले दिन चार संन्यास वेश तथा एक बाबाजी वेष प्रदान किए गए। उनके नाम नीचे दिए जा रहे हैं—

पूर्व नाम　　परिवर्त्तित नाम

(१) श्रीस्वरूपानन्द ब्रह्मचारी—श्रीभक्तिवेदान्त अकिञ्चन महाराज

(२) श्रीकृष्णभजन ब्रह्मचारी—श्रीभक्तिवेदान्त सज्जन महाराज

(३) श्रीराधानाथ ब्रह्मचारी—श्रीमद्भक्तिवेदान्त दामोदर महाराज

(४) श्रीअनन्तकृष्ण ब्रह्मचारी—श्रीभक्तिवेदान्त राद्धान्ती महाराज

(५) श्रीसीतानाथ ब्रजवासी—श्रीअद्वैत दास बाबाजी महाराज

आगामी वर्षमें भी श्रीश्रीगुरुगौराङ्गकी अहैतुकी कृपासे परिक्रमाका संचालन सुष्ठुरूपसे सम्पन्न हो, हम ऐसी प्रार्थना करते हैं। आपलोग भी आगामी परिक्रमामें भाग लेकर अप्राकृत आनन्दका अनुभव करेंगे, हम ऐसी कामना करते हैं। हरि बोल! (परिक्रमा सम्बन्धी चित्र अन्तमें दिए गए हैं।)

(संवाद प्रस्तुति—श्रीसुबलसखा दास ब्रह्मचारी)

स्वधाममें श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त राद्धान्ती महाराज

हम विशेष दुःखके साथ बता रहे हैं कि विगत १४ जनवरी २००३ मंगलवार पौष शुक्ल पुत्रदा एकादशी, मकर संक्रान्तिके दिन रात ११ बजे श्रीमद्भक्तिवेदान्त राद्धान्ती महाराज नवद्वीप स्थित श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठमें हमलोगोंको विरह-सागरमें निमज्जितकर प्रयाणकालमें हरिनाम ग्रहण करते-करते स्वधामको चले गए। अप्रकटके समय उनकी उम्र थी ११४ वर्ष। उनके सेवामय जीवनकी आदर्श क्रियाओंको हम अभी प्रत्यक्ष रूपमें दर्शन नहीं कर पाएँगे।

१५ जनवरी बुधवार मध्याह्न १२ बजे विधिवत् श्रीश्रीगुरु-गौराङ्ग-राधाविनोदविहारीजीकी प्रसादी-माला श्रीमत् राद्धान्ती महाराजजीको अर्पितकर तथा आरती उतारकर, शयनडोलेके साथ श्रीमन्दिरकी परिक्रमा कराके श्रीहरिनाम-संकीर्तन करते-करते शोभायात्राके साथ गङ्गाके किनारे 'श्रीत्रिगुणातीत समाधि आश्रम' में लाया गया। समाधिका स्थान रीतिके अनुसार प्रस्तुत होनेके बाद आश्रमवासी और गृहस्थ वैष्णवगणकी उपस्थितिमें सात्वत-विधानके अनुसार सत्क्रियासार दीपिकाके अवलम्बनमें विपुल हरिध्वनिके मध्य समाधिक्रिया सम्पन्न हुई।

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रतिष्ठाता व नियामक नित्यलीलाप्रविष्ट ॐविष्णुपाद १०८श्री श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीसे उन्होंने श्रीनामदीक्षा ग्रहणकर श्रीभागवतप्रसाद ब्रजवासी नाममें परिचित हुए थे। परवर्ती कालमें ११-३-१९६३, सोमवारको श्रीमन्महाप्रभु की शुभाविर्भाव तिथिमें त्रिदण्ड-सन्यास वेष ग्रहणकर वे श्रीमद्भक्तिवेदान्त राद्धान्ती महाराज नाममें परिचित हुए थे। उस समय अधिक उम्र होते हुए भी सेवामें उनमें यौवनका-सा उत्साह था। संन्यास-ग्रहणके बाद उन्होंने श्रीसमितिके शाखामठ श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ, चुँचुड़ामें अनेक दिन भण्डारीके रूपमें सेवा की थी। उसके बाद श्रीसमितिके शाखामठ श्रीसिद्धवाटी गौड़ीय मठमें अनेक दिन मठाध्यक्ष थे। परमपूज्यपाद श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराजजीके साथ वे अनेक स्थानोंमें प्रचारकार्यमें जाते थे। उनके साथ सभी वैष्णवोंका अच्छा सम्पर्क था। वे सत्, सरल और आदर्शवादी वैष्णव थे। उनके जीवनके अन्तिम समयमें लगभग १० साल वे श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठमें अवस्थानकर साधन-भजनमें मग्न थे। उनकी अथक सेवा-प्रचेष्टाने श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिको मुग्ध किया है।

श्रीशचीनन्दन गौरहरि अपने भक्तोंके कन्धेपर

समुद्रगढ़में हरिकथा करते हुए श्रीलमहाराजजी

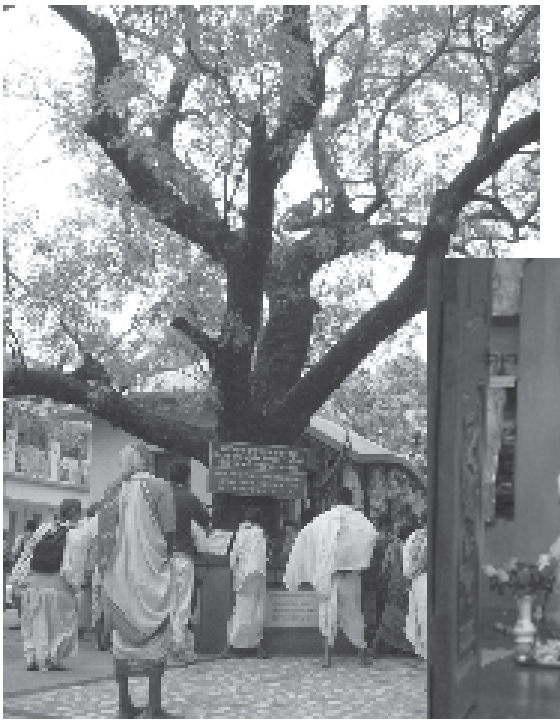

श्रीचैतन्य महाप्रभु (मिमाई) का आविर्भाव स्थान और उनके पिता–माता

विदेशी भक्त परिक्रमामें संकीर्तन–नृत्य करते हुए

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके चार नये संन्यासी श्रीलमहाराजजीके साथ
(बाएँसे) श्रीभक्तिवेदान्त राद्धान्ती महाराज, श्रीभक्तिवेदान्त सज्जन महाराज, श्रीलभक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज (संन्यास–प्रदाता) (बीचमें), श्रीभक्तिवेदान्त अकिञ्चन महाराज, श्रीभक्तिवेदान्त दामोदर महाराज

श्रीभागवत पत्रिकाके प्रकाशनके सम्बन्धमें विवरण *(प्रपत्र–४, नियम–८)*—

१. प्रकाशन स्थान—श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा (उ. प्र.)
२. प्रकाशन अवधि—मासिक
३. प्रकाशकका नाम—श्रीनवीनकृष्ण ब्रह्मचारी (त्रिदण्डिस्वामी श्रीभक्तिवेदान्त माधव महाराज)
पता—श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा (उ. प्र.) नागरिकता—भारतीय
४. सम्पादकका नाम—श्रीहरिप्रियदास ब्रह्मचारी 'विद्याभूषण'
पता—श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा (उ. प्र.) नागरिकता—भारतीय
५. मुद्रक—श्रीनवीनकृष्ण ब्रह्मचारी (त्रिदण्डिस्वामी श्रीभक्तिवेदान्त माधव महाराज)
६. उन व्यक्तियोंके नाम और पते जो इस पत्रके स्वामी हैं तथा जो समस्त पुंजीके एक प्रतिशतसे अधिकके हिस्सेदार हैं—श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति

मैं नवीनकृष्ण ब्रह्मचारी एतत् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वासके अनुसार ऊपर दिये गए विवरण सत्य हैं।

अप्रैल २००३ ह. नवीनकृष्ण ब्रह्मचारी

श्रीश्रीगुरु–गौराङ्गौ–जयतः

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे

वैकुण्ठ–वार्त्तावह

बृहत्–मृदङ्ग

श्रीभागवत–पत्रिका

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः।
ज्ञान वैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना॥

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा॥

आराध्यो भगवान् व्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावनं, रम्या काचिदुपासना व्रजवधूवर्गेण या कल्पिता।
श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान्, श्रीचैतन्य महाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो नः परः॥

एक भागवत बड़ भागवत शास्त्र । आर एक भागवत भक्तिरसपात्र॥
दुई भागवत द्वारा दिया भक्तिरस । ताहाँर हृदये तार प्रेमे हय वश॥

वर्ष ४७ } श्रीगौराब्द ५१७
वि. सं. २०६० वैशाख मास, सन् २००३, १७ अप्रैल—१६ मई
{ संख्या २

श्रीमुकुन्दाष्टकम्

[श्रीलरघुनाथदास–गोस्वामिना विरचितम्]

श्रीमुकुन्दाय नमः

वलभिदुपलकान्तिद्रोहिणि श्रीमदङ्गे घुसृणरसविलासैः सुष्ठु गान्धर्विकायाः।
स्वमदननृपशोभां वर्द्धयन्देहराज्ये प्रणयतु मम नेत्राभीष्टपूर्त्तिं मुकुन्दः॥१॥
उदितविधुपरार्द्धज्योतिरुल्लङ्घिवक्त्रो नवतरुणिमराज्यद्वाल्यशेषातिरम्यः।
परिषदि ललितालीं दोलयन्कुण्डलाभ्यां प्रणयतु मम नेत्राभीष्टपूर्त्तिं मुकुन्दः॥२॥
कनकनिवहशोभानिन्दि पीतं नितम्बे तदुपरि नवरक्तं वस्त्रमित्थं दधानः।
प्रियमिव किल वर्णं रागयुक्तं प्रियायाः प्रणयतु मम नेत्राभीष्टपूर्त्तिं मुकुन्दः॥३॥

सुरभिकुसुमवृन्दैर्वासिताम्भःसमृद्धे प्रियसरसि निदाघे सायमालीपरीताम्।
मदनजनकसेकैः खेलयन्नेव राधां प्रणयतु मम नेत्राभीष्टपूर्त्तिं मुकुन्दः॥४॥
परिमलमिह लब्ध्वा हन्त गान्धर्विकायाः पुलकिततनुरुच्चैरुन्मदस्तत्क्षणेन।
निखिलविपिनदेशान्वासितानेव जिघ्रन् प्रणयतु मम नेत्राभीष्टपूर्त्तिं मुकुन्दः॥५॥
प्रणिहितभुजदण्डः स्कन्धदेशे वराङ्ग्याः स्मितविकसितगण्डे कीर्त्तिदाकन्यकायाः।
मनसिजजनिसौख्यं चुम्बनेनैव तन्वन्प्रणयतु मम नेत्राभीष्टपूर्त्तिं मुकुन्दः॥६॥
प्रमददनुजगोष्ठ्याः कोऽपि सम्वर्त्तवह्निर्व्रजभुवि किल पित्रोर्मूर्त्तिमान्स्नेहपुञ्जः।
प्रथमरसमहेन्द्रः श्यामलो राधिकायाः प्रणयतु मम नेत्राभीष्टपूर्त्तिं मुकुन्दः॥७॥
स्वकदनकथयाङ्गीकृत्य मूर्द्धीं विशाखां कृतचटु ललितां तु प्रार्थयन्प्रौढशीलाम्।
प्रणयविधुरराधामाननिर्वासनाय प्रणयतु मम नेत्राभीष्टपूर्त्तिं मुकुन्दः॥८॥
परिपठति मुकुन्दस्याष्टकं काकुभिर्यः स्फुटमिह विषयेभ्यः संनियम्येन्द्रियाणि।
व्रजनवयुवराजो दर्शयन्स्वं सराधे स्वजनगणनमध्ये तं प्रियायास्तनोति॥९॥

इन्द्रनीलमणिको भी पराभूत करनेवाले अपने अङ्गोंमें लगे हुए कुंकुम रसके विलास द्वारा श्रीराधाके देहराज्यमें जो अपने मदन–नृपतिकी शोभाका सुन्दर रूपसे परिवर्द्धन कर रहे हैं अर्थात् जिस प्रकार कोई दूसरा राजा भी प्रजाका हाल–चाल जाननेके लिए राज्यमें सर्वदा भ्रमण करता हुआ राज्यके उत्तम–उत्तम उपकरणोंको प्रजासे प्राप्त होकर अपनी शोभाकी वृद्धि करता है, उसी प्रकार जो श्रीमती राधिकाजीके देहराज्यस्थित कुंकुमोपकरणको आलिङ्गन द्वारा प्राप्त होकर अपने सौन्दर्यकी वृद्धि करते हैं, वे मुकुन्द मेरे नेत्रोंका अभीष्ट पूर्ण करें॥१॥

जिनका वदन परार्द्ध–संख्यक समुदित चन्दमागणोंकी सम्मिलित कान्तिको भी पराभूत करता है, जिनके नव–तारुण्य द्वारा बाल्यावस्थाका अन्तिमभाग रञ्जित हो रहा है अर्थात् उसके द्वारा जो अतिशय रमणीय हो रहे हैं और जो अपने दोनों कुण्डलोंसे सखीसमाजमें श्रीललिताकी वयस्या श्रीमती राधाको चञ्चल बना रहे हैं, वे मुकुन्द मेरे नेत्रोंका अभीष्ट पूर्ण करें॥२॥

जो अपने नितम्बदेशमें स्वर्णराशिको भी तुच्छ करनेवाले पीताम्बर पहने हुए हैं तथा उसके ऊपर लालरङ्गके वस्त्र इस प्रकार धारण कर रखे हैं कि उससे ऐसा निश्चित रूपमें प्रतीत होता है, मानो वे प्रियतमा श्रीमती राधाका प्रिय रागयुक्त वर्ण धारण कर रखे हों, वे मुकुन्द मेरे नेत्रोंका अभीष्ट पूर्ण करें॥३॥

जो राधाकुण्डमें ग्रीष्मकालमें अपराह्नके समय अपनी सखियोंसे परिवृता श्रीराधाको सुरभि–कुसुमोंसे सुवासित अतएव कामोत्पादक जलसिंचन द्वारा क्रीड़ा करा रहे हैं, वे मुकुन्द मेरे नेत्रोंका अभीष्ट पूर्ण करें॥४॥

अहो! कितने बड़े आश्चर्यकी बात है! श्रीराधाकुण्डमें श्रीमती राधिकाजीके अङ्ग–परिमलको

प्राप्तकर तत्क्षण ही पुलकित-अङ्ग और उन्मत्त होकर जो निखिल वन-प्रदेशसे समागत और सुवासित गन्धका आघ्राण कर रहे हैं, वे मुकुन्द मेरे नेत्रोंका अभीष्ट पूर्ण करें॥५॥

जो अतिशय उत्तम अङ्गोंवाली, कीर्त्तिदाकी कन्या श्रीमती राधाके कन्धोंपर अपनी भुजाओंको रखकर उनके स्मित-विकसित गण्ड-प्रदेशका चुम्बन करके ही कन्दर्पके लिए सुखका विस्तार करते हैं, वे मुकुन्द मेरे नेत्रोंका अभीष्ट पूर्ण करें॥६॥

जो वृन्दावनमें मतवाले दानवोंके लिए अनिर्वचनीय प्रलयाग्नि हैं, पिता-माता नन्द-यशोदाके मूर्त्तिमान स्नेहकी राशि हैं, तथा जो श्रीमती राधिकाके लिए श्यामवर्ण रसराज-शृङ्गार-स्वरूप हैं, वे मुकुन्द मेरे नेत्रोंका अभीष्ट पूर्ण करें॥७॥

जो प्रणयमें व्याकुल श्रीराधाका मान भङ्ग करनेके लिए अपनी अतिशय उद्वेगपूर्ण बातोंसे कोमल स्वभाववाली विशाखाको प्रसन्नकर प्रगल्भ-स्वभावा ललितासे बड़े कातर होकर प्रार्थना करते हैं, वे मुकुन्द मेरे नेत्रोंका अभीष्ट पूर्ण करें॥८॥

जो व्यक्ति विषयोंसे इन्द्रियोंको हटाकर स्पष्ट रूपसे बड़े कातर होकर इस मुकुन्दाष्टकका पाठ करते हैं, ब्रजके नवीन युवराज श्रीकृष्ण श्रीमतीराधिकाजीके साथ युगलमूर्त्तिका दर्शन देकर श्रीराधाके स्वजनोंमें उसे ग्रहण कर लेते हैं। ❑

धर्माडम्बर

—जगद्गुरु श्रीलभक्तिविनोद ठाकुर

बहुत-से व्यक्ति बाहरसे धर्मभाव दिखलानेके लिए बड़े प्रयत्नशील रहते हैं; लोग उन्हें भक्त या धार्मिक कहें—ऐसी प्रबल आकांक्षा उनके हृदयमें सदैव विद्यमान रहती है। हृदयमें लेशमात्र भी धर्मभाव अथवा भगवद्-विश्वास न रहने पर भी बाहरसे अपने आपको परम धार्मिक पुरुष बतलाना चाहते हैं। इस प्रकार कितने लोग वैष्णव या साधु सन्तोंका चिह्न धारण करके किस प्रकार कर्म इत्यादि करते हैं, इसकी गणना नहीं की जा सकती। यह एक भीषणतम अपराध है। इससे भगवानके चरणोंसे अत्यन्त दूर हो जायेंगे, ऐसा डर उनके हृदयमें तनिक भी स्थान नहीं पाता। भगवान दाम्भिक व्यक्तियों पर कृपा नहीं करते। जब भगवानकी कृपा पानेके लिए अतिशय नम्र और सहिष्णु होनेकी आवश्यकता है, तब हम लोगोंका अहङ्कार किसलिए है? यदि वास्तवमें भगवद् चरण लाभ करनेका ही उद्देश्य है, तो फिर कपटता करके बाहरमें धर्मभाव दिखानेसे क्या उद्देश्य सफल होगा? संसारमें हमें लोग भक्त बोलेंगे या धार्मिक बोलेंगे, उससे हमको क्या प्राप्त होगा? श्रीचैतन्य महाप्रभुने भक्तोंके लिए कहा था—

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः॥

—यदि वास्तवमें भगवद् चरण प्राप्त करना है और यदि उस विमल आनन्दका उपभोग करनेकी इच्छा है, हे मानव! नीच-से-नीच होनेपर भी शुद्ध चित्तसे श्रीनाम कीर्तन करो, प्रेम अपने आप उदित होगा।

कीर्तनका अर्थ कोई यह न समझे कि उच्च स्वरसे ही भगवन्नामको कीर्तन कहते हैं। कीर्तनके अनेक प्रकार हैं। वैष्णवोंने कहा है—

नित्य सिद्ध कृष्ण प्रेम साध्य कभु नय।
श्रवणादि शुद्धचित्ते करये उदय॥

—साधनके द्वारा जो साध्य वस्तु प्राप्त होती है, वह अनित्य है। अतएव कृष्ण दास्यरूप विमलप्रेम साध्य वस्तु नहीं है; वह तो अपने आप उदित होता है। सूर्य नित्यसिद्ध है, किन्तु वारिद (मेघ) समूहसे आवृत होकर जिस प्रकार उसका दर्शन नहीं किया जा सकता, कृष्ण दास्यरूप विमलप्रेम भी उसी प्रकार हमारे हृदयमें मायारूपी मेघके द्वारा आच्छन्न है। वारिद समूहके हट जाने पर सूर्यका जिस प्रकार प्रकाश होता है, कृष्ण दास्यरूप विमल प्रेम भी उसी प्रकार है। शुद्धचित्तसे श्रीनाम कीर्तनादि करनेसे हृदय जब निर्मल होगा अर्थात् मायारूपी मेघसमूह जब हृदयसे अन्तर्हित होंगे, तभी सूर्यरूपी विमल प्रेमका अपने आप उदय होगा, अन्यथा बाहरमें धर्मभाव दिखानेसे विमल आनन्दका उपभोग नहीं किया जा सकेगा।

भक्तगण! हमें आशीर्वाद करें, जिससे हम निरपराधी होकर शुद्धचित्तसे श्रीनाम कीर्तनादि कर सकें। q

(अनुवादक—श्रीओमप्रकाश ब्रजवासी, साहित्यरत्न)

श्रीलप्रभुपादजीका उपदेशामृत

प्र.—८३ क्या भगवानकी सेवा अपने आप नहीं की जा सकती?

उ.—यदि भगवान किसीपर कृपा करें, तभी वह भगवानकी सेवा कर सकता है। अन्यथा किसीका सामर्थ्य नहीं है कि इस कोलाहलपूर्ण संसारमें रहकर भगवानकी सेवा कर पाए। हरि-सेवा कोई खेल-तमाशा नहीं है।

जो व्यक्ति जन्म, ऐश्वर्य, पाण्डित्य एवं सौन्दर्य—इन चार स्त्रियोंके अधीन है, वह कदापि हरिसेवा नहीं कर सकता। इन चार स्त्रियोंको गोपीजनवल्लभकी सेवामें नियुक्त करने पर ही इनके चंगुलसे मुक्त होकर हरिसेवा की जा सकती है। तात्पर्य यह है कि जबतक किसीको उच्चकुलमें जन्मका अभिमान, पाण्डित्यका अभिमान, सुन्दरताका अभिमान तथा ऐश्वर्यका अभिमान है, वह भगवानकी सेवाके योग्य नहीं है।

इन चार स्त्रियोंके वशमें होनेके कारण ही जीव स्वयंको जगतका भोक्ता समझ रहा है। वह स्वयं प्रभु होना चाहता है, दास नहीं—यही अवैष्णवता है। सेव्य (भगवान) एवं सेवकका सम्बन्ध ही भक्ति या सेवा है। मैं दुसरोंका सेव्य (मालिक) हूँ—ऐसा अभिमान रहने पर सेवा या भक्ति कैसे सम्भव हो सकती है? क्योंकि सेवा तो सेवक ही करता है, सेव्य नहीं।

मैं कर्त्ता होकर श्रवण, कीर्तन, दर्शन एवं स्मरण करूँगा, यह कर्मियों या अभक्तोंका विचार है अर्थात् कर्त्ताभिमानसे श्रवण, कीर्तन, स्मरण आदि भक्ति नहीं है। जब कोई कर्त्ता-अभिमान त्यागकर अपनी समस्त प्रकारकी

चेष्टाओंको भगवानकी सेवामें नियुक्त करता है, तभी उसकी समस्त प्रकारकी असुविधाएँ दूर हो सकती है तथा वह भगवानकी सेवाका आनन्द प्राप्त कर सकता है।

यदि हम स्वयंको भगवानका सेवक मानते हैं तो हमें २४ घण्टे भगवानकी सेवामें लगे रहना चाहिए। हमें सम्पूर्णरूपसे भगवानके ऊपर निर्भर रहना चाहिए। हमारी समस्त प्रकारकी विपत्तियों तथा समस्याओंका समाधान एक ही प्रकारसे हो सकता है, यदि हम भगवानके विधानपर पूर्णरूपसे निर्भर रहें, अर्थात् हमें समस्त प्रकारकी विपत्तियोंको भगवानकी कृपा मानकर सहन करना चाहिए।

इस संसारमें हमलोग पति-पत्नी, पिता-पुत्र, मित्र-मित्र, प्रभु-भृत्य (मालिक-नौकर),—इन चार प्रकारके सम्बन्धोंमें बँधकर सेवा करते हैं। अपने स्वरूप अर्थात् जीव स्वरूपतः कृष्णका दास है—इसे भूलनेके कारण ही हम इस जगतमें इन चार प्रकारके अनित्य सम्बन्धोंमें बँध गए हैं। इस संसारमें प्रारम्भमें सब-कुछ अच्छा लगता है, परन्तु उसका अन्त बहुत ही नैराश्यजनक एवं भयानक होता है। "माधव हाय परिणाम निराशा"—हे माधव मुझे परिणाममें निराशा ही हाथ लगी है। परन्तु इन्हीं चार प्रकारके सम्बन्धोंमेंसे कोई एक सम्बन्ध भगवानके साथ हो जाने पर हमारा निश्चित रूपसे कल्याण हो सकता है तथा तभी भगवानकी सेवा हो सकती है।

इसी जड़ जगतमें रहकर भगवानकी सेवा इन चारोंमेंसे किसी एक सम्बन्धके द्वारा करने पर वैकुण्ठ जाया जा सकता है। परन्तु इस जगतमे दूसरोंसे सेवा ग्रहण करनेकी इच्छा रहने पर संसारमें आसक्त होना पड़ता है। जिसके फलस्वरूप त्रितापोंसे दग्ध होना पड़ता है।

हमें सर्वदा स्मरण रखना चाहिए कि हम कृष्ण नहीं हैं, प्रभु नहीं हैं। बल्कि हम कृष्णके सेवक हैं। कृष्ण ही हमारे नित्य सेव्य तथा नित्य प्रभु हैं। हम कृष्णके नित्य सेवक हैं, इसे भूलकर कृष्णकी सेवाके विरुद्ध आचरण करने पर ही संसार दशा हो जाती है। तब त्रितापोंसे ग्रस्त होकर हमारे दुःखोंकी सीमा नहीं रहती। संसार नरकका द्वार है। वहाँ पर केवल भोग तथा अपना इन्द्रिय तर्पण है। कृष्णको भूलनेसे ही संसार दशा होती है।

इसलिए शास्त्रोंमें कहा है—

चारि वर्णाश्रमी यदि कृष्ण नाहि भजे।
स्वधर्म करिलेओ से रौरवे पड़ि मजे॥

अर्थात् बाह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र—ये चार वर्ण तथा ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास—ये चार आश्रम हैं। इसे वर्णाश्रम धर्म कहते हैं। यदि कोई अच्छी प्रकारसे इस वर्णाश्रम धर्मका पालन तो करता है, परन्तु कृष्णका भजन नहीं करता है, तो वह स्वधर्म (वर्णाश्रम धर्म) का पालन करते हुए भी रौरव नामक नरकमें जाता है।

प्र. ८४—संसारको किस रूपमें देखना चाहिए?

उ.—हमें इस संसारको तथा विश्वकी समस्त वस्तुओंको कृष्णकी सेवाके उपकरणके रूपमें देखना चाहिए। इस जगतकी सभी वस्तुएँ कृष्णसेवाकी सामग्री हैं। जिस दिन गुरु एवं कृष्णकी कृपासे द्वितीयाभिनिवेश (कृष्णसेवाके

अतिरिक्त अन्य वस्तुओंके प्रति असक्ति) से बचकर जगतको कृष्णमय दर्शन करेंगे अर्थात् सारा जगत ही कृष्णका वैभव है, उनकी सेवाकी वस्तु है, उसी दिन हमें इस जगतमें ही गोलोकके दर्शन होंगे। हमें समस्त नारी जातिको श्रीकृष्णकी भोग्याके रूपमें, श्रीकृष्णकी कान्ता (प्रेयसी) के रूपमें दर्शन करना चाहिए। उनके प्रति किसी प्रकारकी भोगबुद्धि नहीं होनी चाहिए। वे श्रीकृष्णकी भोग्या हैं, जीवकी नहीं। हमें माता–पिताको अन्यरूपमें दर्शन न कर कृष्णके पिता–माताके रूपमें दर्शन करना चाहिए। हमें अपने पुत्रको अपना सेवक न मानकर बालगोपालका सेवक मानना चाहिए। तभी हमारा जगत दर्शन नहीं होगा। तथा इसी जगतके स्वरूपमें ही गोलोकका दर्शन होगा।

प्र. ८५—श्रीगुरुदेवका साक्षात् सङ्ग तथा सेवाकी क्या विशेष आवशकता है?

उ.—अवश्य ही। श्रीगुरुदेवके साथ साक्षात् सम्बन्ध होना चाहिए। जो गुरुसेवा साक्षात् रूपमें नहीं करना चाहते, वे वञ्चित हो जाते हैं। Direct communication with guru is the first step on the path of divine service. Guru is to be served in every entity. If Guru is not served no one can be really served. I must not hear anything till I am authorised to hear by my divine master Sri Gurudev.

प्र.—क्या हम श्रीरूपानुगवर श्रीगुरुपादपद्मके दास हैं?

उ.—हाँ। श्रीचतन्यदेवके मधुर–रस आश्रित भक्तवृन्द स्वयंको श्रीरूपानुगदास या श्रीरूपानुगवर श्रीगुरुपादपद्मके दासके रूपमें अभिमान करते हैं।

प्र. ८७—सर्वश्रेष्ठ उपकार क्या है?

उ.—श्रीकृष्णके चरणकमलोंमें मति हो—ऐसा आशीर्वाद या शुभाकांक्षा ही जगतके लिए कल्याणकारी है। श्रीकृष्णसे विमुख जीवोंकी बुद्धिको श्रीकृष्णकी ओर लगा देना ही सबसे बड़ा उपकार है। सबको कृष्णभक्ति दान करना ही सर्वश्रष्ठ दान है। भक्तोंका हृदय सर्वदा ही ऐसा परोपकार करनेके लिए उत्कण्ठित रहता है।

भगवानको जानना ही सर्वश्रेष्ठ ज्ञान है। रायरामानन्द संवादमें स्वयं महाप्रभु रामानन्दजीसे पूछ रहे हैं—

कौन विद्या विद्या–मध्ये सार।
रायकहे—कृष्णभक्ति बिना विद्या नाहि आर॥

अर्थात् प्रभुने पूछा—विद्याओंमें कौन–सी विद्या सार (श्रेष्ठ) है? रायरामानन्दजीने उत्तर दिया—कृष्णभक्तिके आतिरिक्त अन्य कोई विद्या नहीं है। आजकल सर्वत्र ही निरीश्वर शिक्षा (Godless education) का ही प्रचार हो रही है, जिससे जगतवासियोंका किसी प्रकारका भी कल्याण नहीं हो रहा है और न होगा। श्रीचैतन्य महाप्रभुकी दयाका वितरण करनेसे ही मनुष्य जातिका सर्वश्रेष्ठ उपकार हो सकता है।

प्र. ८८—किसका भाग्य अच्छा है?

उ.—मनुष्यका भाग्य दो प्रकारका होता है—अच्छा तथा मन्द (खराब)। जिसका भाग्य अच्छा है, वही हरिभजनकी चेष्टा करता है तथा इसी जन्ममें ही हरिभक्ति प्राप्त कर लेता है। उसे अगला जन्म नहीं लेना पड़ता। यदि

हम सम्पूर्ण रूपसे श्रीचैतन्यदेवके श्रीचरणमें आश्रय ग्रहण करें, तो अवश्य ही इसी जन्ममें हमारा कल्याण हो जाएगा। इस कल्याणके पथमें आकर भी यदि असत्सङ्ग हो जाता है, तो पुनः पतन भी हो सकता है। अतः हमें सर्वदा कनक-कामिनी-प्रतिष्ठाकी आशाके लोभसे दूर रहना चाहिए। भक्तिकी बातोंको पुनः-पुनः श्रवण करनेसे समस्त प्रकारकी असत् चिन्ताएँ दूर हो जाती हैं। श्रीचैतन्य महाप्रभुकी बातें इतनी सत्य एवं इतनी सुन्दर हैं कि उनके सामने अन्य किसी भी प्रकारकी बातें टिक नहीं सकतीं। धर्म-अर्थ-काम तथा मोक्षको भी धिक्कार करनेवाली श्रीचैतन्यमहाप्रभुकी कथाओंके सेवक ही वास्तविक उदार हैं। महाप्रभुके भक्तवृन्द कितने बुद्धिमान, कितने चिन्ताशील तथा कितने परोपकारी हैं, निरपेक्ष होकर इसका विचार करना चाहिए। मैं सबपर शासन करूँगा तथा सभी लोग मेरा शासन स्वीकार करें—ऐसी दुर्बुद्धिसे हमें श्रीचैतन्यमहाप्रभुकी दया ही बचा सकती है।

प्र. ८९—किसे दान देना चाहिए?

उ.—यदि उपकार करनेकी या दान देनेकी इच्छा हो तो, केवल गुरु एवं वैष्णवोंको ही देना चाहिए। जो २४ घण्टे भगवानका भजन करते हैं, केवल उन्हीं पर विश्वास तथा उनकी सेवा करनी चाहिए। जो व्यक्ति भगवानकी सेवा नहीं करता, बल्कि स्वयं दूसरोंकी सेवा ग्रहण करनेमें लगा है, उसपर कभी भी विश्वास नहीं करना चाहिए तथा न ही उसे कुछ दान देना चाहिए।

प्र. ९०—शुद्धभक्तोंका विचार कैसा होता है?

उ.—शुद्धभक्तोंका विचार है कि जगतकी वस्तुएँ मेरे भोगके लिए नहीं, बल्कि भगवानकी सेवाके लिए हैं। समस्त चेतन तथा अचेतन वस्तुएँ श्रीकृष्णकी सेवाके लिए ही हैं। All our activities should tend to his unalloyed service. *"हृषीकेण हृषीकेश सेवनं भक्तिरुच्यते।"* अर्थात् अपनी इन्द्रियोंसे इन्द्रियोंके पति श्रीकृष्णकी सेवा ही भक्ति कहलाती है। वे हमारी सेवा ग्रहण करें, यही हमारी प्रार्थना हो। यदि ईंटोंको अपने घरके लिए प्रयोग करें, तो तभी हम विपत्तिमें फँस सकते हैं। यदि भगवानके मन्दिरके लिए करें तो किसी प्रकारकी विपत्ति नहीं आ सकती। यदि अचेतन अर्थात् जड़ पदार्थ भगवानकी सेवामें लग जाए तो यह उनका सद्-व्यवहार होता है, यदि हमारे इन्द्रिय-तर्पणके लिए होता है, तो यही उनका असद् व्यवहार है। जगतमें जितनी भी अचेतन वस्तुएँ हैं, भगवानकी सेवामें लगने पर ही उनकी सार्थकता है। भक्तोंकी प्रत्येक क्रिया हरि-गुरु एवं वैष्णवोंको सुख प्रदान करनेके लिए ही होती है। शुद्धभक्त अपने लिए या अपने बन्धुबान्धवोंके लिए कोई भी कार्य नहीं करते, बल्कि केवल भगवानके लिए ही करते हैं।

प्र. ९१—भगवानको कौन प्राप्त कर सकता है?

उ.—जो श्रीरूपगोस्वामीसे अभिन्न श्रीगुरुदेवकी निष्कपटरूपसे सेवा करता है, वही भगवानकी कृपा प्राप्त कर सकता है तथा वही कृष्णप्रेम प्राप्त कर सकता है।

प्र. ९२—किसकी सेवा करनी चाहिए?

उ.—गुरु तथा भगवान अधोक्षज वस्तु हैं। Absolute person के साथमें जिनका सम्बन्ध है, वे गुरुको ईश्वररूपमें दर्शन करते हैं। गुरु सेवक भगवान या आश्रय भगवान हैं। इसलिए गुरु भक्त भी हैं, भगवान भी। गुरु भगवान होनेपर भी भगवानके प्रिय हैं। गुरु पूर्ण शक्ति हैं तथा श्रीकृष्ण पूर्ण शक्तिमान हैं। शास्त्रोंके अनुसार दोनोंमें कोई भेद नहीं है। जो सदा–सर्वदा भगवानकी सेवा करते हैं, ऐसे भगवानके भक्त श्रीगुरुदेवकी सेवा करनी चाहिए। गुरुसेवाके साथ–साथ गुरुनिष्ठ वैष्णवोंकी सेवा भी करनी चाहिए। साधारण मायाबद्ध जीवको भक्त मानकर उसकी सेवा करनेसे कोई लाभ नहीं है। आजकल वैष्णवके नामपर अनेक ढोंग चल रहा है। इसीलिए कहा जा रहा है कि गुरु एवं वैष्णवोंकी सेवा ही करनी चाहिए। परन्तु यदि कोई भविष्यमें अवैष्णव हो जाए, तो उसकी सेवामें समय व्यर्थ नहीं गंवाना चाहिए। श्रीगुरुदेवके चरणकमलोंका आश्रय लेकर दृढ़ विश्वासपूर्वक गुरुसेवा करनी चाहिए। शास्त्रोंमें वर्णन है—'***विश्रम्भेण गुरोः सेवा***'—अर्थात् विश्रम्भपूर्वक गुरुसेवा करनी चाहिए। विश्रम्भका अर्थ है—दृढ़विश्वासपूर्वक या प्रीतिपूर्वक। दृढ़प्रीतिपूर्वक गुरु एवं वैष्णवोंकी सेवा करनेसे मङ्गल अवश्य ही होगा, श्रीकृष्ण प्रसन्न होंगे। गुरुके प्रति मनुष्य–बुद्धि नहीं होनी चाहिए। सद्गुरु निर्दोष हैं, अतः उनमें दोष–दर्शन नहीं करना चाहिए।

उचित समय तथा समस्त प्रकारकी सुविधाएँ सब समय नहीं मिलतीं। अतः हमें समय रहते हुए ही साधुसङ्गमें हरिभजन कर अपना कल्याण कर लेना चाहिए।

सन्दर्भ–सार

—त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिभूदेव श्रौती महाराज

[दार्शनिक–चूड़ामणि सिद्धान्त–सम्राट परम–रसिक श्रीरूपानुग आचार्यवर श्रीजीव गोस्वामीका नाम श्रीगौड़ीय वैष्णव–इतिहासमें स्वर्णाक्षरोंमें देदीप्यमान है। इन्होंने अनेक ग्रन्थोंकी रचनाएँ की हैं, जो गौड़ीय–वैष्णव–सम्प्रदायकी महामूल्य निधियाँ हैं। इनमेंसे 'षट्–सन्दर्भ' उनकी सर्वोत्तम कृति मानी जाती हैं। षट्–सन्दर्भके अन्तर्गत तत्त्व–सन्दर्भ, परमात्म–सन्दर्भ, भगवत–सन्दर्भ, कृष्ण–सन्दर्भ, भक्ति–सन्दर्भ और प्रीति–सन्दर्भ—ये छः सन्दर्भ हैं। इस ग्रन्थमें सर्वत्र ही श्रीजीव गोस्वामीकी अद्वितीय सुसिद्धान्तपूर्ण पाण्डित्य प्रतिभाव्यञ्जक प्रसन्न गम्भीर प्रेमभक्ति–समुज्ज्वल श्रीमूर्तिका दर्शन किया जा सकता है। वर्तमान लेखमालमें विद्वान् लेखक महोदयने उक्त अतिशय गम्भीर पाण्डित्यपूर्ण–दार्शनिक संस्कृत ग्रन्थ–रत्नका सर्व–साधारणोपयोगी भाषामें संक्षेप–सार–तात्पर्य संग्रह किया है। भगवत्तत्त्वपिपासु भगवद्भक्तोंके लिए यह परम आदरकी वस्तु होगी—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं।]

तत्त्व–सन्दर्भ

श्रीमन्मध्वाचार्य एवं श्रीरामानुजाचार्य आदि प्राचीन वैष्णवोंने श्रीभगवत् तत्त्वके सम्बन्धमें अनेकानेक ग्रन्थोंकी रचनाएँ की हैं। उन सभी ग्रन्थोंका सार संकलनकर श्रीरूप–सनातन गोस्वामीपादके प्रिय बन्धु श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामीने एक ग्रन्थ लिखा था। श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी

द्वारा संकलित यह ग्रन्थ कहीं पर क्रमबद्ध था, कहीं पर असम्बद्ध भी था, कहीं छिन्न-भिन्न लेखके रूपमें भी था। श्रीजीव गोस्वामीने उक्त ग्रन्थमें लिखित विषयोंकी पर्यालोचना करके क्रमानुसार विषयोंको सजाकर उसे छः सन्दर्भोंमें विभक्त कर लिखा। ये छः सन्दर्भ हैं—तत्त्व, परमात्म, भगवत्, कृष्ण, भक्ति और प्रीति। श्रीमद्भागवतके परम निगूढ़ सिद्धान्तोंको विस्तारपूर्वक प्रकाश करना ही इस ग्रन्थ-रचनाका उद्देश्य है। 'सन्दर्भ' शब्दका अर्थ है—रहस्य अर्थात् गोपनीय विषय। श्रीमद्भागवतके परम निगूढ़ रहस्योंको इस ग्रन्थमें सम्बन्ध, अभिधेय और प्रयोजन-विचार-मालाके रूपमें गूँथा गया है। इसलिए ये सब सन्दर्भग्रन्थ एक साथ मिलकर भागवत-सन्दर्भ या षट्सन्दर्भ कहलाते हैं। इनमेंसे सर्वप्रथम तत्त्व-सन्दर्भका सार-तात्पर्य दिया जा रहा है।

अतिशय बुद्धिमान और व्यवहारिक विषयोंमें सुविज्ञ होनेपर भी मनुष्यमात्रकी बुद्धि भ्रम, प्रमाद, करणापाटव और विप्रलिप्सा—इन चार प्रकारके दोषोंसे दुष्ट होती है।

भ्रम—भ्रमका अर्थ है—मिथ्याज्ञान या मिथ्या मति। अर्थात् एक वस्तुमें दूसरी वस्तुका ज्ञान होना ही भ्रम है। भ्रम दो प्रकारका होता है—विपर्यास और संशय। देहमें आत्मबुद्धि होना अर्थात् यह भौतिक शरीर ही 'आत्मा' या 'मैं हूँ' ऐसा भ्रम ही 'विपर्यास' कहलाता है। यह कुत्ता है या भेड़िया—ऐसा भ्रम ही 'संशय' कहलाता है। दूरत्व, मोह, भय एवं पित्त आदि रोगोंके कारण भ्रम होता है। दूरीके कारण सूर्य और चन्द्रको छोटे-छोटे थालोंकी भाँति अतिशय क्षुद्र देखा जाता है। आत्मा अविकारी और नित्यवस्तु है, परन्तु शरीरको ही आत्मा माननेसे मोहवशतः 'मैं मोटा हूँ', 'मैं दुबला-पतला हूँ'—ऐसा कहा जाता है। डरके मारे अन्धकारपूर्ण रात्रिमें रस्सीको सर्प या शाखा-पल्लव-रहित वृक्षको भूत होनेका बुद्धिभ्रम होता है। पित्त (पीलिया) रोग-ग्रस्त व्यक्ति सबकुछ पीला देखता है, उसे मिठी वस्तुएँ भी कडुवी लगती है।

प्रमाद—अर्थात् अन्यमनस्कता। किसी कारणसे चित्त चञ्चल होनेपर किसी विषयमें मन स्थिर नहीं रहनेसे प्रमादकी उत्पत्ति होती है।

विप्रलिप्सा—वञ्चना करने या ठगनेकी चेष्टाको विप्रलिप्सा कहते हैं। संकीर्ण-स्वार्थ-सिद्धिके लिए दूसरोंको ठगकर अपनी सुख-सुविधा प्राप्त करनेकी इच्छा ही विप्रलिप्सा है।

करणापाटव—इन्द्रियोंकी अपटुता। मनोयोग रहने पर भी किसी वस्तुको उत्तम रूपसे अनुभव करनेका अभाव ही 'करणापाटव' दोष है।

उपर्युक्त दोषोंकी सर्वदा सम्भावनाके कारण किसी निर्दोष प्रमाणका अवलम्बन नहीं करनेसे वास्तव वस्तुका निर्भूल विचार होना सुकठिन है। यथार्थ ज्ञानका नाम प्रमा है। जिसके द्वारा प्रमा उत्पन्न होती है, उसे प्रमाण कहते हैं। आमके फलको देखकर आमके सम्बन्धमें यथार्थ ज्ञान होता है, परन्तु रज्जूमें सर्प बोध होनेपर उसे प्रमा नहीं कहेंगे, उसे तो भ्रमज्ञान कहते हैं। प्रमाणके सम्बन्धमें दार्शनिक मतवादियोंमें अनेक मतभेद देखे जाते हैं। चार्वाकके मतानुसार प्रत्यक्ष ही एकमात्र प्रमाण है। बौद्धमतमें दो प्रमाण माने गए हैं—प्रत्यक्ष

और अनुमान। सांख्यमतमें प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द—ये तीन प्रमाण ग्रहण किए गए हैं। न्याय-दर्शनमें प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द—ये चार प्रमाण स्वीकृत हैं। मीमांसक प्रभाकरके मतानुसार प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द और अर्थापत्ति—ये पाँच प्रमाण अङ्गीकार किए गए हैं। पौराणिकोंने पूर्वोक्त पाँच प्रमाणोंके अतिरिक्त अनुपलब्धि, संशय और ऐतिह्य—ये तीन अधिक, कुल मिलाकर आठ प्रमाण स्वीकार किया है। ग्रन्थकार श्रीजीव गोस्वामीने स्वरचित 'सर्वसम्वादिनी' नामक ग्रन्थमें दस प्रमाणोंका उल्लेखकर उनमेंसे 'शब्द' प्रमाणको ही एकमात्र यथार्थ प्रमाण सिद्ध किया है।

दस प्रमाणोंका विवेचन इस प्रकार है—

प्रत्यक्ष—नेत्र आदि इन्द्रियोंके द्वारा जो ज्ञान होता है, उसे प्रत्यक्ष कहते हैं। इन्द्रियोंकी अपटुता, चित्तका अस्थिरत्व, दृश्य वस्तुकी सूक्ष्मता आदिके कारण प्रत्यक्ष ज्ञान भ्रमादि दोषोंसे युक्त है।

अनुमान—पहले कोई वस्तु प्रत्यक्ष होनेपर पीछेसे दूसरी वस्तुओंका ज्ञान ही अनुमान कहलाता है। जैसे पर्वतपर धूम देखकर वहाँ अग्नि होनेका अनुमान लगाया जाता है। किन्तु कभी-कभी वाष्प भी धूएँके समान दिखलाई पड़ने पर उसे भ्रमसे धुँआ मान लिया जाता है। अतः यह प्रमाण भी दोषयुक्त है।

शब्द—आप्त वाक्यको शब्द कहते हैं। आप्त कहनेसे भ्रमादि चारों दोषोंसे सर्वथा रहित व्यक्तिका बोध होता है। किसी भी प्रमाणके द्वारा जो बाधित नहीं होता, उसीको आप्तवाक्य कहा जाता है। अतएव ईश्वरकी वाणी ही यथार्थरूपमें आप्तवाक्य है। क्योंकि मनुष्यमात्रमें ही भ्रमादि दोषोंका रहना अनिवार्य है।

वाक्य दो प्रकारके होते हैं—लौकिक और वैदिक। लौकिक वाक्योंसे केवलमात्र विश्वस्त एवं यथार्थ वक्ताके वाक्य ही प्रमाणके रूपमें गृहीत हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त दूसरे वाक्य अप्रमाण हैं। अनादि होनेके कारण स्वयंसिद्ध शब्द ही प्रमाणके रूपमें गृहीत हैं। वे स्वयंसिद्ध शब्द ही शास्त्र हैं। उसीका नाम वेद है और वही अनादि कालसे प्रसिद्ध है। वेद—श्रीभगवानके अनादिसिद्ध वाक्य हैं। इसीलिए उनका नाम अपौरुषेय है। भगवान निखिल जीवोंके जनक हैं। जीवोंके कल्याणके लिए उन्होंने जिन उपदेश-वाक्योंका प्रकाश किया है, वे उपदेश-समूह भ्रम-प्रमाद आदि दोषोंसे सर्वथा शून्य अव्यभिचारी प्रमाण होनेके कारण सर्वजनग्राह्य हैं।

आर्ष—ऋषियों द्वारा कहे गए वाक्यसमूह।

उपमान—किसी एक प्रसिद्ध पदार्थके सादृश्यसे किसी दूसरी वस्तुका परिचय प्रदान करना। जैसे—किसीको खच्चरका परिचय प्रदान करना है। उसे घोड़ाको दिखलाकर उसीके समान खच्चरको बतलाना ही उपमान प्रमाण है।

अर्थापत्ति—अर्थकी सिद्धि न होते देखकर अन्य रूपसे अर्थ कल्पना अथवा यह प्रमाण जिसमें प्रकट रूपसे किसी विषयको प्रकाशित न करके केवल शब्दके द्वारा ही विषयकी सिद्धि होती है। जैसे—'मोटा देवदत्त दिनमें भोजन नहीं करता।' भोजन नहीं करनेसे

मोटा नहीं रह सकता। अतएव वह दिनमें भोजन नहीं करने पर भी रातमें अवश्य ही भोजन करता है—इसीको अर्थापत्ति कहते हैं।

अभाव—पदार्थकी अनुपलब्धि हेतु अभाव बोध होता है। जैसे—घड़ा नहीं देख रहा हूँ। अतएव घड़ेका अभाव है।

सम्भव—एक सौमें एक या दस है, ऐसी सम्भावनाका नाम सम्भव है।

ऐतिह्य—जिसका वक्ता कौन है—यह ज्ञात न हो, परन्तु पुरुष-परम्परागत बहुत दिनोंसे ही वैसा सुनते आ रहे हैं, इसे ऐतिह्य कहते हैं। जैसे—इस पेड़ पर ब्रह्म-राक्षसका वास है।

चेष्टा—हाथ-पैर आदिसे जो संकेत किया जाय, उसे चेष्टा-प्रमाण कहते हैं।

पूर्वोक्त प्रमाण-समूह जीवकी बुद्धिवृत्तिद्वारा ही नानारूपोंमें प्रकटित होते हैं। परन्तु जीवकी बुद्धि भ्रम-प्रमाद आदि चारों दोषोंसे दुष्ट होनेके कारण इन प्रमाणोंमें व्यभिचार देखा जाता है। इसलिए अचिन्त्य अलौकिक वस्तुके विषयमें वेद ही एकमात्र अव्यभिचारी प्रमाण हैं। लौकिक, प्रत्यक्ष और अनुमान आदि ज्ञान श्रीभगवानके सम्बन्धमें यथार्थ ज्ञान प्राप्तिके साधन नहीं हो सकते। संसारमें हमलोग जिन नियमोंसे परस्पर व्यवहार या कर्म करते हैं—चेतन, अचेतन आदि पदार्थोंके नाम-गुण-क्रिया आदिके सम्बन्धमें ज्ञान लाभ करते हैं, उन समस्त ज्ञानोंका मूल कारण वेद ही है।

अलौकिक ज्ञानका भी परिचय वेदमें पाया जाता है। उसे तर्कके द्वारा नहीं जान सकते हैं। एक तार्किक व्यक्ति जिस मतकी अपने तर्कके बल पर प्रतिष्ठा करता है, उससे अधिक बुद्धिसम्पन्न दूसरा तार्किक अपनी प्रखर युक्तियोंसे उस मतका खण्डन कर सकता है। परन्तु अलौकिक अप्राकृत परमेश्वरके सम्बन्धमें जो अप्राकृत ज्ञान है, वह जीवके भौतिक इन्द्रियोंके द्वारा ग्रहण नहीं किया जा सकता इसलिए ब्रह्मसूत्रमें (२/१/११) 'तर्काप्रतिष्ठानात्'—इस सूत्रमें एवं महाभारतमें 'अचिन्त्या खलु ये भावा न तांस्तर्केण योजयेत्', 'शास्त्रयोनित्वात्' (ब्रह्मसूत्र १/१/३) और 'पितृ-देव-मनुष्याणां वेदश्चक्षु-स्तवेश्वर। श्रेयस्त्वनुपलब्धेऽर्थे साध्यसाधनयोरपि॥" (भा. ११/२०/४) श्लोकमें यह दृढ़तापूर्वक सिद्धान्तित हुआ है।

आजकल कलियुगमें वेदोंका प्रचार अत्यन्त अल्प मात्रामें है। उनमेंसे कोई-कोई वेद या वेदके अंश लुप्तप्राय भी हो गए हैं। इसके अतिरिक्त कालके प्रभावसे वेदार्थोंके ग्राहकोंकी बुद्धि भी मन्द हो जानेके कारण दुर्गम विषयोंको समझनेमें असमर्थ हो पड़ी है। इधर वेदका अर्थ अपार एवं दुरुह होनेके कारण उक्त बुद्धिके लिए और भी अधिक दुष्पार एवं अति दुरुह हो गया है। ऐसी दशामें वेदोंके अर्थका निर्णय करनेवाले इतिहास और पुराणोंकी सहायतासे ही परमार्थका विचार करना कर्तव्य है। इतिहास और पुराण भी वेद ही हैं, इस प्रकारके प्रमाण शास्त्रोंमें भूरि-भूरि पाए जाते हैं—

एवं वा अरे अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद् सद्गवेदो। यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणम्॥ (वृहदारण्यक २/४/१०)

याज्ञवल्क्य अपनी पत्नी मैत्रेयीको उपदेश कर रहे हैं—"मैत्रेयि! ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद,

अथर्ववेद, इतिहास और पुराण—ये सभी पूर्वसिद्ध विभु परमेश्वरके निःश्वास-स्वरूप हैं अर्थात् निःश्वासकी भाँति अनायास ही उनसे बहिर्गत हुए हैं।

'इतिहास पुराणाभ्यां वेदं समुपवृंहयेत्' (महाभारत आदि १/२६७) अर्थात् इतिहास और पुराणोंमें वेदोंका अर्थ अच्छी तरह स्पष्ट हुआ है।

पुरा तपश्चचारोग्रममराणां पितामहः।
आविर्भूतास्तुतो वेदाः सषड़ङ्ग पदक्रमाः॥
ततः पुराणमखिलं सर्वशास्त्रमयं ध्रुवम्।
नित्य शब्दमयं पुण्यं शतकोटिप्रविस्तरम्॥
निर्गतं ब्रह्मणो वक्त्रात् भेदात्रिवोधत।

(स्कन्दपुराण प्रभास खण्ड)

इतिहास-पुराणानि पञ्चमं वेदमीश्वरः।
सर्वेभ्य एव वक्त्रेभ्यः ससृजे सर्वदर्शनः॥

(भा. ३/१२/३९)

स्कन्दपुराणमें ऐसा कहा गया है कि प्राचीन कालमें पितामह ब्रह्माने अतिशय उग्र तपस्या की थी। उस तपस्याके फलस्वरूप षड़ङ्ग पदक्रमोंके साथ वेद उनके सामने आविर्भूत हुए। तत्पश्चात् उनके (ब्रह्माके) मुखसे नित्य शब्द ब्रह्ममय शतकोटि श्लोकोंवाले सर्वशास्त्रमय नित्यपुराण आविर्भूत हुए। ये पुराण अट्ठारह हैं—बृह्म, पद्म, विष्णु, श्रीमद्भागवत, नारदीय, वराह, गरुड़, ब्रह्माण्ड, ब्रह्मवैवर्त्त, लिङ्ग, कूर्म, स्कन्द, मत्स्य, भविष्य, वामन, मार्कण्डेय, शैव और अग्नि।

श्रीमद्भागवतमें भी कहा गया है—सर्वज्ञ ईश्वरने अपने श्रीमुखोंसे इतिहास और पुराणात्मक पञ्चम वेदको प्रकाशित किया।

वेदके छः अङ्गोंका नाम षड़ङ्ग है—

शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं ज्योतिषमिति।
छन्दश्चेति षड़ङ्गान वेदानां वैदिका विदुः॥
छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ कथ्यते।
ज्यातिषामयनं नेत्रं निरुक्तं श्रोमुत्रच्यते॥
शिक्षा प्राणन्तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्।
तस्मात् साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते॥

आकार आदि वर्गोंके उच्चारण-स्थलोंका बोध करानेवाले शास्त्रका नाम—***शिक्षा*** है। वेद-विहित यज्ञ आदि क्रियाओंके उपदेशक शास्त्रको ***कल्प*** कहते हैं। साध्य-साधन-कर्तृ-कर्म-क्रिया-समासादिके निरूपक शास्त्रको ***व्याकरण*** कहते हैं। शब्दोंके शब्दबोधके अतिरिक्त कतिपय शब्दोंके अर्थ निर्णायक शास्त्रको ***निरुक्त*** कहते हैं। अक्षरों और मात्राओंकी संख्यासे निर्दिष्ट पद्यविशेषको ***छन्द*** कहते हैं। ग्रह-नक्षत्रोंकी गणना आदि रूप गणन शास्त्रको ***ज्योतिष*** कहते हैं। वैदिकगण इन छःहोंको ***वेदाङ्ग*** कहते हैं। वेदके अङ्ग इस प्रकार हैं। छन्द—वेदके पद (पैर) हैं, कल्प हाथ हैं, ज्योतिष नेत्र हैं, निरुक्त कान हैं, शिक्षा प्राण हैं और व्याकरण मुख है। ऐसा साङ्ग वेदका अध्ययन करनेसे ब्रह्मलोकमें निवास होता है।

ऋग्वेदमें २१ शाखाएँ हैं। आयुर्वेद ऋग्वेदके ही अन्तर्गत उपवेद है। यजुर्वेदमें १०० शाखाएँ हैं तथा इसके अन्तर्गत उपवेद है—धनुर्वेद। सामवेदमें १००० शाखाएँ हैं। इसके अन्तर्गत गान्धर्ववेद उपवेद है। अथर्ववेदमें ९ शाखाएँ हैं। इसके अन्तर्गत स्थापत्यवेद उपवेद है।

सिद्धान्त बलिया चित्ते ना कर अलस। इहा हइते कृष्णे लागे सुदृढ़ मानस॥
(श्रीचैतन्य चरितामृत आदि २/११७)

श्रीगौराङ्ग-सुधा

—श्रीपरमेश्वरी दास ब्रह्मचारी

(वर्ष ४७, संख्या १, पृष्ठ १३ से आगे)

देवानन्दको वाक्यदण्ड

कुछ दूरीपर देवानन्दपण्डितको देखकर प्रभु श्रीगौरसुन्दर क्रोधित हो गए। क्योंकि देवानन्दपण्डितने एक बार श्रीवासपण्डितके चरणोंमें भयङ्कर अपराध किया था। ये देवानन्द पण्डित समस्त प्रकारके जागतिक गुणोंसे विभूषित थे। ये वाल्य-अवस्थासे ही संन्यासीकी भाँति कठोर व्रत पालन करनेवाले तथा बड़े ही विद्वान थे। यद्यपि ये भागवत-वक्ता थे, परन्तु इनके हृदयमें लेशमात्र भी भक्ति नहीं थी। एक दिन श्रीमद्भागवत सुननेकी इच्छासे श्रीवासजी इनकी सभामें उपस्थित हुए, उस समय ये अपने शिष्योंको भागवत अध्ययन करा रहे थे। श्रीमद्भागवतका तो प्रति अक्षर ही प्रेममय है, अतः कथाश्रवण करते ही इनका हृदय द्रवित हो गया तथा अष्टसात्त्विक भाव प्रकट हो गए, जिसके फलस्वरूप वे जोर-जोरसे रोने लगे तथा लम्बी-लम्बी साँसें लेने लगे। यह देखकर वहाँपर उपस्थित सभी पापी छात्र जो कि भागवतकी व्याख्या सुननेमें मग्न थे, वे क्रोधित होकर कहने लगे—"यह विपत्ति कहाँसे आ गई? लगता है यह कोई पागल है तथा हमारे अध्ययनमें बाधा पहुँचा रहा है। इसलिए यही उचित है कि इसे घरसे बाहर निकाल दिया जाय।" ऐसा विचारकर उन्होंने परमभागवत श्रीवासजीके भावोंको न समझकर उन्हें घसीटकर घरके बाहर फेंक दिया। अपने छात्रोंको ऐसा भयङ्कर अपराध करते हुए देखकर देवानन्दपण्डितने उन्हें ऐसा करनेसे मना भी नहीं किया। क्योंकि वे तो स्वयं ही भक्तिहीन थे। परन्तु भागवतका चरम फल कृष्णप्रेम है तथा कृष्णप्रेमका फल ही है अष्टसात्त्विक भाव। अर्थात् जिसके हृदयमें प्रेम उदित हो जाता है, वह प्रेम आठ प्रकारके सात्त्विक भावोंके द्वारा भक्तके शरीरपर प्रकाशित होता है—स्तम्भ (भक्त जड़ स्तम्भकी तरह निश्चल हो जाता है), स्वेद (उसके सारा शरीर पसीनेसे भीग जाता है), कम्प (उसका शरीर काँपने लगता है), स्वरभङ्ग (उसकी आवाज काँपने लगती है), रोमाञ्च (उसके शरीरमें रोमाञ्च हो जाता है अर्थात् उसकी शरीरकी रोमावलियाँ काँटोंकी तरह खड़ी हो जाती हैं), वैवर्ण्य (उसके शरीरका रङ्ग भी बदल जाता है), अश्रु (उसकी आँखोंसे निरन्तर अश्रुधारा बहने लगती है), मूर्च्छा (इस अवस्थामें वह साधक मूर्च्छित हो जाता है)। परन्तु वे इसे समझ न पाए। अतः जब गुरु ही भक्तिहीन हो, तो शिष्य भक्त कैसे हो सकता है? कुछ समय पश्चात् जब श्रीवासजीका आवेश दूर हुआ तो, वे दुःखी होकर वहाँसे उठकर अपने घरकी ओर चल दिए। अन्तर्यामी महाप्रभु इस घटनाको जान गए थे। इसीलिए आज देवानन्दपण्डितको अपने सामने पाकर प्रभुको वह घटना स्मरण हो आई। जिसके फल स्वरूप वे क्रोधित होकर उससे कहने

लगे—"देवानन्द! तू सबको भागवत पढ़ाता है। तेरे पास भागवत सुननेकी इच्छासे श्रीवासजी आए, जिसका दर्शनके लिए गङ्गाजी भी लालायित रहती हैं। ऐसे परमभागवत श्रीवासजीको तुमने अपने घरसे बाहर निकलवा दिया। तुम मुझे यह बताओ कि उन्होंने क्या कोई अपराध किया था? क्या श्रीमद्भागवतका श्रवण करने पर यदि कोई सौभाग्यवान व्यक्ति कृष्णप्रेममें आविष्ट होकर क्रन्दन करे तो क्या वह उस कथा स्थलसे खींचकर बाहर फिंकवाने योग्य है? मैं समझ गया कि तुम भागवत पाठ तो करते हो, परन्तु उसका अर्थ न तुम अभी तक समझ सके हो और न किसी जन्ममें समझ पाओगे। भागवत प्रेममय ग्रन्थ है। इसका श्रवण एवं कीर्तन करने पर भी यदि किसीका हृदय द्रवित नहीं होता तथा उसके नेत्रोंसे अश्रुधारा प्रवाहित नहीं होती तो उसका अर्थ है कि उसका हृदय तो अनेक प्रकारके अनर्थों तथा अपराधोंसे ग्रस्त होनेके कारण वज्रके समान कठोर है। अतः श्रीमद्भागवतमें तुम्हारा तथा तुम्हारे पापी छात्रोंका लेशमात्र भी अधिकार नहीं है।" ऐसा कहकर प्रभु क्रोधित होकर वहाँसे चले आए। प्रभुके श्रीमुखसे यह सुनते ही देवानन्दपण्डित लज्जित हो गए तथा कुछ भी न बोल सके। परन्तु देवानन्द पण्डित बहुत भाग्यवान थे, जो प्रभुने उन्हे वाणीके द्वारा दण्ड प्रदान किया, क्योंकि दण्ड तो कृपाका प्रतीक है। अर्थात् प्रभुने उनपर कृपा ही की। यदि कोई प्रभुके दण्डको अपने सिरपर धारण करे तो उसे अतिशीघ्र ही प्रेमाभक्ति प्राप्त हो जाती है। परन्तु जो पापी प्रभुके दण्डकी परवाह नहीं करता, वह जन्म-जन्मातरों तक यमलोकमें जाकर यमदण्ड भोग करता है। जड़जगतमें भगवान चार प्रकारसे आविर्भूत हैं—श्रीमद्भागवत, तुलसी, गङ्गा-यमुना तथा भक्त। इनके अतिरिक्त वे श्रीविग्रह रूपमें भी आविर्भूत होकर जगतका उद्धार करते हैं। यहाँपर एक बात विशेष रूपसे विचारणीय है कि यद्यपि भागवत, तुलसी आदि चार वस्तुएँ भगवानके रूपमें नहीं दिखाई देतीं, परन्तु वास्तवमें ये चार भगवत् सम्बन्धी वस्तुएँ भगवानके प्रकाश विग्रह हैं। बल्कि श्रीविग्रहकी अपेक्षा इनकी विशेष महिमा है। क्योंकि विग्रहकी प्राणप्रतिष्ठा होनेपर ही वह पूज्य है, प्राणप्रतिष्ठा रहित विग्रहकी पूजा निष्फल हो जाती है। परन्तु भागवत, तुलसी, गङ्गा एवं वैष्णव स्वाभाविक रूपमें ही पूज्य हैं। इनमें प्राण प्रतिष्ठा आदिकी कोई आवश्यकता नहीं होती।

जगज्जननी शचीमाताके माध्यमसे वैष्णव अपराध वर्जनकी शिक्षा

एक दिन प्रभु श्रीगौरसुन्दर विष्णु सिंहासन पर विराजमान हो गए तथा समस्त शालिग्राम शिलाओंको अपनी गोदमें रख लिया। अपने स्वरूपको प्रकाशित करते हुए कहने लगे-"मैं ही इस कलियुगमें कृष्ण हूँ तथा मैं ही नारायण हूँ। मैंने ही रामरूपमें सागरपर पुल बाँधा था। मैं तो क्षीरसागरमें आनन्दसे शयन कर रहा था। परन्तु नाड़ा (अद्वैताचार्य) के हुँकारने मेरी निद्रा ही भङ्ग कर दी। अतः अपनी प्रेमाभक्तिको लुटानेके लिए ही मैं इस जगतमें आया हूँ। तुम सभी लोग अपनी इच्छानुसार वर माँगो।"

यह देखकर श्रीनित्यानन्द समझ गए कि इस समय प्रभु भगवद्-भावमें आविष्ट हो गए हैं। अतः तुरन्त ही उन्होंने उनके मस्तक पर छत्र धारण कर लिया। प्रभुके बायीं ओर विराजमान होकर श्रीगदाधर पण्डित उन्हें प्रेमसे ताम्बुल अर्पण करने लगे। अन्यान्य भक्तवृन्द चारों ओरसे प्रभुको घेरकर चामर ढुलाने लगे। इस महैश्वर्य प्रकाशका दर्शनकर वहाँ पर उपस्थित भक्तवृन्द आनन्दसे विभोर हो गए। वे प्रभुके श्रीचरणोंमें गिरकर अपनी-अपनी इच्छानुसार वर माँगने लगे। किसी ने माँगा-"हे प्रभो! मेरे पिता अत्यन्त दुष्ट प्रवृत्तिके हैं, अतः आप ऐसा वर दीजिए कि उनकी बुद्धि शुद्ध हो जाए तथा आपके श्रीचरणोंमें उनकी भक्ति हो।" इस प्रकार कोई अपने पुत्रके लिए, कोई अपनी नास्तिक पत्नीके लिए, कोई अपने शिष्यके लिए तो कोई अपने भक्ति विरोधी गुरुके कल्याणके लिए वर माँगने लगे। अपने भक्तोंकी इच्छाओंको पूर्ण करनेवाले प्रभु भी मुस्कराते हुए उन्हें वर दे रहे थे। उस समय श्रीवासजी बोले-हे प्रभो! मैं चाहता हूँ कि आप शचीमाताको भी अपना प्रेम प्रदान करें।"

प्रभु-"नहीं श्रीवास! मैं उसे अपना प्रेम प्रदान नहीं कर सकता। क्योंकि वह वैष्णव अपराधिनी है। अतः वैष्णव अपराध ही उसके प्रेमभक्तिमें बाधा बन गया है।"

यह सुनकर श्रीवासजी आश्चर्यचकित तथा दुःखी होकर रोते-रोते कहने लगे-"प्रभो! यह सुननेसे पहले ही यदि हम सब मर जाते तो अच्छा था। आप जिनके गर्भसे आविर्भूत हुए, क्या वे ही आपकी प्रेमभक्तिसे वञ्चित रह जाएँगी। प्रभो! जिसे आपने माताके रूपमें स्वीकार किया है वह तो सारे जगतकी माता है। अतः क्या कभी पुत्रके चरणोंमे माताका अपराध होता है। फिर भी यदि किसी वैष्णवके चरणोंमें इनका अपराध अनजानमें हो भी गया है, तो आप उस अपराधको न लेकर इन्हें अपना प्रेम प्रदान कीजिए।"

प्रभु (गम्भीरतापूर्वक)—"श्रीवास! मैं भक्तिका उपदेश तो सभीको दे सकता हूँ, परन्तु वैष्णव अपराधको नष्ट करनेकी शक्ति मुझमें नहीं है। वैष्णव अपराध तो एक ही प्रकारसे नष्ट हो सकता है, जिनके चरणोंमें अपराध हुआ है, यदि वे क्षमा कर दें तो, अन्यथा कोई उपाय नहीं है। जिस प्रकार भक्त राजा अम्बरीषके चरणोंमें अपराध करने पर दुर्वासाको त्रिभुवनमें कहीं शरण नहीं मिली। अन्तमें राजा अम्बरीषके चरणोंमें शरण लेने पर ही वे सुदर्शनसे बच पाए। उसी प्रकार इनका भी अपराध नाड़ा (अद्वैताचार्य) के चरणोंमें हुआ है, अतः यदि ये उनकी चरणधूलि अपने सिरपर धारण करें तो, मैं अवश्य ही इन्हें प्रेमाभक्ति प्रदान करुँगा।"

यह सुनकर सभी लोग अद्वैताचार्यजीके पास गए तथा उन्हें सब कुछ सुनाया। यह सुनते ही अद्वैताचार्य विष्णुका स्मरण करते हुए बोले-"क्या तुमलोग मेरे प्राण लेना चाहते हो? जरा विचार तो करो, जिनके गर्भसे मेरे प्रभु प्रकट हुए, वे तो मेरी तथा सारे जगतकी जननी हैं। अतः क्या माताका भी पुत्रके चरणोंमें अपराध सम्भव है? बल्कि उनकी चरणधूलिको मुझे अपने सिरपर धारण करना चाहिए, क्योंकि वे तो साक्षात्

विष्णुभक्ति स्वरूपिणी हैं। मैं तो उनकी महिमाको लेशमात्र भी जाननेमें असमर्थ हूँ। यदि कोई जड़ शब्दके रूपमें भी "आइ" (माता) शब्द उच्चारण करता है, तो उसका भी उद्धार हो जाता है। गङ्गाजी तथा शचीमातामें कोई भेद नहीं है। मैया यशोदा तथा देवकी जो थीं, वे ही ये शचीमाता हैं।"

इस प्रकार शचीमाताका गुणगान करते–करते अद्वैताचार्यजी प्रेममें अविष्ट होकर मूर्च्छित ही हो गए। उचित अवसर देखकर शचीमाताने तुरन्त उनकी चरणधूलिको अपने सिरपर धारण कर लिया। परम वैष्णवी शचीमाता पूर्ण शक्ति हैं। प्रभु विश्वम्भरको भी अपने गर्भमें धारण करनेकी शक्ति उनमें है। जैसे ही उन्होंने आचार्यकी चरणधूलि अपने मस्तक पर धारण की, वैसे ही वे कृष्णप्रेममें विह्वल होकर मूर्च्छित ही हो गईं। यह देखकर सभी लोग आनन्दसे 'हरि–हरि' बोलने लगे। क्या ही अद्भुत दृश्य था। एक ओर अद्वैताचार्य शचीमाताके प्रेममें आविष्ट होकर मूर्च्छित पड़े हैं, तो दूसरी ओर शचीमाता आचार्यके प्रेममें आविष्ट होकर। यह दृश्य देखकर सिंहासनपर बैठे हुए प्रभु श्रीगौरसुन्दर हँसने लगे।

कुछ क्षण पश्चात् जब शचीमाताकी प्रेममूर्च्छा भङ्ग हुई तो, प्रभु कहने लगे—"हे माता! अब आपको कृष्णभक्ति प्राप्त हो गई है। क्योंकि अद्वैताचार्यजीके चरणोंमें आपका अपराध अब समाप्त हो चुका है।"

इस प्रकार अपनी माताको माध्यम बनाकर शिक्षागुरु भगवानने साधकोंको वैष्णव–अपराधसे बचनेकी शिक्षा प्रदान की। क्योंकि शास्त्रोंमें वर्णन है कि त्रिशुलधारी शिवके समान होकर भी यदि कोई वैष्णव–अपराध करता है, तो उसका भी सर्वनाश निश्चित है। शास्त्रकी इन बातोंको न मानकर भी यदि कोई वैष्णव–अपराध करता है, तो वह अपने दुर्भाग्यवश अवश्य ही सर्वनाशको प्राप्त हो जाता है। प्रभुने जब अपनी माताको ही क्षमा नहीं किया तो साधारण लोगोंकी तो बात ही क्या? जब कि वास्तवमें शचीमाताका कोई अपराध भी नहीं हुआ था, तथापि प्रभुने उसे अपराधके रूपमें ग्रहण किया। उन्होंने तो इतना ही कहा था कि इनका नाम 'अद्वैत' नहीं 'द्वैत' है, क्योंकि अद्वैत उसे कहते हैं जो दो व्यक्तिको मिलाता है, परन्तु इन्होंने मुझसे मेरे पुत्रको अलग कर दिया।　　(क्रमशः)

श्रीतुलसी–माहात्म्य

—त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त बोधायन महाराज

श्रीतुलसीजीके प्रणाम–मन्त्रमें पाया जाता है—

वृन्दायै तुलसीदेव्यै प्रियायै केशवस्य च।
कृष्णभक्ति–प्रदे देवि सत्यवत्यै नमो नमः॥

वृन्दादेवीका ही दूसरा नाम श्रीतुलसी देवी है एवं वे श्रीकेशवकी अत्यन्त प्रिया और विष्णुभक्ति प्रदात्री हैं। अत्यन्त सौभाग्यवान् जीवको वे धामवासका अधिकार प्रदान करती हैं।

नमो नमः। तुलसी कृष्णप्रेयसी।
ये तोमार शरण लय, सेइ कृष्णसेवा पाय,
कृपा करि' कर तारे वृन्दावनवासी॥

(श्रील केशव गोस्वामी महाराज)

श्रीतुलसी महाप्रसाद-साधिनी, सर्वसौभाग्य वर्धनकारिणी और नित्य आधि-व्याधिहारिणी हैं। स्कन्दपुराणके अवन्ती खण्डमें उल्लिखित है—"श्रीतुलसीका दर्शन करने पर समस्त पाप नष्ट होते हैं, स्पर्श करने पर शरीर पवित्र होता है, वन्दना करने पर रोगोंका निवारण होता है, जल द्वारा सिञ्चन करनेसे यमका भय नहीं रहता, रोपण करनेसे भगवत् सान्निध्य प्राप्त होता है एवं श्रीकृष्णपादपद्ममें अर्पण करनेसे मुक्तिफल प्राप्त होता है।" अगस्त्य संहितामें कहते हैं—"तुलसी रोपण, उनमें जलसिञ्चन, उनका दर्शन और स्पर्श करनेसे पवित्रता प्राप्त होती है एवं यत्नके साथ आराधना करनेसे समस्त अभिलाषाएँ सिद्ध होती हैं।" नित्य तुलसीका दर्शन, स्पर्श, ध्यान, कीर्तन, नमन, माहात्म्य-श्रवण, रोपण, पूजा या सेवा जो कुछ किया जाता है, उसीसे मङ्गल लाभ होता है।

इस प्रसङ्गमें स्कन्दपुराणमें ब्रह्मा-नारद संवादमें पाया जाता है—

निरीक्षिता नरैर्यैस्तु तुलसीवन-वाटिका।
रोपिता यैश्च विधिना सत्प्राप्तं परमं पदम्॥
दृष्टा स्पृष्टा तथा ध्याता कीर्त्तिता नमिता श्रुता।
रोपिता सेविता नित्यं पूजिता तुलसी शुभा॥
नवधा तुलसी नित्यं ये भजन्ति दिने दिने।
युग-कोटिसहस्राणि ते वसन्ति हरेर्गृहे॥

"जो व्यक्ति तुलसीका दर्शन या रोपण करते हैं, वे भगवानके चरणकमलोंकी सेवाको प्राप्त करते हैं। प्रतिदिन तुलसीका दर्शन, स्पर्शन, ध्यान, कीर्तन, प्रणाम, गुणश्रवण, रोपण, सेवन और पूजा करने पर अत्यन्त शुभफलकी प्राप्ति होती है। जो इन नौ प्रकारसे नित्य तुलसीकी सेवा करते हैं, वे सदैवके लिए श्रीहरिके धाममें वास करनेकी योग्यता प्राप्त करते हैं।"

जिस स्थानपर तुलसीका बगीचा या वैष्णवगण नहीं रहते, वह स्थान श्मशानवत् है। स्कन्दपुराणमें ब्रह्मा-नारद संवादमें पाया जाता है—"जिस घरमें तुलसी-मिट्टी, तुलसीकी लकड़ी और तुलसी-पत्ता रहते हैं, उस घरमें श्रीविष्णुका स्थायी वास होता है।" शास्त्रमें उल्लिखित है—

दुर्लभा तुलसी-सेवा दुर्लभा सङ्गतिः सताम्।
दुर्लभा हरिभक्तिश्च संसारार्णव-पातिनाम्॥

(वृहन्नारदीयपुराण)

"संसार समुद्रमें पतित लोगोंके लिए तुलसीसेवा, साधुसङ्ग और हरिभक्ति भी दुर्लभ है।" तुलसी-मञ्जरी—भगवानसे अभिन्न वस्तु और उनकी परम-प्रिया है। तुलसीका बगीचा समस्त पापोंको हरनेवाला और अत्यन्त पवित्र है। श्रीप्रह्लाद-संहिता और विष्णुधर्मोत्तरमें पाया जाता है—

पत्रं पुष्पं फलं काष्ठं त्वक्-शाखा-पल्लवांकुरम्।
तुलसी-सम्भवं मूलं पावनं मृत्तिकाद्यपि॥

"तुलसीदल, पुष्प, फल, काष्ठ, त्वक्, शाखा, पल्लव, मूल, मृत्तिका (मिट्टी) आदि सभी पवित्र हैं।" प्रतिदिन पूजिता तुलसी जिसके घरमें रहती हैं, दिन-दिन उनकी सब प्रकारसे मङ्गल-वृद्धि होती रहती है। जो व्यक्ति अनन्य मनसे नित्य तुलसीका स्तव करते हैं, वे पितर, देवता और भक्तोंके प्रिय होते हैं। तुलसीसेवाके द्वारा दरिद्रता, समस्त रोग और दुःख नष्ट होते हैं और प्रचुर धन प्राप्त होता है। जहाँ तुलसी देवी रहती हैं

और श्रीमद्भागवत आदि पुराणोंका पाठ किया जाता है, उस स्थानपर श्रीहरि वास करते हैं।

तुलसीकाननं यत्र तत्र पद्मवनानि च।
पुराण-पठनं यत्र तत्र सन्निहितो हरिः॥

कलिकालमें देवदेव जगत्पति भगवान श्रीकृष्णको तुलसीकाननके अतिरिक्त अन्य किसी भी काननमें प्रीति नहीं होती है। कलियुगमें केशव, सहस्र-सहस्र तीर्थोंका परित्यागकर तुलसीकाननमें नित्यवास करते हैं।

हित्वा तीर्थ सहस्राणि सर्वानपि शिलोच्चायन्।
तुलसी-कानने नित्यं कलौ तिष्ठति केशवः॥
(स्कन्दपुराण)

तुलसीकाननका दर्शन करनेपर व्यक्ति समस्त पापोंसे परित्राण पा लेता है एवं ब्रह्मघाती भी सब प्रकारसे पवित्र हो जाता है। हरिभक्तिसुधोदयमें पाया जाता है—"पुण्यात्मा हो या पापी व्यक्ति क्यों न हो, जो व्यक्ति तुलसीदल देकर विष्णुपूजा करते हैं, उसके निकट यमदूतोंको भी जानेका अधिकार नहीं है, उनकी मृत्यु होनेपर विष्णुदूतगण उनको वैकुण्ठमें ले जाते हैं।"

तुलस्याः परिसरे यस्य काननं तिष्ठति द्विज।
गृहस्य तीर्थरूपत्वान्नायान्ति यमकिङ्कराः॥
(पद्मपुराण स्वर्गखण्ड)

"जिनके घरमें तुलसीका पौधा होता है, उसको तीर्थस्वरूप जानकर वहाँ यमदूत आगमन नहीं करते हैं।" ध्रुवचरित्रमें भी कहा गया है—

तुलसी यस्य भवने प्रत्यहं परिपूज्यते।
तद्गृहं नोपसर्पन्ति कदाचित् यमकिङ्कराः॥

"जिसके घरमें प्रतिदिन तुलसीजीकी पूजा होती है, यमदूत कभी भी उस घरके सामने जानेमें सक्षम नहीं हैं।"

तुलसी दर्शन, तुलसीमें जलदान और तुलसी परिक्रमाका माहात्म्य

जिनके घरमें प्रतिदिन श्रीतुलसीमें जलदान द्वारा पूजा होती है, उनका समस्त मङ्गल होता है। "जल-तुलसीर सम किछु घरे नाहि धन।" (श्रीचैतन्य चरितामृत) जो श्रीकृष्णको जल-तुलसी देते हैं, उनका ऋण शोधन करनेमें असमर्थ होकर श्रीकृष्ण उसके बदले अपने स्वयंको देकर ऋण-शोधन करते हैं। नामाचार्य श्रीलहरिदास ठाकुर तुलसीके निकट बैठकर संख्यापूर्वक हरिनाम करते थे।

निर्जन वने कुटिर करि' तुलसी सेवन।
रात्रि दिने तिनलक्ष नाम संकीर्तन॥
(चै. च. अ. ३/१००)

श्रीमन्महाप्रभु द्वारा तुलसीका सम्मान—

एक क्षुद्र भाण्डे दिव्य मृत्तिका पुरिया।
तुलसी देखेन सेइ घटे आरोपिया॥
प्रभु बले,—आमि तुलसीरे ना देखिले।
भाल नाहि बासो येन मत्स्य बिने जले॥
(चैतन्यभागवत)

अर्थात् श्रीमन्महाप्रभुने एक छोटेसे पात्रमें मिट्टी भरकर उसमें तुलसीका पौधा लगा रखा था, जिसे वे सर्वदा ही अपने साथ रखते थे। प्रभु बोले—जिस प्रकार जलके बिना मछली छटपटाती है, उसी प्रकार तुलसीको दर्शन किए बिना मेरा मन भी छटपटाता है।

श्रील भक्तिविनोद ठाकुरने कीर्तन किया है—"तुलसी देखि', जुड़ाय प्राण, माधवतोषणी जानि'॥"—तुलसीका दर्शनकर मुझे अपार शान्ति

प्राप्त होती है, क्योंकि तुलसीजी माधव (कृष्ण) को आनन्द प्रदान करती हैं।

श्रील हरिदास ठाकुरने लक्षहीरा नामकी वेश्याको उपदेश दिया है—

निरन्तर नाम लओ, तुलसी–सेवन।
अचिरात् पाबे तबे कृष्णेर चरण॥

(चै. च. अ. ३/१३७)

"तुम निरन्तर कृष्णनाम गान करो तथा तुलसीजीकी सेवा करना। अतिशीघ्र ही तुम कृष्णके श्रीचरणोंकी सेवा प्राप्त कर लोगे।"

बृहन्नारदीय पुराणमें यम–भगीरथ संवादमें उल्लिखित है—"जो चुल्लूभर जलके द्वारा तुलसीका सिञ्चन करते हैं, जितने दिन आकाशमें चन्द्र और तारें रहेंगे, वे उतने दिन क्षीरोदशायी भगवानके निकट वास कर पाएँगे।" श्रीमन्महाप्रभुके आचरणसे तुलसीमें जलदानका माहात्म्य विदित होता है—

यथाविधि करि' प्रभु श्रीविष्णु–पूजन।
तुलसीरे जल दिया करेन भोजन॥

(चै. भा. आ. ८/७३)

श्रीचैतन्य महाप्रभु विधिपूर्वक श्रीविष्णुका पूजन तथा तुलसीमें जलदानकर भोजन करते हैं।

वस्त्र परिवर्त्त करि' धुइला चरण।
तुलसीरे जल दिया करिला सेचन॥

(चै. भा. म. १/१८७)

श्रीमन्महाप्रभुने वस्त्र बदलकर चरण धोये। तुलसीमें जल देकर सिञ्चन किया।

तुलसीरे जल दिया प्रदक्षिण करि'।
भोजने बसिला गिया बलि' 'हरि' 'हरि'॥

(चै. भा. आ. १२/१०१)

श्रीमन्महाप्रभुने तुलसीमें जल देकर उसकी परिक्रमा की तथा 'हरि–हरि' कहते हुए भोजन करने बैठे।

श्रीतुलसी–प्रदक्षिण प्रसङ्गमें अगस्त्यसंहितामें कहा गया है—

प्रदक्षिणं भ्रमित्वा ये नमस्कुर्वन्ति नित्यशः।
न तेषां दुरितं किञ्चिदक्षीणमवशिष्यते॥

"जो प्रतिदिन परिक्रमा करके तुलसीको प्रणाम करते हैं, उनके समस्त पाप ध्वंस हो जाते हैं।" देवर्षि नारदजीने व्याधको उपदेश दिया है—

तुलसी–परिक्रमा कर, तुलसी सेवन।
निरन्तर कृष्णनाम करिह कीर्तन॥

(चै. च. म. २४/२६१)

—व्याध! तुम तुलसी–परिक्रमा करना, तुलसीसेवा करना तथा निरन्तर कृष्णनामका कीर्तन करना।

जो तुलसीका दर्शन, तुलसीमें जलदान और तुलसी–परिक्रमा करते हैं, उनको नरक–यन्त्रणा भोगनी नहीं पड़ती तथा वे सब विष्णुधाममें गमन करते हैं।

तुलसी–रोपणका माहात्म्य

पृथ्वीपर कलियुगमें श्रीकेशवजीकी प्रीतिके लिए जो तुलसी–रोपण करते हैं, उनके करपल्लव धन्य हैं। कलिकालमें स्नान, दान, ध्यान, केशवपूजामें तुलसीका व्यवहार और तुलसी रोपण करने पर तुलसी समस्त पापोंका दहन करती है। जिन समस्त देवमन्दिरोंमें पवित्र तुलसीवृक्ष रोपित होता है, वे सभी स्थान चक्रधारी हरिके तीर्थस्वरूप हैं। पद्मपुराणमें देवदूत–विकुण्डल संवादमें पाया जाता है—"समस्त पापोंका हरण करनेवाली और समस्त

कामनाओंको पूर्ण करनेवाली तुलसीका रोपण करनेसे वे यमलोकमें कभी नहीं जाते हैं।" पद्मपुराणमें उल्लिखित है—"तुलसीरोपणके पश्चात् चारदीवारी बनाकर रक्षा और जलसिञ्चन आदिके द्वारा तुलसी जिस घरमें विराजमान रहती हैं, यमदूतगण उस घरके निकट नहीं जाते।" बृहन्नारदीय पुराणमें उल्लेख है—"कोई यदि पृथ्वीपर तुलसीरोपण करता है, तो यमराज उसको देखकर उनके पापलेखनको मिटा देते हैं।" तुलसीरोपण करनेसे दान, होम, जप, तपस्या सभी कुछ हो जाता है। जो तुलसीके चारों ओर प्राचीर निर्माण करते हैं, वे अपने तीनों कुलोंके साथ श्रीविष्णुका सारूप्य प्राप्त करते हैं।

तुलसीमाला धारणका माहात्म्य

जो व्यक्ति गलेमें तुलसीकी माला धारण नहीं करते, पद्मपुराणमें उनको 'ब्रह्मराक्षस' कहा गया है। तुलसीमाला धारण करनेवालेके अङ्गोंको पाप कभी भी स्पर्श नहीं कर सकता है। जो गलेमें तुलसीमाला धारण करते हैं, यमदूतोंको उनके निकट कभी भी जानेका अधिकार नहीं है। इस प्रसङ्गमें गरुड़ पुराणमें उल्लिखित है—

तुलसीकाष्ठमालास्तु प्रेतराजस्य दूतकाः।
दृष्ट्वा नश्यन्ति दूरेण वातोद्धूतं यथा दलम्॥
तुलसीकाष्ठमालाभिर्भूषितो भ्रमते यदि।
दुःस्वप्नं दुर्निमित्तञ्च न भयं शस्त्रजं क्वचित्॥

"यमके दूतगण तुलसीकी मालाको देखकर दूरसे वैसे ही भाग जाते हैं, जैसे वायुके प्रवाहमें सूखे पत्ते इधर–उधर उड़ जाते हैं। तुलसीकी माला गलेमें पहनकर भ्रमण करनेपर कहीं पर भी दुःस्वप्न, दुर्घटना और शङ्काजनित भय नहीं रहता।" गरुड़ पुराणमें एक अन्य स्थानपर मार्कण्डेय ऋषि कहते हैं—

तुलसीकाष्ठसम्भूतां यो मालां वहते नरः।
प्रायश्चित्तं न तस्यास्ति नाशौचं तस्य विग्रहे॥

"जो व्यक्ति तुलसीकाष्ठकी माला धारण करते हैं, उनको प्रायश्चित्त करनेकी आवश्यकता नहीं है एवं उनके शरीरको अशौच भी नहीं लगता है।" कलियुगमें तुलसीकाष्ठकी मालाओंसे भूषित होकर पुण्यक्रिया एवं पितरोंका कर्म करनेपर करोड़ों गुणा फल प्राप्त होता है। अगस्त्यसंहितामें कहा गया है—"तुलसीमाला धारण करके जो भगवानकी पूजा करते हैं, वे अनन्तफल प्राप्त करते हैं।" स्कन्दपुराणमें कहा गया है—"जिनके गलेमें तुलसीकी माला दिखाई देती है, वे निश्चय ही भगवद् भक्त हैं।" नारदीय पुराणमें उल्लिखित है—"जिन व्यक्तियोंके कण्ठदेशमें तुलसीमाला होती है, वे वैष्णवगण ही जगतको पवित्र करते हैं।"

तुलसीके बिना विष्णुपूजा असम्भव

तुलसीदेवी सामान्य वृक्षमात्र नहीं हैं, वे वृक्षके रूपमें अर्चावतार हैं। वृक्ष कहकर तुलसीकी अवज्ञा करना अपराध है, जिसके फलस्वरूप नरक अवश्यम्भावी है। तुलसीदेवीकी किसी अन्यसे तुलना नहीं की जा सकती है। इस जगतके किसी भी प्रकारके पुष्प या पत्तोंके साथ उनकी तुलना नहीं होती है।

जगतेर जत फूल, कभु नहे समतुल
सर्व त्यजि कृष्ण तव मञ्जरी विलासी।
(श्रील केशव गोस्वामी)

हे तुलसीदेवी! जगतमें जितने प्रकारके

भी फूल हैं, उनकी तुलना आपसे नहीं की जा सकती। सभी प्रकारके पुष्पोंको परित्यागकर श्रीकृष्ण आपकी मञ्जरीको ही प्रेमपूर्वक ग्रहण करते हैं।

श्रीहरिभक्तिसुधोदय (१८/२९) में कहा गया है—

पारिजातस्रजं हित्वा यां विभर्त्ति मुदा हरिः।
विष्णुप्रिया सा तुलसी कथं वारुत्सु गण्यते॥

"श्रीहरि पारिजात पुष्पकी मालाका परित्याग करके जिसको सहर्ष धारण करते हैं, वही हरिप्रिया तुलसीकी किस प्रकार सामान्य लताओंमें गणना होगी?" भगवत् सेवाके लिए तुलसीचयन करना शास्त्र विधि है। भागवतसेवाके बिना अपने लिए अर्थात् सर्दी, खाँसी, बुखार आदि रोगोंसे छुटकारा पानेके लिए औषधि रूपमें तुलसीका व्यवहार करनेसे अमङ्गल होता है। यहाँ तक कि तुलसी पत्रके द्वारा अन्य देवदेवियोंकी पूजा करना भी शास्त्रोंमें निषेध किया गया है। इस प्रसङ्गमें वायुपुराणमें उल्लिखित है—

तुलसीदलमादाय योऽन्यं देवं प्रपूजयेत्।
ब्रह्महा स हि गोघ्नश्च स एव गुरुतल्पगः॥

"जो व्यक्ति तुलसीपत्रके द्वारा अन्य देवदेवियोंकी पूजा करते हैं, उनको ब्रह्महत्या, गोहत्या और गुरुपत्नीगमनका पाप लगता है।" श्रीगुरुदेवके चरणोंमें तुलसी देना भी अत्यन्त अपराधजनक है।

जो कोमल तुलसी पत्रोंके द्वारा श्रीहरिकी अर्चना करते हैं, वे कभी भी कालके द्वारा ग्रसित नहीं होते हैं। वैष्णववृन्द विष्णुको निवेदन किए बिना तुलसीपत्र ग्रहण नहीं करते हैं।

श्रीमत्तुलस्या पत्रस्य माहात्म्यं यद्यपीदृशम्।
तथापि वैष्णवैस्तन्न ग्राह्यं कृष्णार्पण बिना॥

"यद्यपि शास्त्रोंमें तुलसीपत्रका अत्यन्त आश्चर्यजनक माहात्म्य वर्णित हुआ है, फिर भी वैष्णवगण कृष्णको अर्पण किए बिना उसको कदाचित् ग्रहण नहीं करते हैं। आचारभ्रष्ट व्यक्ति स्वयंको वैष्णव कहकर गर्व बोध करते हैं, लोकरञ्जनके लिए विष्णुको निवेदन न करके तुलसीपत्र धारण करते हैं। जगद्गुरु श्रीश्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपादने लिखा है—"यथाविधि लब्ध वैष्णवीदीक्षासे दीक्षित व्यक्तिके द्वारा विष्णु-नैवेद्य तुलसी-मञ्जरीके साथ अर्पण न करने पर भगवान विष्णु उसको ग्रहण नहीं करते हैं, क्योंकि तुलसी नित्य कृष्णप्रेयसी हैं। वृक्ष-अर्चावतार तुलसी-मञ्जरीके संयोगसे ही अर्चावतार श्रीगोविन्द-विग्रहका अर्चन करनेकी विधि है। तुलसी-मञ्जरीके द्वारा विष्णु विग्रहके अर्चन विधिकी व्यवस्था समस्त सात्वत वैष्णव स्मृति शास्त्रोंमें पाई जाती है।" तुलसीपत्र भगवानको भक्तिपूर्वक अर्पण करनेसे भक्तवत्सल श्रीकृष्ण भक्तोंके निकट बिक जाते हैं।

बिना स्नान किए तुलसी चयन करना निषिद्ध है। प्रातः स्नानके बाद तुलसी चयन करना सर्वोत्तम है। असमर्थ लोगोंके लिए मन्त्रस्नान करके शुद्धवस्त्र पहनकर तुलसीचयन करना कर्तव्य है। स्नान और आह्निक (सन्ध्या) के बाद तुलसीको स्नान कराकर प्रणामपूर्वक दाएँ हाथके द्वारा एक-एक करके तुलसीपत्र या कोमल-मञ्जरीका सावधानीपूर्वक चयन करना चाहिए। तुलसीस्नान-मन्त्र—

ॐ गोविन्दवल्लभां देवीं भक्तचैतन्यकारिणीम्।

स्नापयामि जगद्धात्रीं हरिभक्तिप्रदायिनीम्॥

दूसरे लोगोंके लिए अन्यान्य दिनोंमें तुलसीचयन निषिद्ध होनेपर भी शुद्ध वैष्णवोंके लिए केवलमात्र द्वादशी तिथिमें ही चयन करना निषिद्ध है। एक दिन पहले या बहुत दिन पहले चयन की गयी तुलसी, यहाँ तक कि सूखी अनिवेदित तुलसीपत्र द्वारा भी पूजाकी विधि है। तुलसीदेवीकी असीम और अपार महिमाका भाषाके द्वारा वर्णन करना असम्भव है। काम आदिकी लहरोंमें पतित, लाखों अपराधोंसे युक्त भक्तिविहीन व्यक्तिके लिए श्रीतुलसीदेवीकी शरण ग्रहण किये बिना मङ्गलका अन्य कोई रास्ता नहीं है।

भक्त्याविहीना अपराधलक्षैः
क्षिप्ताश्च कामादि तरङ्गमध्ये।
कृपामयि त्वां शरणं प्रपन्ना
वृन्दे नुमस्ते चरणारविन्दम्॥

(श्रीगौड़ीय पत्रिका मूल बंगलासे अनुवादित, अनुवादक—श्रीओमप्रकाश ब्रजवासी) ❑

तुलसीमाला धारण करनेके लिए चार नियमोंका पालन करना चाहिए—
(१) अखाद्योंका त्याग—अण्डा, मांस, मछली, प्याज, लहसुन।
(२) मादक द्रव्योंका त्याग—शराब, भांग, गांजा, तम्बाकू, गुटका, पान, बीड़ी, सिगरेट, चाय, कॉफी।
(३) जूआ, तास, सट्टा, लाटरी आदिका त्याग।
(४) अवैध स्त्रीसंग त्याग।

—संपादक

मुम्बईमें प्रचार

कृष्ण-तत्त्वका ज्ञाता ही यथार्थ गुरु है

(ॐविष्णुपाद १०८श्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीके मुम्बईमें प्रचारके समय 'नवभारत टाइम्स' दैनिक संवादपत्र, मुम्बई, १ अप्रैल २००३ पृष्ठ ६ पर प्रकाशित उनकी अमृतमयी वाणी)

'जीवनमें कैसे गुरुका आश्रय करना उचित है?'—यह विचारणीय प्रश्न है। जिन्होंने काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह और मात्सर्य-इन षड् रिपुओंको जीत लिया है, जिनको श्रीकृष्णके प्रति स्वाभाविक अनुराग हो गया है, जो वेद-वेदान्त-उपनिषद्-पुराण आदि शास्त्रोंमें पारङ्गत हैं, साधुजन गुरु मानकर जिनके प्रति श्रद्धा कर सकें, इन्द्रियाँ जिनके वशमें हों, जो समस्त प्राणियोंके प्रति दयाका भाव रखते हों, ऐसे व्यक्ति गुरु होनेके योग्य हैं। श्रीकृष्णके प्रति अनुराग ही (इतर रागसे रहित) गुरुदेवका स्वरूप गुण है। बाकी सभी तटस्थ गुण हैं।

जिनमें यह स्वरूप लक्षण विद्यमान है, उनमें दो-एक तटस्थ लक्षण न भी रहें तो कोई हर्ज नहीं, वे गुरु होनेके योग्य हैं। तात्पर्य यह है कि यदि वे ब्राह्मण कुलमें

उत्पन्न नहीं भी हुए हों, अथवा यदि शूद्रकुलमें भी उत्पन्न हुए हों, तो भी स्वरूप लक्षण (कृष्णके प्रति अनुराग) विद्यमान रहनेके कारण वे गुरु होने योग्य हैं।

उपयुक्त गुरु मिलने पर श्रद्धालु शिष्यको निष्कपट होकर दृढ़ विश्वासपूर्वक गुरुकी सेवा करनी चाहिए। गुरुदेवको प्रसन्नकर उनसे श्रीकृष्ण-मन्त्र और दीक्षा ग्रहण करनी चाहिए। जो लोग दीक्षाके विरोधी हैं तथा केवल बनावटी कीर्तन आदिका ढोंग दिखाकर अपनेको वैष्णव कहकर प्रचार करते हैं, वे नितान्त ही आत्म-वञ्चक हैं। जड़ भरत आदि कुछ लोगोंके चरित्रमें दीक्षाका प्रसङ्ग न देखकर विषयी लोगोंको दीक्षाकी अवहेलना नहीं करनी चाहिए। यदि उनके पूर्व-पूर्व जन्मोंके विषयमें विचार करें तो, देखा जाता है कि पूर्व जन्ममें साधन करते हुए उनकी संसार-आसक्ति नष्ट हो चुकी थी। वे भाव-अवस्थाको प्राप्त हो चुके थे, अतः इस जन्ममें उन्हें दीक्षाकी कोई आवश्यकता ही नहीं थी। परन्तु विषयोंमें आसक्त व्यक्ति जो साधन-भजन करना चाहता है, उसे गुरुदीक्षा तथा गुरुसेवा करनी ही पड़ेगी, तभी उसकी संसारके प्रति आसक्ति नष्ट हो सकती है। दीक्षाके विषयमें शास्त्रोंमें वर्णन है—"दिव्यज्ञानं यतो दद्याक्ष पापस्य कुरुते संक्षयम्।" अर्थात् दीक्षा एक ऐसा अनुष्ठान है, जिससे दिव्यज्ञान प्राप्त होता है तथा समस्त प्रकारके पाप नष्ट होते हैं। श्रीगुरुदेवको अपनी निष्कपट सेवासे प्रसन्नकर उनसे भगवन्नाम-मंत्रादि दीक्षा और तत्त्वकी शिक्षा अवश्य ही ग्रहण करनी चाहिए।

सौभाग्यवान शिष्य सद्गुरुसे दीक्षा और शिक्षा प्राप्तकर साधुजनोंके मार्गका अनुसरण करेंगे। दाम्भिक व्यक्ति ही महाजनोंकी अवज्ञा कर स्वयं नये-नये मतोंकी सृष्टि करते हैं।

साधुजन अब तक जिस सनातन पथपर आरुढ़ होते रहे हैं, वही पथ हमारे लिए श्रेयजनक है। महाजनोंके पथका अनुशीलन करनेसे दृढ़ता, साहस और सन्तोष उदित होता है। जब हमलोग श्रीरूप, श्रीसनातन, श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी और श्रीहरिदास ठाकुरके भजन-पथका अनुगमन करते हैं, तब हमें इतना आनन्द होता है, जो वर्णनातीत है। जब हरिदास ठाकुरको दुष्ट मुसलमान हरिनाम त्याग करनेके लिए पीट रहे थे, उस समय उन्होंने क्या कहा था? "मेरे शरीरके भले ही टुकड़े-टुकड़े हो जायें, मेरे प्राण भले ही चले जायें, मैं हरिनाम नहीं छोड़ सकता। हे कृष्ण! मुझे मारनेवाले इन भूले-भटके जीवोंका तनिक भी अपराध नहीं है, इन्हें क्षमा करो, इन पर दया करो।"

इस प्रकार दृढ़ताके साथ समस्त प्राणियों पर दया रखते हुए निरन्तर हरिनाम ग्रहण करना ही पूर्व महाजनोंका भजनपथ है। पथ नया नहीं होता। जो पथ पहलेसे है, साधुजन उसी परिचित मार्गका अवलम्बन करते हैं। किन्तु दाम्भिक और प्रतिष्ठाकामी व्यक्ति नये-नये पथका आविष्कार करनेके लिए ही अधिक प्रयत्न करते हैं। बड़े ही सौभाग्यसे किसी-किसीको पूर्व महाजनोंके पथमें श्रद्धा होती है।

तात्पर्य यह है कि भक्ति-पथ 'वैधी' और 'रागानुगा' दो प्रकारका है। महाजनोंने निज-निज अधिकारके अनुसार इन दोनोंका आचरण किया है। इन दोनों भक्ति-पथोंका वर्णन श्रुति, स्मृति और पंचरात्रादि ग्रन्थोमें भरा पड़ा

है। परन्तु इन ग्रन्थोंके प्रदर्शित भक्ति-पथको छोड़कर 'बुद्ध' और 'दत्तात्रेय' आदिने जिन नवीन मार्गोंका आविष्कार किया, वे सब मार्ग अन्त तक केवल उत्पातके ही कारणके रूपमें प्रचारित हैं। यद्यपि इन नवीन पथोंके यात्री इन नवीन पथोंके द्वारा ऐकान्तिकी हरिभक्ति होनेका दावा करते हैं, परन्तु वास्तवमें यह उनकी अज्ञानताका द्योतक है। वेद आदि शास्त्रों द्वारा निर्धारित पथ ही एकमात्र सत्य पथ है। आजकल ऐसे-ऐसे अनेक नवीन मत निकलते हैं और अन्तमें अपने आचार्यके साथ लुप्त हो जाते हैं। ❑

भजन

श्वाँस श्वास पै कृष्ण रट वृथाँ श्वाँस मत खोय।
नाँ जानें या श्वाँस को यही अन्त कहूँ होय॥दोहा॥
श्रीकृष्ण श्रीकृष्ण श्रीकृष्ण बोल—बोल मेरी रसनाँ श्रीकृष्ण बोलो॥
बेद शास्त्र को यही सार है, सुमरन ते भव तेरो पार है।
समय गमावे क्यों, अनमोल॥ बोल मेरी रसनाँ श्रीकृष्ण बोल॥१॥
लख चौरासी खूब घुमाया, पीछे मानव का तन पाया।
अब तो घटके पट कूँ खोल॥ बोल मेरी रसनाँ श्रीकृष्ण बोल॥२॥
थोड़ी सी तेरी जिंदगानी, जैसे ववूला तैरत पानी।
पड़ो रहे यह तन को खोल॥ बोल मेरी रसनाँ श्रीकृष्ण बोल॥३॥
बीतो समय न वापिस आवे, पीछे सिर धुँन तू पछतावे।
(विरजो) श्रीगुरु गोविन्द बोल॥ बोल मेरी रसनाँ श्रीकृष्ण बोल॥४॥

—वृजविहारी वशिष्ठ, तीर्थ पुरोहित, कामवन, भरतपुर

SUMMER PREACHING TOUR OF SRILA MAHARAJJI-2003

10-04-2003	**DELHI—HONOLULU**
09-05-2003	**LOS ANGELES**
13-05-2003	**BADGER**
23-05-2003	**SAN FRANCISCO**
26-05-2003	**HOUSTON**
04-06-2003	**AMSTERDAM**
12-06-2003	**BIRMINGHAM**
21-06-2003	**MALAGA**
28-06-2003	**MOSCOW**
06-07-2003	**VIENNA**
09-07-2003	**DELHI**

E-mail during tour brajanath@gaudiya.net

श्रीश्रीगुरु–गौराङ्गौ–जयतः

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे

वैकुण्ठ–वार्त्तावह

बृहत्–मृदङ्ग

श्रीभागवत–पत्रिका

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः।
ज्ञान वैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना॥

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा॥

आराध्यो भगवान् व्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावनं, रम्या काचिदुपासना व्रजवधूवर्गेण या कल्पिता।
श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान्, श्रीचैतन्य महाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो नः परः॥

एक भागवत बड़ भागवत शास्त्र । आर एक भागवत भक्तिरसपात्र॥
दुई भागवत द्वारा दिया भक्तिरस । ताहाँर हृदये तार प्रेमे हय वश॥

वर्ष ४७ | श्रीगौराब्द ५१७ | वि. सं. २०६० ज्येष्ठ मास, सन् २००३, १७ मई—१४ जून | संख्या ३

श्रीनरोत्तम–प्रभोरष्टकम्

[श्रील–विश्वनाथ–चक्रवर्त्ति–ठक्कुर–विरचितम्]

श्रीकृष्णनामामृतवर्षि–वक्त्रचन्द्रप्रभा–ध्वस्त–तमोभराय ।
गौराङ्गानुचराय तस्मै नमो नमः श्रील–नरोत्तमाय॥१॥

जो श्रीकृष्णनामामृतकी वर्षा करनेवाले अपने मुखचन्द्रकी प्रभासे सबके अज्ञानरूप अन्धकारको दूर करते हैं, उन श्रीगौराङ्गदेवके अनुचर श्रीनरोत्तम ठाकुरको मैं पुनः–पुनः प्रणाम करता हुँ॥१॥

संकीर्त्तनानन्दज-मन्दहास्य-दन्तद्युति-द्योतित-दिङ्मुखाय ।
स्वेदाश्रुधारा-स्नपिताय तस्मै नमो नमः श्रील-नरोत्तमाय॥२॥
मृदङ्गनाद-श्रुतिमात्र-चञ्चत्-पदाम्बुजाद्वन्द्व मनोहराय ।
सद्यः समुद्यत्-पुलकाय तस्मै नमो नमः श्रील-नरोत्तमाय॥३॥
गन्धर्व-गर्व-क्षपण-स्वलास्य-विस्मापिताशेष-कृतिव्रजाय ।
स्वसृष्ट-गान-प्रथिताय तस्मै नमो नमः श्रील-नरोत्तमाय॥४॥
आनन्द-मूर्च्छावनिपात-भात-धूलिभरालङ्कृत-विग्रहाय ।
यद्दर्शनं भाग्यभरेण तस्मै नमो नमः श्रील-नरोत्तमाय॥५॥
स्थले-स्थले यस्य कृपा प्रपाभिः कृष्णान्यतृष्णा जनसंहतीनाम्।
निर्मूलिता एव भवन्ति तस्मै नमो नमः श्रील-नरोत्तमाय॥६॥
यद्भक्तिनिष्ठोपल-रेखिकेव स्पर्शः पुनः स्पर्शमणीव यस्य।
प्रामाण्यमेवं श्रुतिवद् यदीयं तस्मै नमः श्रील-नरोत्तमाय॥७॥
मूर्त्तैव भक्तिः किमयं किमेष वैराग्यसारस्तनुमान्नृलोके ।
सम्भाव्यते यः कृतिभिः सदैव तस्मै नमः श्रील-नरोत्तमाय॥८॥

हरिसंकीर्तनके समय जिनके मन्द-मधुर हास्य करनेसे दिग्बन्धुओंका मुखमण्डल खिल उठता है और उस समय धर्म तथा नयन-नीरकी धाराओंमें जो स्नान किया करते हैं, उन श्रीनरोत्तम ठाकुरको मैं पुनः-पुनः नमस्कार करता हूँ॥२॥

जो मृदङ्गकी ध्वनि श्रवण करते ही चञ्चल चरणकमलोंद्वारा सबका चित्त चुरा लिया करते हैं, हरिसंकीर्तनमें प्रवेश करते ही जिनके शरीरमें पुलक हो उठता है, उन श्रीनरोत्तम ठाकुरको मैं पुनः-पुनः प्रणाम करता हूँ॥३॥

जिन्होंने अपने नृत्य-नैपुण्यसे गन्धर्वोंका गर्व चूर्ण-विचूर्ण कर सुधीवर्गको विस्मित कर दिया है और स्वरचित मधुर गानोंद्वारा सर्वत्र ही प्रतिष्ठाको प्राप्त किया है, उन श्रीनरोत्तमठाकुरको मैं पुनः-पुनः नमस्कार करता हूँ॥४॥

प्रेमानन्दमें भरकर भूलुण्ठित होनेपर जिनका सारा अङ्ग धूलिराशिसे अलंकृत हो जाता है और अनेक पुण्यके बलसे जिनका साक्षाद् दर्शन प्राप्त होता है, उन श्रीनरोत्तमठाकुरको मैं पुनः-पुनः प्रणाम करता हूँ॥५॥

जो स्थान-स्थानपर कृपारूप जलसत्र (प्याऊ) की स्थापनाकर लोगोंकी श्रीकृष्ण भिन्न इतर तृष्णा अर्थात् विषय-वासनाको जड़से ही निर्मूल कर देते हैं, उन श्रीनरोत्तम ठाकुरको मैं पुनः-पुनः प्रणाम करता हूँ॥६॥

जिनकी भक्ति-निष्ठा पाषाणकी रेखाकी भाँति प्रतीयमान होती है, जिनका पद-स्पर्श स्पर्शमणिकी भाँति सर्वप्रकारके अभीष्टोंको देनेवाला है और जिनके वचन वेदवाक्यकी तरह प्रामाणिक होते हैं, उन श्रीनरोत्तम ठाकुरको मैं पुनः-पुनः प्रणाम करता हूँ॥७॥

इस मनुष्यलोकमें जिनका दर्शनकर बुद्धिमान व्यक्ति परस्पर ऐसा कहते हैं कि—यह पुरुष क्या मूर्तिमती भक्ति तो नहीं है? अथवा वैराग्यका सारांश तो नहीं है? उन श्रीनरोत्तम ठाकुरको मैं पुनः-पुनः प्रणाम करता हूँ॥८॥

श्रीराधिकाकृष्ण–विलास–सिन्धौ निमज्जतः श्रील–नरोत्तमस्य।
पठेद् य एवाष्टकमेतदुच्चै रसौ तदीयां पदवीं प्रयाति॥९॥
कारुण्यदृष्टि–शमिताश्रित–मन्तुकोटि–रम्याधरोद्यदति सुन्दर–दन्तकान्तिः।
श्रीमन्नरोत्तम–मुखाम्बुज–मन्दहास्यं लास्यं तनोतु हृदि मे वितरत्–स्वदास्यम्॥१०॥
राजन्मृदङ्ग–करताल–कलाभिरामं गौराङ्गगान–मधुपान–भराभिरामम्।
श्रीमन्नरोत्तम–पदाम्बुज–मञ्जुनृत्यं भृत्यं कृतार्थयतु मां फलितेष्टकृत्यम्॥११॥

जो सदा–सर्वदा श्रीराधाकृष्णके विलास–सागरमें निमग्न रहते हैं, उन श्रीनरोत्तम ठाकुरके इस अष्टकका जो उच्च–स्वरसे पाठ करते हैं, वे अवश्य ही तत्पदवीको लाभ करते हैं॥९॥

रम्य अधरसे निःसृत अति सुन्दर दशनकान्तिसे युक्त, आश्रितजनके करोड़ों अपराधोंको नष्ट करनेवाले और कृपादृष्टिविशिष्ट श्रीनरोत्तम ठाकुरके मुखपद्मका स्मित हास्य मुझे स्वदास्य प्रदानकर मेरे हृदयमें नृत्य करें॥१०॥

मृदङ्ग और करतालोंकी अतिशय मधुर–ध्वनिसे उन्मत्त होकर श्रीगौराङ्गदेवके गुणगानरूप मधुका पान करते हुए श्रीनरोत्तम ठाकुरके चरणकमलोंका अति मनोरम नृत्य, इस भृत्यको इष्टफल प्रदान कर कृतार्थ करे॥११॥ ❑

प्रश्नोत्तर

श्रीकृष्णतत्त्व

—ॐविष्णुपाद श्रीलभक्तिविनोद ठाकुर

प्र. १—कृष्णस्वरूप विमल प्रेमके लिए सर्वोपेक्षा अधिक उपयोगी क्यों है ?

उ.—परमतत्त्वके जितने भी प्रकार भाव जगतमें दिखलाई पड़ते हैं, उन समस्त भावोंकी अपेक्षा कृष्णस्वरूप–भाव ही विमल प्रेमका एकमात्र अधिकतम उपयोगी भाव है। मुसलिम शास्त्रोंमें जो "अल्ला" का भाव स्थापित हुआ है, उसमें विमल प्रेम नियोजित नहीं हो सकता, अतिप्रिय बन्धु पैगम्बर भी उसके स्वरूपका साक्षात् नहीं कर सके, क्योंकि उपास्यतत्त्व सख्यगत होनेपर भी ऐश्वर्यवशतः उपासकसे दूर रहता है। ईसाई धर्म जो 'गॉड' की भावना करता है वह भी अत्यन्त दूरगत तत्त्व है। ब्रह्मकी तो बात ही क्या, नारायण भी जीवके सहज प्रेमके विषय नहीं हैं, कृष्ण ही एकमात्र विमल प्रेमके सक्षात् विषय स्वरूपमें चिन्मय ब्रजधाममें नित्य विराजमान रहते हैं।

(चै. शि. १/१)

प्र. २—क्या कृष्णके अतिरिक्त विशुद्ध प्रेमके विषय और कोई नहीं हैं?

उ.—यद्यपि भाषाभेदसे कृष्ण, वृन्दावन, गोप, गोपी, गोधन, यमुना, कदम्ब इत्यादि शब्द कहीं पर दिखलाई न भी पड़े तथापि विशुद्ध प्रेम साधकोंको उस लक्षणमें लक्षित नाम धाम, उपकरण, रूप और लीला आदि सब प्रकारान्तरमें और वाक्यान्तरमें अवश्य स्वीकार करना होगा। अतएव कृष्णके सिवाय विशुध प्रेमका कोई दूसरा विषय नहीं है अर्थात् कृष्ण ही एकमात्र प्रेमके विषय हैं। (चै. शि. १/१)

प्र. ३—विष्णुतत्त्वका चरम प्रकाश क्या है?

उ.—श्रीकृष्ण ही विष्णुतत्त्वके चरम प्रकाश हैं। सत्त्वगुणोंकी उपासना द्वारा जीव निर्गुण होनेपर कृष्णतत्त्वकी सेवा प्राप्त करता है।

('तत्तत्कर्म प्रवर्त्तन,' स. तो. ११/६)

प्र. ४—ब्रह्म, परमात्मा और भगवान क्या पृथक्-पृथक् तत्त्व हैं?

उ.—ब्रह्म, परमात्मा और भगवान वस्तुतः एक ही तत्त्व हैं, जो जिस रूपको और जितनी दूर तक देखते हैं, वे उसीको देखकर सर्वोत्तम बतलाते हैं। (चै. शि. १/३)

प्र. ५—ब्रह्म और परमात्मासे श्रीकृष्णतत्त्वका वैशिष्ट्य क्या है?

उ.—श्रीकृष्ण सच्चिदानन्द घनविग्रह हैं, परमात्मा और ब्रह्मके आश्रय हैं। (श्रीम. शि., ३य अ.)

प्र. ६—ब्रह्म और भगवानके स्वरूप और उनकी उपासनागत फलका तारतम्य क्या है?

उ.—ब्रह्म और परब्रह्म भगवान पृथक्-पृथक् तत्त्व नहीं हैं। ब्रह्म उसी भगवानकी महाविभूति हैं, ब्रह्म व्यतिरेक गुण हैं अर्थात् अप्रकटित-शक्ति-सम्पन्नता भाव मात्र हैं। जो प्रकटित-अविचिन्त्य-अद्भुत विचित्र शक्तिविशिष्ट है, वही वस्तु भगवान है। इसलिए सगुण-निर्गुणादि विरुद्ध गुणसमूह उनमें सामञ्जस्य रूपमें प्रविष्ट हैं। इसलिए ब्रह्ममें केवल शुष्क ज्ञान संयोग द्वारा जीवका मोक्ष मात्र तुच्छ-सुख-लाभ होता है और भगवानमें ही निर्मल भक्ति रसास्वादन रूप भूमा सुखकी प्राप्ति सम्भव है।

(वृ. भा. तात्पर्यानुवाद)

प्र. ७—श्रीकृष्णमें क्या देह-देही भेद है?

उ.—श्रीकृष्णका स्वरूप सच्चिदानन्द होता है। उस सच्चिदानन्द विग्रहमें जड़ीय शरीरधारी जीवोंकी भाँति देह-देही अथवा धर्म-धर्मी भेद नहीं होता। अद्वयज्ञान स्वरूपमें जो देह है, वही देही है, जो है, वही घर्मी है। कृष्ण-स्वरूप मध्यमाकारमें एक स्थान पर स्थित रहने पर भी सर्वत्र पूर्ण रूपमें अवस्थित हैं।" (श्रीम. शि., ३य प.)

प्र. ८—परमब्रह्मको निर्विशेष कहना अयुक्ति-सङ्गत क्यों है?

उ.—जो कुछ है, उसका एक विशेष धर्म है, उसके द्वारा वह वस्तु अन्य वस्तुसे स्वतः भिन्न हो सकती है, जब विशेष नहीं है, तब वस्तुका अस्तित्व भी नही हैं। परब्रह्म निर्विशेष होनेपर सृष्टवस्तुसे अथवा प्रपञ्चसे किस प्रकार पृथक् हो सकता है ? यदि सृष्टवस्तुसे उसको पृथक् नहीं कह सकते, तो सृष्टिकर्ता और जगत एक हो जायेगा। आशा, भरोसा, भय, तर्क और सर्व प्रकारके अस्तित्वरहित हो जाएँगे।

(प्रे. प्र. ९म प्र.)

प्र. ९—परमेश्वरका प्रतिद्वन्दी तत्त्व क्यों नहीं सम्भव है?

उ.—परमेश्वर अद्वितीय पुरूष हैं, उनके समान या उनसे अधिक कोई नहीं हैं, सभी उनके अधीन हैं। संसारमें ऐसी कोई भी चीज नहीं है, जो उनके अन्दर हिंसा उत्पन्न कर सके, उनके प्रति भक्ति अर्जन करनेके लिए जो कुछ कार्य किया जाता है, वे हृदय-निष्ठाको देखकर उसका फल प्रदान करते हैं।

(प्रे. प्र. ५म प्र.)

प्र. १०—ब्रह्मको भगवत् तत्त्वकी अङ्गकान्ति क्यों कहा जाता है?

उ.—भगवत् स्वरूप ही पूर्ण स्वरूप है; क्योंकि उनका वही विशेष तत्त्व है; ब्रह्म और परमात्मा उसी विशेषके दो विशेषण हैं। जब सृष्टि नहीं हुई थी, तब एकमात्र भगवानके अतिरिक्त और कुछ नहीं था; तब ब्रह्म भी नहीं थे। जब जगतकी सृष्टि हुई तो "सर्व ब्रह्ममयं जगत्"—इसी भावमें भगवानका एक विश्व सम्बन्धी आविर्भाव ज्ञात हुआ जाता है। ब्रह्मके सम्बन्धमें दो भाव हैं। प्रथम—"सर्व खल्विदं ब्रह्म"; द्वितीय—समस्त सृष्ट अथवा सगुण वस्तुकी एक प्रकारकी व्यतिरेक चिन्ता। दोनों भाव ही विश्व सम्बन्धी भाव हैं। अतएव ब्रह्म भगवानकी ज्योति स्वरूप हैं, जो विश्व सम्बन्धमें परिव्याप्त हैं। परब्रह्मको भगवानको अङ्गकान्ति कहना यथार्थ ही है। ('वस्तु निर्देश', स. तो. २६)

प्र. ११—ब्रह्म क्या वस्तु है? वह पूर्ण

सच्चिदानन्दमय विग्रह श्रीकृष्णका किस प्रकार प्रकाश है?

उ.—श्रीकृष्णकी यशोराशि ज्योतिरूपमें सर्वत्र विकीर्ण होकर 'ब्रह्म' नामसे अभिहित होती है। (श्रीम. शि. ३य प.)

प्र. १२—श्रीकृष्ण-तत्त्व ब्रह्ममें आश्रय हैं; उस सम्बन्धमें गीताका प्रमाण क्या है?

उ.—निगुर्ण-सविशेष तत्त्व-स्वरूप श्रीकृष्ण ही ज्ञानियोंकी चरमगति ब्रह्मकी प्रतिष्ठा अथवा आश्रय हैं। अमृतत्व, अव्ययत्व, नित्यत्व, नित्य धर्म-स्वरूप प्रेम एवं ऐकान्तिक सुख-स्वरूप ब्रजरस—ये सभी निर्गुण-सविशेष-तत्त्वरूप कृष्ण स्वरूपका आश्रय करके रहते हैं। (रसिकरंजन भाष्य १४/२६)

प्र. १३—ब्रह्म और परब्रह्ममें पार्थक्य क्या है?

उ.—परशक्ति विशिष्ट ब्रह्म ही परब्रह्म हैं। निःशक्तिक निर्विशेष-ब्रह्म परब्रह्मका ही एकदेश मात्र है। (त. वि., १म अनु., ३२)

प्र. १४—परमात्माके दो प्रकाश कौन-कौन हैं?

उ.—परमात्माके दो प्रकाश हैं—व्यष्टि- प्रकाश और समष्टि-प्रकाश। समष्टि प्रकाश द्वारा वे विराट ब्रह्माण्ड-विग्रह हैं। व्यष्टि-प्रकाश द्वारा वे जीवके सहचर हैं और उनके हृदयमें विराजमान अंगुष्ठ परिमाणवाले पुरुष विशेष हैं। (चै. शि. ५/३)

प्र. १५—ब्रह्म-दर्शन, परमात्म-दर्शन और भगवद्-दर्शनमें पार्थक्य क्या है?

उ.—ब्रह्म-दर्शन और परमात्म-दर्शन सोपाधिक हैं अर्थात् मायिक उपाधिके विपरीत भावमें ब्रह्म-दर्शन होता है एवं मायिक उपाधिके अन्वयभावसे परमात्माका दर्शन होता है। किन्तु निरुपाधिक चित् चक्षु द्वारा वस्तु दर्शन करने पर एकमात्र चिन्मय भगवत् स्वरूप ही लक्षित होते हैं। (श्री भ. शि. ४०९ प.)

प्र. १६—ब्रह्म, परमात्मा और भगवान—इनका अलग-अलग स्वरूप क्या है?

उ.—निःशक्ति निर्विशेष भगवद् भाव ही ब्रह्म एवं शक्तिमान सविशेष ब्रह्म ही भगवान हैं। अतएव भगवान ही स्वरूप-तत्त्व हैं, ब्रह्म उनके स्वरूपका केवल निर्विशेष अविर्भावरूप ज्योति अर्थात् उनकी अङ्ग-ज्योति है एवं परमात्मा उनके वह अंश हैं, जो जगतके प्रत्येक पदार्थोंमें अंगुष्ठ-परिमाणमें साक्षीके रूपमें प्रविष्ट हैं। (श्रीम. शि., ४ र्थ प.)

प्र. १७—अद्वय-तत्त्व कृष्णमें किस समय निर्विशेष ब्रह्मका विचार उपस्थित होता है?

उ.—अनन्त वैभवयुक्त कृष्ण एक अद्वय तत्त्व हैं। ज्ञान मार्गमें कृष्णसे उनकी इच्छा और शक्तिको र्पुथक् करनेपर वे अद्वय-तत्त्व ही निर्विशेष ब्रह्मके रूपमें लक्षित होते हैं। ('नाम माहात्म्य सूचना', ह. चि.)

प्र. १८—कृष्णलीलाका स्वरूप क्या है?

उ.—

कृष्ण से पुरुष एक, नित्य वृन्दावने।
जीवगण नारीवृन्द, रमे कृष्णसने॥
सेइत आनन्दलीला जार नाइ अन्त।
अतएव कृष्णलीला अखण्ड अनन्त॥

('सम्बन्ध-विज्ञान लक्षण उपलब्धि' १, क.)

प्र. १९—कृष्णके स्वकीय और पारकीय रसका विचार किस प्रकार है?

उ.—कृष्णका आत्मारामता-धर्म नित्य होनेपर भी उनका लीलारामता-धर्म भी उसी प्रकारसे नित्य है। कृष्णमें समस्त विरुद्ध-धर्म एक साथ प्रकाशित हैं, यह उनका स्वाभाविक धर्म है। कृष्ण तत्त्वके एक केन्द्रमें आत्मारामता, उसके विपरीत केन्द्रमें लीलारामताकी पराकाष्ठारूप पारकीयता विद्यमान है।

प्र. २०—आश्रय और विषय तत्त्वकी सीमा कौन-कौन तत्त्व हैं?

उ.—श्रीमतीराधिका अनुरागरूपमें आश्रय तत्त्वकी अन्तिम सीमा हैं और श्रीकृष्ण शृङ्गार रूपमें

विषय तत्त्वकी चरम सीमा हैं।

(चै. कि. २४ खंड ७/७)

प्र. २१—कृष्णकी प्रकटाप्रकट लीलाका स्वरूप क्या है?

उ.—कृष्णलीला प्रकट और अप्रकट भेदसे दो प्रकारकी है। साधारण मानवकी नयनगोचर जो वृन्दावन लीला है, वही प्रकट कृष्णलीला एवं जो चर्म चक्षु द्वारा लक्षित नहीं होती, वह कृष्णलीला ही अप्रकट लीला हैं। गोलोकमें अप्रकट-लीला कृष्णकी इच्छा हेने मात्रसे प्रापञ्चिक-चक्षुओंसे देखी जाती है।

प्र. २२—'मथुरा,' 'वसुदेव,' 'देवकी', 'कंस', 'कंस-कारागार'—ये सब तत्त्वतः क्या हैं?

उ.—महापुण्यभूमि भारतवर्षके ब्रह्मज्ञान-विभागरूप मथुरामें विशुद्ध सत्त्वस्वरूप वसुदेवने जन्म ग्रहण किया। सात्वतोंके वंशसम्भूत वसूदेवने मस्तिष्ककी प्रतिमूर्ति कंसकी मनोमयी भगिनी देवकीसे विवाह किया। भोज कुलांगार कंस इस दम्पतिसे भगवद्भावकी उत्पत्तिकी आंशका करके स्मृतिरूप कारागारमें उनको बन्द कर लिया।

(कृ. स. ४/१)

(क्रमशः)

श्रीलप्रभुपादजीका उपदेशामृत

प्र. ९३—क्या इस जगतमें शुद्ध साधुका आदर है?

उ.—कपटतापूर्ण जगतमें कपटका ही आदर है। जो साधु जीवोंको विपथगामी नहीं करते, ऐसे शुद्ध साधुओंका जगतमें आदर नहीं होता। जो साधु हरिकथाके नामपर लोगोंको विपथगामी करते हैं, ऐसे साधुओंकी सेवा ही आजकल कपटी समाजका धर्म बन चुका है। अर्थात् जो साधु स्वयं विषयोंमें प्रमत्त हैं तथा लोगोंको भी विषयभोगकी शिक्षा देते हैं, उनका तो बहुत सम्मान है, परन्तु जो स्वयं विषयोंसे विरक्त हैं तथा लोगोंको भी विषय-भोगोंको त्यागकर भगवानकी सेवाकी शिक्षा देते हैं, दुर्भागे लोग उनका सम्मान नहीं करते। जब कपटी साधुओंकी कपटताको लोगोंको बताकर शुद्ध साधु उन्हें सावधान करनेकी चेष्टा करते हैं, तो उस समय वे कपटी साधु उल्टा उन्हें ढोंगी एवं कपटी इत्यादि बताते हैं और लोगोंका भी दुर्भाग्य ही है कि उन्हें ऐसी ढोंगी साधुओंकी बातोंपर ही विश्वास हो जाता है तथा वे शुद्ध साधुओंको दुत्कार देते हैं। यह मायाका ही प्रभाव है कि वह जीवको निष्कपट नहीं होने देगी, इसीलिए वह जीवोंको शुद्ध साधुओंसे दूर रखनेकी भरसक चेष्टा करती है।

प्र. ९४—यदि गुरुदर्शन न हुआ तो क्या भगवानका दर्शन भी नहीं होगा?

उ.—नहीं। श्रीगुरुदेव चिन्मय मन्दिर हैं। उस मन्दिरमें भगवान विराजमान हैं। भगवान तो प्रेमके वशीभूत हैं। इसीलिए वे अपने प्रेमी गुरु एवं वैष्णवोंके हृदयमें ही निवास करते हैं। शास्त्र कहते हैं—

श्रुतिमपरे स्मृतिमितरे भारतमन्ये भजन्तु भवभीताः।
अहमिह नन्दं वन्दे यस्यालिन्दे परं ब्रह्म॥

(चै. च. म. १९-९६)

अर्थात् इस संसारसे भयभीत होकर कोई श्रुतियोंकी, कोई स्मृतियोंकी तो कोई महाभारतकी उपासना करते हैं, परन्तु मैं उन नन्दमहाराजकी वन्दना करता हूँ जिनके आङ्गनमें परंब्रह्म श्रीकृष्ण क्रीड़ा करते हैं।

अनेक लोग ऐसा अभिनय करते हैं कि जैसे वे भगवानके दर्शनोंके लिए बहुत उत्कण्ठित हैं। परन्तु उन्हें यह ज्ञान नहीं है कि गुरुके दर्शनोंसे ही भगवानके दर्शन होते हैं। गुरुके चरणोंमें आश्रय लिये बिना तो भक्ति ही प्रारम्भ नहीं होती।

गुरु ही भगवानके चरणोंसे हमारा सम्बन्ध जोड़ते हैं। श्रीकृष्ण अपने सर्वश्रेष्ठ सेवक या सर्वश्रेष्ठ वैष्णवको इस जगतमें भेजते हैं, इससे श्रीकृष्णकी करुणाका ही परिचय मिलता है। भगवानकी अनन्त शक्तियाँ हैं। उनमें एक शक्ति करुणाशक्ति है, जिसके माध्यमसे वे जीवोंपर कृपा करते हैं। उनकी इस करुणाशक्तिका अवतार ही हैं श्रीगुरुदेव। जो श्रीविग्रह एवं श्रीनामकी सेवाकी शिक्षा देते हैं, वे ही गुरु हैं। केवल ऐश्वर्यभावसे गुरुसे दूर रहकर उनकी सेवा करनेसे ही काम नहीं चलेगा। दृढ़ विश्वास एवं प्रीतिपूर्वक गुरुसेवा करनी चाहिए, जिस प्रकार श्रीलरघुनाथ दास गोस्वामीने श्रीस्वरूपदामोदरकी सेवा की।

प्र. ९५—क्या गुरुको भूलनेसे विपत्तिमें पड़ना पड़ेगा?

उ.—अवश्य ही। जो प्रतिक्षण हमें अपने श्रीचरणोंमें आकर्षित करके रखते हैं, ऐसे गुरुके चरणकमलोंसे हम जिस क्षण अलग हो जायेंगे या उन्हें भूल जायेंगे, उसी क्षण हम अवश्य ही भक्तिमार्गसे भ्रष्ट हो जायेंगे। गुरुसे अलग होते ही अनेक प्रकार सांसारिक कामनाएँ हमें ग्रास कर लेंगी। हमारा दुर्भाग्य है कि हमलोग शारीरिक सुख-सुविधाओंके लिए गुरुसेवाको भी त्याग देते हैं। जो गुरुदेव सांसारिक विषयोंसे सर्वदा हमारी रक्षा करते हैं, ऐसे गुरुदेवका स्मरण यदि हम प्रतिमुहूर्त न करें तो अवश्य ही हमें विपत्तिमें पड़ना पड़ेगा। उस समय हम स्वयं ही गुरु होना चाहेंगे। दूसरे सभी लोग मेरी पूजा करें, हमारी ऐसी दुर्बुद्धि हो जायेगी।

प्र. ९६—वैष्णवोंके दोष कौन देखता है?

उ.—जो भगवानसे विमुख है, जिसकी इन्द्रियाँ सांसारिक विषयोंमें लगी हुई हैं, वही वैष्णवोंका दोष देखता है। गीतामें भगवान कहते हैं कि मेरे भक्तका कभी भी विनाश नहीं होता, उसका कभी अकल्याण नहीं होता—***'न मे भक्तः प्रणश्यति।'*** जो अनन्यभावसे भगवानका भजन करते हैं, क्या कभी उनका अमङ्गल हो सकता है? हमारी दृष्टिमें दोष है, इसीलिए हमें वैष्णवोंमें भी दोष दिखायी पड़ते हैं। यही कारण है कि सब कुछ करनेपर भी हमारा कल्याण नहीं होता।

प्र. ९७—क्या श्रीगुरुदेव प्रत्येक वस्तुमें ही विराजमान हैं?

उ.—हाँ। आश्रयजातीय गुरुवर्ग विभिन्न स्वरूपोंमें हमपर कृपा करनेके लिए उपस्थित हैं। ये सभी दिव्यज्ञानदाता दीक्षागुरुके ही प्रकाश हैं। विभिन्न दर्पणोंमें जगद्गुरुका बिम्ब ही प्रतिबिम्बित हो रहा है। प्रत्येक वस्तुमें मेरे श्रीगुरुदेव ही प्रतिफलित हो रहे हैं। विषयजातीय कृष्ण आधे तथा आश्रयजातीय कृष्ण (श्रीगुरुदेव) आधे हैं। इन दोनोंके मिलनेपर ही पूर्ण विचित्रता प्रकट होती है। विषयजातीय पूर्ण प्रतीति कृष्ण तथा आश्रयजातीय पूर्ण प्रतीति श्रीगुरुदेव हैं। सर्वक्षण भगवानकी सेवाकी जो शिक्षा प्रदान करते हैं, वे ही श्रीगुरुदेव हैं। वे सभी जीवोंके हृदयमें प्रतिबिम्बित हो रहे हैं। वे आश्रयजातीयके रूपमें प्रत्येक वस्तुमें ही विराजमान हैं।

प्र. ९८—हृदयमें भगवानकी स्फूर्ति कब होती है?

उ.—यदि सौभाग्यसे हृदयमें श्रीगुरुदेवके दर्शन हो जाएँ, तभी ऐसे शुद्ध चित्तमें ही भगवानकी स्फूर्ति सम्भव है। जो नित्य-निरन्तर भगवानकी सेवा करनेके लिए उत्साहित करते रहते हैं, उनकी सेवा तथा उनको प्रसन्न किये बिना भगवानकी सेवा कैसे प्राप्त हो सकती है?

प्र. ९९—पूर्णरूपसे श्रीगुरुदेवके चरणोंका आश्रय ग्रहण नहीं करनेसे क्या भक्तिसे वञ्चित होना पड़ता है?

उ.—अवश्य ही। हम सोचते हैं कि हमने गुरुदेवसे मन्त्र ग्रहण किया है। परन्तु यदि मन्त्रग्रहण करनेपर भी हम सम्पूर्णरूपसे उनके श्रीचरणोंका आश्रय ग्रहण करनेके लिए तैयार न होएँ अर्थात् यदि हमने सम्पूर्णरूपसे उनकी अधीनता

स्वीकार नहीं की तो हमें भक्तिसे वञ्चित ही होना पड़ेगा।

प्र. १००—संसारमें हमारी जो आसक्ति लगी है, उससे हमारी रक्षा कौन करेगा?

उ.—श्रीचैतन्यमहाप्रभुके प्रियजन श्रीगुरुदेव ही संसाररूप मृत्युसे हमारी रक्षा कर सकते हैं। गुरु कौन है? इस विषयपर हमें विचार करना चाहिए। जो समस्त गुरुओंके एकमात्र आराध्य हैं, ऐसे पूर्णवस्तु भगवानकी सेवामें जो नियुक्त हैं, वे ही गुरु हैं। वैसे तो गुरु बहुत होते हैं। जैसे—कुश्ती सीखानेवाले, तैराकी सीखानेवाले, खेल सीखानेवाले या स्कूल-कालेजोंमें जागतिक शिक्षा देनेवाले। परन्तु इनमेंसे एक भी गुरु ऐसा नहीं है, जो हमें मृत्युसे बचा सके, अर्थात् इस दुःखमय संसारमें हमारे आवागमनको रोक सके। क्योंकि वे तो स्वयं ही अपनेको बचानेमें असमर्थ हैं। अतः यहाँपर ऐसे गुरुओंकी बात नहीं कही गयी है। भागवतमें भी कहा गया है—वह गुरु, गुरु नहीं है; वे मातापिता, मातापिता नहीं हैं; वह देवता, देवता नहीं है; वे बन्धु-बान्धव, बन्धु-बान्धव नहीं हैं;—जो हमें भक्तिका उपदेश प्रदानकर हमारी मृत्यु अर्थात् संसारमें हमारे आवागमनको न रोक सके, इस जड़जगतके प्रति आविष्टतारूपी मृत्युसे हमारी रक्षा कर सके।

अज्ञानके कारण ही अर्थात् भगवानको भूलनेके कारण ही हमें मृत्युके मुखमें जाना पड़ता है अर्थात् जन्म-मरणके चक्करमें पड़ना पड़ता है। ज्ञान होनेपर सहजरूपमें ही हम मृत्युके मुखमें जानेसे बच जाते हैं। इस संसारमें हम जो विद्या ग्रहण करते हैं, यदि किसी कारणसे हम पागल हो जाएँ, हमें पक्षाघातग्रस्त (लकवा) हो जाए या हमारी मृत्यु हो जाए, तो उस समय इस विद्याका कुछ भी मूल्य नहीं रहता। जो गुरु हमें मृत्युके मुखसे बचा नहीं सकते, वे कुछ दिन तो हमारे लिए विषय-भोगोंकी व्यवस्था तो कर देते हैं अर्थात् हमें ऐसी शिक्षा प्रदान करते हैं, जिसके द्वारा हम नाशवान शारीरिक सुखकी वस्तुओंको इकट्ठा कर लेते हैं, परन्तु इस संसारके प्रति आसक्तिरूप मृत्युसे बचा नहीं पाते। अतः ये सब वञ्चक हैं।

प्र. १०१—भगवानको किस प्रकार बुलाना चाहिए?

उ.—भगवान श्रीचैतन्य महाप्रभु कह रहे हैं कि भगवानको बुलानेके लिए एक घासके तिनकेसे भी अधिक सुनीच तथा दीन-हीन होना पड़ेगा। विद्या, रूप, धन-सम्पत्ति, ऐश्वर्य इत्यादिके अभिमानको पूर्णरूपसे त्यागना पड़ेगा। क्योंकि जबतक एक व्यक्तिको यह अनुभव न हो कि मैं छोटा हूँ अथवा असमर्थ हूँ तो वह दूसरेके सामने कैसे झुकेगा तथा अपनी सहायताके लिए उससे प्रार्थना क्यों करेगा? इस संसारमें ही हम देखते हैं कि जब बहुत चेष्टा करनेपर भी कोई व्यक्ति किसी कार्यको करनेमें असमर्थ हो जाता है, तो उस समय असहाय होकर सहायताके लिए दूसरोंसे प्रार्थना करता है। प्रार्थना करनेका तात्पर्य है—उसका अभिमान-अहङ्कार नष्ट हो चुका है। उसी प्रकार जब श्रीगौरसुन्दर भगवानको बुलानेके लिए कह रहे हैं, तो इसका तात्पर्य यह है कि पहले हमें यह अनुभव करना पड़ेगा कि मैं असहाय हूँ तथा अपनी चेष्टासे इस जन्म-मरणके चक्करसे पार नहीं हो सकता, तभी हम सर्वशक्तिमान भगवानको अपनी सहायताके लिए बुला सकते हैं। परन्तु यदि कोई भगवानको सहायताके लिए पुकारता है केवल अपना काम हल करनेके लिए, वास्तवमें उनसे प्रीति नहीं है, तो यह दीन-हीनता नहीं है, यह कपटता है, स्वार्थ है। ऐसी पुकार भगवानतक नहीं पहुँचती। भगवान परम स्वतन्त्र हैं, पूर्ण चेतन वस्तु हैं, सबके अन्तर्यामी हैं, वे किसीके अधीन नहीं हैं। जबतक हम अपने अहङ्कारको पूर्णरूपसे त्यागकर निष्कपट दीनतामें प्रतिष्ठित न हो जाएँ अर्थात् वास्तवमें ही दीन-हीन न बन जाएँ, तबतक परम

स्वतन्त्र भगवानतक हमारी पुकार नहीं पहुँच सकती।

एक बात और भी है—तृणादपि सुनीच (दीन-हीन) होकर भगवानको पुकारते समय यदि हममें सहनशीलता न हो, तो भी पुकार व्यर्थ हो जायेगी। यदि हम किसी वस्तुके लोभमें पड़कर असहिष्णुता दिखाते हैं, तो यह तृणादपि सुनीच (दीनता) के विरुद्ध है। यदि हमें पूर्ण विश्वास है कि भगवानकी कृपा हो जाए तो किसी वस्तुका अभाव नहीं रह सकता, तो ऐसी अवस्थामें तुच्छ वस्तुओंके मोहमें पड़कर हम असहिष्णु नहीं बनेंगे अर्थात् यदि कोई हमारी तुच्छ सांसारिक वस्तुको नष्ट भी कर देता है, तो भी हम उसपर क्रोध नहीं करेंगे।

अनेक समय हम ऐसा सोचते हैं कि भगवानको पुकारनेसे क्या होगा? शास्त्रोंमें और भी अनेक उपायोंका वर्णन है जैसे कर्म, ज्ञान, तप आदि। अतः मैं किसी अन्य उपायको ग्रहण कर सकता हूँ। सहनशीलताके अभावमें ही ऐसी सोचें जन्म लेती हैं। ऐसे कुविचारोंसे रक्षाके लिए हमें एक रक्षककी आवश्यकता होती है। गुरु ही वे समर्थवान रक्षक हैं। श्रील नरोत्तम ठाकुर कह रहे हैं—*''आश्रय लइया भजे, तारे कृष्ण नाहि त्यजे, आर सब मरे अकारण।''* जो गुरु-वैष्णवोंके चरणकमलोंका आश्रय लेकर भगवानका भजन करता है, उसे तो कृष्ण कभी भी नहीं छोड़ते। इनके अतिरिक्त सब व्यर्थ ही मारे जाते हैं। कृष्ण उनकी ओर देखते तक नहीं।

श्रीगुरु-परम्परा और सम्प्रदाय-प्रणाली

—ॐविष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज

(श्रीश्यामसुन्दर गौड़ीय मठ, शिलिगुड़ि, दार्जिलिङ्ग, दिनाङ्क ४-१-९७ को प्रदत्त वक्तृता)

अनेक लोगोंने इन सब तत्त्वदर्शनोंको लेकर संक्षिप्त आलोचना की है। विषय बहुत गुरुत्वपूर्ण एवं दार्शनिक है। तथापि संक्षिप्त रूपसे हम दिग्दर्शन करेंगे। गुरु, सम्प्रदाय एवं गुरु-परम्परा सबसे पहले आलोच्य विषय है। गुरु-परम्परा जिसको हम मानते हैं, शास्त्रोंमें जिस गुरु-परम्पराकी बात कही गयी है, वह विभिन्न प्रकारकी है। विभिन्न सम्प्रदायोंकी विभिन्न गुरु-प्रणाली हैं। हमारा आलोच्य विषय है—ब्रह्म-माध्व सम्प्रदायकी गुरु-प्रणाली।

जहाँ हम देखते हैं कि गुरुतत्त्वमें विषय-विग्रह (भगवान) और आश्रय-विग्रह (गुरु) दोनोंका ही अवस्थान है। भगवान श्रीकृष्णसे गुरु-परम्परा या गुरु-प्रणाली आश्रय-विग्रहोंको लेकर आयी। इसलिए गुरु-प्रणाली एक तरफकी बात नहीं है। विषय और आश्रय—इन दो तत्त्वोंको लेकर गुरु-परम्परा है। शास्त्रोंमें उल्लिखित है—पारमार्थिक गुरुतत्त्व एवं गुरु-प्रणाली कैसी है? साधारण रूपसे सहजिया सम्प्रदायमें एवं अन्यान्य सम्प्रदायोंमें जिस गुरु-प्रणालीका विचार किया गया है, उसमें जागतिक विचारको ही अधिक महत्व दिया गया है। शिष्य-परम्परा एवं सन्तान-परम्पराका एक विचार है, परन्तु गौड़ीय वैष्णवोंकी जो गुरु-परम्परा है, वहाँ देखा जाता है कि भागवत-गुरुपरम्परा नामक एक विचार उल्लिखित है। सहजरूपसे प्रश्न आता है—गुरु-परम्परा एवं भागवत-गुरुपरम्पराके बीच क्या पार्थक्य या क्या वैशिष्ट्य है? वहाँपर इस विषयमें हम अपने पूर्वज गुरुवर्गोंकी जो व्याख्या देखते हैं, उससे पता चलता है—भागवत गुरुपरम्परा। अमुकका शिष्य अमुक, अमुकका शिष्य अमुक—ठीक ऐसी बात भागवत-गुरुपरम्परामें नहीं है। यदि ऐसा विचार ही होता तो हमारे हजार-हजार गुरु रहे हैं। इसलिए जहाँ चुन-चुनकर गुरुतत्त्वमें जिनको

लाया गया है, वे ठीक एक ही विचारके लोग हैं एवं एक ही चिन्ताविशिष्ट हैं। वे सभी स्वजातीयाशयस्निग्ध हैं—यही व्याख्या भागवत-गुरुपरम्परामें दी हुई है।

बौद्ध मतवाद एक प्राचीन मतवाद है जो बुद्धका शून्यवाद है। इसके पश्चात् हम देखते हैं कि उसी शून्यवादका खण्डन शङ्कराचार्यने किया है। उन्होंने बुद्धके शून्यवादके ऊपर ब्रह्मवादकी स्थापन की। किन्तु वह ब्रह्मवाद निराकार, निर्विशेष है। केवल नाम बदला गया है, तत्त्वतः शून्यवादका नामान्तर (बदला हुआ नाम) ही ब्रह्मवाद है। उन्होंने ऐसा क्यों किया? शङ्कराचार्यजीका परिचय हम पाते हैं कि "शङ्करः शङ्करः साक्षात् व्यासो नारायणस्तथा।" वे जगतमें मायावादका प्रचार करनेके लिए जो शङ्कराचार्यके रूपमें आये हैं, अपनी इच्छासे नहीं आये हैं, बल्कि भगवत् आदेशसे आये हैं। उन्होंने निर्विशेषवाद, मायावाद या ब्रह्मवादका प्रचार किया है। तत्त्वतः वे स्वयं शिव हैं तथा भक्तितत्त्व, वैष्णवतत्त्व एवं वैष्णवश्रेष्ठतत्त्व हैं—यही विचार हम पाते हैं। विषयविग्रह श्रीकृष्णके बाद दिया गया है ब्रह्माको, इसके बाद नारद ऋषि और उसके बाद ही दिया गया है वादरायण ऋषि कृष्णद्वैपायन वेदव्यासको।

श्रीकृष्ण–ब्रह्म–देवर्षि–वादरायण–संज्ञकान्।
श्रीमध्व–श्रीपद्मनाभ–श्रीमन्नृहरि–माधवान्॥

ब्रह्म-माध्व-गौड़ीय-सम्प्रदाय। यही हमारे सम्प्रदायका परिचय है। हमने पहले ब्रह्माको प्राप्त किया, इसके बाद मध्वाचार्यकी बात आयी। मध्वाचार्यकी बात क्यों आयी? क्योंकि आस्तिक्यवादके पूर्णदर्शनका प्रचार उन्होंने किया है। वैष्णवाचार्योंने शङ्करके ब्रह्मवादका खण्डन किया है। उस दृष्टिसे हम देखते हैं कि सम्प्रदाय-प्रणालीमें इस सम्प्रदायके अनुगत यदि कोई नहीं है, तो उनकी शिक्षा-दीक्षा सब कुछ विफल है। पद्मपुराणमें इस विषयकी व्याख्या की गयी है—

सम्प्रदाय–विहीना ये मन्त्रास्ते विफला मताः।

सत्सम्प्रदायविहीन जो मन्त्र है, वह विफल होता है। क्योंकि उसकी लाइन ठीक नहीं है। इसीलिए यहाँ विफलताकी बात आयी है। तो उसके लिए भगवानकी क्या व्यवस्था है?

अतः कलौ भविष्यन्ति चत्वारः सम्प्रदायिनः।

'भविष्यन्ति' क्रियापद, वचन एवं कालका निर्णय किया है, भविष्यन्ति—होंगे। शास्त्रमें इस प्रकारकी बहुत-सी बातें कही गयी हैं। कहीं कोई घटना घट गयी, वहाँ पर भी भविष्यति शब्दका उपयोग हुआ है, और कहीं व्यवहार हुआ है लृट्—ऐतिहासिक वर्तमान काल। समस्त शास्त्रोंमें इसी प्रकारका व्यवहार है। नित्य वर्तमान काल जैसा है वैसा ही है ऐतिहासिक वर्तमान। बहुत समय पूर्व था, वर्तमानमें है एवं बादमें भी होगा—यह बात समझनेके लिए 'भविष्यन्ति' आदि शब्दोंका व्यवहार हुआ है। किन्तु जिन सब आचार्योंका आविर्भाव हुआ है तथा जो सनातन वैष्णवधमकी रक्षा करेंगे, उनकी बात भी शास्त्रोंमें लिखी हुई है। ऐसी बात नहीं है कि किसी व्यक्तिने उन्हें कल्पनाकर लिख दिया है। भगवद् आदेश, भगवानकी वाणी तथा उसी दृष्टिसे भगवद् इच्छासे गुरुवर्ग स्वयंको प्रकाशित करते हैं। वहाँपर देखा जाता है, *"अतः कलौ भविष्यन्ति चत्वारः सम्प्रदायिनः।"* अर्थात् कलियुगमें चार सम्प्रदाय होंगे। हम इस कलिकालमें चार सम्प्रदायोंको देखते हैं।

श्रीब्रह्म–रुद्र–सनका वैष्णवाः क्षितिपावना।
चत्वारस्ते कलौ भाव्या ह्युत्कले पुरुषोत्तमात्॥

ये चार आचार्य आये। इन सभीने थोड़ा अथवा बहुत मायावाद, निर्विशेषवाद या ब्रह्मवाद आदिका खण्डन किया है। शिव ठाकुर परम वैष्णव हैं, उन्हें आदेश प्राप्त हुआ—निरीश्वरवादी, शून्यवादी, बहुईश्वरवादी, जीवब्रह्मैकवादी इत्यादि उल्टी-सीधी बातें कहकर मेरे भक्तोंको कष्ट देते हैं, अतः तुम इनको मोहित करो। एक ओर

भगवानका आदेश है, तथा दूसरी ओर शिव ठाकुर स्वयं वैष्णव-श्रेष्ठ हैं। अतः वे भगवानके विरुद्ध मायावाद आदिका प्रचार कैसे करेंगे? शिवजी रोने लगे। भगवानने कहा—ये सब बातें नहीं चलेंगी, मेरे निर्देशका पालन तुमको करना ही होगा। इस कार्यके लिए तुम ही उपयुक्त व्यक्ति हो। उनके बहुत रोनेपर भी भगवानने उनकी बात नहीं सुनी। भगवान बोले—तुम जीवोंको मोहित करो तथा वेदवाक्योंका काल्पनिक अर्थ करो। इससे मेरे भक्त तो इसमें नहीं फँसेंगे, किन्तु नास्तिक और असुरलोग इसमें फँस जायेंगे। भगवानका आदेश है। अतः इसी आदेशका ही पालन शिव ठाकुरने किया है। जीव किस प्रकार मोहित होता है, मोह-मुद्गरमें उन्होंने उसका इतिहास लिखा है। परन्तु यह सब करते हुए भी उन्होंने भगवानको अपना रखा था, वे उन्हें भूल नहीं गये।

'भज गोविन्दं भज गोविन्दं भज गोविन्दं मूढ़मते।' अर्थात् अरे मूर्ख! तू गोविन्दका भजन कर। उन्होंने इसको जीवनके अन्त समयमें क्यों गाया? वे तो सब प्रकारसे भगवद् दास हैं। उसी बातका उन्होंने जगतमें प्रचार किया। किन्तु भगवानके विरुद्ध ये सब बातें असुरोंको और नास्तिकोंको प्रलोभित करनेके लिए कही गयी हैं। किन्तु आत्मशुद्धिके लिए वे जीवनके अन्तिम चरणोंमें गोविन्दका नाम ले रहे हैं। यह उनकी वैष्णवताकी पराकाष्ठा है, उसी तत्त्वदर्शनके द्वारा वे जगतको, बद्धजीवको, मायावादियोंको, शून्यवादियोंको एवं निर्विशेष- वादियोंको मोहित करते हैं। जो इस विचारको लेकर चलते हैं, वे सभी नास्तिक एवं आसुरिक वृत्तिके हैं। भगवानके ऐकान्तिक भक्त इस प्रकारकी भूलभ्रान्तिमें कभी नहीं पड़ते। यह बात वे स्वयं दिखा रहे हैं ***''मायावादमसच्छास्त्रं प्रच्छन्नं बौद्धमुच्यते।''*** शिव ठाकुर शिवानीजीको कहते हैं—मैं मायावादरूपी असत्शास्त्र (झूठी बात) का प्रणयन करूँगा—वह प्रच्छन्न बौद्धवाद होगा। प्रच्छन्न बौद्धवादका अर्थ है 'Old wine in new bottle' इसी बातको यहाँ समझाया गया है।

'मयैव विहितं देवि! कलौ ब्राह्मण-मूर्त्तिना।'

मैं यहाँ आकर ब्राह्मण कुलमें जन्मग्रहण करूँगा और इन समस्त उल्टी-पुल्टी बातोंका प्रचार करूँगा। मेरे प्रभु भगवानने जिन कार्योंको करनेको कहा है, मैं वही कार्य करूँगा। वे जिन कार्योंको कर रहे हैं, उस सम्बन्धमें शास्त्रोंमें विभिन्न स्थानोंपर विभिन्न प्रकारसे उक्तियोंका उल्लेख है। नारद-पञ्चरात्रमें हम देखते हैं, वहाँ शिव ठाकुर कह रहे हैं—मैं भगवानका आदेश मानकर यह कार्य करूँगा—

स्वागमैः कल्पितस्त्वञ्च जनान् मद्विमुखान् कुरु।
माञ्च गोपय येन स्यात् सृष्टिरेषोत्तरोत्तरा॥

भगवान बोले—"आगम, वेदान्त इत्यादि शास्त्रोंकी उल्टी-पुल्टी व्याख्या दे दो। जो इससे वञ्चित होना चाहते हैं, ऐसे नास्तिक एवं असुरोंको मुझसे इस प्रकार दूर कर दो कि वे जगतकी सृष्टि-वृद्धिके कार्यमें लग जायें। मेरे भक्तोंको किसी प्रकार कष्ट न दें। शिवजी पुनः कहते हैं कि भगवानकी मेरे लिए यह आज्ञा हुई—

अतथ्यानि वितथ्यानि दर्शयस्त महाभुज।
प्रकाशं कुरु चात्मानमप्रकाशञ्च मां कुरु॥

हे महाबाहो! आप भ्रान्तिपूर्ण प्रचारके द्वारा मुझे पूर्णरूपसे गोपन कर दो। तब मेरे भक्तगण सुरक्षित होंगे।

मायावाद या निर्विशेषवाद अवैदिक धर्म है। जो इसको आजकल वैदिक मतवाद कहकर चला रहे हैं, वे भ्रान्तियुक्त हैं। यह अवैदिक मतवाद है। वैदिक मतवाद होनेपर तो किसी प्रकारकी समालोचना नहीं होती है। इस सम्बन्धमें भी शास्त्रोंमें अनेक प्रमाण हैं। वहाँ कहते हैं—***''मायावादमवैदिकम्''***। मायावाद अवैदिक मतवाद है। जो इस मतवादको ग्रहण करते हैं, वे सब भगवानसे बहुत दूर हो जाते हैं। ईश्वरका सान्निध्य प्राप्त करनेका उनका

कोई अन्य उपाय नहीं है। जो भगवत् स्वरूपको अस्वीकार करते हैं, उनके नाम-रूप-गुण-लीला-परिकर-वैशिष्ट्यको अस्वीकार करते हैं, वे तो वञ्चित हो जाते हैं। भगवानसे वे बहुत दूर रहते हैं। इन चार सम्प्रदायोंके चारों आचार्योंने इस विषयमें कहा है—

रामानुजं श्रीः स्वीचक्रे मध्वाचार्यं चतुर्मुखः।
श्रीविष्णुस्वामिनं रुद्रो निम्बादित्यं चतुःसन॥

'श्री' अर्थात् लक्ष्मीदेवी। उन्होंने रामानुजको अपने सम्प्रदायका प्रवर्तक-आचार्य कहकर स्वीकार कर लिया। *'मध्वाचार्यं चतुर्मुखः'*— चतुर्मुख ब्रह्माने मध्वाचार्यको अपने सम्प्रदायका प्रवर्तक-आचार्यके रूपमें स्वीकार किया। *'श्रीविष्णुस्वामिनं रुद्रो'*—शिव ठाकुरने अपने सम्प्रदायका प्रवर्तक-आचार्य विष्णुस्वामीको मान लिया। *'निम्बादित्य चतुःसन'*—चतुःसन अर्थात् सनक, सनन्दन, सनातन और सनत् कुमारने निम्बादित्यको अपने सम्प्रदायका प्रवर्तकाचार्य स्वीकार किया। इन सभीने शून्यवाद, मायावाद, निर्विशेषवाद आदि जितने नास्तिक्यवाद हैं, उनका खण्डन किया है। इसलिए तत्त्वदर्शन इन्होंने प्रकाश किया है। भगवानका स्वरूप, विषय, आश्रय—इन सब तत्त्वदर्शनकी प्रतिष्ठा उन्होंने की है। सम्बन्ध, अभिधेय, प्रयोजन—इन तीनों तत्त्वोंको उन्होंने अपनाया है। वैष्णवाचार्योंके प्रति भगवानका यही निर्देश था।

यहाँपर हम देखते हैं—मूल मालिकको छोड़कर कुछ भी नहीं है। उन्हींके स्वरूपको अस्वीकार करके हमारा कोई अस्तित्व नहीं रहता है, हमारा अस्तित्व डाँवाडोल हो जाता है। नास्तिक और आसुरिक विचारसम्पन्न व्यक्ति कभी भी भगवानके सत्स्वरूपको स्वीकार नहीं करते, यही उनका दुर्दैव है। आस्तिक्यवादी इन चारों आचार्योंने भगवानके नाम, रूप, गुण, लीला, वैशिष्ट्यके विषयमें हमको बतलाया है। भगवान नित्य हैं, उनके सेवक भी नित्य हैं, उनकी सेवा भी नित्य है—यही बात बतलायी है। मायावादी और निर्विशेषवादियोंके मतानुसार ज्ञान, ज्ञेय, ज्ञाता—इन तीनोंके विनाशकी बात है, अर्थात् सभी ब्रह्म हैं। उनका विचार है—*'सोऽहम्'*—मैं वही भगवान हूँ। *'अहं ब्रह्मास्मि'*—मैं ब्रह्म हूँ। जीव किस प्रकार ब्रह्म हो सकता है? इन सभी तत्त्वदर्शनोंने ऐसे नास्तिक्यवादका खण्डन किया है।

श्रीमन्मध्वाचार्य एक स्थानपर कहते हैं कि उनको श्रीमन्महाप्रभुने स्वीकार किया है। ब्रह्म-माध्व-गौड़ीय सम्प्रदायमें विशेषरूपसे माध्वाचार्यको श्रीमन्महाप्रभुने क्यों माना? जबकि अन्य तीन आचार्य भी तो हैं। विष्णुस्वामीका शुद्धाद्वैतवाद, निम्बादित्यका द्वैताद्वैतवाद, रामानुजका विशिष्टाद्वैतवाद है। इन समस्त तत्त्वदर्शनोंका जितना प्रयोजन है, उतना ही महाप्रभुने लिया है। किन्तु उन्होंने मध्वाचार्यको सम्प्रदाय-प्रवर्तक-आचार्यके रूपमें क्यों माना? उपास्य-उपासक तत्त्वका सम्बन्ध-विचार नित्य है। उसी वस्तुको महाप्रभुने स्वीकार किया है। यह देखकर वे प्रसन्न हुए। वास्तविक तत्त्वदर्शन जिसे हम मानते हैं, उसको श्रीमन्महाप्रभुने ब्रह्म सम्प्रदायाचार्य श्रीमन्मध्वाचार्यमें पाया। इस वस्तुको स्पष्टरूपसे कोई नहीं समझ पाया। भगवत् तत्त्व एवं जीवतत्त्वके बीच भेद एवं अभेद ही शुद्धद्वैतवाद है। द्वैतवादमें नास्तिकता नहीं है तथा शुद्धद्वैतवाद मध्वाचार्यजीका है। इसीलिए महाप्रभु उनपर खूब प्रसन्न हुए। इसमें जितनी असम्पूर्णता थी, उतनी पूर्ण करके उन्होंने अचिन्त्य भेदाभेद तत्त्वको प्रकाशित किया है। मध्वाचार्यको माननेका प्रधान कारण इस तत्त्ववस्तुकी स्वीकृति है।

मध्वाचार्य कहते हैं—हे जीव, तुम ब्रह्म होना क्यों चाहते हो? चिरदिन तुम जीव हो और जीव ही रहोगे। इसके लिए वे उदाहरण देकर बोले—

यथा समुद्रे वहवस्तरङ्गास्तथा
वयं ब्रह्मणि भूरि जीवाः।
भवेत् तरङ्गो न कदाचिदब्धि-
स्त्वं ब्रह्म कस्माद्भवितासि जीव॥

वे विषयवस्तुको समझा रहे हैं। भगवान अङ्गी हैं और उनके अङ्ग हैं जीवात्मा। समुद्रमें जिस प्रकार अनेक लहरें होती हैं, लहरें यदि कहें कि मैं समुद्र हूँ तो यह उचित नहीं होगा; किन्तु यदि समुद्र कहे कि तरङ्ग मेरी है, तो उसकी यह बात ठीक होगी। ये सब उदाहरण देकर उन्होंने ब्रह्मवादियोंके मतवादका खण्डन किया है। इस तत्त्वदर्शनको उन्होंने खूब सुन्दररूपसे समझाया है। दोनों तत्त्व सत्य हैं, भगवानके साथ समानता है और असमानता भी है। समानता कहाँपर है?—भगवान सच्चिदानन्द वस्तु हैं, जीवात्मा भी सच्चिदानन्द वस्तु हैं। यहाँ समानता है। पार्थक्य कहाँ है? श्रीभगवान पूर्ण चेतन हैं, जीवात्मा अणुचैतन्य है। अंश और पूर्णके अनुसार—यहाँ भेद है। यहाँ भेद भी नित्य है और अभेद भी नित्य है—दोनोंका ही विचार किया है। श्रीचैतन्यमहाप्रभुने इसीलिए ब्रह्म सम्प्रदायको स्वीकार किया है। हमारा परिचय क्या है? हम किस सम्प्रदायके अन्तर्गत हैं? ब्रह्म-माध्व-सम्प्रदाय।

गुरुपरम्पराके सम्बन्धमें जिन बिन्दुओंपर हम विचार करते हैं, उस सम्बन्धमें शास्त्रोंमें बहुत स्थानोंपर यह सब वर्णित हुआ है। परम्पराके विषयमें हम उसीका अनुशीलन करते हैं। प्राकृत-जगतमें सहजियालोग जिस गुरुप्रणालीको बताते हैं, उसमें अनेक व्यवधान हैं। तत्त्वदर्शनमें भेद है, असम्पूर्णता है। तत्त्वदर्शन किसको कहेंगे? तत्त्वज्ञान किसको कहेंगे?—

''स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठामथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह।''

ब्रह्माजीने अपने ज्येष्ठपुत्र अथर्वको ब्रह्मविद्या प्रदान की। वही ब्रह्मविद्या गुरुपरम्परासे चली आ रही है।

आम्नायः श्रुतयः साक्षाद्ब्रह्मविद्येति विश्रुतः।
गुरुपरम्पराप्राप्ता विश्वकर्त्तुर्हि ब्रह्मणः॥

'आम्नाय' किसको कहते हैं? गुरुपरम्परासे प्राप्त जो वेदसंज्ञिता वाणी है, उसको आम्नाय कहते हैं। शास्त्रोंमें इसी प्रकारसे गुरुप्रणाली या गुरुपरम्परा प्रचारित हुई है। श्रीमद्भगवद्गीताकी जब हम आलोचना करते हैं, तब देखा जाता है कि गुरुप्रणालीका विषय वहाँ आंशिकरूपसे वर्णित किया गया है। वहाँ कहते हैं—

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।
विवस्वान् मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्॥

यह भक्तियोगकी कथा, सनातन धर्मकी कथा कहाँसे प्राप्त हुई? *''इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।''* कृष्ण अर्जुनको कहते हैं—हे अर्जुन! विवस्वान् अर्थात् सूर्यदेवने इसे स्वायम्भुव मनुको कहा है। मनुने इक्ष्वाकु राजाको कहा है। इस प्रकार यह सनातन धर्म-तत्त्व जगतमें प्रचारित हुआ है। शास्त्रोंमें बहुत स्थानोंपर यह सब विषय लिखा हुआ है, कहीं संक्षिप्त रूपसे, और कहीं विस्तार रूपसे।

अर्जुन भगवानके सखा हैं, वे तत्त्ववेत्ता हैं। किन्तु वे जब बोलने लगे—"आप (कृष्ण) यह बात कैसे बोल रहे हैं? मैं इसे कैसे मानूँगा? क्योंकि आप तो उस दिन आये हैं, और विवस्वान् सूर्यदेव अनेक समयसे हैं।" इसपर भगवान कहते हैं—

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परन्तप॥

कृष्ण कहते हैं—अर्जुन! तुम और मैं बहुत बार इस जगतमें आये हैं। जीवके कर्मफलका खण्डन करनेके लिए मैं अनेक बार आया हूँ एवं तुम भी आये हो; किन्तु तुमको सब याद नहीं है, मुझे सबकुछ याद है। इसलिए यह गुरुपरम्परा या गुरुप्रणाली सत्य है। इसको अस्वीकार करनेका उपाय नहीं है। शास्त्रमें जो तत्त्वदर्शन, तत्त्वसिद्धान्त है, वह इस गुरुपरम्पराक्रममें इस जगतमें प्रचारित एवं प्रतिष्ठित है। जो सुनना चाहते हैं वे ठीक प्रकारसे सुनें और जो चिरदिनसे अस्वीकार करते हुए आ रहे हैं, जिनकी positive side में जमा खूब कम है,

अर्थात् जिनकी सुकृतियाँ अधिक नहीं हैं, वे इसको मान नहीं पायेंगे। अतः हमें सुकृति अर्जन करनेकी आवश्यकता है, जिसकी जितनी सुकृति होगी, निश्चय ही उनका भगवद् भक्तोंकी कथामें उतना विश्वास होगा।

तावत् कर्माणि कुर्वीत न निर्विद्येत यावता।
मत्कथाश्रवणादौ वा श्रद्धा यावन्न जायते॥

भगवान कह रहे हैं—मेरी कथामें बद्ध जीवोंकी रति-मति जितने दिन तक नहीं होती है, विश्वास नहीं होता है, उतने दिन तक वे इस संसारमें कर्ममार्गमें ही विचरण करेंगे। वे भक्तिकी बात नहीं समझेंगे। यह भगवानकी मुखोक्ति है। यह केवल मुखोक्ति नहीं, अपितु खेदोक्ति है! जैसे वे इन हतभागाओंको समझानेमें कुछ कर नहीं पा रहे हैं, इसलिए वे इस प्रकारकी बात भागवतमें कहते हैं। सभी तो तत्त्वदर्शनका विषय है।

सम्प्रदाय-सम्प्रदाय कहकर एवं साम्प्रदायिक-साम्प्रदायिक कहकर आज दुनियाके सब लोग चित्कार करते हैं। सम्प्रदाय शब्दको सुनकर उनके शरीरमें जलन होती है। साम्प्रदायिक बातको वे कभी भी सुनना नहीं चाहते हैं, उसको खूब खराब वस्तु कहते हैं। किन्तु जो इसको अस्वीकार करते हैं, वे किन्तु एक-एक जन बड़े-बड़े साम्प्रदायिक हैं। सम्प्रदायका अर्थ दल है। जितने राजनैतिक दल—group हैं, जितने सामाजिक दल group हैं, ये सब एक-एक दलके अन्तर्गत हैं। इसलिए असम्प्रदायिक कौन हैं? पूछनेकी इच्छा होती है, कौन व्यक्ति असाम्प्रदायिक है? जितनी पार्टी हैं, सब एक-एक सम्प्रदाय हैं, एक-एक group हैं। तत्त्वदर्शनको लेकर आलोचना करनी होगी। (क्रमशः)

(अनुवादक—श्रीओमप्रकाश ब्रजवासी)

श्रीगौराङ्ग-सुधा

(वर्ष ४७, संख्या २, पृष्ठ ४० से आगे)

—श्रीपरमेश्वरीदास ब्रह्मचारी

शचीमाताके अपराधका विवरण

प्रभु श्रीगौरसुन्दरके अग्रज श्रीविश्वरूपजी जो नित्यानन्दजीसे अभिन्न हैं, उनका सौन्दर्य सारे जगतको मोहित करनेवाला था तथा वे समस्त गुणोंके भण्डार थे। विद्वतामें तो उनके समान इस जगतमें कोई नहीं था। जो उनकी व्याख्याओंको ही समझ पाए, ऐसे पण्डित ही दुर्लभ थे। प्रभु श्रीविश्वरूप बालरूपमें बालकोंके साथ रहते थे। एक दिन जगन्नाथमिश्रजी उन्हें अपने साथ एक विद्वत् सभामें ले गये। उनके मनोहारी स्वरूपका दर्शनकर सभामें उपस्थित सभी लोग विस्मित हो गये। प्रभुने उनके चित्तको ही हरण कर लिया था। उन पण्डितोंमेंसे एक भट्टाचार्यजीने पूछा—"पुत्र! तुम क्या पढ़ते हो?"

यह सुनकर विश्वरूपजी मुस्कराते हुए बोले—"थोड़ा-थोड़ा सभी कुछ पढ़ता हूँ।"

यह सुनकर सभीने उन्हें बच्चा समझकर इसका बूरा न माना। परन्तु विश्वरूपके उत्तरसे मिश्रको बहुत दुःख भी हुआ तथा उन्हें क्रोध भी आया कि इसे अपने पाण्डित्यपर कितना अहङ्कार है। सभा समाप्त हो जानेपर जब मिश्र विश्वरूपको साथ लेकर वापस आ रहे थे, तो मार्गमें उन्होंने विश्वरूपजीको तमाँचा मारा बोले—"उदण्ड कहींके! तुम जो पुस्तक विद्यालयमें पढ़ते हो, तुमने उसका नाम न बताकर ऐसा क्यों कहा कि थोड़ा-थोड़ा सभी कुछ पढ़ता हूँ? क्या अपनेसे बड़ोंके सामने ऐसी ही उदण्डता की जाती है? तुम्हारा उत्तर सुनकर सभी लोग जान गये कि तुम एक मूर्ख हो और तुम्हारे कारण आज सभामें मेरा भी अपमान हो गया।" इस प्रकार

विश्वरूपपर क्रोध करते हुए जगन्नाथमिश्र घर पहुँचे।

पुनः एकदिन विश्वरूप उसी सभामें पहुँच गये तथा सभी विद्वानोंसे हँसते हुए बोले—"उस दिन आपलोगोंने मुझसे कुछ पूछा नहीं। मेरे पिताजी समझे कि मैं झूठ बोल रहा हूँ, वास्तवमें मैं कुछ जानता ही नहीं हूँ। मैंने कोई उदण्डता की, अतः उन्होंने मुझे पीट दिया। अब आपमेंसे कोई भी किसी भी प्रकारका प्रश्न मुझसे पूछ सकते हैं।"

प्रभुकी बातें सुनकर एक पण्डित हँसते हुए बोले—"अच्छा बेटा! आज तुमने विद्यालयमें जो पढ़ा, वह सुनाओ।" यह सुनकर प्रभुने जो सूत्र आज पढ़े थे, उनकी सहज एवं सरलरूपमें व्याख्या कर दी। यह देखकर पण्डितोंको कुछ विश्वास हो गया कि अवश्य ही यह बालक बहुत कुछ जानता है। सभी लोग उनकी प्रशंसा करने लगे। उसी समय विश्वरूपजी बोले—"मैंने अभी जो व्याख्याएँ कीं, वे सब गलत हैं।" ऐसा कहकर उन्होंने अपनी व्याख्याओंका सुन्दर ढङ्गसे खण्डन कर दिया। अब तो उन पण्डितोंके आश्चर्यकी सीमा ही नहीं रही। इस प्रकार तीन-तीन बार उन्होंने अपनी व्याख्याओंका खण्डन किया, पुनः उनकी स्थापना की। इतना करनेपर भी भगवानकी प्रबलमायासे विमोहित होनेके कारण कोई भी प्रभु श्रीविश्वरूपको न पहचान सका। इस प्रकार विश्वरूपजी गुप्तरूपसे नवद्वीपमें भ्रमण करते रहते थे। जगतको भक्तिशून्य देखकर उन्हें अपार दुःख होता था। लोगोंकी बुद्धि ऐसी भ्रष्ट हो चुकी थी कि अपने पुत्र-कन्याके विवाह इत्यादि अवसरोंपर प्रचुर धन खर्च करते थे, परन्तु भगवानकी पूजा तथा उनके उत्सवोंके लिए एक पैसा भी नहीं देते थे। जितने भी अध्यापक थे, वे भी तार्किक हो गये थे। यदि वे गीता एवं भागवत आदि भक्तिग्रन्थोंका पाठ करते भी थे, तो उनकी वास्तविक व्याख्या न कर कर्म, ज्ञान, तप, दान इत्यादि कर्मोंके अनुसार करते थे। उस नवद्वीपमें केवल श्रीअद्वैताचार्य थे जो 'योगवाशिष्ठ' की व्याख्या भी कृष्णभक्तिके अनुसार करते थे। इसलिए विश्वरूपजी प्रायः उन्हींके साथ रहकर शास्त्रोंका अध्ययन करते थे। एकदिन जब दोपहरतक विश्वरूपजी घर वापस न लौटे, तो शचीमाताने निमाइसे कहा—"बेटा निमाइ! जा! अपने भैयाको प्रसाद पानेके लिए बुलाकर ले आ। उससे कहना कि मैया बुला रही है।"

यह सुनकर प्रभु आनन्दसे उछलते-कूदते अद्वैताचार्यके घरकी ओर चल पड़े। उस समय श्रीवास एवं विश्वरूप आदि भक्तवृन्द आचार्यजीको घेरकर बैठे हुए थे तथा उनसे भगवानकी रसमयी कथाओंको श्रवण कर रहे थे। उसी समय प्रभु श्रीगौरसुन्दर वहाँपर पहुँचकर हँसते-हँसते कहने लगे—"भैया! भैया! मैया खानेके लिए बुला रही हैं। जल्दी घर चलिए तथा खाना खाइए।" प्रभुकी सुन्दरताने सभीका मन हर लिया था। अद्वैताचार्य तो मूर्तिकी भाँति अपलक नेत्रोंसे उन्हें निहारते ही रह गये। इस प्रकार प्रतिदिन मैयाके आदेशसे विश्वरूपजीको बुलानेके छलसे प्रभु वहाँपर आते थे। अद्वैताचार्य विचार करते कि इस बच्चेमें ऐसी क्या बात है, जो मेरा मन बरबस ही इसकी ओर खिंच जाता है तथा सब समय मुझे इसका ही स्मरण होता रहता है। क्या कोई साधारण बालक मेरा मन हरण कर सकता है? यह सर्वथा असम्भव है। कहीं ऐसा तो नहीं कि ये ही मेरे प्रभु हों?

इस प्रकार विश्वरूपजी समस्त सांसारिक सुखोंको त्यागकर श्रीआचार्यजीके पास हरिकथामृतके समुद्रमें डुबे रहते थे। अन्ततः एक दिन उन्होंने संसार त्यागकर संन्यास वेश धारण कर लिया तथा वे जगतमें शङ्करारण्यके नामसे प्रसिद्ध हुए। इससे शचीमाताका हृदय पुत्रशोकसे विदीर्ण हो गया। अतः वे मन ही मन सोचने लगीं कि इन अद्वैताचार्यने मुझसे मेरे पुत्रको अलग कर दिया

है। परन्तु वैष्णव-अपराधके भय मुखसे कुछ भी नहीं कहती थीं। परन्तु जब प्रभु श्रीगौरसुन्दर भी कुछ बड़े होनेपर आचार्यजीके पास जाने लगे तथा धीरे-धीरे सांसारिक सुखोंसे विरक्त, यहाँतक कि अपनी पत्नी लक्ष्मीको भी छोड़कर सर्वदा अद्वैताचार्यके पास ही रहने लगे, तो यह देखकर शचीमाताके सिरपर मानो वज्रपात हो गया। उन्होंने दुःखी होकर मात्र इतना ही कहा कि कौन कहता है कि ये अद्वैत हैं? ये अद्वैत नहीं द्वैत हैं। क्योंकि इन्होंने पहले मेरे पुत्र विश्वरूपको मुझसे अलग कर दिया तथा अब मेरे जीवनके एकमात्र सहारा मेरे प्यारे विश्वम्भरको भी मुझसे अलग करना चाहते हैं।

बस इतना-सा ही अपराध था शचीमाताका, जिसके लिए प्रभु उन्हें अपना प्रेम प्रदान नहीं कर रहे थे। वास्तवमें इस घटनाके पीछे प्रभुका उद्देश्य कुछ और ही था। वे त्रिकालज्ञ होनेके कारण जानते थे कि भविष्यमें कुछ लोग अद्वैताचार्यको कृष्ण तथा मुझे एवं नित्यानन्दको उनका सेवक मानेंगे तथा भयङ्कर अपराध करेंगे। इसीलिए उन्होंने अद्वैताचार्यको वैष्णव-शिरोमणिके रूपमें प्रतिष्ठित किया।

दुग्धाहारी ब्रह्मचारीपर कृपा

श्रीवासजीके घरमें प्रतिदिन रात्रिके समय प्रभु सभी भक्तोंके लिए संकीर्तन महोत्सव किया करते थे। घरके भीतर भक्तोंके अतिरिक्त किसीको भी प्रवेशकी आज्ञा नहीं थी। कीर्तनकी ध्वनि सुनकर आस-पासके पाषण्डी लोग श्रीवासजीके घरके बाहर इकट्ठे होकर परस्पर नाना प्रकारसे प्रभुकी निन्दा किया करते थे। कोई कहता—"अरे भाइयो! कैसा घोर कलियुग आ गया है। वैष्णवधर्मके नामपर ये लोग अपना पेट पालनेमें लगे हुए हैं। यदि इन सभीके हाथ-पैर बाँधकर इन्हें गङ्गाजीमें बहा दिया जाए, तभी इस नवद्वीपमें सुख-शान्ति आ सकती है, अन्यथा सम्भव नहीं। इस निमाइ पण्डितने तो नवद्वीपका सर्वनाश कर दिया है। परन्तु नवद्वीपमें ही कुछ लोग ऐसे भी थे, जो भक्त नहीं थे, परन्तु वैष्णवोंके विरोधी भी नहीं थे। ऐसे साधारण लोगोंकी इच्छा होती थी कि हम भी निमाइ पण्डितका कीर्तन सुनें एवं नृत्य दर्शन करें। इसके लिए वे प्रभुके भक्तोंसे प्रार्थना करते, परन्तु प्रभुके भयसे कोई भी उनकी सहायता करनेका साहस नहीं कर पाता था। इसपर वे लोग दुःखी होकर अपने दुर्भाग्यको ही कोसने लगते।

उसी नवद्वीपमें ही एक ब्रह्मचारी निवास करता था। वह एक तपस्वीकी भाँति रहता था तथा केवल दूध ही पीता था। प्रभुके कीर्तन दर्शन करनेकी उसकी भी प्रबल इच्छा थी। अतः वह प्रतिदिन श्रीवासजीके घरतक जाता, परन्तु द्वार बन्द देखकर निराश होकर लौट आता। प्रतिदिन जब उसे मार्गमें कहीं श्रीवासजीके दर्शन होते, तो उनसे हाथ जोड़कर प्रार्थना करता—"कैसे भी हो—आप मात्र एकबार मुझे निमाइ पण्डितके कीर्तनको दर्शन करानेकी कृपा करें, मैं सारा जीवन आपके उपकारको नहीं भूलूँगा। मैं मात्र एकबार निमाइपण्डितका नृत्य दर्शनकर अपने नेत्रोंको सफल बनाना चाहता हूँ।"

इस प्रकार ब्रह्मचारीके प्रतिदिन प्रार्थना करनेपर एकदिन श्रीवासजी बोले—"आप तो ब्रह्मचारी हैं तथा आपका जीवन संयमपूर्ण है। आप तो मात्र फल एवं दूध पीकर अपने जीवनका निर्वाह करते हैं। इस प्रकार आपके शरीरमें कोई पाप नहीं है, अतः कीर्तन दर्शन करनेकी आपकी पूर्ण योग्यता है। परन्तु प्रभुका आदेश है कि कोई भी विजातीय व्यक्ति अन्दर प्रवेश न करे। अतः तुम घरके भीतर एक कोनेमें छिपकर रहना।" ऐसा कहकर श्रीवासजी उसे घरके भीतर ले गये तथा कोनेमें आड़में उसे छिपा दिया।

कुछ समय पश्चात् जब प्रभु एवं सभी भक्तवृन्द घरके भीतर आ गये तो दरवाजा बन्द कर दिया गया। अब सभी भक्तलोग कीर्तन करने

लगे तथा चौदह भुवनोंके स्वामी श्रीगौरसुन्दर नृत्य करने लगे। नृत्य करते-करते भावाविष्ट होकर कहीं प्रभु गिर न जाएँ, इसलिए गदाधर पण्डित तथा नित्यानन्दप्रभु उनके चारोंओर घूम रहे थे। अद्वैताचार्यजी आनन्दसे घरमें इधर-उधर दौड़ रहे थे। प्रभुकी तो अवस्था ही अद्भुत हो रही थी। उनके नेत्रोंसे अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी, सारा शरीर काँप रहा था तथा वे हुँकार कर रहे थे।

अन्तर्यामी श्रीगौरसुन्दर जान गये थे कि घरके भीतर ब्रह्मचारी छिपा हुआ है। अतः प्रभु पुनः पुनः कह रहे थे—"क्या कारण है कि आज आनन्द नहीं आ रहा है? ऐसा प्रतीत होता है कि घरके भीतर कोई विजातीय व्यक्ति आ गया है।" अतः प्रभुने श्रीवासजीसे पूछा—"श्रीवासजी! क्या आपने घरमें किसी विजातीय व्यक्तिको छिपा रखा है?"

यह सुनकर श्रीवासजी भयभीत हो गये तथा बोले—"प्रभो! घरमें कोई पाषण्डी नहीं है, बल्कि एक ब्रह्मचारी है जो निष्पाप है तथा केवल दूध ही पीता है। आपका नृत्य दर्शन करनेकी उसकी बहुत अभिलाषा थी, अतः मैंने उसे घरके कोनेमें छिपा रखा है।"

यह सुनते ही प्रभु क्रोधित होकर बोले—"तुरन्त उसे घरसे बाहर निकालो। मेरा नृत्य दर्शन करनेका सौभाग्य उसे कैसे प्राप्त हो सकता है? क्या दूध पीनेमात्रसे ही मेरे चरणोंमें किसीकी भक्ति हो सकती है?" प्रभु दोनों भुजाएँ उठाकर बोले—"दूध पीनेसे आजतक न किसीने मुझे पाया है और न ही पा सकता है। मैं सत्य कह रहा हूँ कि यदि एक चण्डाल भी मेरी शरण आ जाता है, तो वह मेरा है तथा मैं उसका हूँ। परन्तु यदि एक संन्यासी भी मेरी शरणमें न आकर ऐसे अनित्य उपायोंके द्वारा अर्थात् ज्ञान-कर्म-तप आदिके द्वारा मुझे प्राप्त करनेकी चेष्टा करता है, तो वह मुझे कभी प्राप्त नहीं कर सकता। तुम ही बताओ कि गजेन्द्र, हनुमान तथा गोपोंने कौन-सी तपस्या की जो मैं उनके वशमें हो गया। इसके विपरीत तप तो असुर भी करते हैं, परन्तु उन्हें क्या प्राप्त होता है? वास्तविकता तो यह है कि मेरे चरणोंका आश्रय लिये बिना किसीका भी कल्याण सम्भव नहीं है।"

यह सुनकर भयभीत होकर वह ब्रह्मचारी घरसे बाहर निकल गया तथा मन ही मन विचार करने लगा—"अहो! आज मेरा महासौभाग्य उदित हुआ जो मुझे ऐसे अद्भुत कीर्तन एवं नृत्यका दर्शन प्राप्त हुआ। परन्तु मैंने जो अपराध किया, उसका दण्ड भी मुझे मिल ही गया। यह भी अच्छा ही हुआ।"

सेवकका यही लक्षण है कि अपने प्रभुके द्वारा प्राप्त होनेवाले दण्डको वह प्रसन्नतापूर्वक सहन करता है। ब्रह्मचारीके हृदयकी बात प्रभु जान गये तथा उनका हृदय द्रवित हो गया। अतः उन्होंने अपने सेवकोंके द्वारा उसे वापस बुलवाया तथा उसके मस्तकपर अपने श्रीचरणकमल रख दिये। प्रभु स्नेहपूर्वक उससे कहने लगे—"देखो! तपके द्वारा कोई मेरा दर्शन प्राप्त नहीं कर सकता। तुम यह निश्चितरूपसे जान लो कि विष्णुभक्ति ही समस्त प्रकारके साधनोंमें सर्वश्रेष्ठ है। ऐसी भक्तिका आश्रय ग्रहण किये बिना इस संसारसे किसीका उद्धार सम्भव नहीं है।" यह सुनकर उस ब्रह्मचारी आनन्दसे रोते-रोते प्रभुके श्रीचरणोंमें गिर गया। यह देखकर सभी भक्तवृन्द आनन्दसे प्रभुकी जय-जयकार करने लगे। (क्रमशः)

बहुत सुकृति सम्पन्न व्यक्ति जैसे-जैसे श्रीगौरसुन्दरके पादपद्मोंमें भक्ति प्राप्त करते हैं, वैसे ही अकस्मात् उनके हृदयमें श्रीमती राधिकाके पादपद्मोंकी प्रेमरूपी सुधा-समुद्र उद्‌गत होता है।

ओ हंस! इतना कहना जरा

—डा. मधु खण्डेलवाल 'साहित्याचार्य'

गोपीकुल चूड़ामणि, महाभावस्वरूपिणी, महाविरहिणी श्रीराधाजी क्रूर अक्रूरके द्वारा श्रीकृष्णको मथुरा ले जानेपर विरह-उन्मादिनी हो जाती हैं। इधर श्रीललिताजी अत्यधिक अधीर हो कमल-कलित यामुन-तीर पर नीर भरने आती हैं और वहीं देखती हैं श्वेतवर्ण अतिशय सुन्दर विवेकशील राजहंसको और राधाकी समस्त हृदय-वेदनाको उसे हृदयङ्गम करा देती हैं, जिससे वह कलहंसिनी-रसिक-राजहंस श्रीकृष्णको उस विरह-व्यथा-वैभव-विलासका प्रकटीकरण कर सके। श्रीराधाजीकी निकटतम नर्म सेविका श्रीरूपमञ्जरी ही श्रीरूपगोस्वामी हैं, जिन्होंने इस परमास्वादनीय विप्रलम्भ रसको परिवेषण किया है।

प्रणय-द्वेष-विभूषिता ललिताजी कहने लगीं—हे पवित्रात्मा राजहंस! आपकी यात्रा मङ्गलमय हो! आप मेरी प्रार्थना सुन तुरन्त उड़िए एवं वैदग्धी-सिन्धु श्रीकृष्णसे निवेदन कीजिए। जिस मार्गसे अक्रूर दाशार्ह (यदु) वंशियोंकी नगरी मथुरामें पहुँचे हैं, तुम उसी मार्गसे जाना। वह मार्ग गोपियोंकी अश्रुधाराओंके चिह्नोंसे आप्लावित है, वहाँ उस रथके चक्र-चिह्न अब भी दिखाई दे रहे हैं। हे राजहंस! तुम्हें इन परमहंस-गोपियोंके मार्गका ही अनुकरण करना चाहिए। हे कादम्बेश्वर! जिस कदम्ब वृक्षपर श्रीकृष्ण हमारे वस्त्रोंको चुराकर चढ़ गये थे, तुम वहाँ अधिक मत रुक जाना। उस लावण्यराशि रासस्थलीका भी अधिक मोह मत करना, जहाँ तमाल श्यामलाङ्ग श्रीकृष्णने मुरली-गान करते हुए नृत्य किया था और वह भूमि गोपियोंके अङ्गोंसे बिखरे कस्तूरी-कणसमूहसे श्यामवर्ण हो उठी है। उस तरफ तो आँख उठाकर भी नहीं देखना, जहाँ श्रीकृष्णके अनङ्गोत्सव सम्पादनके लिए माधवी लताओंसे निर्मित चतुष्कोण विद्यमान है। तत्पश्चात् तुम्हें गिरि-गोवर्धनके दर्शन होंगे। क्षणभरके लिए तुम इसे देख लेना, यहीं तो वंशीध्वनि सुनकर सब गोपियाँ मिलित होती थीं परस्पर, रहःक्रीड़ाके लिए। लीला-विलासके समय इसकी शिलाएँ उस मदनमोहनकी सुखशय्याएँ बन जाती हैं, वहाँ तुम्हें कृष्णके विरहमें व्याकुल अतिशय सन्तप्त भीलनियाँ भी दिखाई देंगी, उनके ऊपर अपने सुशीतल पंखोंसे मन्द-मन्द वायुसञ्चार अवश्य कर देना। उसी गिरिके प्रान्त भागमें कदम्ब वृक्षोंकी स्मारक-वेदिका है, उसकी रसपाटिका तुम भी अनुभव करना। वृन्दावनके प्रान्तदेशमें सूखा हुआ अरिष्टासुरका मस्तक पड़ा है, जिसे यक्ष आज भी कैलाश-पर्वत समझता है, तुम उसकी तरफ आकर्षित मत होना। उधर वृन्दावन-प्रदेशमें अनेक ब्रजरमणियाँ कृष्ण-विरहमें मरणदशा प्राप्त करने ही वाली हैं, उनको अपना मधुर कलनाद सुना देना जिसे वे कृष्णके चरण-नूपुरोंकी ध्वनिका अनुभवकर पुनर्जीवित हो उठेंगी।

मार्गमें वामन भगवानके सदृश भाण्डीर नामक वटवृक्षपर जरुर जाना, यहींपर ब्रह्माजीने अपनी आठों आँखोंसे प्रेमाश्रु प्रवाहित किये थे, तुम्हें देखकर वनदेवियोंको ऐसा लगेगा मानो ब्रह्मा अपने राजहंस वाहनपर पुनः वनमें आये हैं। तदनन्तर आप उस कालियह्रदपर जाना, जहाँ कृष्णके प्रविष्ट होते हुए ही गोपियाँ यमुनातटकी ओर भाग उठी थीं, अश्रुओंकी धाराओंसे रेत पंकिल हो गई थी, जिससे वे बार-बार फिसल रही थीं, कृष्णने अपने प्रबल ताण्डव नृत्यसे उस सर्पके मस्तककी मणियोंको गिरा फेंका था। वह श्याम जल उन मणियोंकी रक्तिम आभासे मिलकर धूम्र कान्तिका हो गया था, अब तो वह जल कदम्ब-पुष्प-परागसे सुगन्धित तथा कृष्ण-विहारसे अतिशय पवित्र एवं मधुर हो चुका है। हे हंसराज! आप उसका पान अवश्य करना। वहीं निकट ही वनदेवीके दर्शन करना, कृष्ण-विरहका शोक-सन्ताप उनके शरीर

पर नवीन मञ्जरी-गुच्छोंके रूपमें प्रस्फुटित हो रहा है। उन्हें प्रणाम अवश्य करना।

हे हंसराज! अब आप द्वादश वनोंसे परिवृत्ता मथुरा नगरीमें पहुँचेंगे। उस नगरीमें कहीं शङ्करका नन्दी हरे तृणोंको चर रहा होगा, कहीं ब्रह्मा-वाहन हंस शुभ्र मृणालोंका भक्षण कर रहा होगा। कहीं स्वामी कार्तिकेय- वाहन मयूर सर्पका आहार कर रहा होगा और कहीं इन्द्रका ऐरावत शल्लकी लताके पल्लवोंको खा रहा होगा।

जब श्रीकृष्णने प्रथम बार मथुरा नगरीमें प्रवेश किया था, तब जानते हो, पुर-रमणियाँ परस्पर क्या कह रही थीं? अयि! तुम तो गोविन्द स्मरण सुधामें इतनी उन्मत्त हो गयी हो कि तुम्हें यह भी पता नहीं तुम्हारे वस्त्र स्खलित हो गये हैं, कण्ठहारसे मोती मार्गमें बिखर रहे हैं, कुलटा स्त्रियाँ तुम्हारा परिहास कर रही हैं। दूसरी कहने लगी—अरी सुन, इतनी बना-शृङ्गार क्यों कर रही है? देख, मैं तो एक ही पैरमें महावर लगाकर चल रही हूँ, अप्राकृत मदन हमारी गलीके द्वारपर ही आ पहुँचे हैं, क्षणभर भी देर मत करो। तीसरी कहने लगी—यह क्या! तुम स्वयं अकेली ही इस राजमार्गपर जानेवाले कृष्णका अवलोकन कर रही हो और सारे गवाक्षोंको बन्द कर रखा है, उसके ऊपर हमें मणि-भवनके पीछेकी ओर चले जानेके लिए प्रेरित कर रही हो। चौथी कहने लगी—अरी कमलनयने! इस निर्जन स्थानमें बिना किसी लक्ष्यके कहाँ देखती रहती हो? परिजन तुम्हें कितना कुछ कहते रहते हैं, पर कुछ भी नहीं सुनती हो। लगता है, वे नवतरुण मुकुटमणि तुम्हारी आँखोंमें बस गये हैं। पाँचवी कहने लगी—हे सखि! इस तरह रोनेमें थोड़ी तो लाजकरो! तुम्हारा नेत्रकटाक्ष भरी क्रीड़ासेवा श्यामसुन्दर अवश्य ग्रहण करेंगे। हे हंसराज! इस प्रकार वे पुररमणियाँ परस्पर कथोपकथन करती रहती हैं।

हे सखे हंस! यहाँ हम ब्रजगोपियोंपर तो महाविपत्ति आयी है, उधर मथुरावासिनियाँ उनके मुखकमलका दर्शनकर आप्लावित हो रही हैं। मथुराके दुर्गम्य भवनोंके शिखर मणिरत्नमय कलशोंसे सुशोभित हैं। आप उन सबका अतिक्रमणकर श्रीकृष्णके श्रेष्ठतम निजमहलमें ही जाना, वहाँ अनगिनत पताकाएँ फहरा रही हैं। उन शिखरोंपर स्फटिक-मणियोंके मनोहर राजहंस शोभित हैं। उनके चरण एवं चोंच पद्मराग मणियोंसे जड़ित हैं। हंस उन्हें अपना सजातीय बन्धु मान लेते हैं।

हे हंसशिरोमणि! जब उद्धव यहाँसे गये थे, तब हमने उनके साथ श्रीकृष्णको देनेके लिए शुक पक्षीका एक शिक्षित जोड़ा भेजा था। उनमेंसे एक शुक राधाके वचन बोलता है, वह कह रहा होगा—सखि! जब कृष्ण कुञ्जोंमें छिप गये थे, पर मुझे देखते ही उनकी मुसकान प्रकाशित हो उठी थी, क्या मैं उन्हें कभी देख पाऊँगी? इसके उत्तरमें दूसरा शुक कह रहा होगा—हे राधे! चिन्ता क्यों करती हो, उन्होंने कहा है, मैं शीघ्र लौटूँगा, वे सत्यवादी हैं, आते होंगे। श्रीकृष्णके भवनके ऊपर अगर-बत्तियोंका श्यामल धुँआ ऐसा लगता है, मानो सजलमेघ हों, उन्हें देखकर तुम वज्रपातके भयसे मानसरोवर मत चले जाना। कृष्णचन्द्रका जो केलिभवन है, वहाँ आप देखेंगे कि स्फटिक मणियोंसे खचित उन मनोहर स्तम्भोंपर कृष्ण-लीलाएँ चित्रित हैं। हे राजहंस! उसी केलिभवनमें वे अपनी दोनों कोहिनियोंको शुभ्र एवं उज्ज्वल मसनद (बड़ा तकिया) पर रखे हुए कुछ झुके हुए आनन्दपूर्वक बैठे होंगे। वहाँ विक्रूद नामका यादव उन्हें पौराणिक कथाएँ गा-गाकर सुना रहा होगा और वहीं वह वयोवृद्ध अक्रूर युधिष्ठिरादिकी वार्ताएँ कह रहा होगा। उसका नाम लेनेसे भी हम डरती हैं। सात्यकि और कृतवर्मा 'पार्श्व' में चामर डुला रहे होंगे और उद्धव चरणकमलोंका संवाहन कर रहा होगा। सामने भूमिपर गरुड़जी आदेशके लिए तत्पर होंगे, उनके पंखोंकी ध्वनिसे निःसृत सामवेदकी ध्वनिसे मथुरावासी ब्रह्मचारियोंका पारस्परिक कलह-मतभेद दूर हो जाता है। (क्रमशः)

विश्वशान्तिमें गीताकी भूमिका

[मुम्बई तथा विदेशमें श्रीलमहाराजजी द्वारा प्रदत्त भाषणोंका सार]

आधुनिक जगतमें गौड़ीय मठोंके संस्थापक, सप्तम गोस्वामी श्रील गौरशक्ति गदाधरके प्रकाश श्रीलभक्तिविनोद ठाकुरके सुपुत्र तथा श्रीलगौर-किशोरदास बाबाजी महाराजके विशेष कृपापात्र श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर प्रभुपादके अन्तरङ्ग पार्षद अस्मदीय परम गुरुदेव नित्यलीला-प्रविष्ट ॐविष्णुपाद अष्टोत्तरशत श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके ऐकान्तिक अनुगृहीत अस्मदीय शिक्षागुरुदेव श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज वर्तमान समय प्राच्य और पाश्चात्य जगतमें विपुल सफलतापूर्वक श्रीगौरवाणीका प्रचार कर रहे हैं। गङ्गा-यमुना-सरस्वती आदि पुण्य नदियों द्वारा स्नात साधनभूमि भारतवर्षसे विगत दिनाङ्क ९-४-०३ को रवाना होकर सबसे पहले थाइलैण्डकी राजधानी बैंकाक तथा जापानकी राजधानी टोकियोमें प्रचार सेवा पूर्णकर हवाई द्वीपसमूहकी राजधानी होनोलूलूमें प्रचार सेवा विशेषरूपसे कर रहे हैं। यहाँके प्रचारका विषय मुख्यरूपसे था—मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजीका जीवन चरित्र, उनकी शिक्षा, भ्रातृप्रेम एवं रामभक्त श्रीहनुमानजीका तृणादपि भाव आदि।

प्राच्य और पाश्चात्य प्रचारमें आनेसे पूर्व श्रीलमहाराजजीने मुम्बईमें रोटरी क्लबके द्वारा आयोजित एक प्रेस कान्फ्रेन्समें संवाददाताओंके प्रश्नोंका उत्तर दिया एवं मुम्बईके विख्यात प्रेमपुरी आश्रममें आयोजित धर्मसभामें तीन दिन व दिल्ली (दक्षिण) की धर्मसभामें एक दिन वक्तृता प्रदान की। उपरोक्त धर्मसभाका सार निम्न रूपसे लिपिबद्ध किया जा रहा है।

दिनाङ्क २७-३-०३ को आयोजित प्रेस कान्फ्रेन्समें कुछ संवाददाता, रोटरी क्लबके सदस्यवृन्द, संन्यासी एवं ब्रह्मचारीवृन्द तथा मुम्बईके कुछ गृहस्थ भक्त उपस्थित थे। एक संवाददाताने वर्तमान जगतकी परिस्थितिको भयावह देखकर श्रीलमहाराजजीसे पूछा—

संवाददाता—वर्तमान जगतमें अत्यन्त भयावह परिस्थितिमें गीताकी भूमिका क्या है?

श्रीलमहाराजजी—वर्तमान जगतकी भयावह एवं उद्वेगपूर्ण अवस्थामें व्यक्तिगत व समष्टिगत जिसकी जो भूमिका क्यों न हो, वे केवलमात्र अन्धस्वार्थ आडम्बरके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। सभीके द्वारा अनुमोदित, सर्वभाषा प्रकाशित, सर्वजनीय, सार्वकालिक, सार्वदेशिक समाधानमें गीताकी भूमिका ही सर्वोपरि है।

एक अन्य संवाददाता—गीतामें शान्तिके लिए स्वयं भगवान श्रीकृष्णने क्या कुछ कहा है? गीताको पढ़कर मुझे कोई समाधान नहीं मिला।

श्रीलमहाराजजी—आपने गीताका अध्ययन भलीभाँति नहीं किया है। गीताका अध्ययन वैष्णवोंके आनुगत्यमें करना चाहिए। श्रीलमहाराजजीने माधव महाराजजीको इङ्गितकर श्लोक उच्चारणका निर्देश दिया।

श्रीपाद माधव महाराज—

विहाय कामान् यः सर्वान् पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति॥

(गीता २/७१)

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात् परां शान्तिः स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥

(गीता १८/६२)

पूर्वोक्त संवाददाता—मैंने तो कभी स्वप्नमें भी चिन्ता नहीं की थी कि गीतामें direct शान्तिकी बात है।

श्रीलमहाराजजी—मैंने तो प्रारम्भमें ही कहा है कि वैष्णवोंके आनुगत्यमें गीता पढ़नी चाहिए। वैष्णवगण तब गीताका गूढ़ अर्थ आपको समझायेंगे। देखिए, प्रथम श्लोकमें भगवानने क्या कहा है?

"विहाय कामान्" कामना त्यागकर, स्पृहाशून्य होकर, अहङ्कारसे रहित और ममताशून्य होकर जो विचरण करते हैं, वे शान्ति लाभ करते हैं। वर्तमान विश्वमें शुद्धभक्तके अतिरिक्त दूसरे किसीने अहङ्कार और कामना-वासनाओंका त्याग किया है? सभी लोग प्राकृत जड़ अहङ्कार कामनामें मत्त हैं, इसलिए जगतकी अवस्था इतनी भयावह है।

दूसरा संवाददाता—स्वामीजी! कृपया दूसरे श्लोकका अर्थ व्याख्याकर समझा दीजिए।

श्रीलमहाराजजी—आपलोग ध्यानपूर्वक श्रवण कीजिए। अर्जुनको लक्ष्यकर भगवानने सारे जगतको शिक्षा दी है। सब प्रकारसे ईश्वरके शरणागत होइए। उनकी शरण लेनेसे उनकी कृपासे ही परम शान्ति एवं नित्य अव्यय व अक्षय धामको प्राप्त होंगे। इस श्लोकमें जिस ईश्वरकी शरण लेनेकी बात कही गयी है, वे सबके अन्तर्यामी, अहैतुकी कृपामय, सर्वव्यापी एवं सर्वनियन्ता हैं। जो भगवान, वेद, भक्त एवं भक्तिको नहीं मानता, ऐसे जीवोंको भगवान उनके शुभ एवं अशुभ कर्मोंका फल मायाके द्वारा भोग करवाते हैं। ऐसे अभक्तोंके प्रति भगवान उदासीन रहते हैं। परन्तु भक्तोंके लिए उदासीन न रहकर उन्हें अपनी सेवामें नियुक्त रखते हैं—यही भक्तवत्सल भगवानकी महान कृपा है।

वेदोंमें भी कहा गया है कि भगवान अन्तर्यामीरूपसे सभीके हृदयमें निवास करते हैं। हृदयमें रहकर वे क्या करते हैं? इसके उत्तरमें बोला गया है कि समस्त जीवोंको वे अपनी माया शक्तिके द्वारा परिचालित करते हैं। इसीलिए गीतामें स्वयं भगवान कह रहे हैं—***"भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया।"*** भगवान भक्ति-उन्मुख सुकृतिसे सम्पन्न जीवोंपर कृपा करनेके लिए बाहरमें दीक्षागुरुरूपसे एवं अन्तःकरणमें चैत्यगुरुके रूपसे अपने शरणागत जीवोंको उपदेश प्रदान करते हैं। भगवानके शरणागत न होनेपर माया किसीको भी नहीं छोड़ती। वर्तमान समयमें संसार 'माइट इज राइट' की नीतिपर चल रहा है। लोग भगवान या धर्म कुछ नहीं मान रहे हैं। इसके फलस्वरूप ध्वंस अनिवार्य है।

भगवानकी मायाके सम्बन्धमें एक उदाहरण दे रहा हूँ। भगवान अपने परिकरोंके द्वारा या अपने भक्तोंके माध्यमसे जगतको शिक्षा प्रदान करते हैं। देवर्षि नारद भगवानके परिकर, भक्त व निजजन हैं। उन्हें कोई मायाविमोहित साधारण जीव नहीं मानना चाहिए। अन्यथा अपराध हो जाएगा। एक समय नारद ऋषि वीणा बजाते हुए भगवानका नाम कीर्तन करते-करते जा रहे थे। क्या नाम? ***"नारद मुनि बाजाय वीणा राधिकारमण नामे"।*** अचानक मार्गमें उन्हें एक अति मनोरम सुसज्जित नगरी दिखाई पड़ी। नारद यह देखकर रुक गये और विचार करने लगे—अहो! इतनी सुन्दर नगरी तो मैंने आजतक नहीं देखी। अतः वे उत्सुकतापूर्वक उस नगरीके द्वारपर पहुँचे तथा उन्होंने अन्दर प्रवेशकर मणिमाणिक्यसे निर्मित एक विशाल राजमहल देखा। देर न कर वे तीव्रगतिसे राजमहलमें प्रवेश कर गये। उन्हें प्रवेश करते देख वहाँका राजा स्वयं उन्हें आदरपूर्वक महलके भीतर ले गया तथा पाद्य, अर्घ्य इत्यादिके द्वारा उनकी पूजा की। तत्पश्चात् राजा कहने लगा—"हे देवर्षे! कल मेरी कन्याका स्वयंम्बर है। आप कृपापूर्वक मेरी कन्याकी हस्तरेखाओंको देखकर बताइए कि इसका भाग्य कैसा है।" नारदजीके उनकी प्रार्थनाको स्वीकार करनेपर षोड़श शृङ्गारसे सुसज्जिता कन्याको नारदजीके समक्ष लाया गया। उस कन्याके असाधारण सौन्दर्यको देखकर नारदजी मोहित हो गये। उनके हृदयमें कामवासना जागृत हो गयी। इस नगरीमें प्रवेश करनेसे पहले नारदजीके हृदयमें भगवानकी सेवाकी वासनाके अतिरिक्त कुछ भी नहीं था। परन्तु अब उनकी भगवत् सेवाकी वासना समाप्त हो गयी। उसके स्थानपर कामवासना जागृत हो गयी। उस राजकन्याकी

हस्तरेखाओंको देखकर वे जान गये कि इस राजकन्याका पति त्रिलोकीका अधीश्वर एवं जन्ममृत्युसे अतीत होगा। उसे त्रिलोकीमें कभी भी कोई भी पराजित नहीं कर पायेगा। यह देखकर वे मन ही मन विचार करने लगे—"अहो! यदि मैं इस कन्यासे विवाह कर लूँ तो मैं तीनों लोकोंका मालिक बन जाऊँगा तथा त्रिभुवनमें मुझे कोई भी पराजित नहीं कर पाएगा और सभी मेरे वशीभूत रहेंगे।"

इस प्रकार भगवानके परिकर होनेपर भी नारद ऋषि भगवानकी मायाके द्वारा मोहित होकर भगवानको ही भूल गये। ये साक्षात् लक्ष्मी हैं तथा इनके पतिके जो गुण इनकी हस्तरेखाओंके अनुसार दिखाई पड़ रहे हैं, वे केवल विष्णुमें ही सम्भव है, इसका भी वे अनुभव नहीं कर पाये।

अब नारदजी विचार करने लगे—"इससे विवाह करनेके लिए मुझे भगवानसे उनका रूप एकदिनके लिए उधार ले लेना चाहिए क्योंकि उनके रूपके द्वारा ही जगत मोहित हो सकता है। यदि मुझे उनका रूप प्राप्त हो जाता है तो राजकन्या स्वयंवरमें आते ही निश्चितरूपसे मुझे ही पतिरूपसे वरण करेगी।"

अतः महलसे बाहर आकर वे भगवानका ध्यान करते-करते समाधिस्थ हो गये। कृपामय भगवान उनके समक्ष आविर्भूत होते ही उनकी समाधि टूट गयी। समाधि क्यों न टूटे? क्योंकि समाधिके विषय भगवान तो अब प्रत्यक्षरूपसे दर्शन दे रहे थे। वरद भगवान मन्द-मन्द मुस्कराते हुए कहने लगे—"नारद! वरं ब्रूहि, वरं ब्रूहि।" अर्थात् वर माँगो, वर माँगो।

प्रभुको अपने समक्ष दर्शनकर नारदजी भावविह्वल हो गये तथा कहने लगे—"प्रभु! आजतक मैंने आपकी सेवा की, परन्तु आपसे कभी कुछ चाहा नहीं। आज किसी आवश्यक कारणसे मैं आपसे आपका अनुपम रूप एक दिनके लिए माँग रहा हूँ।"

भगवानने तथास्तु न कहकर "जिसमें तुम्हारा कल्याण हो, वही होगा"—ऐसा कहा और अन्तर्धान हो गये। देवर्षि नारदने सोचा कि अवश्य ही मुझे भगवानका मनोहर रूप प्राप्त हो गया है। अतः कल स्वयंवरमें राजकन्या मुझे ही वरण करेगी। यह विचार करते ही उनके सारे शरीरमें रोमाञ्च हो गया। उस कन्याको प्राप्त करनेकी आशासे वे इतने आनन्दित हो गये कि उन्हें अपनी सुध-बुध न रही। मेरे कल्याणके लिए भगवानने मुझे कैसा रूप प्रदान किया, यह विचार करनेकी उनकी शक्ति ही लुप्त हो गयी।

दूसरे दिन देवर्षि नारद सुसज्जित होकर सभामें प्रविष्ट हुए तथा उन्होंने देखा कि अनेक राजा लोग उत्कण्ठित होकर राजकन्याके आगमनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उसी समय उन्होंने देखा कि वह राजकन्या षोड़श शृङ्गारसे सुसज्जित होकर गजगामिनीकी भाँति प्रवेश कर रही थी। उस समय उसने जो नूपुर धारण किये हुए थे, चलते समय उन नूपुरोंकी ध्वनि ऐसे प्रतीत हो रही थी, मानो राजहंसोंका समूह सुमधुर कूजन (ध्वनि) कर रहा हो। यह देखकर ऋषिके मुँहमें पानी आ गया। वे मन ही मन उत्कण्ठित थे कि कब कन्या आये तथा मेरे गलेमें वरमाला पहनाए। राजकन्या अपनी इच्छाके अनुरूप वर खोजते-खोजते देवर्षि नारदको देखकर नाक सिकोड़कर विपरीत दिशामें चल पड़ी। नारदजीने सोचा शायद इस राजकुमारीने मुझे देखा नहीं। निकटमें ही बैठे हुए किसी अन्य बदसूरत व्यक्तिको देखकर इसने ऐसे नाक सिकोड़ी है।

जब किसीके धैर्यकी सीमा टूट जाती है, तो वह बेपरवाह हो जाता है, उसे लोकलज्जा भी नहीं रहती, ठीक वही स्थिति यहाँपर नारदजीकी हो गयी। जब वह कन्या सभाका एक चक्कर लगाकर पुनः उनके निकट आयी तो उन्होंने सोचा कि मुझे खड़े होकर कन्याके समीप जाकर वरमालाको ग्रहण कर लेना चाहिए। अतः वे

तुरन्त सिंहासनसे उठकर तीव्रगतिसे कन्याके निकट पहुँच गये तथा अपनी गर्दन उसकी ओर बढ़ाने लगे, परन्तु कन्या नाक सिकोड़कर दूसरी ओर जाने लगी। यह देखकर नारदजी धीरेसे बोले—"हे राजकुमारी, क्या तुम्हें मेरा इतना मनोहर रूप दिखाई नहीं पड़ता?" यह सुनकर पासमें ही बैठे हुए शिवजीके दो गण ताली बजाते हुए उनका उपहास करते हुए कहने लगे—"अहा! कैसा सुन्दर रूप है, जैसा काले मुखवाला वानर। यदि जलमें अथवा कहींपर अपना स्वरूप देखोगे तो स्वयं समझ जाओगे।" परन्तु कामसम्मोहित नारदजी फिर भी कुछ समझ न पाये कि ये लोग उनका उपहास क्यों कर रहे हैं। उसी समय गरुड़पर सवार होकर शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी भगवान विष्णु वहाँपर उपस्थित हुए। उस राजकन्याने मन्द-मन्द मुस्कराते हुए उनके गलेमें वरमाला डाल दी। भगवान विष्णु उस कन्याको अपने साथ गरुड़पर बैठाकर आकाशमार्गमें उड़ गये।

यह देखकर नारदजीके क्रोधकी सीमा न रही। उनका सारा शरीर काँपने लगा। जब उन्होंने जलमें अपनी परछाई देखी तो अपना मुख बन्दर जैसा देखकर उनका क्रोध और अधिक बढ़ गया तथा वे कहने लगे—"अहो! कितने दुःखकी बात है। मैंने मात्र एकदिनके लिए आपसे आपका रूप माँगा और आपने मुझे बन्दरका मुख दे दिया। आप क्या सोचते हैं कि आपको दण्ड देनेवाला कोई नहीं? आप ही सर्वनियन्ता हैं? आप जो इच्छा हो कर सकते हैं? परन्तु आज आपका सामना नारदसे हुआ है। मैं आपको अभिशाप देता हूँ कि जिस कन्याके लिए मैं इतना दुःखी होकर विलाप कर रहा हूँ, उस कन्याको लेकर आप भी सुखी नहीं रह पायेंगे। एकदिन आपको भी उससे अलग होना पड़ेगा तथा उसके विरहमें मेरी ही भाँति जलना पड़ेगा। उस समय पुनः उससे मिलनेके लिए आपको बन्दरोंकी सहायता ही लेनी पड़ेगी। ये दो गण जो मुझे देखकर हँस रहे थे, ये दोनों राक्षस बनेंगे।"

उसी समय भगवानने अपनी मायाको हटा दिया। अब नारदजीने देखा कि भगवान अपनी शक्ति लक्ष्मीके साथ प्रसन्न होकर विराजमान हैं। वहाँपर न कोई नगरी थी, न कोई राजा, और न कोई सभा। उन्हें बहुत आश्चर्य हुआ। अब वे जोर-जोरसे रोते हुए कहने लगे—"हे प्रभु! मैंने आपको अभिशाप देकर भयङ्कर अपराध किया है। परन्तु मैं समझ नहीं पा रहा हूँ कि मेरी बुद्धि ऐसी कैसी हो गयी? आप मुझे क्षमा करें तथा मुझे इसका रहस्य बताइए।"

नारदजीको अपने चरणोंमें गिरकर रोते हुए देखकर प्रभु बोले—"नारद! इसमें तुम्हारा लेशमात्र दोष नहीं है। यह सब मेरी इच्छासे हुआ है। अतः तुम अपने दुःखको परित्याग करो। लेशमात्र चिन्ता मत करो। इसका रहस्य यह है कि त्रेतायुगमें मैं मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामके रूपमें जगतमें अवतीर्ण होकर लीलाएँ करूँगा। मेरी ये लक्ष्मी ही सीताके रूपमें आविर्भूत होंगी। अत्याचारी रावण इनका अपहरण कर लेगा। उस समय सीताजीको उसके चंगुलसे मुक्त करानेके लिए मैं बन्दरोंकी सहायतासे उसका संहार करूँगा। इस प्रकार देवताओंकी रक्षा करूँगा।"

शिवजीके उन दोनों गणोंने नारदजीसे क्षमा माँगी तथा उनसे अपने उद्धारके लिए प्रार्थना की। इसपर नारदजी बोले—"तुम दोनों बहुत ही बलशाली असुर बनोगे। अपने बलसे तुम देवताओंको भी परास्त कर दोगे। उस समय स्वयं भगवान श्रीराम अवतरित होकर तुम्हारा उद्धार करेंगे।

पत्रकार—आपने पहले बताया कि नारद हमारे गुरु हैं, बद्धजीव नहीं हैं। तो फिर उनकी बुद्धि भ्रमित क्यों हो गयी?

श्रीलमहाराजजी—इसका उत्तर तो मैंने पहले दे दिया। भगवानको मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामके रूपमें धराधाममें अवतीर्ण होकर लीलाएँ करनी

थी। जगतमें अवतीर्ण होनेके लिए किसी कारणकी आवश्यकता थी। यही वह कारण है। अतः भगवानकी इच्छासे ही नारदजीकी बुद्धि भ्रमित हुई।

दूसरा पत्रकार—इसका कोई और कारण भी है क्या?

श्रीलमहाराजजी—एक समय नारद ऋषि ध्यानमग्न होकर भजन कर रहे थे। मायादेवीने विभिन्न प्रकारकी भाव–भङ्गिमाओंके द्वारा उनका ध्यान भङ्ग कर दिया था। ध्यान भङ्ग होनेपर अपने समक्ष मायादेवीको देखकर नारदजी हँस पड़े। नारदजीके मनमें किसी प्रकारका काम–विकार न देखकर मायादेवी लज्जित होकर चली गयी। यह देखकर नारदको अभिमान हो गया कि माया मुझे विचलित नहीं कर पायी। यह बात जब उन्होंने ब्रह्माजीको बतायी, तो ब्रह्माजी समझ गये कि इसको अभिमान हो गया है। अतः यह मेरी बात नहीं मानेगा। यदि किसी भी प्रकारसे इसको शिवजीके पास भेज दिया जाए तो वे इसका कल्याण करे देंगे। ऐसा विचारकर वे नारदजीसे बोले—"पुत्र! तुम यब बात जाकर महादेवसे मत कहना।" परन्तु नारद अपने आपको न रोक सके तथा पहुँच गये शिवजीके पास। उन्होंने जब यह बात शिवजीसे कही तो वे भी यही बोले कि तुमने मुझसे तो यह कह दिया, परन्तु सावधान! दूसरोंके अभिमानको चूर्ण करनेवाले भगवानसे यह बात मत कहना।

परन्तु नारद कहाँ माननेवाले थे? वे शिवजीको प्रणामकर पहुँच गये वैकुण्ठमें भगवानके पास। उन्होंने जब यह बात भगवानसे कही तो भक्तवत्सल भगवान समझ गये कि इसे अभिमान हो गया, अतः किसी भी प्रकारसे इसके अभिमानको नष्ट करना है। इस प्रकार मात्र नारदजीके अभिमानको दूर करनेके लिए ही भगवानने ऐसी लीला की।

भगवानकी यही विशेषता है कि वे एक लीलाके माध्यमसे कई कार्य कर सकते हैं। देखिए, नारदऋषि तो भगवानके परिकर हैं तथा वे भगवानके धाममें रहते हैं। उन्हींके द्वारा भगवानने जगतवासियोंको शिक्षा प्रदान की कि जागतिक कामनाओं एवं अहङ्कारको परित्यागकर भगवानके शरणागत होनेसे ही शान्ति प्राप्त होती है तथा भगवानके अक्षय धाममें नित्यकाल वास किया जा सकता है। वर्तमान जगत जड़ अहङ्कारमें प्रमत्त है तथा लोगोंके हृदयमें अनेक प्रकारकी कामनाएँ भरी हुई हैं। वहाँपर भक्तिका लेशमात्र भी नहीं है। इसलिए आज संसारकी ऐसी दुर्गति हो रही है। गीताके उपदेशोंका हृदयसे पालन करनेपर किसी प्रकारका दुःख एवं विपत्ति नहीं रहेगी।

श्रीलमहाराजजीने बैंकाकमें दो दिन तथा टोकियोमें एकदिन स्थानीय भक्तोंके समक्ष रामलीलाका वर्णन किया। होनोलूलूस्थ Wai ki ki एवं North Shore स्थ Kameha-meha Huy में धर्मसभामें वर्तमान समयमें विश्वशान्तिके विषयमें गीताकी भूमिकाके सम्बन्धमें आलोचनाके अनुरोधपर श्रीलमहाराजजीने पूर्वोक्त कथाको दोहराया। इसके बाद श्रीलमहाराजजी अमेरिकाके विभिन्न स्थानोंमें तथा यूरोपके विभिन्न देशोंमें प्रचार कर ९–७–०३ तारीखको भारत लौटेंगे। ❑

श्रीश्रीवैष्णवचरणे दण्डवन्नतिपूर्विकेयम्

त्रिदण्डिभिक्षु श्रीभक्तिवेदान्त माधव

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥ (गीता ७–१४)

यह अलौकिकी एवं त्रिगुणात्मिका मेरी माया निश्चय ही दुस्तर है, परन्तु जो मेरा ही आश्रय करते हैं, वे इस मायाको पार कर जाते हैं।

श्रीश्रीगुरु–गौराङ्गौ–जयतः

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे

वैकुण्ठ–वार्त्तावह

बृहत्–मृदङ्ग

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे

श्रीभागवत–पत्रिका

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः।
ज्ञान वैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना॥

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा॥

आराध्यो भगवान् व्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावनं, रम्या काचिदुपासना व्रजवधूवर्गेण या कल्पिता।
श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान्, श्रीचैतन्य महाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो नः परः॥

एक भागवत बड़ भागवत शास्त्र । आर एक भागवत भक्तिरसपात्र॥
दुई भागवत द्वारा दिया भक्तिरस । ताहाँर हृदये तार प्रेमे हय वश॥

वर्ष ४७ } *श्रीगौराब्द ५१७*
वि. सं. २०६० आषाढ़ मास, सन् २००३, १५ जून—१३ जुलाई { *संख्या ४*

श्रीश्रीनवाष्टकम्

(श्रील–रघुनाथदास–गोस्वामि–विरचितम्)

गौरीं गोष्ठवनेश्वरीं गिरिधरप्राणाधिकप्रेयसीं स्वीयप्राणपरार्द्धपुष्पपटली–निर्मञ्छ्यतत्पद्धतिम्।
प्रेम्णा प्राणवयस्यया ललितया संलालितां नर्मभिः सिक्तां सुष्ठु विशाखया भज मनो राधामगाधां रसैः॥१॥

जो अपने प्राणसमूहरूप पुष्पोंकी श्रेणियोंसे श्रीकृष्णके (आने–जानेवाले) मार्गकी आरती उतारा करती हैं अर्थात् सर्वदा उसी ओर उत्कण्ठापूर्वक निहारती रहती हैं, श्रीगिरिधारी कृष्णकी जो प्राणोंसे भी अधिक प्रियतमा हैं, प्राणप्रिय सखी श्रीललिताजीके द्वारा जो प्रेमसे संलालिता हैं और श्रीविशाखाके परिहासपूर्ण वाक्योंद्वारा जो सुन्दर रूपसे परिषिक्त हैं, हे मन! शृङ्गार आदि रसोंद्वारा उपलक्षिता प्रचुर गुणशालिनी उन गोष्ठेश्वरी गौरी श्रीराधाका ही तू भजन कर॥१॥

स्वीयप्रेष्ठसरोवरान्तिकवलत् कुञ्जान्तरे सौरभोत् फुल्लत्पुष्प–मरन्दलुब्ध–मधुपश्रेणीध्वनिभ्राजिते।
माद्यन्मन्मथराज्यकार्यमसकृत् सम्भालयन्तीं स्मरा–मात्य–श्रीहरिणा समं भज मनो राधामगाधां रसैः॥२॥
कृष्णापाङ्गतरङ्गतुङ्गिततरानङ्गासुरङ्गं गिरां भङ्ग्या लङ्गिमसङ्गरे विदधतीं भङ्गं नु तद्रङ्गिणः।
फुल्लत्–स्मेरसखीनिकायनिहितस्वाशीः सुधास्वादन–लब्धोन्मादधुरोद्धुरां भज मनो राधामगाधां रसैः॥३॥
जित्वा पाशककेलि–सङ्गरतरे निर्वादविम्बाधरं स्मित्वा द्विः पणितं धयत्यघहरे सानन्दगर्वोद्धुरे।
ईषच्छोणदृगन्तकोणमुदयद्रोमाञ्च कम्पस्मितं निघ्नन्तीं कमलेन तं भज मनो राधामगाधां रसैः॥४॥
अंसे न्यस्य करं परं वकरिपोर्बाढं सुसख्योन्मदां पश्यन्तीं नवकाननश्रियमिमामुद्यद्वसन्तोद्भवाम्।
प्रीत्या तत्र विशाखया किशलयं नव्यं वितीर्णं प्रिय–श्रोत्रे द्राग्दधतीं मुदा भज मनो राधामगाधां रसैः॥५॥
मिथ्यास्वापमनल्पपुष्पशयने गोवर्द्धनाद्रेर्गुहा–मध्ये प्राग्दधतो हरेर्मुरलिकां हृत्वा हरन्तीं स्रजम्।
स्मित्वा तेन गृहीतकण्ठ–निकटां भीत्यापसारोत्सुकां हस्ताभ्यां दमितस्तनीं भज मनो राधामगाधां रसैः॥६॥

सुगन्धित पुष्पोंके मकरन्द–पानमें मत्त मधुपोंके मनोहर शब्दोंसे सुशोभित अपने प्रियतम राधाकुण्डके समीप विराजित कुञ्जमें कन्दर्पराज–मन्त्री श्रीकृष्णके साथ जो उन्म त्त मन्मथ राज्यके समस्त कार्योंको निरन्तर सम्भाल रही हैं, उनका भलीभाँति निर्वाह कर रही हैं, हे मन! शृङ्गार आदि रसोंसे उपलक्षिता प्रचुर गुणशालिनी उन श्रीमती राधिकाका तू भजन कर॥२॥

जिनकी इन्द्रियाँ श्रीकृष्णकी अपाङ्ग–तरङ्गों द्वारा अत्यन्त वर्द्धित–कन्दर्प हेतु नृत्य कर रही हैं, जो अपने वाक्य–कौशलसे श्रीकृष्णको काम समरमें पराजितकर हास्यवदना सखियोंके द्वारा प्रदत्त अपनी–अपनी अभिलाषारूप अमृतका पान करती हुई अत्यन्त उन्मादसे गर्वित हो रही हैं, हे मन! शृङ्गार आदि रसोंसे उपलक्षिता प्रचुर गुणशालिनी उन श्रीमती राधिकाका तू भजन कर॥३॥

"पासा क्रीड़ामें विजयी होनेपर तुम दो बार मेरे विम्बाधर ग्रहणके अधिकारी हो सकोगे"—श्रीमती राधिकाके इस पनको (शर्तको) स्वीकारकर श्रीकृष्ण जब पासा–क्रीड़ारूप महासंग्राममें उनको जीतकर आनन्द और गर्वसे पूर्व प्रतिज्ञानुसार उनका अधर पल्लव–ग्रहणके लिए प्रस्तुत हुए, तब जो श्रीमतीराधिका ईषत् कटाक्ष, रोमाञ्च, कम्प और मधुर हास्य विस्तारपूर्वक लीलाकमलद्वारा श्रीकृष्णपर आघात कर रही हैं, हे मन! शृङ्गार आदि रसोंसे उपलक्षिता प्रचुर गुणशालिनी श्रीमती राधिकाका तू भजन कर॥४॥

जो बकारि (बकासुरके शत्रु) श्रीकृष्णके कन्धों पर अपनी बायीं भुजा अर्पण करके तदीय सुसख्य भावसे अतिशय उन्मत्त होकर अभिनव बसन्तसम्भूत नवकाननकी शोभाको निहार रही हैं और जो वनमें विशाखाके साथ अतिशय आनन्द और प्रीतिसे ओत–प्रोत होकर शीघ्रतासे प्रियतम श्रीकृष्णके कानोंमें सुविस्तीर्ण नूतन पल्लवको (कर्णभूषणके रूपमें) धारण करा रही हैं, हे मन! शृङ्गार आदि रसोंसे उपलक्षिता प्रचुर गुणशालिनी उन श्रीमती राधिकाका तू भजन कर॥५॥

श्रीगोवर्द्धन पर्वतकी कन्दरेमें विविध प्रकारके पुष्पोंसे निर्मित शय्यापर श्रीकृष्ण कपटभावसे निद्रित होनेपर श्रीराधिकाजी पहले उनकी मुरली चुराकर जब पुनः उनकी मालाको चुराने लगीं, उस समय श्रीकृष्णद्वारा हँसकर उनके कण्ठके अधः–प्रदेशका स्पर्श किये जानेपर डरकर भागती हुई जिन्होंने अपने दोनों हाथोंसे अपने दोनों कुचोंका दमन किया है अर्थात् दबा रखा है, हे मन! शृङ्गार आदि रसोंसे उपलक्षिता प्रचुर गुणशालिनी उन श्रीमती राधिकाका तू भजन कर॥६॥

तूर्णं गाः पुरतो विधाय सखिभिः पूर्णं विशन्तं व्रजे घूर्णद्यौवतकांक्षिताक्षि–नटनैः पश्यन्तमस्या मुखम्।
श्यामं श्यामदृगन्त–विभ्रमभरैरान्दोलयन्तीतरां पद्माम्लानिकरोदयां भज मनो राधामगाधां रसैः॥७॥
प्रोद्यत्–कान्तिभरेण वल्लववधूताराः पराद्धार्त् पराः कुर्वाणां मलिनाः सदोज्ज्वलरसे रासे लसन्तीरपि।
गोष्ठारण्य–वरेण्य–धन्य–गगने गत्यानुराधाश्रितां गोविन्देन्दुविराजितां भज मनो राधामगाधां रसैः॥८॥
प्रीत्या सुष्ठु नवाष्टकं पदुमतिर्भुमौ निपत्य स्फुटं काक्वा गद्गदनिस्वनेन नियतं पूर्णं पठेद्यः कृती।
घूर्णन्मत्त–मुकुन्दभृङ्गविलसद्राधासुधावल्लरीं सेवोद्रेकरसेन गोष्ठविपिने प्रेम्णा स तां सिञ्चति॥९॥

श्रीकृष्ण बछड़ोंको आगे करके श्रीदाम आदि सखाओंके साथ ब्रजमें प्रवेश करते समय चञ्चल युवतिवृन्दके अभिलषित नेत्र–नटन द्वारा श्रीमती राधिकाका वदनमण्डल दर्शन करते हैं, उस समय उन श्रीकृष्णको वशीभूत करनेके लिए अपने दृष्टि–विलाससे जो उन श्रीकृष्णको आन्दोलित करती हैं और जिनके आविर्भावसे अपना सौभाग्य प्रकट करनेके कारण चन्द्रावली–सखी पद्माको बड़ी ग्लानि उपस्थित होती है, हे मन! शृङ्गार आदि रसोंसे उपलक्षिता प्रचुर गुणशालिनी उन श्रीमती राधिकाका तू भजन कर॥७॥

उज्ज्वल रसविशिष्ट रासलीलामें भी जिनकी शोभा निरन्तर देदीप्यमान है, वैसी–वैसी गोपवनितारूप असंख्य तारकाओंको जो अपनी प्रकृष्ट और उज्ज्वल कान्तिद्वारा मलिन कर रही हैं और जो श्रीवृन्दावनरूप उत्कृष्ट और धन्य गगन प्रदेशमें अनुराधारूपमें विविध प्रकारसे परिसेवित होकर गोविन्दरूप चन्द्रके समाजमें विराजमान हैं, हे मन! शृङ्गार आदि रसोंसे उपलक्षिता प्रचुर गुणशालिनी उन श्रीमती राधिकाका तू भजन कर॥८॥

जो सुकृतिवान व्यक्ति भू–पतित होकर स्थिर बुद्धिसे प्रीतिपूर्वक गिड़गिड़ाकर और गद्गद स्वरसे स्पष्ट करके अर्थबोधके साथ इस नवाष्टकका नियत पाठ करते हैं, वे गोष्ठ–विपिनमें अर्थात् वृन्दावनमें श्रीकृष्णरूप भ्रमर मत्त होकर जिनके ऊपर मंडरा रहा है, वे विलास–शालिनी राधारूप अमृतलताका प्रेमपूर्वक सेवारूप उद्रिक्त–रसद्वारा सिञ्चन करते हैं॥९॥

प्रश्नोत्तर

श्रीकृष्णतत्व

(पूर्व–प्रकाशित वर्ष ४७, संख्या ३, पृष्ठ ५४ से आगे)

—जगद्गुरु श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

प्र. २३—देवकीके छः पुत्र और सप्तमपुत्र बलदेव कौन तत्त्व हैं? देवकीनन्दनको कंसके डरसे ब्रजमें लानेका क्या रहस्य है?

उ.—उस दम्पतिके यशः कीर्त्ति आदि छः पुत्र क्रमशः पैदा हुए। परन्तु ईश–विरोधी कंसने उनको एक–एक करके बाल्यकालमें ही मार डाला। भगवद्दास्य भूषित विशुद्ध जीव–तत्त्व बलदेव उनके सप्तम पुत्र हैं। ज्ञानाश्रयमय चित्तरूप देवकीमें शुद्ध जीवतत्त्वका प्रथमोदय है; परन्तु मामा कंसके उपद्रवकी आशंकासे वह तत्त्व ब्रज–मन्दिरमें चला गया। वह विश्वासमय धाम—ब्रजपुरीमें उपस्थित होकर श्रद्धामय चित्त–रोहिणी देवीके गर्भमें प्रविष्ट हो गया। (कृष्ण–संहिता ४/५–८)

प्र. २४—क्या कृष्णलीला किसी नर–चरित्र पर आधारित कोई कल्पना मात्र है?

उ.—श्रीव्यासादि सारग्राही महर्षिगण भूत,

भविष्य और वर्तमानके ज्ञाता हैं। उन्होंने समाधियोगसे अपने विशुद्ध अन्तःकरणमें निर्मल श्रीकृष्ण-चरित्रका साक्षात्कार किया है। श्रीकृष्णलीला जड़ाश्रित मानव-चरित्रकी भाँति ऐतिहासिक नहीं है अर्थात् किसी देश या किसी कालमें परिच्छेद्यरूपमें वह लक्षित नहीं होती अथवा वह नर-चरित्र पर आधारित कोई काल्पनिक कहानी नहीं है।

(कृ. सं. ३/१६)

प्र. २५—कृष्णकी प्रत्येक लीला नित्य कैसे है?

उ.—अधिकारके भेदसे किसी भक्तके हृदयमें इसी समय कृष्णका जन्म हो रहा है, किसी भक्तके हृदयमें वस्त्रहरण-लीला हो रही है, किसीके हृदयमें महारास लीला चल रही है, किसीके हृदयमें पूतना-बध हो रहा है, किसीके हृदयमें कंसका बध हो रहा है। किसीके हृदयमें कुब्जा-प्रणय लीला और किसीके हृदयमें अन्य लीला हो रही है। जिस प्रकार जीव अनन्त हैं, उसी प्रकार जगत भी अनन्त हैं। किसी एक जगतमें एक लीला हो रही है, तो दूसरे जगतमें दूसरी लीला हो रही है। इसी प्रकार समस्त कृष्ण-लीलाएँ किसी-न -किसी जगतमें चल रही हैं। इसलिए सभी लीलाएँ नित्य हैं। लीला कभी बन्द या स्थगित नहीं होती, क्योंकि भगवानकी शक्ति सदैव क्रियावती रहती है। (कृ. सं ७/१)

प्र. २६—वस्त्र-हरण लीलाका रहस्य क्या है?

उ.—जिन लोगोंमें कृष्णकी सेवा करनेकी इच्छा अत्यन्त बलवती होती है, उनका स्वगत या परगत कुछ भी गोपनीय नहीं होता। भक्तोंको यही शिक्षा देनेके लिए ही कृष्णने गोपियोंके वस्त्र हरण किये हैं। (कृ. सं. ५/३-४)

प्र. २७—क्या रास-लीला अश्लील नहीं है?

उ.—चिद्गत महारास लीलामें कृष्ण ही एकमात्र पुरुष हैं और समस्त जीव नारी हैं। उसका मूल तत्त्व यह है कि भगवान श्रीकृष्णचद्र चिज्जगतके सूर्य हैं। वे ही एक मात्र भोक्ता हैं। समस्त अणु चैतन्य ही भोग्य हैं। समस्त चित्स्वरूपोंका प्रीति-सूत्रमें बन्धन सिद्ध है। वहाँ भोक्ता तत्त्वका पुरुषत्व और भोग्यतत्त्वका स्त्रीत्व है। जड़शरीरगत स्त्री-पुरुषत्व चिद्-जगतके भोग्य-भोक्ता तत्त्वका ही असत् प्रतिफलन है। सम्पूर्ण अभिधानको खोजनेपर एक भी ऐसा वाक्य नहीं मिलेगा, जिसके द्वारा चित्स्वरूपोंकी परम चैतन्यके साथ अप्राकृत संभोग-लीलाका सम्यक् वर्णन हो सके। इसलिए मायिक स्त्री-पुरुषके संभोग सम्बधी सभी वाक्य उनके विषयमें सर्व-प्रकारसे सम्यक् व्यंजक स्वरूप व्यवहृत हैं। इसमें अश्लील चिन्ताकी कोई आवश्यकता या आशङ्का नहीं।

(कृ. सं. २/१३)

प्र. २८—उग्रसेन, कंस, कंसकी स्त्री और जरासन्ध—ये कौन-कौन तत्त्व है।

उ.—नास्तिक्यरूप कंसकी मृत्यु होने पर उसके पिता स्वातन्त्र्यरूप उग्रसेनको श्रीकृष्णने राज्य सिंहासन सौंप दिया। कंसकी अस्ति और प्राप्ति नामक दो पत्नियाँ थीं, जिन्होंने कंसके मरनेपर कर्मकाण्ड स्वरूप जरासन्धके निकट अपनी-अपनी विधवा होनेकी बात बतलायी थी।

(कृ. सं. ५/२५-२६)

प्र. २९—क्या कृष्णलीला मनुष्य द्वारा कल्पित व्यापार नहीं है?

उ.—कृष्णलीला किसी मनुष्यकी कल्पनाका विषय नहीं है अथवा वह मूर्ख लोगोंके अन्ध-विश्वासका व्यापार नहीं है। उसे तो केवल परमार्थ तत्त्वके पूर्ण ज्ञाता ही जान सकते हैं। भक्तिशून्य तार्किक और नैतिकबुद्धि सम्पन्न व्यक्ति कृष्णलीलाकी महिमाका स्पर्श भी नहीं कर सकते। तर्क, नीति, ज्ञान, योग और धर्माधर्मके विचार एक और अतिशय क्षुद्र रूपमें पड़े रह जाते हैं और दूसरी ओर ब्रज-तत्त्वका महादीपक

अप्राकृत-बुद्धिशाली व्यक्तियोंके हृदयमें देदीप्यमान होकर चिदालोक वितरण करता रहता है।

(श्रीम. शि. ५ प.)

प्र. ३०—कृष्णलीला आध्यात्मिक है या रूपक?

उ.—हमलोग वृन्दावनीय श्रीराधाकृष्णकी लीलाको अप्राकृत समझते हैं, आध्यात्मिक नहीं। रूपक वर्णन द्वारा शुष्क अभेदवादको समझानेके लिए जो चेष्टा होती है, वह आध्यात्मिक है; इसका कारण यह है कि इसमें प्राकृत विचित्रताका अवलम्बनकर उसके निरसन द्वारा अद्वैतवादको समझाया जाता है। परन्तु ब्रजलीलाका वर्णन वैसा नहीं है। प्राकृत-विचित्रताके आदर्श स्थानीय अप्राकृत चिन्मय विचित्रताकी स्थिति है। जिस वर्णनको पढ़कर अप्राकृत विचित्रताकी उपलब्धि होती है, उसे अप्राकृत वर्णन कहते हैं।

('समालोचना' स. तो. ६/२)

प्र. ३१—कृष्णलीला आध्यात्मिक क्यों नहीं है?

उ.—कृष्णलीला आध्यात्मिकी नहीं है। जहाँ पर सभी तत्त्व एकमात्र ब्रह्मात्मामें पर्यवसित किये जाते हैं, वहीं पर आध्यात्मिक क्रियाका उदय होता है। मायावाद आध्यात्मिक व्यापार है। आध्यात्मिक अर्थ और भावकी जहाँ प्रबलता होती है, वहाँ कृष्णलीला और चिन्मय वृन्दावनलीलाका निर्वाण हो जाता है अर्थत् वह छिप जाती है। कृष्णलीला विचित्र होती है। आध्यात्मिकता विचित्रतारहित होती है। अतः आध्यात्मिक भाव और वैचित्र्य भाव परस्पर विपरीत हैं। आध्यात्मिक रूपमें वही परम-तत्त्व एक और अद्वितीय सुप्तशक्तिक ब्रह्म है। केवल विचित्रशक्ति क्रियामें ही नित्य रूपमें कृष्णलीलाका उदय होता है। ये दोनों भाव परस्पर विरुद्ध होनेपर भी परमतत्त्वमें परस्पर विरोध नहीं करते। अतएव ज्ञानमार्गमें आध्यात्मिक भावसे जब 'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म' उदित रहते हैं, उसी समय विचित्र शक्तिसम्पन्न परमतत्त्व नित्यधाम वृन्दावनमें कृष्णलीला प्रकाशित करते रहते हैं। मानव विचारसे इस प्रकार आध्यात्मिक और अप्राकृत-तत्त्व एक साथ एकत्र नहीं पाये जा सकते हैं। परन्तु परमतत्त्वकी जिस पर कृपा होती है, वही सौभाग्यवान व्यक्ति इस विरोधाभासका सामञ्जस्य कर सकता है। अचिन्त्यशक्तिके द्वारा ही यह युगपत् भेदाभेद सिद्ध है।

('समालोचना' स. तो. ८/७)

प्र. ३२—क्या कृष्णलीला कोई पांचभौतिक व्यापार है?

उ.—अप्राकृत-लीलामें जिन-जिन विषयोंका वर्णन हुआ है, वे सभी नित्यसत्य हैं, वे कदापि रूपक भावसे कल्पित नहीं हैं। जड़ीय इतिहास और अप्राकृत लीलामें भेद यह है कि जड़ीय इतिहास सम्पूर्ण भौतिक और देश-कालके अधीन होता है; अतएव वह अनित्य होता है। अप्राकृत-लीला जड़ीय व्यापार जैसी प्रतीत होनेपर भी उसमें भौतिकताका लेश भी नहीं है। वह सम्पूर्ण रूपसे चिन्मयी होती है। कृष्णकी कृपासे भौतिक नेत्रोंसे दिखलायी पड़ सकती है, इसी कारण उसका कोई भी अंश पांचभौतिक जगतका व्यापार नहीं है। कृष्णलीला प्रकृतिसे परे है। वास्तवमें इन्द्रियातीत कहनेसे जड़ेन्द्रियोंसे परे ही समझना चाहिए। वह चिन्मय जीवके चिदिन्द्रियों द्वारा ही ग्रहणीय है।

('समालोचना', स. सङ्गिनी, स. तो. ८/७)

प्र. ३३—कृष्णलीला निर्गुण कैसे है? कृष्णलीलाके उपकरण क्या है?

उ.—यह जगत चिज्जगतका प्रतिफलित तत्त्व है। यहाँका सबकुछ मायाद्वारा कलुषित है। चिज्जगतमें माया और तदीय त्रिगुणका अभाव रहनेके कारण वहाँ सब कुछ अनवद्य (निर्दोष) और शुद्धसत्त्वमय है। काल और देश भी उसी प्रकार है। कृष्णलीला मायातीत है—त्रिगुणातीत

है; अतएव निर्गुण है। उसी लीलाकी रसपुष्टि करने लिए निर्दोष काल, निर्दोष देश तथा निर्दोष आकाश और जलादि कृष्णलीलाके उपकरण हैं। इसलिए चिन्मयकालमें (जिसमें जड़ीय कालका प्रभाव नहीं है) श्रीकृष्णलीला अष्टकालीय है अर्थात् वह दिन-रातमें निशान्त काल, प्रातःकाल, पूर्वाह्न काल, मध्याह्न काल, अपराह्न काल, सायंकाल, प्रदोषकाल, और रात्रिकाल—इन आठ कालोंमें विभक्त होकर अखण्ड रसकी पुष्टि करती है। (चै. शि. ६/५)

प्र. ३४—प्रकट-ब्रजलीला कितने प्रकारकी है?

उ.—प्रकट ब्रजलीला नित्य और नैमित्तिक भेदसे दो प्रकारकी है। ब्रजकी अष्टकालीय लीला नित्यलीला है और पूतना-बध तथा दूर-प्रवास आादि (ब्रजसे बाहर अन्यत्र स्थिति) नैमित्तिक लीलाएँ हैं। (जै. ध. ३९ अध्याय)

प्र. ३५—असुर-मारणादि लीलाओंसे क्या शिक्षा मिलती है?

उ.—असुर-मारणादि लीलाओंके द्वारा व्यतिरेक रूपमें कृष्ण तत्त्व जाना जाता है।

(चै. शि. खण्ड २, ७/७)

प्र. ३६—भगवान साकार हैं या निराकार?

उ.—वे अपनी अचिन्त्य शक्तिके प्रभावसे एक साथ निराकार और चित्साकार दोनों हैं। वे चित्साकार नहीं हो सकते—ऐसा कहनेसे उनकी अचिन्त्य शक्तिको अस्वीकार करना होता है।

(जै. ध. ११ अध्याय)

प्र. ३७—वेद परमेश्वरको निराकार क्यों कहते हैं?

उ.—जड़ पदार्थोंका जिस प्रकार एक स्थूल आकार होता है, ईश्वरका उस प्रकार कोई प्राकृत स्थूल आकार नहीं होता। इसीलिए हम उनको अपनी प्राकृत इन्द्रियोंके द्वारा देख या अनुभव नहीं कर पाते। इसलिए वेदमें कहीं-कहीं उनको निराकार कहा गया है।

प्र. ३८—परमेश्वरके साकार या निराकार होनेका विचार किस दृष्टिकोणसे करना उचित है?

उ.—वास्तवमें परमेश्वर चित्साकार और निराकार दोनों है। जो लोग दोनोंमेंसे किसी एकके प्रति श्रद्धा करते है, परन्तु दूसरे स्वरूपको अस्वीकार करते हैं, वे दोनों आँखोंसे देखते नहीं हैं—ऐसा ही समझना होगा। (तत्त्वसूत्र ४)

(क्रमशः)

श्रीलप्रभुपादजीका उपदेशामृत

(वर्ष ४७, संख्या ३, पृष्ठ ५७ से आगे)

प्र. १०२—क्या गुरु-सेवाकी विशेष आवश्यकता है?

उ.—श्रीगुरुदेवकी सेवा सर्वप्रथम करनी चाहिए। जगतमें कर्म, ज्ञान अथवा अन्यान्य जागतिक अभिलाषाओंको भी पूर्ण करनेके लिए गुरुकी आवश्यकता होती है, किन्तु उन गुरुओंके द्वारा जो विद्या प्राप्त होती है, उसके द्वारा तुच्छ फल ही प्राप्त होता है। पारमार्थिक श्रीगुरुदेव ऐसे तुच्छ फलदाता नहीं हैं। वे वास्तवमें ही कल्याण करनेवाले होते हैं। आश्रयजातीय भगवान श्रीगुरुदेवकी कृपासे जिस क्षण हम च्युत हो जाएँगे, उसी क्षण भगवानकी सेवाके अतिरिक्त नाना प्रकारकी इच्छाएँ हमारे हृदयमें उदित हो जाएँगी। जिसकी गुरुके प्रति प्रगाढ़ निष्ठा उत्पन्न हो चुकी है, ऐसे वैष्णव यदि हमें उपदेश न करें कि हमें किस प्रकार गुरुके श्रीचरणकमलोंका आश्रय लेना चाहिए अथवा श्रीगुरुदेवसे कैसा व्यवहार रखना चाहिए तो हम हाथमें आया हुआ रत्न भी खो बैठेंगे।

प्र. १०३—हमें किसका सङ्ग करना चाहिए?

उ.—कृष्णभक्तोंके अतिरिक्त किसीका भी सङ्ग नहीं करना चाहिए। कृष्णभक्त ही कल्याणकारी, उपादेय तथा नित्य हैं। दुःसङ्गके द्वारा अर्थात् कृष्णके अतिरिक्त अन्यान्य अनित्य वस्तुओंका सङ्ग करनेसे अवश्य ही अमङ्गल होता है। अतः कृष्ण एवं कृष्णभक्तिरहित किसी भी विषयका आदर नहीं करना चाहिए।

इतनी हरिकथा सुननेके पश्चात् भी यदि किसीकी संसारके प्रति प्रगाढ़ आसक्ति हो तो, यह बहुत ही आश्चर्यका विषय है। यह बड़े दुर्भाग्यकी बात है। दुष्टोंके सङ्गमें कृष्णप्राप्ति नहीं होती। दुःसङ्ग त्यागकर सत्सङ्ग करनेसे ही कृष्णप्राप्ति सम्भव है। इस बातको सर्वदा ही स्मरण रखना चाहिए।

विषयोंको कृष्णकी सेवामें लगा देनेसे, वे विषय जीवका लेशमात्र भी अनिष्ट नहीं कर सकते। यह जगत एवं जागतिक वस्तुएँ ईश्वरकी सेवाके उपकरणमात्र हैं। किन्तु कृष्णकी सेवाकी वस्तुओंको अपने भोगमें लगा देनेसे इस जड़ संसारके प्रति आसक्ति प्रबल हो जाती है, जिसके फलस्वरूप जीव संसार दशाको प्राप्त कर लेता है।

प्र. १०४—क्या सभी कुछ भगवानकी ही दया है?

उ.—हाँ। भगवान दयारूप हैं। अतः वे जो कुछ भी करते हैं, वह सब उनकी दया ही है। श्रीगौरसुन्दर हमें नाना प्रकारके कष्ट एवं बाधाएँ प्रदानकर हमारी परीक्षा लेते हैं। यह हमारे भाग्यपर निर्भर करता है कि हम उस परीक्षामें पास होते हैं या नहीं। श्रीचैतन्यमहाप्रभु निष्कपट व्यक्तिके हृदयमें अन्तर्यामीरूपसे वास्तविक सत्यको प्रकट कर देते हैं। जो निष्कपटरूपसे हरि-गुरु-वैष्णवोंकी सेवा करते हैं, उन्हें कभी भी भक्तिविमुख व्यक्तियोंकी बातोंपर विश्वास नहीं हो सकता। ऐसे भक्तिविमुख कर्मियों एवं ज्ञानियोंकी बातोंपर उन्ही लोगोंको विश्वास होता है, जिन्होंने कभी भी भगवान एवं वैष्णवोंकी सेवा नहीं की। यह उनके दुर्भाग्यका ही परिचय है। हमें तो केवल श्रीचैतन्यमहाप्रभुके श्रीचरणकमलोंका ही भरोसा रखना चाहिए। हमें सर्वदा ही किसी ऐसे वैष्णवके निकट श्रीचैतन्यचरितामृत श्रवण करना चाहिए, जो उसके तात्पर्यको भलीभाँति जानता हो तथा उसके अनुसार आचरण भी करता हो। हमें नित्य-निरन्तर अपराधोंको त्यागकर चैतन्यचरितामृत, प्रार्थनाएँ एवं शरणागतिके कीर्तनोंको पढ़ते रहना चाहिए। इसीमें हमारा कल्याण सम्भव है। वैष्णवोंके साथमें रहकर हरिनाम करनेपर ही श्रीचैतन्य-महाप्रभु कृपा करेंगे।

प्र. १०५—मन्त्रसिद्धि एवं भक्तिसिद्धिमें क्या भेद है?

उ.—मन्त्र (कृष्ण मन्त्र, गौर मन्त्र) की सिद्धि होनेपर संसारसे मुक्ति होती है अर्थात् संसारसे आसक्ति नष्ट हो जाती है। तभी शुद्धभक्ति अथवा साधनभक्ति होती है। इससे पहले साधन-क्रिया या भजन-क्रिया होती है। जैसा कि कहा गया है—

अग्रे हय मुक्ति तबे कर्मबन्ध नाश।
तबे से हइते पारे श्रीकृष्णेर दास॥

साधक सर्वप्रथम मुक्त होता है, तभी उसका कर्मबन्धन नष्ट होता है। कर्मबन्धन नाश होनेपर ही वह कृष्णका दास हो सकता है।

मन्त्र सिद्ध होनेपर ही साधक मुक्त होता है। उस समय उसका जड़ अहङ्कार दूर हो जाता है। ऐसी अवस्था आनेपर ही साधक निष्काम होकर भगवानके सुखके लिए भगवानकी सेवा करनेका सौभाग्य प्राप्त करता है। यही शुद्धदास्य या शुद्धाभक्ति है। मन्त्रसिद्धिसे मुक्ति तथा भक्तिसिद्धिसे कृष्णप्रेम प्राप्त होता है। प्रेमीभक्त ही सिद्धभक्त या महाभागवत है।

मन्त्र सिद्धिसे जो मुक्ति बहुत कष्टसे प्राप्त होती है, वह नामाभाससे सहज ही प्राप्त हो जाती है। श्रीकृष्णनाम मुक्त लोगोंके भी उपास्य हैं—

कृष्णमन्त्र हैते हबे संसार-मोचन।
कृष्णनाम हैते पाबे कृष्णेर चरण॥

अर्थात् कृष्णमन्त्रसे संसारसे मुक्ति तथा कृष्णनामसे कृष्णके चरणोंकी प्राप्ति होती है।

प्र. १०६—जिसका धनके प्रति लोभ है, क्या उसका सङ्ग त्याग देना चाहिए?

उ.—अर्थ ही समस्त प्रकारके अनर्थोंका मूल है। अर्थको ही यदि भगवानकी सेवामें लगाया जाए, तभी कल्याण हो सकता है। अन्यथा उसी अर्थके द्वारा अमङ्गल या संसारदशा निश्चित है। अतः जो हरिभजनका इच्छुक है, उसे नाशवान धनके प्रति लोभ नहीं करना चाहिए। उसके हृदयमें तो नित्यअर्थ कृष्णभक्तिके प्रति ही लोभ होना चाहिए। क्योंकि यदि अर्थ (धन-सम्पत्ति) के प्रति आसक्ति रही, तो परमार्थके प्रति आसक्ति नहीं हो सकती। जिसके फलस्वरूप दुर्लभ मनुष्य जीवन व्यर्थ ही चला जाता है। आपलोग ऐसी कृपा करें कि मेरे जीवनके जितने दिन शेष बचे हैं, उतने दिन मुझे भगवानसे विमुख व्यक्तियोंका मुख भी दर्शन न करना पड़े।

प्र. १०७—क्या आपसमें मिलजुलकर सेवा करना ही अच्छा है?

उ.—हाँ। हम सभीको मिलजुलकर एक भावसे गुरुजीके आनुगत्यमें भगवानकी सेवा करनी चाहिए। सबके साथ मैत्रीभावयुक्त होकर गुरुनिष्ठ भक्तोंके सङ्गमें हरिसेवा करना ही हमारा परम कर्तव्य है। हम सभीको सर्वदा ही भगवानके सुखके लिए ही भगवान एवं गुरुकी सेवामें लगे रहना होगा। कृष्णके सुखको त्यागकर जीव जैसे ही अपनेको सुखी रखनेकी चेष्टा करता है, वैसे ही वह कृष्णसेवाको भुल जाता है। फलस्वरूप मायाके वशमें होकर नाना प्रकारके दुःखोंको प्राप्त करता है। अतः शरणागत होकर भगवानकी सेवा करनेमें ही सबका कल्याण है।

प्र. १०८—क्या जीवको सांसारिक कष्ट भी भगवानकी दयासे ही मिलते हैं?

उ.—दयामय भगवानका सभीकुछ दया है। It is all for the best. भगवान जो कुछ भी करते हैं, हमारे कल्याणके लिए ही करते हैं। करुणामय भगवान जिसको जब जहाँ तथा जैसी अवस्थामें रखते हैं, उसे वहींपर रहकर उसी अवस्थामें प्रसन्नतासे भगवानकी सेवा करनी चाहिए। भगवान किसीपर कृपा करें या उसकी उपेक्षा करें, दोनों ही अवस्थाओंमें जीवका कल्याण ही होता है। भगवानकी मायाशक्तिके द्वारा जब हमें जागतिक सुख- भोगोंकी वस्तुएँ प्राप्त होती हैं, तब हमें बहुत आनन्द होता है, जब दण्डस्वरूप अनेक प्रकारके जागतिक कष्ट प्राप्त होते हैं, तो हम विचलित हो जाते हैं। परन्तु मायाके द्वारा प्राप्त होनेवाले दण्डस्वरूप अनेक प्रकारके कष्टोंको भी हमें भगवानकी कृपा समझकर प्रसन्नतापूर्वक भोगना चाहिए। क्योंकि माया हमें संसारमें केवल इसीलिए कष्ट प्रदान कर रही हैं कि हमें संसारसे विरक्ति हो तथा हम भगवानकी ओर मुड़ जाएँ। जो व्यक्ति संसारमें मिलनेवाले कष्टोंको भगवानकी कृपा नहीं समझता, बल्कि पुनः-पुनः संसारमें जागतिक उन्नति अथवा सुख प्राप्त करनेकी चेष्टा करता रहता है, उसे अन्तमें पछताना पड़ता है।

प्र. १०९—जिस स्थानपर भक्तलोग रहते हैं, वहाँके सभी लोग अच्छे क्यों नहीं होते?

उ.—जहाँपर दीपक होता है, वहाँपर अन्धकार नहीं रहता, यह तो सत्य है, परन्तु स्वयं दीपकके नीचे ही अन्धकार रहता है। जहाँपर प्रकाश रहता है, वहींपर थोड़ा-बहुत अन्धकार भी होता है। उसी प्रकार जहाँपर पुण्य होता है, वहींपर थोड़ा-बहुत पाप भी रहना ही चाहिए। अन्धकार न रहनेपर प्रकाशकी उज्ज्वलता नहीं बढ़ती,

पाण्डित्यकी महिमा तभी है, जब मूर्ख हों, उसी प्रकार पुण्यकी महिमा तभी है, जब पाप हों।

प्र. ११०—क्या हमारा जीवन आदर्शपूर्ण होना चाहिए?

उ.—हमारा जीवन आदर्शपूर्ण होना चाहिए। हमारे चरित्रको देखकर कोई व्यक्ति कुछ विपरीत न सोचें, इसके लिए हमें सावधान रहना चाहिए। कोमल श्रद्धावाले लोगोंके लिए कदम-कदम पर विपत्ति ही विपत्ति है। क्योंकि वे अन्तर्दर्शी नहीं हैं, वे केवल बाहरी आचरणको देखकर ही विचार करते हैं। अर्थात् हमारे हृदयमें भक्ति है कि नहीं, वे इसका अनुमान नहीं लगा सकते। वे हमारी बाहरी आचरणोंको देखकर ही हमें भक्त या अभक्त मानते हैं। अतः हमारे आचरणको देखकर कहीं उसकी श्रद्धा सभी भक्तोंसे न हट जाए, इसके लिए हमें सावधान रहना चाहिए।

प्र. १११—हमें कौन-सा रोग है?

उ.—कृष्णकी सेवाकी चेष्टाको छोड़कर अपने सुखदायक वस्तुओंका संग्रह करना ही हमारा मूल रोग है। हमें विषयरस अच्छा लगता है, परन्तु सभी विषयोंके भी विषय कृष्णकी सेवा हमें अच्छी नहीं लगती, यही हमारा दुर्भाग्य है। पीलियेके रोगीको मीठी मिसरी भी कड़ुवी लगती है, उसी प्रकार विषयोंमें आसक्त होनेसे मधुरसे भी मधुर कृष्णनाम तथा कृष्णसेवामें हमारी रुचि नहीं होती। यदि शरीरमें विष चढ़ जाए तो शहद भी कड़ुवा लगता है।

मिसरी ही पीलिया रोगकी औषधि है। मिसरी खाते-खाते धीरे-धीरे जब रोग दूर होने लगता है, तो क्रमशः वही मिसरी मीठी लगने लगती है। उसी प्रकार अनर्थग्रस्त होनेके कारण इच्छा न होनेपर भी यदि कृष्णनाम एवं कृष्णकी सेवा की जाए, तो क्रमशः बहिर्मुखता दूर होने लगती है तथा संसारके प्रति आसक्ति कम होने लगती है। फलस्वरूप भगवानके नाम एवं उनकी सेवामें रुचि होने लगती है। उस समय कृष्णनाम-माधुर्य स्वयं ही प्रकाशित होकर हमें चिन्मय इन्द्रियोंके द्वारा भगवानकी सेवामें नियुक्त कर देते हैं।

प्र. ११२—जागतिक असुविधा उपस्थित होनेपर भक्तको क्या करना चाहिए?

उ.—सब भगवानकी इच्छा है। अतः असुविधा होनेपर उन्हें सहन करते हुए भगवानकी कृपाकी प्रतीक्षा करनी चाहिए। नृसिंहदेव सर्वदा ही अपने भक्तोंकी समस्त प्रकारके कष्टोंमें सहायता करते हैं। अतः भक्ति करते हुए हमें अपने पालन एवं रक्षाकी चिन्ता नहीं करनी चाहिए। भगवानके शरणागत हो जानेसे भक्तोंके सभी प्रकारके कष्ट दूर हो जाता है। (क्रमशः)

रथारूढस्यारादधिपदवि नीलाचल-पते-
रदभ्र-प्रेमोर्मि-स्फुरित-नटनोल्लास-विवशः ।
सहर्षं गायद्भिः परिवृत-तनुर्वैष्णव-जनैः
स चैतन्यः किं मे पुनरपि दृशोर्यास्यति पदम्।।

वे श्रीचैतन्यमहाप्रभु मेरे नेत्रोंके सामने फिर भी पधारेंगे क्या? जो कि रथमें विराजमान श्रीजगन्नाथदेवके निकटवर्ती मार्गमें, अतिशय प्रेमकी तरङ्गोंसे स्फूर्ति पानेवाले, नृत्यके उल्लासके अधीन हैं, अर्थात् श्रीजगन्नाथकी यात्रामें रथके सामने प्रेममें विभोर होकर जो नृत्य करते रहते हैं, एवं हर्ष पूर्वक नामसंकीर्तन करनेवाले वैष्णवजनोंके द्वारा जो चारों ओरसे घिरे हुए हैं। ***(श्रीलरूप गोस्वामी)***

श्रीगुरु–परम्परा और सम्प्रदाय–प्रणाली

[वर्ष ४७, संख्या ३, पृष्ठ ६२ से आगे]

—ॐविष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज

असाम्प्रदायिक व्यक्ति कौन है, वह कहाँसे आया? क्या वह आकाशसे टपका या जमीनको फाड़कर निकला? दल करनेकी आवश्यकता है, परन्तु उस दलकी कोई महिमा होनी चाहिए। दलका एक पूर्व इतिहास होना चाहिए कि उसने कौन–कौनसे अच्छे कार्य किए। जो सबसे अच्छे कार्य एवं न्यान्य–नीतिके आदर्शोंका मूल्य समझते हैं, वे ही सारे संसारका तथा अपना भी कल्याण चाह सकते हैं। Christianity में एक शब्द पाया जाता है Sectarian thought। इस शब्दकी अनेक लोग अनेक प्रकार आलोचना करते हैं। वास्तवमें Sectarian thought का सम्बन्ध नास्तिक दलसे है। स्वयं भगवानकी जो सद् गुरुपरम्परा है, उसे वे समझ नहीं पाये, वे सदा–सर्वदा अन्यायकारी, असत् गुरुपरम्पराकी समालोचना ही करते रहते हैं। अच्छे विचार उन्होंने कभी सुने ही नहीं। इसीलिए वे सद् गुरुपरम्परासे द्वेष करते हैं। आजकल जगतमें सम्प्रदाय एवं साम्प्रदायिक शब्दोंकी अनेक प्रकारकी मुखरोचक (मनको अच्छे लगनेवाली) आलोचनाएँ हो रही हैं। ऐसे नास्तिक लोग सबकुछ करेंगे, परन्तु धर्मका अनुष्ठान ही नहीं करेंगे, यही है उनकी प्रतिज्ञा। जो धर्म झगड़ा, वाद–विवादसे सबकी रक्षा करता है, उसीको नहीं मानेंगे। उसके अतिरिक्त सबकुछ मानेंगे। वर्तमान समयमें नास्तिक जगतकी ऐसी दुर्दशा हो रही है। परन्तु सनातन आर्य–ऋषिलोग ऐसी बातोंको नहीं मानते।

जो नीति–आदर्शोंका मूल्य समझते हैं, वे ही सत्सम्प्रदायभुक्त (सत्सम्प्रदायके अनुगत) हैं। जगद्गुरु श्रीलभक्तिविनोद ठाकुर जो कि ब्रिटिश गवर्नमेन्टके डी. एम. थे, उन्होंने जो तथ्य एवं तत्त्वदर्शन लिखा है, उसमें वे लिखते हैं कि सत्साम्प्रदायिकता आर्य– ऋषिमुनियोंका गौरव है। सत्साम्प्रदायिकता क्या है? वेद, वेदान्त, गीता, उपनिषद्, भागवत, रामायण, महाभारत इत्यादि जितने भी ग्रन्थ हैं, जो इन ग्रन्थोंके तत्त्वको समझते हैं, वे ही सत्सम्प्रदायभुक्त हैं। यह गौरवका विषय है। मैं नीति–आदर्श नहीं मानता और न किसीकी बात सुनता हूँ, तो क्या मेरी बात समाज मानेगा? मैं माता–पिता, ऋषि–मुनि, धर्म इत्यादि कुछ नहीं मानूँगा, किन्तु यदि विचार करूँ कि सब मेरी बात मानें तो क्या यह सम्भव है? इन सब विषयोंकी आलोचना बहुत सुन्दर ढङ्गसे शास्त्रोंमें की गई है। नास्तिक लोग कहते हैं, मुझे मानो, मेरी बात सुनो। एक प्रसिद्ध Dramatist (अभिनेता) कह रहा है—मैं जो कुछ करता हूँ, तुम उसे मत करो। मैं जो बोलता हूँ, उसे सुनो। क्या समाजमें ऐसे विचार चल सकते हैं? Don't follow me, but follow my words. वर्तमान समाजकी ऐसी दुरवस्था है। मैं कुछ पालन नहीं करूँगा और न ही कुछ कष्ट सहन करूँगा, परन्तु सोचता हूँ कि सब मेरी बात स्वीकार करेंगे। ऐसे विचार जगतमें नहीं चल सकते। जगतमें अपनी बात स्वीकार करवानेके लिए पहले मुझे स्वयं नीति–आदर्श अर्थात् शास्त्रकी बातोंके अनुसार आचरण करना पड़ेगा, तब मैं जो कुछ कहूँगा, जगतके लोग उसे स्वीकार करेंगे।

इस विषयमें स्वयं श्रीचैतन्यमहाप्रभु कह रहे हैं—

आपनि आचरि' धर्म जीवेरे शिखाय।
आपनि ना कैले धर्म शिखान न जाय॥

अर्थात् स्वयं धर्मका आचरण करके जीवोंको उसकी शिक्षा देनी चाहिए। स्वयं आचरण किए बिना हम किसीको धर्म नहीं सिखा सकते हैं। First pracitce yourself, then preach. आजकल नास्तिक लोग अनेक प्रकारसे संसारके भोलेभाले जीवोंको कुमार्गपर चला रहे हैं। शास्त्रकी बातोंमें भूल नहीं है, भूल हो रही है हमारे समझनेमें। सद्गुरु परम्पराका उद्देश्य जगतमें शान्ति स्थापन करना तथा शास्त्रोंकी सत्य बातोंको लोगोंतक पहुँचाना है। "सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् मा ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।" सत्य बोलो, प्रिय बोलो, परन्तु यदि सत्य अप्रिय हो, तो उसे नहीं बोलना चाहिए। यह साधारण नीतिजगतकी बात है। किन्तु परमार्थ जगतमें यह स्वीकार्य नहीं है। क्यों? सत्य यदि अप्रिय हो, तो भी उसे बोलना ही चाहिए, जिससे कि इस प्रकारकी भूल न हो। यदि मैं जानसुनकर भी दूसरेके कल्याणजनक सत्य बातको नहीं कहता हूँ, तो मेरा अकल्याण एवं जगतवासियोंका अकल्याण निश्चित है। यदि मैं सत्य बात न कहूँ, तो सत्यकी हानि होती है। कोई व्यक्ति बोला कि पापसे घृणा करो, पापीसे नहीं। यह कैसी बात है? पापीको छोड़कर पापसे घृणा किस प्रकार की जा सकती है? जो पाप करता है, उसीको ही सजा मिलती है। पाप क्या ऐसी वस्तु है कि वह पेड़की टहनियोंमें यहाँ-वहाँ घूमता रहता है? अन्यायके लिए अन्याय करनेवालेको सजा दी जाती है। हम जो भी विचार करेंगे, वह दार्शनिक विचार एवं तत्त्वदर्शनके अनुसार होना चाहिए। अपने मनसे कुछ भी विचार करनेसे ही काम नहीं चलेगा। सब विषयमें विचार है। मैं किसीको भी नहीं मानता, सब मुझे माने—यह कभी नहीं होगा।

वेदाः प्रमाणं स्मृतयः प्रमाणं
धर्मार्थयुक्तं वचनं प्रमाणम्।
एतं प्रमाणं न भवेत् प्रमाणं
कस्तस्य कुर्याद् वचनं प्रमाणम्॥

वेद, स्मृतियाँ एवं धर्मार्थयुक्त वचन प्रामाण है। यदि कोई इन्हें प्रमाणके रूपमें स्वीकार नहीं करता तो उसकी बातोंको कौन प्रामाणिक मानेगा? जो व्यक्ति सभीकुछ अस्वीकार कर देता है, केवल अपने मनकी अनुकूल बातोंको ही स्वीकार करता है, ऐसा नहीं चलेगा। शास्त्रकी बातोंको मानना होगा। परम सत्य वस्तु भगवानको मानना होगा। तत्त्वदर्शनरहित मूर्ख व्यक्ति ही व्यर्थ तर्क-वितर्क करते हैं, जिसका कोई मूल्य नहीं है।

यमराज नचिकेतासे कह रहे हैं—***"नैषां तर्केण मतिरापनेया।"*** तुम व्यर्थ ही तर्क मत करो। यदि सत्य ही वह शुष्क तर्क होगा, तो उसका कुछ भी फल नहीं दिखाई पड़ेगा। यह सुनकर नचिकेता कह रहे हैं—"मैं आपसे तर्क नहीं कर रहा हूँ। मैं जानता हूँ कि आप मेरे गुरु हैं, मेरे पिता हैं, मुझसे श्रेष्ठ हैं। अतः मैं आपसे मात्र तत्त्वसिद्धान्त जानना चाहता हूँ।" यह सुनकर यमराजने प्रसन्न होकर नचिकेताको तत्त्वज्ञान प्रदान किया। यमराजका नाम सुनते ही हम भयभीत हो जाते हैं, किन्तु भयभीत होनेका कोई कारण नहीं है। क्योंकि जो इतने बड़े शासक हैं, वे एक परम वैष्णव भी हैं। द्वादश महाजनोंकी श्रेणीमें यमराज भी एक हैं।

स्वयम्भुर्नारदः शम्भुः कुमारः कपिलो मनुः।
प्रह्लादो जनको भीष्मो बलिर्वैयासकिर्वयम्॥

अर्थात् ब्रह्मा, नारद, शिव, चतुःसन, कपिलदेव, मनु, प्रह्लाद, जनक, भीष्म, बलि और शुकदेव इत्यादि हम बारह जन ही भागवततत्त्वको जाननेवाले हैं। इस श्लोकमें 'हम' शब्दसे यमराज अपने विषयमें ही कह रहे हैं। वे परम वैष्णव हैं, परम तत्त्वदर्शी हैं। वे अन्याय करनेवालेको सजा प्रदान करते हैं तथा नीति-आदर्शोंपर चलनेवालेको पुरस्कार प्रदान करते हैं। यही नियम है। हम इस नियमको क्यों भुल रहे हैं? (क्रमशः)

श्रीगौराङ्ग-सुधा

(वर्ष ४७, संख्या ३, पृष्ठ ६५ से आगे)

—श्रीपरमेश्वरी दास ब्रह्मचारी

काजीका उद्धार

अब दिन-प्रतिदिन नवद्वीपके सज्जनलोग प्रभुके प्रति अनुरक्त होने लगे। यद्यपि उनके लिए भी प्रभुके कीर्तनके समय द्वार बन्द ही रहता था। तथापि वे प्रभुसे द्वेष नहीं करते थे, बल्कि आपसमें एक दूसरेको सान्त्वना देते हुए कहते—"भाइयो! यदि हमारे हृदयमें भक्ति होगी तो एक दिन हमें निमाइपण्डितके कीर्तन एवं नृत्यका दर्शन अवश्य ही होगा। संसारका उद्धार करनेके लिए ही निमाइपण्डित हमारे नवद्वीपमें अवतरित हुए हैं। अतः हमें पूर्णरूपसे विश्वास रखना चाहिए कि जो कीर्तन-नृत्य आज घरके भीतर द्वार बन्दकर हो रहा है, एक दिन सभीके समक्ष घर-घर एवं नगर-नगरमें होगा। प्रातःकालसे सन्ध्या-कालतक वे लोग प्रभुके दर्शनोंके लिए जाते रहते थे। प्रभुके लिए वे फल, वस्त्र, दूध, दही एवं अलङ्कार इत्यादि ले जाते थे। प्रभु भी प्रसन्नतापूर्वक उनको आशीर्वाद व उपदेश प्रदान करते—"आपलोग सदा-सर्वदा कृष्णनाम महामन्त्रका कीर्तन कीजिए।" ऐसा कहकर प्रभु स्वयं कीर्तन करने लगते—

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥

प्रभुके श्रीमुखसे महामन्त्र सुनकर लोग प्रसन्न हो जाते तथा प्रभुको दण्डवत् प्रणामकर महामन्त्रका कीर्तन करते-करते अपने घर चले जाते। घर जाकर सभी लोग सन्ध्याके समय सपरिवार उच्च एवं मधुर स्वरसे कीर्तन करने लगते। इस प्रकार सारे नवद्वीपमें नगर-नगर एवं घर-घरमें प्रभु श्रीशचीनन्दन महामन्त्रका कीर्तन करवाने लगे। उन्हें मार्गमें कहींपर भी कोई भी मिल जता, तो वे दीन-हीन भावसे नम्रतापूर्वक कहते—"भाई! कृष्णका भजन करो।" प्रभुकी इन दीनतापूर्ण तथा नम्रतापूर्ण वचनोंको सुनकर एवं प्रभुका दर्शनकर लोग मोहित हो जाते तथा आनन्दसे रोते-रोते कीर्तन करने लगते। उन लोगोंके घरोंमें देवीजागरणके लिए जो मृदङ्ग-करताल इत्यादि वाद्ययन्त्र थे, अब वे लोग हरिनाम संकीर्तन करते समय उनका प्रयोग करने लगे। एक दिन एक घरमें मृदङ्ग एवं करतालके साथ सुमधुर स्वरसे कीर्तन हो रहा था, उसी समय श्रीधर वहाँसे गुजर रहे थे। कीर्तन सुनकर वे आनन्दसे नृत्य करने लगे। उन्हें उन्मत्त होकर नृत्य करते देख घरके सभी सदस्य बाहर आ गए। वे श्रीधरको घेरकर कीर्तन करने लगे तथा श्रीधर भावविह्वल होकर नृत्य करते-करते जमीनपर लोट-पोट खाने लगे। आस-पासके कुछ पाषण्डी लोग यह दृश्य देखकर हँस रहे थे। उनमेंसे एक पापी श्रीधरका उपहास करते हुए कहने लगा—"देखो भाइयो! देखो! सब्जी बेचनेवाला यह श्रीधर भी परम वैष्णव हो गया है। पहननेके लिए इसके पास ढंगके कपड़े नहीं हैं, खानेके लिए घरमें एक दाना अन्न नहीं है। परन्तु लोगोंको दिखा रहा है कि मैं कितना महान वैष्णव हूँ।"

परन्तु इन सब बातोंसे बेखबर भक्तलोग उत्साहसे एवं आनन्दसे कीर्तन करते रहते थे। एक दिन उसी मार्गसे वहाँका काजी गुजर रहा था। जब उसके कानोंमें कीर्तन एवं मृदङ्ग-करतालकी ध्वनि पहुँची, तो वह अपने दोनों कान पकड़कर 'अल्लाह' को स्मरण करने लगा। उसने क्रोधित

होकर अपने सैनिकोंको आदेश दिया कि इस घरमें जो कीर्तन करता हुआ मिले, उसे पीटो। आदेश पाकर सैनिक घरमें घुस गए। उन्होंने घरके सदस्योंको पीटना आरम्भ कर दिया। वे स्त्रियोंसे दुर्व्यवहार भी करने लगे। उसी समय क्रोधित होकर काजीने मृदङ्गको जमीनपर पटककर फोड़ दिया तथा बोला—"खबरदार! आजके बाद यदि किसीने नवद्वीपमें हिन्दुआनी अर्थात् भजन-कीर्तन किया तो उसे कठोरसे कठोर सजा दूँगा। आज तो मैं क्षमा कर रहा हूँ, परन्तु फिर यदि कोई मुझे कीर्तन करता हुआ मिल गया तो मैं उसकी जाति ही ले लूँगा अर्थात् जबरदस्ती उसे मुसलमान बना दूँगा।" ऐसा कहकर वह चला गया।

ऐसी परिस्थितिमें कुछ पाषण्डी हिन्दूलोग भी वैष्णवोंका ही दोष दिखाते हुए कहते—"अच्छा हो रहा है। ऐसे पाखण्डियोंके साथ ऐसा ही व्यवहार होना चाहिए। क्या भगवानका नाम मन ही मन नहीं किया जा सकता? क्या मृदङ्ग एवं करताल बजाकर ही भगवानका नाम होता है? किस शास्त्रमें लिखा है कि भगवानका नाम इस प्रकार करना चाहिए? ये लोग वेदशास्त्रोंकी अवज्ञा करते हैं। वेदोंके विरुद्ध आचरण करनेवालोंको ऐसा ही दण्ड भोग करना पड़ता है। इन लोगोंकी ऐसी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है कि इन लोगोंको न तो अपने प्राणोंका भय है, न ही अपनी जाति नष्ट होनेका भय। इन पाखण्डियोंका मुखिया निमाइपण्डित भी बहुत अहङ्कारी है। वह अपनेको न जाने क्या समझता है? अच्छा हुआ, अब उसके अहङ्कारको भी काजी ही नष्ट कर देगा। इसके अतिरिक्त वह नित्यानन्द जो सारे नवद्वीपमें मस्त होकर यहाँ-वहाँ घूमता-फिरता है, किसी दिन काजीके सामने पड़ गया तो काजी उसकी सारी मस्ती बाहर निकाल देगा। अपनेको तो ये लोग वैष्णव कहते हैं, परन्तु करते हैं अवैष्णवोंका कार्य। हम जब इन्हें शास्त्रोंकी सत्य बातें कहते हैं, तो ये लोग हमें पाषण्डी कहते हैं। धन्य हैं ये ढोंगी।"

एक ओर काजीका भय तो दूसरी ओर पाषण्डियोंकी ऐसी कटुक्तियोंसे भक्तलोग बहुत दुःखी हो गए तथा वे प्रभुके पास जाकर कहने लगे—"हे प्रभो! काजीके भयसे हमलोग यहाँ कीर्तन नहीं कर पा रहे हैं। अतः हमलोग नवद्वीप छोड़कर कहीं अन्यत्र जाकर कीर्तन करेंगे।"

नवद्वीपमें अपना कीर्तन बन्द होनेकी बात श्रवणकर क्रोधके कारण प्रभुने रौद्ररूप धारण कर लिया। भयङ्कररूपसे सिंहकी भाँति गर्जन करते हुए बोले—"श्रीपाद नित्यानन्द! आप तैयार हो जाइए तथा सभी वैष्णवोंको एकत्रित कीजिए। मैं आज सारे नवद्वीपमें नगर संकीर्तन करूँगा। मैं देखना चाहता हूँ कि किसमें ऐसा सामर्थ्य है कि जो मेरा संकीर्तन बन्द करा सके। मैं आज सभीके समक्ष काजीका घर-द्वार जला दूँगा। फिर देखता हूँ कि उसका बादशाह मेरा क्या बिगाड़ सकता है? आजतक तो मैं घरके भीतर ही कीर्तन करता था, परन्तु आज मैं नवद्वीपके नगर-नगर एवं गली-गलीमें प्रेमाभक्ति बरसाऊँगा, जिससे पाषण्डीलोग जो मेरे भक्तोंका अपमान करते हैं, आज उनका अन्त हो जाएगा अर्थात् प्रेमकी वर्षामें भीगनेके कारण उनकी पाषण्डता धुल जाएगी तथा वे भी भक्त हो जाएँगे। अतः आज जो कृष्णकी महिमाका दर्शन करना चाहता है, वह सन्ध्याके समय एक प्रदीप लाना। मैं आज आपलोगोंके सामने ही काजीको कठोर दण्ड दूँगा। अनन्त ब्रह्माण्ड मेरे सेवकके दास हैं। अतः मेरे रहते हुए किसीको भी भयभीत होनेकी आवश्यकता नहीं है। शामके समय भोजनकर सभी शीघ्र ही यहींपर उपस्थित होना।"

यह सुनकर सभी नवद्वीपवासी हिन्दूलोग आनन्दसे पुलकित होकर अपने-अपने घरोंको चले गए।

सारे नवद्वीपमें यह खबर जङ्गलमें आगकी तरह फैल गई कि आज निमाइपण्डित सारे नगरमें नृत्य करेंगे। इससे जो लोग प्रभुका नृत्य दर्शन नहीं कर पाते थे, वे अपनेको अति सौभाग्यवान मानने लगे। आनन्दसे सभी लोगोंने अपने घरोंको सजाया तथा घीके दीपक जलाए। सभी उत्कण्ठित होकर सन्ध्याकी प्रतीक्षा करने लगे। निश्चित समयपर लाखोंकी संख्यामें स्त्री-पुरुष-बच्चे-बूढ़े सभी आनन्दसे नाचते हुए हाथोंमें एक-एक प्रदीप लेकर प्रभुके घरपर उपस्थित हुए। सभी भक्तोंको उपस्थित देखकर प्रभु श्रीशचीनन्दन अपने भक्तोंको आदेश देते हुए कहने लगे—"यात्राके आगे अद्वैताचार्यजी स्वयं नृत्य करेंगे तथा एक दल वहाँ मृदङ्ग एवं करतालके साथ कीर्तन करेगा। यात्राके मध्यभागमें हरिदासजी नृत्य करेंगे, कीर्तनीयाओंका एक दल वहाँ उनके साथ कीर्तन करेगा। यात्राके अन्तिम भागमें श्रीवास पण्डितजी नृत्य करेगा। एक दल वहाँपर कीर्तन करेगा।" इस प्रकार संकीर्तन यात्राको तीन भागोंमें विभक्तकर प्रभुने नित्यानन्दजीकी ओर देखा तो वे कहने लगे—"प्रभो! मैं आपको नहीं छोड़ सकता। आप जब आविष्ट होकर नृत्य करते-करते इधर-उधर गिरने लगेंगे, उस समय मैं आपको पकड़ लूँगा। स्वतन्त्ररूपसे नृत्य करनेका सामर्थ्य मुझमें नहीं है। मेरी आन्तरिक अभिलाषा है कि जहाँपर आप रहे, वहींपर मैं भी रहूँ।" ऐसा कहते हुए आनन्दसे पुलकित हुए नित्यानन्दप्रभुके नेत्रोंसे झर-झर अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। यह देखकर प्रभुने उन्हें अपने हृदयसे लगा लिया। उस समय शहरकी अद्भुत शोभा हो रही थी। उसका वर्णन करना भी कठिन है। सारा शहर जलते हुए दीपोंसे जगमग-जगमग कर रहा था। सभीके मुखमें कृष्णनाम था। चारों ओर उल्लास छाया हुआ था। ऐसा लग रहा था जैसे आज कोई बहुत बड़ा त्यौहार हो। ठीक गोधूलिके समय जब सभी लोग उपस्थित हो गए तो प्रभुने हुङ्कार किया। उस हुङ्कारकी ध्वनि सुनकर वहाँ उपस्थित सभीके हृदयमें बहुत उल्लास हुआ। सभीने अपने-अपने प्रदीप जला लिये। जब एक साथ लाखों प्रदीप जल गए तो सारा आकाश प्रकाशमान हो गया। उस समय प्रभुने 'हरि-हरि' कहकर सभी वैष्णवोंको अपने निकट बुलाया तथा प्रेमसे सभीको माला एवं चन्दन प्रदान किया। जैसे ही प्रभु वहाँसे बाहर निकले, लाखों लोग 'हरि-हरि' ध्वनि करते हुए आनन्दसमुद्रमें डूब गए। इस प्रकार संकीर्तन यात्रा वहाँसे आगे चल पड़ी। कुछ चोरोंका विचार था कि आज सभी लोग नगर-संकीर्तनमें हैं, अतः आज अच्छी प्रकारसे चोरी करेंगे, परन्तु जैसे ही उन्होंने नगर संकीर्तन-यात्राका दर्शन किया, तो उनका चित्त परिवर्तित हो गया। वे भी भावविभोर होकर यात्रामें सम्मिलित होकर कीर्तन एवं नृत्य करने लगे। स्त्रियाँ घरोंकी छतोंसे संकीर्तन यात्राके ऊपर फूल, खिल एवं पैसे बरसा रही थीं, जिससे सम्पूर्ण मार्ग फूल, खिल एवं पैसोंसे भर गया। यात्रा धीरे-धीरे गङ्गाजीके किनारे-किनारे चल रही थी। यात्राके अग्रभागमें अद्वैताचार्य कुछ भक्तोंको साथ लेकर नृत्य करते हुए चल रहे थे। मध्यभागमें हरिदासजी कृष्णप्रेममें उन्मत्त होकर नृत्य कर रहे थे। यात्राके अन्तिम भागमें श्रीवासजी आनन्दविभोर होकर नृत्य कर रहे थे। मुरारी, मुकुन्द, रामाइ, गोविन्द, वक्रेश्वर एवं वासुदेव आदि भक्त प्रभुको घेरकर आनन्दपूर्वक कीर्तन कर रहे थे। जिसे गाना नहीं आता था, प्रभुकी कृपासे वह भी आज मधुर कण्ठसे कीर्तन कर रहा था। उस नगर संकीर्तनका दर्शन करनेके लिए ब्रह्मा, शिव, वरुण, कुवेर, यमराज, सोम आदि देवता भी अपने वाहनोंपर सवार होकर अपने गणोंके साथ वहाँपर उपस्थित हो गए थे। परन्तु प्रभुका नृत्य दर्शनकर वे सभी

मूर्च्छित हो गए। कुछ क्षण पश्चात् जब उन्हें होश आया तो, वे भी मनुष्योंका वेश धारणकर संकीर्तनमें सम्मिलित होकर नृत्य एवं कीर्तन करने लगे। वैष्णवोंको निर्भीक होकर आनन्दपूर्वक नृत्य एवं कीर्तन करते देखकर पाषण्डियोंके हृदयपर साँप लोटने लगा। उन्हें वैष्णवोंके आनन्दसे ईर्ष्या होने लगी। वे आपसमें कहने लगे—"कीर्तन एवं मृदङ्ग इत्यादिके कोलाहलको सुनकर काजी अपने सैनिकोंके साथ आने ही वाला होगा। तब देखेंगे कि कीर्तन कैसे होता है? उस समय इनमेंसे एक भी दिखाई नहीं देगा। सभी लोग यहाँ-वहाँ छिप जाएँगे या काजीके हाथ कठोर दण्ड पाएँगे। कोई अपने प्राण बचानेके लिए गङ्गामें कूद जाएगा। उस समय हमलोग आनन्दसे तालियाँ बजाएँगे।" उस समय कुछ लोग कहने लगे—"अभी तक काजी नहीं आया। चलो, हम स्वयं ही जाकर उससे शिकायत करते हैं।"

कुछ कहने लगे—"हम सब दौड़कर इन पागलोंके पास जाएँ तथा शोर मचाएँ कि 'काजी आ गया—काजी आ गया'। यह सुनकर उस समय भयभीत होकर ये लोग सिरपर पैर रखकर भाग जाएँगे, वहाँपर एक भी नहीं दिखाई देगा।" इस प्रकार वे पाषण्डी लोग जो हिन्दू ही थे, आपसमें अनेक प्रकारकी कुयुक्तियाँ कर रहे थे। परन्तु इन सबसे बेखबर प्रभुके गण आनन्दसमुद्रमें डुबकियाँ लगा रहे थे। वे आत्मविभोर होकर नृत्य कर रहे थे। भक्तोंके मुखसे कीर्तन सुनकर प्रभु भावविभोर होकर नृत्य कर रहे थे। उनके श्रीअङ्गमें अष्टसात्त्विक भाव प्रकट हो रहे थे। उनके नेत्रोंसे अविरल अश्रुधारा ऐसे प्रवाहित हो रही थी, जैसे गङ्गा-यमुनाकी धारा। नृत्य करते हुए वे कभी इधर गिर पड़ते तो कभी उधर। महाबली नित्यानन्दप्रभु भी उन्हें सम्भालने असमर्थ हो जाते थे। प्रभुके ऐसे भावोंको देखकर सभी लोग परस्पर कहने लगे—"ये निमाइपण्डित साक्षात् नारायण ही हैं।" कोई कहने लगा—"ये निमाइपण्डित कोई साधारण व्यक्ति नहीं हैं, इनके लक्षणोंको देखकर ऐसा लगता है कि जैसे ये नारद, प्रह्लाद या शुकदेव गोस्वामीमेंसे ही कोई हैं। इस प्रकार सभी लोग अपने-अपने भावानुसार प्रभुके विषयमें विचार करने लगे। धीरे-धीरे प्रभु काजीके घरकी ओर बढ़ रहे थे। काजीने जब मृदङ्ग, करतालकी ध्वनि तथा कीर्तनका कोलाहल सुना तो वह अपने सेवकोंसे पूछने लगा—"यह गाना-बजाना कैसा हो रहा है? क्या किसीका विवाह हो रहा है या भूत-प्रेतोंकी पूजा हो रही है?" यह सुनकर जब काजीके सेवक पता लगानेके लिए गए, तो देखा कि अरबों लोग आनन्दमें मत्त होकर नृत्य एवं कीर्तन कर रहे हैं। उनमेंसे सैकड़ों युवा लोग क्रोधित होकर 'काजीको मारो, काजीको मारो' कहकर चिल्ला रहे थे। यह देखकर भयभीत होकर सभी सैनिक वहाँसे भाग गए तथा काजीके पास आकर बोले—"असंख्य लोग यहीं आ रहे हैं, आपको तथा हमें मारनेके लिए। वे बहुत क्रोधमें हैं। अतः हमें शीघ्र ही यहाँसे भाग जाना चाहिए, तभी हमारे प्राण बच सकते हैं।" यह सुनकर काजी भयभीत होकर अपने सेवकोंके सहित घरके भीतर जाकर ऐसे छिप गया जैसे सर्पके भयसे मेढ़क एवं चूहे इत्यादि भाग जाते हैं। (क्रमशः)

महाम्भोधेस्तीरे कनकरुचिरे नीलशिखरे
वसन् प्रासादान्तः सहज-बलभद्रेण बलिना।
सुभद्रा-मध्यस्थः सकल-सुर-सेवावसरदो
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे॥
(श्रीचैतन्यमन्महाप्रभुके मुखपद्मसे विनिर्गत)

महासमुद्रके तीरपर सुवर्णके समान सुन्दर नीलाचलके शिखरमें, अपने बड़ेभाई प्रबल बलदेवजीके साथ, अपने मन्दिरमें निवास करनेवाले, एवं सुभद्रा जिनके बीचमें विराजमान है तथा जो समस्त देवताओंको अपनी सेवाका अवसर देते रहते हैं, वे ही श्रीजगन्नाथदेव मेरे नेत्रमार्गके पथिक बन जायँ।

ओ हंस! इतना कहना जरा

[वर्ष ४७, संख्या ३, पृष्ठ ६७ से आगे]

—डा. मधु खण्डेलवाल 'साहित्याचार्य'

हे मधुरभाषी सखे! जिन्हें देख तुम परमानन्दमें सरोबार हो जाओ, उन्हें आप श्रीकृष्ण जान लेना। जब उनको मथुरा नागरियोंके साथ विलासमें मुग्ध-चित्त देखो, तो इन गंवारिन गोपियोंकी बात उनके कानमें नहीं डालना। अरे जिसका चित्त अमृत पान कर रहा होगा, उसे छाछ क्यों अच्छी लगेगी भला! हाँ, जब वृन्दावनकी धारा-वाही स्मृति लहरी प्रवाहित हो रही हो, जब कोकिलाओंकी उच्च ध्वनि व्याप्त हो रही हो, जब कुटज आदि पुष्पोंकी मनोरम सुगन्ध प्रवाहित हो रही हो, तब हमारी बातें उनसे निवेदन करना। कहना, हे धीरललित! हे गोपीरमण! आपकी अतिशय प्रियतम राधाकी सखी सुवर्ण मण्डित ललिता आपके श्रीचरण-कमलोंकी सुवर्ण मण्डित पाद-पीठके प्रान्तदेशको नमस्कारकर यह निवेदन करती हैं—हे गोधन-प्रिय श्रीगोपाल! आपने जिस कपिला गायको इतने स्नेहसे पाला था, वह अब प्रथम बार गर्भिणी हो गई है, स्तनवृद्धिके भारसे उसका नितम्ब देश अति रोगाक्रान्त हो रहा है। हे गोपीरमण! आप जिस माधवी लताको आम्रवृक्षका प्रिय सहचरी बना गये थे, वह आपके विरहमें मकरन्दधारा वर्षणके व्याज (छल) से आपके विरहमें रोते हुए हम सबको भी रुला रही है। हे मधुमथन! जबसे गान्दिनीनन्दन अक्रूरने गोपगणोंके परमानन्दके निधानका हरण कर लिया है, तबसे रसवार्ता विनष्ट हो गई है, गोकुल- लीलाओंकी स्मृति-गर्भमें विलीन हो गई है। सर्वत्र शून्यता प्राप्त हो गई है, वृन्दावन तप्त हो रहा है, लताएँ विष उगल रही हैं, हम तो ग्रामवासिनियाँ हैं, ग्वालिनियाँ हैं, हम चतुर नहीं—क्या हो गया अब? कहाँ आप इतने व्याकुल होकर वृक्षावृत कुञ्जोंमें प्रतीक्षा कर-करके सारी रात जगा करते थे—पर आपका दोष ही क्या है, दोष तो आपके श्यामवर्णका है, शिशु-कोकिल कौओंके द्वारा पालित होती है, पर पंख निकल आनेपर वह कौओंको छोड़कर चली जाती है—यह तो श्यामवर्णका नैसार्गिक दोष है। हे वृन्दावना-धीश्वर! यह तो विरह रसमय श्रव्य नाटकका पूर्वरङ्ग था। अब आगे श्रवण करो—कभी क्या उस दीन राधाका दो वर्णवाला नाम कभी आपको याद आता है? हे कुञ्जघाटीस्थित केलिभवन-बिहारि! हाय! हाय!! जिसने आपके चरण-कमलोंमें अपना काय-मन-इन्द्रिय सर्वस्व अर्पण कर दिया था, जब उसकी यह अवस्था है, तो अन्यान्य ब्रजगोपियोंके दुर्भाग्यका क्या वर्णन किया जाय? यमराजकी भी तो हमपर कृपा नहीं हो रही, आपके दर्शनोंके बिना वह अपने दिन कैसे गूजारे? यमराजने भी हमसे द्वेष ठान लिया है। क्योंकि राधाके आँसुओंसे गोष्ठमें एक अनिर्वचनीय नदी प्रवाहित हो रही है, जिसकी तरङ्गोंसे यमुना तिरस्कृत हो रही है। यमुनाकी लाघवताको देखकर वह अभिमानी यम राधाकी मृत्युकी प्रार्थना भी नहीं सुनता। राधा अपना हित-अनहित नहीं समझ पा रही है, पतङ्गीकी भाँति आपकी प्रेमाग्निमें प्रविष्ट होनेके लिए बार-बार जल रही है।

अहो! वह त्रिवक्रा कुब्जा धन्य है जो अपना मनोनुकूल शरीर प्राप्तकर स्वच्छन्द विहार करती हुई निवास कर रही है। मेरी सखी राधाके तो पुण्य ही नष्ट हो गए जो आपके हृदयमें एक

क्षण भी प्रवेश न कर सकी। आप त्रिभङ्गी, वह त्रिवक्रा, वही आपके अनुकूल है। अभी भी जब कहीं वेणुकी आवाज आती है, तो वह पृथ्वीपर गिर जाती है। सास, ननद उसे चारों ओरसे घेर लेती हैं और मूर्च्छाके कारणोंकी अनेक प्रकारसे विवेचना करने लगती हैं। कोई कहता है—इसे किसी भूतका आवेश है क्या? अथवा क्रूर सर्पने इसे काट खाया है, कहीं अपस्मार (मिरगी) रोगके दौरेसे तो भ्रष्ट-मति होकर नहीं गिर पड़ी है।

पुनः आपका कोई कुशल संवाद भी तो नहीं मिल रहा। उसके अन्तस्थलमें हमेशा आपके अमङ्गलकी आशा रहती है, कंस जरासन्धादिके बीच आप कुशलसे तो हैं न? कभी वह सिद्ध-वाक् महापुरुषोंसे पूछती है—वे मुझे कब दर्शन देंगे, कभी मांत्रिक जनोंके पास जाती है, कभी-कभी वैद्योंसे अपनी वेदनाका उपचार पूछती है, कभी आपके दर्शनकी अभिलाषासे गिरिजा-कात्यायनीकी भक्ति-श्रद्धा सहित पूजा करती है। कभी आपका दासत्व प्राप्त करनेके लिए सदाशिवको मनाती रहती है। कभी तमालवृक्षके अंकुरोंका मर्दन करके उनके रससे आपकी मधुर-मूर्त्ति चित्रित करती है और उस मूर्त्तिमें जैसे ही भुज-लता अर्पित करती है, वैसे ही धरणीपर गिर जाती है।

हे मुरारे! मेरी वह मूढ़ सखी राधा आपकी अखण्ड स्मृतिके मदमें आपमें ही तादात्म्यताको प्राप्त हो गई है, उसकी विरह-पीड़ा एक क्षणके लिए भी निवृत्त नहीं होती। वह समझती है कि आप विदीर्ण-हृदय हैं। इसलिए वह भी विदीर्ण-हृदया होती जा रही है। आपका हृदय द्रवित नहीं होता और वह भी वज्रके समान कठिन होती जा रही है। आप समाधिपरायण योगियोंको प्रत्यक्षीभूत नहीं होते, इसलिए वह इससे भी गुरुतर समाधिकी चेष्टाकर योगाभ्यास कर रही है। विरहव्यथिता वह पुकारती रहती है—हे मुरारे! हे श्यामसुन्दर! हे वृन्दावन नव-कन्दर्प! हे इन्द्रनीलमणिवरेण्य! हे देवगण मुकुटमणे! हे व्रजजन-आनन्ददाता! हे नन्दीश्वर-प्रिय! हे नन्दनन्दन! हे सर्वदुःखहारि!

अतिक्षीणा उस राधाका शरीर आपकी विरहरूपी दावाग्निसे धधक रहा है। मदनरूप व्याधके पाँच-बाणोंसे उत्पीड़ित हो रही है। अब उससे प्राणरूपी हरिण कहाँ बच पायेगा। वह दशा आप जैसे अप्राकृत-मदनके द्वारा की गई है। प्राकृत मदन उसका क्या बिगाड़ सकता है? वह तो उसकी एक दृग्-भङ्गीसे ही पराभूत हो जाता है।

आपने पता नहीं कैसी माया रच रखी है? आपने जिस पवन-व्याधि उद्धवको भेजा था, तबसे तो उसका सन्ताप और भी दुगुना हो गया है। अब तो वह उद्धव मंत्री बन गया है, वह हमारे लिए मङ्गल कामना क्यों करने लगा? यमुना वृन्दावनसे मथुरा जाती है, पर आखिर है वह भी तो यमकी बहन ही, हमारी दुरवस्था वह आपसे क्यों कहने लगी? कितनी नीरस हो गयी है राधा, उसका रङ्ग और सौरभ उड़ गये हैं। भूमिपर लेटनेके कारण वह क्षत-विक्षत हो गयी है, अबतक तो मिलनकी आशासे वह जीवन धारण कर रही थी, पर अब तो वह अवधि बीत गयी है, अतः आशा त्यागकर आम्रमुकुल पर दृष्टि जमाये रहती है। अब मृत्युका भी उसे भय नहीं है। सभी सहचरियाँ इस असाध्य रोगका उपचार कर करके थक चुकी हैं। नासिका-रन्ध्रोंमें जो रुईका फोता लगा है, उसके हिलनेसे ही पता चलता है कि वह जीवित है। अब भी आपसे आशा रखती है, धिक्कार है उसे।

हे रासक्रीड़ारसिक! आपने पहले नित्य-नव-प्रेमकी लहरियोंसे उसे बाँधा था, अब इतने लापरवाह हो गये। दिव्योन्मादवश उसके नेत्र घूर्णित हो रहे हैं, जब वह उद्विग्नगति होकर विलाप करती है, तब हे नाथ! स्वयं आप ही

आकर अपने कानोंसे सुनिए।

वह कहती है—हे सखि! देख, कृष्णने मेरा कैसा उपहास किया है, कितना अनिवर्चनीय प्रेम था मुझे उनसे। मैंने उनके लिए कुलधर्म, नारीधर्म एवं मर्यादा सबका परित्याग कर दिया। यदि सखि! उनके पास मैं यह संदेशा भेजूँ कि मैं आपसे बहुत प्रेम करती हूँ, तो इसमें हल्कापन आता है। यदि यह कहूँ कि आपके बिना जीवित नहीं रह सकती और यह प्रेमका विज्ञापन होगा। हे राजहंस! उनसे कहना कि वह मादनाख्य-महाभाव-स्वरूपिणी- कृष्णगतप्राणा मुझसे कहती है—हे ललिते! जब श्रीकृष्ण ब्रजमें थे, तो ये कुञ्जसमूह मेरे लिए कितने आनन्दका विधान करते थे, किन्तु देखो तो सही, अब ये ही कुञ्ज-लताएँ मुझे कितना सन्तप्त कर रही हैं। उनके विपरीत होनेसे सब विपरीत हो गये है, उन लीलाविलासरूप कटाक्षकर्त्ता कृष्णमुरारीका दर्शन मुझे अब कब होगा?

पर हे सखि! वे निष्ठुर शिरोमणि! वे स्वप्नमें आकर बलपूर्वक मेरे साथ रमण करते हैं। जब छोड़कर चले ही गये हैं, तो स्वप्नमें आनेका क्या प्रयोजन? तुम उस स्वच्छन्दाचारी चञ्चलहृदयको ऐसा करनेसे रोको न, विलासोन्मत्त मेरे किङ्किणी-गुणको क्यों छेड़ता है? कभी-कभी तो गोवर्धनके वन प्रान्तमें आकर क्रीड़ा-कलहका प्रत्यक्षरूपसे प्रलाप करने लगते हैं। जब मैं उनको पकड़ना चाहती हूँ, तो वे धूर्त्त-शिरोमणि पता नहीं कहाँ चले जाते हैं? पुनः वह मुझसे कहती है—हे लजीली ललिते! उठो न, सुदृढ़ मुक्ता-लताके हारोंसे उस धूर्त्तको बाँध लो न, जिससे वे फिर मथुरा न जा सकें और यह सुनाकर वह हम सखियोंको उच्च स्वरसे रुलाती है।

अहो! मेरे सिखानेपर ही उस सरलस्वभावा राधाने मान-ग्रन्थिमें स्वयंको जकड़े रखा। मैंने कैसा अनिष्ट कर डाला। हे मराली-सहचर! इस प्रकार गोकुलकी सब कथाको निज अङ्गों पर भूषणके समान रखना। उनसे कहना कि ललिता कहती है—हे गोपीरमण! ऐसा दिन कब आयेगा जब कुञ्जमें आपको विराजमान देख मैं दूर चली जाऊँगी और राधासे कहुँगी—तुम आगे जाकर यमुनाके किनारे तुलसी-पल्लव चुन लो और इस तरह मैं संकेत स्थलपर आपका मिलन कराऊँगी। हे हंसीरमण! उस वनमालासे पूछना—हे गुणवति! तुम तो श्रीराधाके वक्षस्थलपर चिरकालतक निवास करती थी, उसे क्या तुम भूल गयी हो? हे पक्षिवर हंस! तदनन्तर तुम मकराकृति कर्ण-कुण्डलोंको, कौस्तुभमणिको, शंखको भी मेरी प्रणति निवेदन करना। उनसे कहना—आप कृष्णको लेकर यहाँ वृन्दावन आयें, इसी भूमिपर वेणुकी चिरन्तनी सौभाग्य-महिमाका सर्वोत्कर्ष विराजमान है।

हे बन्धु! फिर तनिक प्रणय-कोप मिश्रित मधुर स्वरसे उन्हें उनके अवतारोंकी याद दिलाना। कहना—हे महामत्स्य! मेरी सखी राधाने अपनी प्रेमरूपी वस्तुको चित्तरूपी काँटेसे लपेटकर अनुराग सागरमें फेंका था, किन्तु आपने तो उस काँटेको निगल लिया। (महामत्स्यको महाहिंसक भी माना जाता है।)

मेरी वह भोली सखी आपकी सुन्दर अङ्ग-शोभाको देखकर परमोल्लासित होकर आपके पास आ पहुँची। परन्तु आपने अपने अङ्गोंको छिपाकर कठिनता ही दिखायी, कच्छपमूर्त्ति धारण करनेवाले क्या आपके लिए यह असम्भव था?

हे वराहवपु! आपके वपुमें चिरकाल व्याप्त रहनेवाली अतिशय प्रेमलहरी आज भी स्पष्ट प्रकाशित हो रही है। इसलिए तो आपने चन्दनलेपकारिणीको अब क्रोड़में भर लिया है।

हे कंसारि! आपने जो नरसिंह मूर्त्ति धारण की थी, उसे अन्तर्धान हुए बहुत समय बीत

गया, किन्तु उसकी निर्दयता आप आजतक नहीं भूले। आप अक्रूरके चरितमें आसक्त हो ब्रजवासियोंके हृदयोंको विदीर्ण कर रहे हैं।

हे वामन-स्वरूप! उस गर्विणी राधाने गुरुजनोंकी कुछ भी परवाह न करते हुए अपनेको आपके लिए समर्पण कर दिया था, पर वह भी बलिकी तरह ही उसका फल भोग रही है।

हे भृगुपते परशुराम! आपने पृथ्वीको क्षत्रियरहित कर भृगुपतन (भृगुनगर) बसानेकी इच्छा की थी, राधा भी अब पर्वतसे गिरकर अपना शरीर-पात करना चाहती है। परशुरामने जिसप्रकार गुरु नन्दीश्वरको भुला दिया था, उसी प्रकार आपने भी नन्दग्रामपति श्रीब्रजराजको भुला डाला है।

हे रघुकुलतिलक राम स्वरूप श्रीकृष्ण! ब्रजका धेनु-समुदाय दूषण कुल (अमङ्गलों) से पीड़ित हो रहा है, नवपल्लव सूख जानेसे गोवर्धनके शिखर बाणोंके समान (खर राक्षसवत्) भयङ्कर लगते हैं, मारी-विनाशकारी—मारी (मारीच) चारों और निर्भय होकर नाच रही है, आप हमारी रक्षा कीजिए।

हे लीलाविलासी हलधर! रासभ (धेनुकासुर) पुनः यहाँ उपस्थित हुआ है, हम सब आज भी निरपराधी (अन्य-संसर्ग अपराधरहित) हैं, आप क्यों नहीं आ रहे हैं?

हे सर्वज्ञ बुद्धरूप श्रीकृष्ण! श्रीराधाकी किसी भी सांसारिक वस्तुमें आसक्ति नहीं है, वह आपके ही बुद्धावतारका अनुसरण कर रही है। आप तो अहिंसापूर्ण हृदयवाले हैं, फिर आप दया क्यों नही करते?

हे कल्किरूप श्रीकृष्ण! अपनी मनोहर उन्मत्त मधुकर श्रेणीके समान नेत्रोंसे प्रेमभरे कटाक्ष-समूह खड़ग (तलवार) से समस्त म्लेच्छोंके समान विरहादि क्लेशोंको काट दीजिए।

हे चतुर कलहंसी कुलपते! तीन-चार प्रहरमें ही आप मथुरा पहुँच जायेंगे, रो-रोकर उन्हें सारी कथा-व्यथा सुनाना! हम गोपियोंपर इतना तो उपकार करना। आप तो सारसरुचि हैं, नीर-क्षीर विवेकी हैं, फिर आपके लिए विलम्ब करना क्या उचित है?

इस प्रकार निरूपितकर श्रीरूप गोस्वामी पाठकोंको आशीर्वाद देते हैं कि यह वर्णन उनके हृदयमें भी श्रीकृष्ण प्रेम-लहरको तरङ्गायित करे।q

विदेशोंमें श्रीचैतन्यमहाप्रभुकी वाणीका प्रचार

(०१ जून २००३ को प्राप्त संवादके अनुसार)

श्रीलमहाराजजी Hawaii में प्रचार समाप्तकर Los Angles, Tucson, Sun Jose, Badger, Sanfrancisco में प्रचारसेवा समाप्त करके Houston में प्रचार कर रहे हैं। Houston, Austin आदि स्थानोंमें प्रचार करके श्रीलमहाराजजी यूरोप महादेशमें पदार्पण करेंगे। अभी तक प्रचारोंका मुख्य विषय थे—श्रीचैतन्यलीलाके व्यास श्रीवृन्दावनदास ठाकुरकी श्रीमन्नित्यानन्द प्रभुमें निष्ठा एवं उनका अप्राकृत जीवन-चरित्र, श्रीगौरशक्ति गदाधरजीका जीवन चरित एवं उनकी शिक्षा, अक्षय तृतीयाका माहात्म्य, श्रीनित्यानन्दशक्ति जाह्नवा देवी एवं मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्रीरामचन्द्रकी नित्यशक्ति श्रीसीतादेवीके जीवन-चरित, सर्वविघ्नविनाशनकारी भगवान श्रीनृसिंहदेवके आविर्भावके उपलक्ष्यमें जगतमें उनके प्राकट्यका कारण तथा भक्तप्रवर श्रीप्रह्लाद महाराजजीकी शिक्षा, श्रीमन्महाप्रभुके प्रिय परिकर श्रीरायरामानन्दजीकी शिक्षा।

भगवान श्रीनृसिंहदेवके आविर्भावके उपलक्ष्यमें श्रीलमहाराजजीने भक्तप्रवर प्रह्लाद महाराजजीकी

शिक्षाओंकी विशद्‌रूपमें आलोचना की। प्रह्लाद महाराजने बचपनसे ही जो सहनशीलताका परिचय प्रदान किया है, वह सदैवके लिए आलोकस्तम्भ होकर ही रहेगी। विश्वव्यापी श्रीगौड़ीय मठोंके प्रतिष्ठाता जगद्‌गुरु श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर प्रभुपादने प्रह्लाद महाराजके चरित्रके द्वारा अनुप्राणित होकर ही अपनी अन्तिम उपदेशावलियोंमें कहा है कि मठवासियोंके लिए सहनशीलताकी शिक्षा ग्रहण करना प्रधान कर्तव्य है। केवल मठवासी ही नहीं, बल्कि जीवनमें उन्नति करनेके लिए सभीको सहनशीलताकी शिक्षा अवश्य ही लेनी चाहिए। श्रीलप्रभुपादने अन्यान्य शास्त्रीय उपाख्यानोंको छोड़कर अमलपुराण श्रीमद्भागवतमें वर्णित श्रीप्रह्लाद महाराजके उपाख्यानका इतना अधिक बार पाठ किया है, उसके विषयमें श्रीलमहाराजजीने वर्णन किया है। वह वर्णन नीचे प्रदर्शित हुआ है—

(१) श्रीभगवानने अपने मुखारविन्दसे कहा है—"मैं ही जिनकी परमगति हूँ, उन साधु भक्तजनके अतिरिक्त मैं अपनी आत्मा तथा अतिप्रिय लक्ष्मीदेवीकी भी स्पृहा (इच्छा) नहीं रखता। स्वयं भगवानने कहा है—"मेरे असंख्य भक्तोंमें प्रह्लाद उदाहरणस्वरूप है।" हिरण्यकशिपुके संहारके समय लक्ष्मीदेवीके साथ हम सभीने उन प्रह्लादजीके सौभाग्यका अनुभव किया है।

पुनः पुनर्वरान्‌दित्सुर्विष्णुमुक्तिं न याचितः।
भक्तिरेव कृता येन प्रह्लादं तं नमाम्यहम्॥

अर्थात् भगवान विष्णुके पुनःपुनः मुक्ति दान करनेकी इच्छा करने पर भी जिन्होंने मुक्तिकी प्रार्थना न कर भक्तिकी ही प्रार्थना की थी, उन प्रह्लादजीको मैं नमन करता हूँ।

श्रीपराशरजीने प्रह्लाजीके उस वाक्यका अनुवादकर कहा है—"हे नाथ! मैं जन्म- जन्मान्तरमें जिस किसी भी योनिमें भ्रमण करता रहूँ, आपमें मेरी अविचलित भक्ति रहे।" श्रीभगवानने कहा है—"प्रह्लादके अनुगत कोई भी व्यक्ति निश्चय ही मेरा भक्त है। मेरे जितने भी भक्त हैं, उनमें प्रह्लाद ही सर्वश्रेष्ठ हैं।"

(२) भक्तप्रवर प्रह्लादका पौत्र महाराज बलिने लोकपितामह ब्रह्माजीकी मर्यादाका उल्लंघनकर स्वर्ग राज्यपर अधिकार प्राप्त किया था। अर्थात् श्रीब्रह्माजीने देवताओंके लिए स्वर्गके आधिपत्य, असुरोंके लिए पातालके आधिपत्यकी व्यवस्था की थी। इस व्यवस्थाका उल्लंघनकर दैत्योंने इन्द्रको पदच्युतकर देवताओंको यज्ञभागसे वञ्चितकर उनके विभिन्न पदोंमें दैत्योंको नियुक्त किया था। दैत्यगुरु शुक्राचार्यने दैत्यराज बलिसे वामनदेवको दान देनेके लिए मना किया था। शिष्यद्वारा अश्रद्धापूर्वक गुरु-आदेश पालन न करने पर दैत्यगुरुने भगवानके द्वारा प्रेरित होकर दैत्यराज बलिको अभिशाप दिया था। भगवान श्रीवामनदेवके देवतोओंके हितके लिए श्रीबलिके निकट दान माँगनेके लिए आनेपर बलि महाराज बोले थे—"तुम अर्थकी इच्छासे आये हो, अभिलषित वर माँगो।"

श्रीवामनदेव बोले—"मैं ब्रह्मचारी हूँ, अतः भजन करनेके लिए तीन पग भूमिकी प्रार्थना कर रहा हूँ।"

बलिमहाराजने कहा—"हे विप्रनन्दन! आप तो ज्ञानवृद्धकी भाँति बात कर रहे हैं। लेकिन आपका व्यवहार तो अज्ञ बालककी तरह है। हे विप्रदेव! अपने स्वार्थके लिए आपको इतना साधारण ज्ञान भी नहीं है।"

क्या भगवानको त्रिलोकी दान देनेके फलस्वरूप वे बलिके द्वारपाल बने या अपना सिर भगवानके चरणोंमें अर्पित करनेके फलसे। कदापि नहीं। वह केवल भक्तप्रवर प्रह्लादके प्रति भगवानकी प्रीतिके लिए ही है। प्रह्लादजीका माहात्म्य अनिर्वचनीय है। इस जगतमें क्षणभंगुर वस्तुओंके दानसे सच्चिदानन्द फलस्वरूप भगवानकी प्राप्ति कैसे सम्भव है? विशेषतः द्वारपाल रूपमें? इसलिए

बलिके प्रति भगवानकी प्रीतिका कारण केवलमात्र प्रह्लाद महाराज हैं, दूसरा कोई कारण नहीं है।

(३) अत्यधिक दुष्ट बाणासुरके प्रति भगवत्कृपा केवलमात्र प्रह्लाद महाराजके लिए ही हुई थी। दुष्ट बाणासुरने अपने प्रभु श्रीशिवजीको गर्वपूर्ण वाक्योंसे कहा था—"तीनों लोकोंमें आपके अतिरिक्त मेरे समान प्रतियोद्धा और कहीं नहीं देख रहा हूँ।" किन्तु उसने अपने कुलका परम इष्टदेव श्रीविष्णुकी भक्तिका त्याग किया था। प्रधानतः भगवान कृष्णके अति प्रिय पौत्र अनिरुद्धको बन्दी कर रखा था। अनिरुद्धजी दुष्ट बाणासुरकी परम सुन्दरी कन्या उषाको क्षत्रिय नीतिके अनुसार अपहरण करने गये, बाणासुरने अपने सैन्यकी सहायतासे उन्हें बन्दी बना लिया। देवर्षि नारदजीसे यह संवाद प्राप्तकर भगवान श्रीकृष्णने चतुरङ्गिनी सेना लेकर बाणासुर पर आक्रमण किया। बाणासुर कोई उपाय न देखकर अपने प्रभु शिवठाकुरको बारबार उच्च स्वरसे 'त्राहि माम्, त्राहि माम्' पुकारने लगा। आशुतोष शंकरजीने दुष्ट बाणासुरका पक्ष लेकर भगवान श्रीकृष्णके साथ घनघोर युद्ध आरम्भ कर दिया। जब भगवान श्रीकृष्ण अपने अमोघ अस्त्र सुदर्शन चक्रद्वारा बाणासुरके सहस्त्र हाथ छेदन कर रहे थे, तब बाणासुरकी धर्ममाता कोटरादेवी जो कि पार्वतीजीकी अंश है, वह नग्न अवस्थामें युद्धभूमि पर आ गयी और बाणासुरके जीवनकी भिक्षा माँगने लगी।

भगवान श्रीकृष्णने उसकी प्रार्थनासे बाणासुरका वध नहीं किया। उसको चतुर्भुजत्व, शिवके पार्षदकी गति प्रदान की। श्रीशिवजीने अपने मुखसे कहा है—इसका कारण श्रीकृष्णके प्रति मेरी स्तुति नहीं है। श्रीप्रह्लादके प्रति श्रीकृष्णकी अत्यधिक प्रीतिको ही इसीका कारण मानना पड़ेगा। अत्यधिक भयानक वैष्णव-अपराधका क्षय वैष्णव-कृपा द्वारा ही होता है। इस न्यायके अनुसार बलि एवं बाणासुरके द्वारा किया हुआ वैष्णव अपराध केवल भक्तप्रवर प्रह्लादके पुत्र, पौत्र आदिके सम्बन्ध हेतु हुआ है।

श्रीपाद सज्जन महाराज—श्रीलगुरुदेव! आपने कहा है कि भगवान अपने मुखसे बोले हैं—हे प्रह्लाद! तुम मेरे भक्त होनेसे जिस प्रकार प्रिय हो, ब्रह्मा मेरे पुत्र, शंकर मेरे स्वरूपभूत, संकर्षण मेरे भाई, लक्ष्मीदेवी मेरी पत्नी होने पर भी, यहाँतक कि मेरी श्रीमूर्ति भी मुझे उस प्रकार प्रिय नहीं हैं। संकर्षण, लक्ष्मीदेवी भगवानके पुराने भक्त हैं, उनके परिकर हैं। प्रह्लाद अर्वाचीन भक्त होकर किस प्रकार अधिक प्रिय हो सकते हैं?

श्रीलमहाराजजी—नित्यपार्षद संकर्षण आदिकी परमविशुद्ध प्रेमभक्ति स्वरूपसिद्ध है। अतः उन सभीको प्रेम भक्ति पानेके लिए कुछ भी परित्याग करना नहीं पड़ता है तथा किसी प्रकारके क्लेशको भी स्वीकार करना नहीं पड़ता है। दूसरी तरफ आधुनिक भक्तजनोंने प्रेम प्राप्तिके लिए सर्वस्व परित्याग किया है तथा सब प्रकारके क्लेशोंको भी स्वीकार किया है। इन समस्त विषयोंका विवेचन कर देखनेसे स्पष्ट होता है कि भगवानने वैकुण्ठके नित्य पार्षदोंकी अपेक्षा अर्वाचीन भक्तोंकी महिमाको अधिकतर प्रकाशित किया है। जो भक्त निरपेक्ष होकर एकमात्र श्रीभगवानकी प्रेमभक्तिकी प्राप्तिके लिए अपना सर्वस्व अर्थात् धन, स्वजन एवं जीवनकी ममता तक भी त्याग कर दिये हैं तथा जीवोंको भक्ति पथमें प्रवर्तित करनेके लिए ऐहिक और पारत्रिक समस्त साध्य-साधनके विषयमें स्पृहारहित हुए हैं, इस प्रकारके भक्तिप्रवर्तक भक्तोंकी प्रशंसा भगवान नित्यसिद्ध पार्षदोंसे भी अधिक रूपमें करते रहते हैं, यह सर्वत्र प्रसिद्ध है।

श्रीपाद माधव महाराज—भगवान श्रीनृसिंहदेव बारम्बार आग्रह करने पर भी श्रीप्रह्लाद महाराजने परमपदको स्वीकार नहीं किया, किन्तु बादमें अपने पिताके राज्यको स्वीकार किया। राज्यकी

परिचालनाके लिए तो प्रतिदिन बहुत समय व्यतीत करना पड़ेगा। राज्य ग्रहण करनेसे क्या उनकी पारमार्थिक हानि नहीं होगी? अथवा भगवानका प्रीतिविधान किसप्रकार सम्भव होगा?

श्रीलमहाराजजी—भक्तप्रवर प्रह्लाद महाराजने लोकोंके उद्धारके लिए भगवान नृसिंहदेवके निकट प्रार्थना की थी। लोकोंके उद्धारकी इच्छाके कारण प्रह्लाद महाराजने राज्यका दायित्व ग्रहण किया था। क्योंकि राज्य अधिकार होनेसे परम ऐश्वर्यके साथ भक्तिका प्रचार-प्रसार होगा, भक्तिका प्रचार-प्रसार होनेसे सहज रूपमें जीवका उद्धार होगा। विशेषतः समस्त लोकोंके उद्धार होनेसे भगवान स्वतः ही प्रसन्न हो जायेंगे। अतः राज्य ग्रहण करनेसे प्रह्लाद महाराजकी परमार्थिक हानि नहीं होगी, भागवत् प्रीतिविधान बिन्दुमात्र भी कम नहीं होगा।

श्रीपाद दामोदर महाराज—प्रभुपाद श्रील सरस्वती ठाकुरने प्रह्लाद उपाख्यानका अधिक बार पाठ किया था, सब समय क्या उसमें नवीनता थी? अथवा वे एक ही कथाका बारम्बार पाठ करते थे?

श्रीलमहाराजजी—(उपहासकर बोले) यह तो तुम्हारा रचित दामोदर पुराण नहीं है, जिसमें एक ही कथाकी पुनरावृत्ति होती रहेगी। प्रह्लादजीके चरित्रका वर्णन आरम्भ करनेसे तुम जीवनभर श्रवण करनेपर भी समाप्त नहीं होगा।

श्रीपाद अरण्य महाराज—श्रीप्रह्लाद महाराजके सम्बन्धमें और कुछ श्रवण करनेसे सबका मङ्गल होगा। कृपापूर्वक वर्णन करनेसे हम सभी कृतार्थ होंगे।

श्रीलमहाराजजी—तुम सभी ध्यानपूर्वक श्रवण करो। एक-दो लीला वर्णन करता हूँ। एक समय प्रह्लाद महाराज नैमिषारण्यमें विराजमान परम मनोहर पीतवसनधारी श्रीभगवानकी श्रीमूर्तिके संदर्शनके लिए जा रहे थे। रास्तेमें उन्होंने तपस्वी वेशधारी लेकिन हाथमें धनुषबाण लिये हुए एक पुरुषको देखा। ऐसा विपरीत वेशधारण दाम्भिकताको सूचित कर रहा था। अर्थात् अहिंसाका प्रतीक है तपस्वीवेश एवं हिंसाका प्रतीक धनुषबाण। उनके राज्यमें यह विरुद्ध वेशधारीको देखकर प्रह्लाद महाराजने उसके साथ युद्धमें लिप्त होकर प्रतिज्ञा कर ली कि मैं निश्चितरूपसे योद्धाको जय करूँगा। किन्तु वे युद्धको जीतनेमें असमर्थ हुए। युद्ध बहुत दिनों तक चलता रहा, परन्तु कोई भी किसीको पराजित न कर पाया। एक दिन प्रातःकाल प्रह्लाद महाराज भक्तिके साथ अपने इष्टदेवके अर्चनके पश्चात् युद्धमें चले गए। युद्धभूमिमें उन्होंने देखा कि जिस मालाको उन्होंने अपने इष्टदेवको पहनायी थी, वही माला उस योद्धाके गलेमें शोभा पा रही है। तब वे समझ गये कि ये ही मेरे इष्टदेव हैं। उन्होंने युद्धका त्यागकर स्तव- स्तुतियोंके द्वारा इष्टदेवका प्रीतिविधान किया। भक्तवत्सल भगवानने प्रसन्न होकर अपने सुकोमल हस्त-स्पर्श द्वारा भक्तके युद्धश्रमको दूर कर दिया। तत्पश्चात् प्रह्लाद महाराजके अपने प्रतिज्ञा-भङ्गकी बात बोलने पर भगवान मन्द मुस्कानके साथ बोले—"प्रह्लाद! तुम्हारे युद्धकौतुकसे मैं प्रसन्न हुआ हूँ। आनन्दकी बात यह है कि तुम सदैव मुझे जय कर लेते हो।"

श्रीपाद पद्मनाभ महाराज—गुरुदेव! और एक-दो लीला वर्णन करें तो अच्छा होता तथा एक परिप्रश्न है कि श्रीवामनदेव सुतललोकमें बलिमहाराजके असंख्य दरवाजोंपर द्वारपालके रूपमें अवस्थान करते हैं, इसका कोई दूसरा रहस्य है क्या?

श्रीलमहाराजजी—मैं एक-एक कर उत्तर दे रहा हूँ। प्रह्लाद संहितामें इस प्रकार वर्णन है कि किसी एक समय द्वारकावासी कुश दैत्यके द्वारा पराजित होकर उसके अत्याचारसे अति दुःखी होकर भगवानको पुकारने लगे। सौभाग्यसे उस समय द्वारकापुरीमें श्रीशिवजीके अवतार दुर्वासाऋषि आये थे। समस्त द्वारकावासियोंने निवेदन किया—"हे

ऋषिवर! आपकी गति सर्वत्र है। बिना किसी बाधासे आप सर्वत्र जा सकते हैं। अतः आप कृपापूर्वक प्रभुकी खोजकर हमलोगोंकी दुर्दशाकी बात निवेदन कीजिएगा तथा हमारे उद्धारकी व्यवस्था कीजिएगा।" श्रीदुर्वासा ऋषि द्वारका-वासियोंके सकातर निवेदनको श्रवणकर मनसे भी तीव्र गतिसे चौदह भुवनमें उड़ते-उड़ते सुतल लोकमें पहुँचकर वहाँपर प्रभुको देखकर अत्यन्त आनन्दित हुए। उन्होंने द्वारकावासियोंकी दुर्दशाकी बात प्रभुको सुनायी। प्रभु बोले—"हे ऋषिवर! मैं इस समय भक्तिके द्वारा खरीद लिया गया हूँ। सर्वतन्त्र, स्वतन्त्र होनेपर भी पराधीन हुआ हूँ। इस विषयमें आप दैत्यराज बलिसे प्रार्थना कीजिए। उनका आदेश प्राप्त होनेपर मैं आपकी इच्छाको पूर्ण कर सकता हूँ।" यह बात सुनकर दुर्वासाऋषि दैत्यराज बलिके पास गये और द्वारकावासियोंके दुःखको दूर करेनेके लिए प्रार्थना की। दैत्यराजने ऋषिवरकी प्रार्थनाको स्वीकार नहीं किया। इससे विप्रवर अत्यन्त दुःखित होकर दूसरा कोई उपाय न देखकर प्राणत्याग करनेके लिए बलिमहाराजके सम्मुख अनशन व्रतमें बैठ गये। दुर्वासाऋषिके प्राण त्यागनेके संकल्पको देखकर भी प्रह्लाद महाराजके पौत्रका हृदय द्रवीभूत नहीं हुआ। बलिमहाराजने कहा—"हे विप्रवर! मेरे भाग्यमें जो है, वही होगा। आपकी जैसी इच्छा, आप वैसे करें। लेकिन ब्रह्मा, रुद्र आदि देवताओंके भी प्रणम्य श्रीभगवानके पादपद्मोंको हम कभी त्याग नहीं करेंगे।" दुर्वासाऋषि पुनः-पुनः बोलने लगे—"आप तो भक्तप्रवर प्रह्लाद महाराजजीके पौत्र हैं। प्रह्लाद महाराजजीमें जो कृपा गुण, वदान्यता, सम, कृष्णैकशरण आदि गुण विद्यमान हैं, वे सब आपमें तो अवश्य ही रहने चाहिए। लेकिन आपमें उन सब गुणोंका अभाव क्यों दिखाई दे रहा है? आपके कुलके गौरवको धूलमें मिला देना आपका कर्तव्य नहीं है।" उन्होंने बहुत प्रकारसे समझाया। अन्तमें प्रह्लाद महाराजजीके पौत्रका हृदय विगलित हुआ। तब एक स्वरूपमें श्रीविष्णु सुतल लोकमें रह गये तथा दूसरे स्वरूपमें दुर्वासाऋषिके साथ द्वारकापुरी जाकर कुशदैत्यका वध करके उन्होंने द्वारकावासियोंके दुःखका अन्त कर दिया।

द्वितीय प्रश्नका उत्तर—प्रह्लाद महाराजजीकी भक्तिमें वशीभूत सुतल लोकमें बलिमहाराजके राजमहलके असंख्य दरवाजों पर भगवानने द्वारपाल रूपमें अवस्थान किया था। प्रह्लाद महाराजजीने कहा है—"बलिके अपराधके कारण श्रीभगवान द्वारदेशमें द्वारपाल रूपमें स्थित हैं, बलि जैसे भविष्यमें कभी उपद्रव नहीं कर पाएगा, देवताओंको कष्ट नहीं पहुँचाएगा। इसलिए भगवानने मुझे भी सुतल लोकमें बलिके पास सदा-सर्वदा अवस्था करनेका निर्देश दिया है।"

श्रीपाद माधव महाराज—अनेक दिन पहले आप एक बार श्रीनृसिंह चतुर्दशी तिथिके उपलक्ष्यमें राक्षसराज रावणकी कथा बोले थे। मुझे ठीक याद नहीं है, परवर्ती कालमें आपने उस प्रसङ्गका वर्णन नहीं किया।

श्रीलमहाराजजी—इस विषयमें श्रीरामायणके उत्तरकाण्डमें रावणका पाताल-विजय प्रसङ्गमें वर्णन है। किसी एक समय राक्षसराज रावणने विश्वविजय मदमें मत्त होकर विभिन्न लोकोंमें दिग्विजयकी पताका फहराता हुआ सुतललोकमें रातके अन्धकारमें प्रवेश किया। सूर्यास्तके बाद अन्धकारमें राक्षसोंका बल द्विगुण हो जाता है। मदमत्त रावणने पाताललोक विजयकी अभिलाषासे सुतललोकमें बलिके राजमहलमें प्रवेश करनेकी चेष्टा की थी। भगवान गदाधरने राक्षसराज रावणके घमंडको चकनाचूर करनेके लिए अपने पैरके अंगुठेसे उसे अनेक दूर समुद्रमें फेंक दिया था। गदाधरके भयसे भयभीत होकर रावण भविष्यमें सुतल लोकमें प्रवेश करनेका दुःसाहस नहीं कर पाया। उसके चित्तसे दिग्विजयका स्वप्न धूलमें मिल गया, उसका स्वप्न कभी वास्तव रूप ले नहीं पाया।

श्रीपाद कृष्णदास ब्रह्मचारी—(हँसते-हँसते) श्रीलमहाराजजी! आपने तो बताया—भगवान कहते हैं कि प्रह्लाद सर्वश्रेष्ठ, और कभी कहते हैं उद्धव सर्वश्रेष्ठ, कभी गोपियाँ, कभी श्रीराधा-चन्द्रावली और कभी कहते हैं कि सबसे श्रेष्ठ हैं श्रीमती राधिका। मैं संन्यासियोंके समान तत्त्वज्ञ नहीं हूँ। आपने जब जैसा आदेश किया, उसीके अनुसार कीर्तन करनेकी चेष्टा करता हूँ। इनमेंसे कौन श्रेष्ठ हैं, बतानेकी कृपा करें।

श्रीलमहाराजजी—(हँसते-हँसते) कृष्णदास! तुम तो मैया उत्तराके समान प्रश्न करते हो। तुमको तत्त्वज्ञ बननेकी जरूरत नहीं है। कीर्तनाख्या भक्ति याजन करनेसे तुम्हारी सर्वसिद्धि हो जाएगी। तुमने जो प्रश्न किया, उन लोगोंमें भगवानकी बढ़ती हुई (उत्तरोत्तर) प्रियताको जानना चाहिए।

श्रीपाद आश्रम महाराज—मेरे मनमें भी ऐसा प्रश्न था, उसका उत्तर मिल गया। श्रीमती राधिकाजी सर्वश्रेष्ठ हैं, अनेक बार मैंने श्रवण किया है तथा शास्त्रोंमें भी देखा जाता है, किन्तु गोपीगण श्रीकृष्णके अधिक प्रिय हैं, इसके लिए क्या कोई प्रमाण है?

श्रीलमहाराजजी—शास्त्रोंमें हजारों प्रमाण हैं। श्रीमान् माधव महाराज दो-एक प्रमाणके मूल श्लोकोंकी आवृत्ति करें।

श्रीपाद माधव महाराज—जो कुछ प्रमाण-श्लोक आपलोगोंके निकट सुना है अथवा आपने बहुदिन पूर्व हमलोगोंको पढ़ाया था, उसका स्मरण कर रहा हूँ।

आदिपुराणमें श्रीकृष्ण-अर्जुन सम्वादमें देखा जाता है—

न तथा मे प्रियतमो ब्रह्मा रुद्रश्च पार्थिव।
न च लक्ष्मीर्न च आत्मा यथा गोपीजनो मम॥

अर्थात् अर्जुनके प्रश्नके उत्तरमें भगवानने कहा—हे अर्जुन! ब्रह्मा, शिव, लक्ष्मी यहाँतक कि मेरा श्रीविग्रह भी उतना प्रिय नहीं है, जितना गोपीजन हैं। ब्रजदेवियाँ महालक्ष्मीसे भी श्रेष्ठा हैं।

त्रैलोक्ये पृथिवी धन्या यत्र वृन्दावनं पुरी।
तत्रापि गोपिकाः पार्थ यत्र राधाभिधा मम॥

—हे पार्थ! त्रिलोकमें केवलमात्र पृथ्वी धन्य है, क्योंकि इस पृथ्वीमें श्रीधाम वृन्दावन कृपापूर्वक अवतीर्ण हुए हैं। वृन्दावनमें अनेक लोग निवास करनेपर भी गोपीगणके रहनेसे वह धन्य हुआ है। श्रीमती राधा नामकी गोपीके साथ रहनेसे गोपियाँ धन्य हैं। इस श्लोकमें एक साथ गोपीगण एवं श्रीराधिकाजीका माहात्म्य स्पष्टरूपसे सूचित है।

श्रीलमहाराजजी—माधव महाराज! और अधिक श्लोक-आवृत्ति आवश्यक नहीं है। अब आपलोगोंके समझमें आ गया है कि श्रीकृष्णके सर्वाधिक प्रिय कौन है तथा हम सब किसका भजन करेंगे? यह शिक्षा देनेके लिए श्रीमन्महाप्रभु जगतमें अवतीर्ण हुए थे। भजन करते-करते क्रमशः आपलोग इस विषयको समझ पायेंगे। गौर प्रेमानन्दे हरि हरि बोल।

—त्रिदण्डिभिक्षु श्रीभक्तिवेदान्त माधव

प्रीतिकी रीति

बेचति ही दधि ब्रजकी खोरी।
सिर कौ भार सूरति नहिं आवत, स्याम टेरत भइ भोरी॥
घर घर फिरत गुपालै बेचत, मगन भई मन ग्वारि किशोरी।
सुन्दर बदन निहारन कारण, अन्तर लगी सुरतिकी डोरी॥
ठाढ़ी रही बिथकि मारग मैं, हाट माँझ मटकी सो फोरी।
सूरदास प्रभु रसिक सिरोमनि, चित चिन्तामनि लियौ अँजोरी॥

—सूरदास

श्रीश्रीगुरु–गौराङ्गौ–जयतः

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे

वैकुण्ठ–वार्त्तावह

बृहत्–मृदङ्ग

श्रीभागवत–पत्रिका

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः।
ज्ञान वैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना॥

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा॥

आराध्यो भगवान् व्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावनं, रम्या काचिदुपासना व्रजवधूवर्गेण या कल्पिता।
श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान्, श्रीचैतन्य महाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो नः परः॥

एक भागवत बड़ भागवत शास्त्र । आर एक भागवत भक्तिरसपात्र॥
दुई भागवत द्वारा दिया भक्तिरस । ताहाँर हृदये तार प्रेमे हय वश॥

वर्ष ४७ | श्रीगौराब्द ५१७ | वि. सं. २०६० श्रावण मास, सन् २००३, १४ जुलाई—१२ अगस्त | संख्या ५

श्रीप्रार्थनाश्रय–चतुर्दशकम्

[श्रीलरघुनाथदासगोस्वामिविरचितम्]

श्रीगिरिधारिणे नमः

अलं दीपावल्यां विपुलरतिगोवर्द्धनगिरिं जनन्या संपूज्योज्ज्वलितमहिलोद्गीतकुतुकैः।
निशाद्रावैः पृष्ठे रचितकरलक्ष्मश्रियमसौ वहन् मेघध्वानैः कलय गिरिभृत् खेलयति गाः॥१॥

दीपावलीके दिन श्रीमती यशोदादेवी अतिशय जगमगाते हुए अलङ्कारोंसे अलंकृत हुई गोपमहिलाओंके सहित उत्तम गीत–कौतुक और भक्तिके साथ श्रीगोवर्धनकी पूजा करके हरिद्रा–द्रव द्वारा अपने हाथका छाप जिनकी पीठके ऊपर लगा दिया है, (हे रूपमञ्जरि–सखि!) देखो तो जरा, वे गिरिधारी श्रीकृष्ण जननी द्वारा प्रदत्त उस चिह्नको पीठपर धारण किए हुए मेघ–गम्भीर निनादसे गौवोंको क्रीड़ा करा रहे हैं॥१॥

पुरो गोभिः सार्द्धं व्रजनृपतिमुख्या व्रजजना व्रजन्त्येषां पश्चान्निखिलमहिलाभिर्व्रजनृपाः।
ततो मित्रव्रातैः कृतविविधनर्म व्रजशशी छलैः पश्यन् राधां सहचरि परिक्रामति गिरिम्॥२॥
उदञ्चत्कारुण्यामृतवितरणैर्जीवितजगद्युवद्वन्द्वं गन्धैर्गुणसुमनसां वासितजनम्।
कृपाञ्चेन्मय्येव किरति न तदा त्वं कुरु तथा यथा मे श्रीकुण्डे सखि सकलमङ्गं निवसति॥३॥
उद्दामनर्मरसकेलिविनिर्मिताङ्गं राधामुकुन्दयुगलं ललिताविशाखे।
गौराङ्गचन्द्रमिह रूपयुगं न पश्यन् हा वेदनाः कति सहे स्फुट रे ललाट॥४॥
व्रजपतिकृतपर्वानन्दिनन्दीश्वरोद्यत्परिषदि वदनान्तः स्मेरतां राधिकायाः।
रचयति हरिरारादृग्विभङ्गेन नद्यां रविरिव कमलिन्याः पुष्पकान्तिं करेण॥५॥
उपगिरि गिरिधर्त्तुः सुस्मिते वक्त्रबिम्बे भ्रमति निभृतराधानेत्रभङ्गीच्छलेन।
अतितृषितचकोरीलालसेवाम्बुदस्योपरि शशिनि सुधाढ्ये मध्य आकाशदेशम्॥६॥
द्युतिजितरतिगौरीक्ष्मारमासत्यभामा व्रजपुरवरनारीवृन्दचन्द्रावलीकाम्।
गिरिभृत इह राधां तन्वतो मण्डितां तत्तदुपकरणमग्रे किं निधास्ये क्रमेण?॥७॥

गोसमूहके साथ-साथ आगे-आगे नन्दराज और दूसरे-दूसरे ब्रजवासीगण गमन कर रहे हैं। उनके पीछे-पीछे निखिल ब्रज-महिलाओंके साथ ब्रजेश्वरी यशोदादेवी चल रही हैं। तदनन्तर ब्रजशशी श्रीकृष्ण अपनी मित्र- मण्डलीके साथ विविध प्रकारके कौतुक करते हुए छलसे श्रीमती राधिकाका अवलोकन करते-करते श्रीगोवर्धनकी परिक्रमा कर रहे हैं। तनिक देखो तो सखि!॥२॥

छलकते हुए कारुण्यामृतका वितरण करते हुए जो जगतको संजीवित कर रहे हैं एवं अपने गुणरूपी पुष्पसमूहके सुगन्धसे सबको आमोदित और तृप्त कर रहे हैं, वे श्रीश्रीराधाकृष्ण यदि मुझपर कृपा न करें तो हे सखि! तुम ऐसा करो कि मेरा यह समस्त शरीर श्री (राधा) कुण्डमें निवास करें, अर्थात् तुम आज्ञा दो, मैं श्रीकुण्डमें डूब मरूँ॥३॥

अहो, अतिशय परिहास-रसक्रीड़ासे ही जिनके अङ्ग रचित हुए हैं, हाय! ऐसे राधाकृष्ण-युगल, ललिता-विशाखा, गौराङ्गचन्द्र एवं रूप-सनातन—इन सबका अब ब्रजमें दर्शन न पाकर और कितनी वेदना सह सकूँगी, अरे ललाट, तू विदीर्ण हो जा॥४॥

सखि! देखो, जिस प्रकार सूर्य अपनी किरणोंसे कमलिनीकी कान्तिको प्रकाशित करते हैं, उसी प्रकार ब्रजपति नन्दमहाराज द्वारा सम्पादित पर्वके उपलक्ष्यमें नन्दीश्वर (नन्दगाँव) के निवासियोंकी सभामें श्रीकृष्ण दूरसे नेत्रभङ्गी द्वारा श्रीराधिकाके मुख-मण्डल पर मन्दहास्यकी रचना कर रहे हैं॥५॥

हे सखि! जिस प्रकार आकाशमें मेघोंके ऊपर सुधापूर्ण चन्द्रमण्डलमें अति तृष्णातुरा चकोरीकी लालसा भ्रमण करती है, उसी प्रकार गिरिराज गोवर्धनके समीप गिरिधारी कृष्णके सुमधुर हास्यपूर्ण वदन बिम्बपर श्रीराधिकाजी नेत्रभङ्गीच्छलसे प्रच्छन्नरूपमें भ्रमण कर रही हैं॥६॥

जिनकी अङ्ग-कान्तिने कामदेवकी पत्नी रति, गौरी, पृथ्वी, लक्ष्मी, सत्यभामा, ब्रजकी उत्तमसे उत्तम रमणियों और चन्द्रावली तकको जीत लिया है, ऐसी श्रीमती राधिकाको जो इस ब्रजमें अलंकृतकर उस कान्तिका और भी विस्तार कर रहे हैं, उन गिरिधारी श्रीकृष्णके समीप मैं कब तत्कालोचित उपहार सामग्री निवेदन करूँगी?॥७॥

अहो! स्वर्ण-निर्मित युगल-कुम्भकी विन्यासभङ्गी-शोभाको भी पराजित करनेवाले, सौरभपुष्ट एवं

कनकरचितकुम्भद्वन्द्वविन्यासभङ्गीरुचिहरकुचयुग्मं सौरभोच्छूनमस्याः।
सपुलकमथ गन्धैश्चित्रितं कर्त्तुमिच्छोर्गिरिभृत इह हस्ते हन्त दास्ये कदा तान्?॥८॥
कृष्णस्यांसे विनिहितभुजावल्लिरुत्फुल्लरोमा रामा केयं कलयतितरां भुधरारण्यलक्ष्मीम्।
ज्ञातं ज्ञातं प्रणयचटुला व्याकुला रागपूरैरन्या कास्ते सहचरि विना राधिकामीदृशी वा॥९॥
अपूर्वप्रेमाब्धेः परिमलपयः फेननिवहैः सदा यो जीवातुर्यमिह कृपयासिञ्चदतुलम्।
इदानीं दुर्दैवात् प्रतिपदविपद्दाववलितो निरालम्बः सोऽयं कमिह तमृते यातु शरणम्?॥१०॥
शून्यायते महागोष्ठं गिरीन्द्रोऽजगरायते। व्याघ्रतुण्डायते कुण्डं जीवातुरहितस्य मे॥११॥
न पतति यदि देहस्तेन किं तस्य दोषः स किल कुलिशसारैर्यद्विधात्रा व्यधायि।
अयमपि परहेतुर्गाढतर्केण दृष्टः प्रकटकदनभारं को वहत्वन्यथा वा?॥१२॥
गिरिवरतटकुञ्जे मञ्जुवृन्दावनेशासरसि च रचयन् श्रीराधिकाकृष्ण कीर्त्तिम्।
धृतरति रमणीयं संस्मरंस्तत्पदाब्जं व्रजदधि फलमश्नन् सर्वकालं वसामि॥१३॥
वसतो गिरिवरकुञ्जे लपतः श्रीराधिकेऽनु कृष्णेति।
धयतो व्रजदधितक्रं नाथ सदा मे दिनानि गच्छन्तु॥१४॥

पुलकित श्रीराधाके कुचयुगलको जो गन्ध-द्रव्य द्वारा चित्रित करनेके लिए इच्छुक हैं, हाय! उन गिरिधारी श्रीकृष्णके हाथोंमें मैं कब गन्ध-द्रव्यसमूह अर्पण करूँगी?॥८॥

अरी सखि! श्रीकृष्णके कन्धोंपर अपनी भुजलताको अर्पितकर अति पुलकित होकर बड़े प्रेमसे गोवर्धनके समीपवर्ती वनकी शोभा दर्शन करनेवाली यह रमणी कौन है? अहो! समझ गयी, यह प्रणय-चटुला, व्याकुला एवं अनुराग-परिपूर्णा श्रीराधिकाके अतिरिक्त कौन होगी?॥९॥

मेरे जीवनोपाय-स्वरूप श्रीरूपगोस्वामीने अपूर्व प्रेम-समुद्रके निर्मल जल और फेनसमूह द्वारा सदा-सर्वदा मुझ जैसे जनको जिस प्रकार सिक्त किया है, इसकी कोई तुलना नहीं है, अब दुर्दैववशतः क्षण-क्षणमें विपदरूप दावानल-ग्रस्त होनेके कारण मैं आश्रयरहित हो गया हूँ। अतएव पूर्व-कृपासिक्त वह मुझ जैसा व्यक्ति अब उक्त श्रीरूपगोस्वामीके अतिरिक्त और किसका आश्रय लेगा?॥१०॥

जीवनोपाय-स्वरूप श्रीरूपगोस्वामीके बिछुड़नेसे मुझे यह महागोष्ठ सूना-सा लगता है, गिरिराज गोवर्धन अजगरकी भाँति प्रतीत होते हैं और श्रीराधाकुण्ड व्याघ्र-तुण्ड (व्याघ्रमुख) की तरह दीखते हैं॥११॥

यदि मेरा शरीर भृगुपात (पर्वतके ऊपरसे गिरने) से पतित नहीं होता अर्थात् प्राणशून्य नहीं हो जाता, तो इसमें शरीरका क्या दोष है? क्योंकि इस शरीरको विधाताने ही वज्रसारके द्वारा (इतना कठोर) बनाया है, अथवा मैं प्रगाढ़ तर्कके द्वारा अत्यन्त विचार करनेपर इसका एक और दूसरा कारण यह भी देख रहा हूँ कि मेरे सिवा ऐसा दुःखभार कौन सह सकेगा?॥१२॥

(मेरी तो यही अभिलाषा है कि) मैं श्रीराधाकृष्णकी सुविमल कीर्त्तिका प्रचार करते-करते, श्रीराधाकृष्णके सानुराग रमणीय चरणारविन्दका स्मरण करते-करते तथा वृन्दावनके फल और दधि आदिका भोजन करते-करते श्रीगोवर्धन-तटवर्ती कुञ्जमें श्रीवृन्दावनेश्वरीके सरोवर अर्थात् श्रीराधाकुण्डके तटपर ही सब समय निवास करूँ॥१३॥

हे नाथ! हे रूप गोस्वामिन्! श्रीगोवर्धन-कुञ्जमें निवास करते-करते, आगे 'हे राधिके!' पश्चात् 'हे कृष्ण!'—इन दोनों नामोंका उच्चारण करते-करते तथा ब्रजका दही और छाछ पान करते-करते मेरे जीवनके अवशिष्ट दिन व्यतीत हों॥१४॥

प्रश्नोत्तर

श्रीकृष्ण-तत्त्व

[वर्ष ४७, संख्या ४, पृष्ठ ७८ से आगे]

—जगद्गुरु श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

प्र. ३९—निराकार और चिदाकारका स्वरूप क्या है?

उ.—वेदशास्त्रके मतसे भगवानका सच्चिदानन्द-विग्रह नित्य है। निराकार धर्म प्राकृत सत्त्वगुणके विपरीत विकार-विशेष है, अर्थात् जड़ आकारका निषेधक भाव-विशेष है। प्रकृतिसे परे जो चिन्मय विग्रह हैं, उनका आकार भी चिन्मय है। मायिक सत्त्वका निराकारत्व उनको स्पर्श नहीं कर सकता।

(अ. प्र. भा. म. ६/१६६-६७)

प्र. ४०—परमेश्वरके सम्बन्धमें निराकार और साकार—ये दोनों परस्पर विरुद्ध बातें एक ही साथ कैसे सत्य हो सकती हैं?

उ.—साकार और निराकारको लेकर विवाद करना व्यर्थ है। परमेश्वरका भौतिक आकार नहीं है, परन्तु पञ्चभूतसे परे अप्राकृत तत्त्वमय विभुका (परमेश्वरका) अप्राकृत सच्चिदानन्द विग्रह केवल भक्तजन ही देख सकते हैं। इस विषयमें सिद्धान्त यह है कि प्राकृत नेत्रोंके लिए परमेश्वर निराकार हैं और अप्राकृत नेत्रोंके लिए वे साकार हैं। अतएव उनके दोनों स्वरूप ही स्वीकृत हैं।

(त. सू. सूत्र ४)

प्र. ४१—भगवान एक ही समय सर्वव्यापी और साकार कैसे हो सकते हैं?

उ.—विचित्र और अचिन्त्य शक्तिके प्रभावसे भगवान एक ही समय सर्वव्यापी और चित्साकार दोनों रह सकते हैं। केवल ब्रह्मेतर पदार्थों अर्थात् ब्रह्मको छोड़कर दूसरोंके लिए ऐसा होना असम्भव है।

(त. सू. चौथा सूत्र)

प्र. ४२—भगवान क्या जीव द्वारा निर्मित विधिके अधीन हैं या स्वकृत विधिके अधीन हैं?

उ.—शारीरिक नियम यह है कि हाथभरकी रस्सीमें एक हाथ दूसरी रस्सीका संयोग करनेसे दो हाथ ही होगी, वह कभी तीन हाथकी नहीं होगी। परन्तु भगवान इन नियमोंके बाध्य नहीं हैं। वे विधियोंके विधाता अर्थात् बनानेवाले हैं; अतएव स्वकृत विधियोंके अधीन या बाध्य नहीं हैं।

(त. सू. सूत्र ४)

प्र. ४३—क्या परमेश्वर देश-कालके अधीन तत्त्व हैं?

उ.—Our ideas are constrained by the idea of space and time, but God is above that constraint.

(The Bhagavata, Its Philosophy, Ethics and Theology)

प्र. ४४—साकार और निराकारका विवाद कब दूर होता है?

उ.—सात्त्वत-तत्त्व—समस्त सम्प्रदायसे अतीत है। अतएव साकार-निराकार रूप विवादमें सारग्राही व्यक्तियोंको कदापि लिप्त नहीं होना चाहिए। भक्तिका उदय होनेसे ही

मनुष्यकी बुद्धि वृत्तिमें उभयात्मक परमेश्वर प्रतीत होंगे। (त. सू. सूत्र ४)

प्र. ४५—श्रीकृष्णका असमोर्द्ध्वत्व क्यों है?

उ.—सच्चिदानन्द-विग्रह श्रीकृष्णमें ६४ गुण सम्पूर्ण रूपसे शुद्ध चिन्मयरूपमें नित्य देदीप्यमान हैं। शेषोक्त चार गुण केवल श्रीकृष्ण-स्वरूप व्यतीत उनकी किसी विलास-मूर्त्तिमें भी नहीं हैं। इन चारों गुणोंको छोड़कर बाकी ६० गुण सम्पूर्ण रूपसे चिद्घन विग्रह परव्योमपति नारायणमें देदीप्यमान हैं। ६४ गुणोंमेंसे शेषोक्त नौ गुणोंको छोड़कर अवशिष्ट ५५ गुण अंश-अंश रूपमें शिव आदि देवताओंमें विद्यमान हैं। प्रथमोक्त ५० गुण बिन्दु-बिन्दु रूपमें समस्त जीवोंमें परिलक्षित होते हैं। शिव, ब्रह्मा, सूर्य, गणेश और इन्द्र—ये उन्हीं भगवानके अंश, गुण-विशिष्ट, जगत व्यापारमें अधिकारप्राप्त भगवद्-विभूतिरूप अवतार विशेष हैं। स्वरूपतः वे सभी भगवानके दास हैं। उनकी कृपासे अनेकों व्यक्तियोंने शुद्धभक्ति प्राप्त की है। (जैव-धर्म १३वाँ अध्याय)

प्र. ४६—श्रीकृष्ण अपने शरणागत भक्तोंकी दृष्टिमें किस रूपमें होते हैं?

उ.—

सदा शुद्ध सिद्धकाम, भक्त वत्सल नाम,
भकतजनेर नित्य स्वामी।
तुमि त' राखिबे जारे, के तारे मारिते पारे,
सकल विधिर विधि तुमि॥

आप सदा शुद्ध हैं, आपका नाम भक्तवत्सल है तथा आप भक्तोंके स्वामी हैं। आप जिसकी रक्षा करें, उसे कौन मार सकता है? आप तो समस्त विधियोंके भी विधि हैं। अर्थात् आप विधियोंके अधीन नहीं हैं। (शरणागति)

प्र. ४७—श्रीकृष्ण लीलामय क्यों हैं?

उ.—

श्रीकृष्ण—परम-तत्त्व, ताँर लीला—शुद्धसत्त्व,
माया जार दूरस्थिता दासी।
जीव प्रति कृपा करि, लीला प्रकाशिला हरि,
जीवेर मङ्गल अभिलाषी॥

कृष्ण परतत्त्व हैं। उनकी समस्त प्रकारकी लीलाएँ शुद्धसत्त्वमय हैं। माया उनकी दासी है, जो उनसे दूर रहती है। जीवोंपर कृपा करनेके लिए ही जीवोंके कल्याणके इच्छुक उन्होंने अपनी लीलाएँ प्रकाशित कीं।

(श्रीरूपानुग-भजन-दर्पण २८ गी. मा.)

प्र. ४८—परब्रह्मके अप्राकृत स्वरूपके सम्बन्धमें वैदिक प्रमाण क्या है?

उ.—"बहु स्याम्" (तै. उ.—६ अ.) इत्यादि श्रुति-मन्त्रोंके अनुसार जब भगवानने अनेक होनेकी इच्छा की, उस समय "स ऐक्षत्" (ऐत. उ. १/१) इस मन्त्रके अनुसार जिन्होंने प्राकृत शक्तिके प्रति दृष्टिपात किया। उस समय तक प्राकृत मन और नेत्रकी सृष्टि नहीं हुई थी। इसलिए भगवानने जिस मनसे चिन्तन किया था और जिन नेत्रोंसे प्रकृतिके प्रति ईक्षण किया था, वह मन और वे नेत्र प्राकृत-सृष्टिसे पूर्व भी विद्यमान थे। अतएव परब्रह्मका मन और उनके नेत्र स्वरूपतः थे—यह सर्ववेद-सम्मत है।

(अ. प्र. भा. म. ६/१४/१४८)

प्र. ४९—भगवानके छः प्रकारके ऐश्वर्योंमेंसे अङ्ग-अङ्गीका विचार किस प्रकार है? निर्विशेष ब्रह्म क्या स्वयं सिद्ध तत्त्व हैं अथवा आपेक्षिक हैं?

उ.—समग्र ऐश्वर्य, समग्र वीर्य, समग्र यशः, समग्र श्री अर्थात् सौन्दर्य, समग्र ज्ञान और समग्र वैराग्य—इन छः अचिन्त्य गुणोंसे

विशिष्ट तत्त्वस्वरूप भगवान हैं। ये गुणसमूह परस्पर अङ्ग-अङ्गी रूपमें विन्यस्त हैं। इनमेंसे कौन अङ्गी हैं? और कौन-कौन अङ्ग हैं? यह विचार करना है। अङ्गी उसे कहते हैं, जिसमें अङ्ग-समूह न्यस्त होते हैं। जैसे—वृक्ष अङ्गी है एवं डाल और पत्ते उसके अङ्ग हैं, शरीर अङ्गी है और हाथ, पैर आदि अङ्ग हैं। इसी प्रकार ये गुणसमूह अङ्गके रूपमें जिसमें अवस्थित होते हैं, वही अङ्गी है। श्रीभगवानके चिन्मय विग्रहमें "श्री" ही अङ्गी है और दूसरे गुण-समूह अङ्ग हैं। ऐश्वर्य, वीर्य, यशः—ये तीन अङ्ग हैं। ज्ञान और वैराग्य यशःसे ज्योतिःस्वरूप निकलते हैं; अतः ये अङ्गकी किरणें हैं। ये गुणके गुण हैं—स्वयं गुण नहीं हैं। निर्विकार ज्ञान ही ज्ञान और वैराग्यके रूपमें प्रतिभात होता है, यही ब्रह्मका स्वरूप है। अतएव ब्रह्म—चिन्मय ब्रह्माण्डकी अङ्ग-कान्ति हैं। निर्विकार, निष्क्रिय, निरवयव, निर्विशेष ब्रह्म स्वयं सिद्ध-तत्त्व नहीं हैं—वे श्रीविग्रहके आश्रित-तत्त्व हैं। अग्निका प्रकाशगुण स्वयं सिद्ध-तत्त्व नहीं है, बल्कि वह अग्निके स्वरूपके ऊपर आश्रित उसका एक गुणमात्र है।

(जैव-धर्म १३वाँ अध्याय)

श्रीलप्रभुपादजीका उपदेशामृत

[वर्ष ४७, संख्या ४, पृष्ठ ८१ से आगे]

प्र. ११३—क्या श्रीगुरुदेव सम्पूर्णरूपमें निरपेक्ष होते हैं?

उ.—अवश्य ही। मेरे गुरुदेव सम्पूर्णरूपसे निरपेक्ष हैं। इस संसारमें वे किसीकी अपेक्षा नहीं रखते। अर्थात् वे जगतमें किसीसे कुछ नहीं चाहते। उनकी एकमात्र इच्छा होती है कि सभी लोग निष्कपटरूपसे भगवानका भजन करें। किसीको कृष्णकी सेवामें लगानेको ही वे सर्वापेक्षा अधिक दया मानते हैं। परन्तु किसीकी रुचि संसारमें लगा देनेको या विषय-भोगोंके प्रति किसीको प्रोत्साहन देनेको सबसे बड़ी हिंसा मानते हैं।

प्र. ११४—क्या भगवानकी कृपासे ही सद्गुरु प्राप्त होते हैं?

उ.—हाँ। यदि हमारा ऐसा सौभाग्य हो कि हमें भगवद्भक्तोंका सङ्ग प्राप्त हो, तो उसकी व्यवस्था भी भगवान ही करते हैं। वे गुरुके द्वारा ही हमें अभय अर्थात् हमारे समस्त प्रकारके भयोंका नाश कर देते हैं। जिनका ऐसा भाग्य नहीं है, उन्हें अनेक प्रकारकी असुविधाओंका सामना करना पड़ता है। जिसका जैसा अधिकार अथवा भाग्य है, उसको उसके अनुरूप ही गुरुकी प्राप्ति होती है।

प्र. ११५—क्या गुरुकी सेवाकी वस्तुओंके प्रति भोगबुद्धि करना उचित है?

उ.—कदापि नहीं। यह अपराध है। कान रहनेपर यदि मैं हरिकथा श्रवण न करूँ, आँख रहनेपर यदि मैं भगवानका दर्शन न करूँ, नाक रहनेपर यदि मैं कृष्णके चरणोंमें अर्पित तुलसीका आघ्राण न करूँ, जिह्वाको यदि प्रसादको छोड़कर अन्यान्य आस्वादनीय वस्तुओंके आस्वादनमें लगाऊँ, तो गुरुसेवाके वस्तुओंके प्रति भागबुद्धि अवश्य ही हो जाएगी। इस प्रकार हमारा मङ्गल नहीं हो सकता।

प्र. ११६—क्या पूर्णरूपसे आत्मसमर्पण करनेपर ही कल्याण सम्भव है?

उ.—अवश्य ही। श्रीगुरुदेव मेरी मूर्खता, मेरी असम्पूर्णता, मेरी असद् विचार-प्रणाली, मेरे अस्थिर सिद्धान्त इत्यादिको पूर्णरूपसे जानते हैं। इसलिए वे मेरे रोगके अनुरूप ही व्यवस्था करते हैं। जिनके निकट उपस्थित होनेसे अन्य किसीके निकट जाने अथवा कुछ सुननेकी आवश्यकता नहीं रह जाती, वे ही सद्गुरु हैं। समस्त मङ्गलोंके भी मङ्गलस्वरूप भगवानने मेरा मङ्गल जिसके हाथोंमें सौंपा है, मैं यदि ऐसे सद्गुरुके चरणोंमें पूर्णरूपसे समर्पण करूँ तो वे भी पूर्णरूपसे मेरा कल्याण करेंगे। परन्तु यदि मैं कपटता करूँगा तो वे मेरी वञ्चना कर देंगे। वे कहते हैं—तू न मेरा शिष्य बना और न तूने मेरा शासन स्वीकार किया तथा कपटी लोगोंके विचारोंको सुननेके कारण मेरी बातोंको सुननेके योग्य तेरे पास कान ही नहीं है। अतः तू वञ्चित हो गया। अतः वे मेरे कल्याणके लिए निष्कपटरूपसे जो व्यवस्था करते हैं, उसे मुझे सिर झुकाकर आदरपूर्वक ग्रहण करना चाहिए। यही शरणागतका लक्षण है।

प्र. ११७—हमें कहाँपर असुविधा हो रही है?

उ.—मैं अपना मङ्गल चाहता हूँ, परन्तु अमङ्गलको ही मङ्गल मान रहा हूँ। मैं अपने रोगको दूर करनेके लिए डाक्टरको बुलाता हूँ, परन्तु जब डाक्टर आकर कहता है कि तुम यह औषध खाओ तथा यह परहेज करो, तो मैं कहता हूँ कि आप मेरी इच्छाके अनुसार चलिए। तो क्या यह डाक्टरसे इलाज कराना हुआ? क्या इस प्रकार मेरा रोग दूर हो सकता है? उसी प्रकार यदि मैं गुरुके पास आकर उनकी बातोंको न सुनकर अपनी इच्छानुसार चलूँ तो मेरा मङ्गल कैसे हो सकता है? इसलिए जो वैद्य रोगीके इच्छानुसार इलाज करता है, उसे वैद्य नहीं कहा जा सकता। जिस औषधिके द्वारा वास्तवमें ही मेरा रोग दूर हो सकता है, वह औषधि न देकर यदि वैद्य मेरा मन रखनेके लिए मेरी इच्छाके अनुसार औषधि देता है तथा फीस लेकर चला जाता है, उससे मुझे क्षणिक सुख तो प्राप्त होगा, परन्तु क्या रोग दूर होगा?

प्र. ११८—भक्ति कैसे प्राप्त हो सकती है?

उ.—भक्तोंके सङ्गसे ही भक्ति प्राप्त होती है। अन्य किसी उपायसे नहीं। कृष्णप्राप्ति ही जीवोंका सर्वश्रेष्ठ मङ्गल है। महा सौभाग्यसे ही उसकी प्राप्ति होती है। ब्रह्माण्ड भ्रमण करनेकी इच्छा समाप्त होनेपर जीव भाग्यवान हो जाता है।

गुरुकी कृपाके बलसे ही आत्मधर्म प्रकाशित होनेपर जीवको भक्तिलताका बीज प्राप्त होता है। गुरुकी कृपा और कृष्णकी कृपा भिन्न नहीं है। अर्थात् प्रकृष्टरूपसे आनन्दित होकर जो दिया जाता है—यही प्रसादका अर्थ है। महाप्रभुने कहा है—

ब्रह्माण्ड भ्रमिते कोन भाग्यवान जीव।
गुरुकृष्ण प्रसादे पाय भक्तिलता बीज॥

सेवक होकर प्रभुकी सेवा करना ही भक्ति है। भक्तिका तात्पर्य यही है—प्रभुका सुखविधान। अपने सुखके लिए प्रभुकी सेवा भक्ति नहीं कहलाई जा सकती।

गुरुसे ही भक्तिका बीज प्राप्त होता है। माली होकर हमें इस बीजको हृदयरूपी

क्षेत्रमें आरोपणकर उसे श्रवण-कीर्तनरूपी जलसे सींचना पड़ेगा। मैं सेवक हूँ, सेवा ही मेरा धर्म है—इन विचारोंमें प्रतिष्ठित होना ही माली होना होता है। भक्तिलताका बीज जो कि गुरुके निकटसे प्राप्त होता है, कृष्ण ही अहैतुकी कृपाके कारण स्वयं गुरुरूपमें उसे प्रदान करते हैं। उस बीजको प्राप्त करके हमें कृष्णसेवा ही करनी चाहिए। ऐसा न कर यदि मैं सेवासे उदासीन रहूँ, तो अनेक प्रकारकी विपत्तियाँ मुझे घेर लेंगी। गुरुदेवकी कृपाके बलसे भजनकी समस्त प्रकारकी बाधाएँ अवश्य ही दूर हो जाएँगी। भजनकी बाधा दूर होनेपर ही हमारे लिए सुविधा होगी। गुरुके मुखसे तथा साधुओंके मुखसे ही श्रवण होता है। गुरु-वैष्णवोंके निर्देशानुसार कीर्तन इत्यादि भी श्रवणके अन्तर्गत है। श्रीगुरुदेवके चरणकमलोंसे एक क्षणके लिए भी च्युत हो जानेपर हमारे सिरपर विपत्तियोंका पहाड़ टूट पड़ेगा। श्रवण-कीर्तन ही जल है। सींचनेवाला गुरुका आश्रित भक्त है। विश्रम्भ अर्थात् प्रगाढ़ निष्ठा एवं प्रीतिपूर्वक सर्वदा गुरुकी सेवा करना ही हमारा एकमात्र कर्तव्य है।

गुरु-वैष्णवोंका सङ्ग करना ही हमारा कर्तव्य है। हमें भक्तिलताको यत्नपूर्वक पालन करना चाहिए। हमें अच्छी प्रकारसे भगवानकी सेवा करनी चाहिए। यदि हम इन सबका पालन करेंगे तो कभी भी विपत्तिमें नहीं पड़ेंगे। नहीं तो हमारे मार्गमें असुविधाएँ निश्चितरूपसे आएँगी।

प्र. ११९—हम जीवित हैं या मृत?

उ.—जीव भगवानका सेवक है, भगवानकी सेवा करना उसका धर्म है। सेवा ही चेतनकी जीवित अवस्था है। अतः हम भगवानकी सेवा करनेपर ही जीवित हैं। सेवाविमुख व्यक्ति मृत है। कृष्ण एवं भक्तोंकी सेवा छोड़कर किसीका कोई अन्य कर्तव्य नहीं है। जीव गुरु एवं कृष्णका दास है। अपनी स्वतन्त्रतासे चलनेपर जीवनका सद्व्यवहार नहीं हो सकता। केवल जीवन्मृत अवस्था ही प्राप्त होती है। अर्थात् जो भगवानकी सेवा नहीं करता, वह जीवित होते हुए भी मरेके समान है। कर्मकाण्डमें प्रवृत्ति मार्गपर चलनेवाला व्यक्ति ही मृत है। मरनेके कारण अर्थात् भगवत् सेवासे विमुख होनेके कारण ही असत् कार्योंमें प्रवृत्ति होती है। सत् कार्योंमें नहीं। वास्तव वस्तु भगवानकी सेवासे वञ्चित रहना ही मृत-अवस्था है। जो कृष्णके अधीन न होकर मायाके अधीन हैं, वे ही जीते जी मरेके समान हैं। शारीरिक एवं मानसिक रूपसे समृद्ध होनेकी चेष्टा आत्माका धर्म नहीं है, वह प्राणहीन अथवा अज्ञानका कार्य है। भक्तिमें ही एकमात्र सुख है। इसके अतिरिक्त अन्य सभी वस्तुएँ दुःखप्रद हैं। इससे स्पष्ट हो जाता है कि भोगी और त्यागी दोनों ही मृत, दुःखी एवं अशान्त हैं। केवल निष्काम भक्त ही जीवित, सुखी और शान्त है।

प्र. १२०—सिद्धि कौन प्राप्त कर सकता है?

उ.—श्रौतपन्थी ही सिद्धि लाभ कर सकते हैं। तर्ककी कभी प्रतिष्ठा नहीं होती, अर्थात् तर्कके द्वारा कभी किसी वस्तुका ठीक-ठीक निर्णय नहीं हो सकता। श्रौतपथ ही नित्य प्रतिष्ठित होता है। अर्थात् श्रौतपथका अवलम्बन करनेपर ही किसी वस्तुका यथार्थ ज्ञान हो सकता है। जो चौबीस घण्टेमें चौबीस घण्टे हरि कीर्तन करते हैं, केवल वे ही सिद्धि

प्राप्त करते हैं।

प्र. १२१—बहुत व्यक्तियोंको गुरुके समान समझना क्या उचित है?

उ.—नहीं। गुरुकी अवज्ञा नहीं करनी चाहिए, श्रौतवाणीकी निन्दा नहीं करनी चाहिए। बहुत-से व्यक्तियोंको गुरुके समान पूज्य माननसे गुरुकी अवज्ञा करना हो जाता है। अद्वय ज्ञान ब्रजेन्द्रनन्दनका आश्रय ग्रहण किए बिना जीवका मङ्गल नहीं हो सकता।

मेरे श्रीगुरुदेव दयाके सागर हैं। उनकी दयासागरका एक बिन्दु ही मुझे आनन्द-सागरमें डुबा सकता है।

गुरुदेव कितनी कृपा नहीं करते हैं? गुरुदेव कृपापूर्वक कहते थे—तुम अपना पाण्डित्य, पवित्रता, अभिज्ञता सबकुछ परित्यागकर मेरे पास आओ। तुम्हें और कहीं जानेकी आवश्यकता नहीं है। तुम्हें घर, पाण्डित्य, प्रतिभा इत्यादिकी आवश्यकता है तथा जितना संयम, संन्यासकी आवश्यकता है, मैं तुम्हें सब दूँगा। तुम केवल मेरे पास आ जाओ। तुम घर, परिवार, पाण्डित्यके पीछे मत दौड़ो, साधारण लोग जिसे अपना प्रयोजन समझते हैं, तुम उसे अपना प्रयोजन मत समझो।

चातुर्मास्य

(१३ जुलाईसे ७ नवम्बर तक)

—ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती

शास्त्रोंमें उल्लेख

वेदोंमें जगह-जगह चातुर्मास्य-व्रतका उल्लेख पाया जाता है। इनमें अनेक स्थलों पर इसे कर्मका अङ्ग माना गया है। धर्मशास्त्रोंमें भी चातुर्मास्य-व्रतकी व्यवस्थाका अभाव नहीं है। पुराणोंमें तो इसकी बड़ी महिमा बतलाई गई है।

आधुनिक स्मृति-सम्बन्धी पुस्तकों और निबन्धोंमें भी चातुर्मास्य-व्रतके अनेक रूपोंमें विधान पाये जाते हैं। 'हरिभक्तिविलास' नामक परमार्थ स्मृतिशास्त्र और रघुनन्दन द्वारा रचित 'कृत्य-तत्त्व' ग्रन्थमें भी हम इस व्रतका विधान देखते हैं।

कर्मी, ज्ञानी और भक्त सबके लिए चातुर्मास्यका विधान

क्या कर्मी, क्या ज्ञानी और क्या भक्त सभीको चातुर्मास्य व्रतका पालन करना चाहिए। कोई-कोई इसे केवल कर्मकाण्डीय व्यापार मानते हैं। किन्तु उनका ऐसा समझना पूर्णतः निराधार है। काठक सूत्रोंमें यति-धर्मका निरूपण करते हुए कहते हैं—

एकरात्रं वसेद् ग्रामे नगरे पञ्चरात्रकम्।
वर्षाभ्योऽन्यत्र वर्षासु मासांश्च चतुरो वसेत्॥

एकदण्डी ज्ञानीजन और त्रिदण्डी भक्तजन दोनों ही चातुर्मास्यका पालन करते हैं। श्रीशङ्कर मतावलम्बियोंमें भी चातुर्मास्य-व्रतकी व्यवस्था है।

चातुर्मास्य-व्रत और श्रीचैतन्यमहाप्रभु

भगवान् श्रीचैतन्यदेवने भी कावेरीके तटपर स्थित श्रीरङ्गनाथजीके मन्दिरमें चातुर्मास्यके चार महीने बिताये थे। श्रीगौड़ीय भक्तजन प्रतिवर्ष चातुर्मास्यके दिनोंमें श्रीपुरीधाममें श्रीमन्महाप्रभुके साथ रहकर नियमित रूपसे हरिसंकीर्त्तन, हरि-चर्चा, वैष्णव-सेवा और

भगवत्-पूजनमें बिताया करते थे।

चारों आश्रमोंके प्रत्येक हिन्दूके लिए चातुर्मास्यका विधान है

शास्त्रोंमें चारों आश्रमोंके हिन्दूमात्रके लिए चातुर्मास्य-पालनकी व्यवस्था दी गई है। किन्तु बहुत ही कष्टसाध्य होनेके कारण ये प्राचीन रीतियाँ समाजके क्षेत्रसे क्रमशः दूर होती चली जा रही हैं। यद्यपि कर्मी और भक्त-सम्प्रदायोंमें व्रतोंके पालन करनेकी विधियाँ कुछ-कुछ भिन्न हैं, तथापि प्रत्येक हिन्दू इन व्रतोंके प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा और आदरका भाव रखता है।

चातुर्मास्यमें भोगोंका त्याग ही आदर्श है

इस व्रतमें समस्त प्रकारके भोगोंका सर्वथा त्याग करना ही विधि है। कर्मी, ज्ञानी और भक्त—इन सभी समाजोंके लोग त्यागको श्रद्धाकी दृष्टिसे देखते हैं। किन्तु किसी समाजमें यह श्रद्धाका भाव कुछ अधिक होता है और किसीमें कुछ कम। अतः इन तीनों पथोंमें विचरण करनेवाले आर्यगण अपने चारों आश्रमोंमें चातुर्मास्य-व्रतका सम्मान करते हैं। जो नितान्त असमर्थ होते हैं, वे इतने दीर्घकाल तक इन कठोर नियमोंके अधीन रहना लाभदायक नहीं मानते। इसलिए वे इन व्रतोंके पालनमें शिथिलता प्रदर्शन करते हैं।

गृहस्थोंके भोगोंके विधानका उद्देश्य त्यागसे है

ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास इन तीनों आश्रमोंमें भोगका तनिक भी आदर नहीं है। केवल गृहस्थोंके लिए शास्त्रोंमें किञ्चिन्मात्र भोगोंका विधान देखा जाता है। किन्तु वास्तवमें इन लोगोंके लिए निर्दिष्ट भोगोंका उद्देश्य भी त्याग ही होता है। जिन लोगोंके लिए बारह महीनोंमेंसे आठ महीने तक गृहस्थधर्मके पालन करनेकी विधि दी गई है, उन्हें चार महीने तक भोगोंसे सर्वथा दूर रहकर अन्य तीन आश्रमवासियोंके सङ्गमें ही समय बिताना उचित है। नारद ऋषिजीने भी उनके पहले जन्ममें चातुर्मास्य काल उपस्थित होनेपर ऋषि-महर्षियोंके साथ उनकी सेवामें रहकर चातुर्मास्यका पालन किया था। फलस्वरूप उन्होंने साक्षात् भगवत् पार्षद-देह एवं भगवानकी सेवा भी प्राप्त कर ली।

जो चार महीनों तक नियम-सेवा पालन करनेमें असमर्थ हैं, उन्हें ऊर्ज्जाविधि अर्थात् कार्त्तिक-व्रतका अवश्य ही पालन करना चाहिए। कोई-कोई भक्त चातुर्मास्यके चार महीनोंतक नियमितरूपमें विधियोंके पालनमें अपनेको असमर्थ पाकर केवलमात्र दामोदर व्रतका ही पालन करते हैं। उनको ऐसा देखकर कोई ऐसा न समझें कि उनके लिए चातुर्मास्य-व्रत पालन करनेकी कोई आवश्यकता ही नहीं है। वैसा आचरण केवल असमर्थ व्यक्तियोंके लिए अनुकल्प विधिमात्र समझना चाहिए। चार मास तक नियमसेवाके अधीन रहकर भगवत्सेवा करनेसे मनकी निसर्गतः धर्मके प्रति (हरिसेवाके प्रति) प्रवृत्ति उदित होती है।

चातुर्मास्यका समय निरूपण

चातुर्मास्यका समय निरूपण करते हुए वराह-पुराणमें लिखते हैं—

आषाढ़-शुक्लद्वादश्यां पौर्णमास्यामथापि वा।
चातुर्मास्य-व्रतारम्भं कुर्यात् कर्कट-संक्रमे॥
अभावे तु तुलार्केऽपि मन्त्रेण नियमं व्रती।
कार्त्तिके शुक्लद्वादश्यां विधिवत्तत् समाययेत्॥

चातुर्मास्यकी गणना तीन प्रकारसे की जाती है—(१) आषाढ़ मासकी शुक्लाद्वादशीसे कार्त्तिक मासकी शुक्लाद्वादशी तक चार

चान्द्रमास, (२) आषाढ़की पूर्णिमासे कार्त्तिककी पूर्णिमा तक चार चान्द्रमास और (३) कर्कट संक्रान्ति अर्थात् सौर श्रावण माससे सौर कार्त्तिक मास तक चार मास। इन तीनोंमें से किसी एकके अनुसार चार महीनोंतक चातुर्मास्य-व्रतके नियमोंका विधिवत् पालन करना चाहिए। जो लोग चार महीनों तक इसके नियमोंका विधिवत् पालन करनेमें असमर्थ हों, उन्हें कार्त्तिक माससमें एक महीने भर अपने इष्टमन्त्रके जप आदि नियमोंका विधिवत् पालन करना उचित है। विशेषतः ऊर्ज्जाव्रतका पालन करना अवश्य कर्त्तव्य है, क्योंकि ऊर्ज्जाव्रतको ६४ प्रकारकी भक्तिमें एक अङ्ग माना गया है। कार्त्तिक शुक्ला द्वादशीको ऊर्ज्जाव्रतकी समाप्ति कर देनी चाहिये। अर्थात् २५ दिनोंतक तो अवश्य ही इस व्रतका पालन करना चाहिये। उसके बाद पाँच दिन भीष्मपंचक पालनकर रास-पूर्णिमाके दिन पूर्णाहूति देनी चाहिए।

हरिशयन कालमें चातुर्मास्य-व्रतका पालन न करनेका परिणाम

श्रीभगवान् वर्षाके चार महीने शयन करते हैं। इस शयन कालमें कृष्ण-सेवाकी प्रवृत्तिको क्रमशः वर्द्धित करनेके लिए चातुर्मास्य-व्रतका पालन करना चाहिये। यह एक नित्य-व्रत है। इस व्रतका पालन नहीं करनेसे पाप लगता है।

इत्याश्वास्य प्रभोरग्रे गृह्णीयान्नियमं व्रती।
चतुर्मासेषु कर्त्तव्यं कृष्णभक्तिविवृद्धये॥

(हरिभक्तिविलास १५/५९)

अर्थात्, व्रती व्यक्तिको "हे जगन्नाथ! आपके शयन करने पर यह सारा जगत् सोता है एवं आपके जगने पर जगता है। हे अच्युत्! आप मेरे ऊपर प्रसन्न हों।"—भगवान्के आगे इस प्रकार प्रार्थना कर कृष्णभक्तिकी वृद्धिके लिए इन चार महीनों तक नियम-सेवाका व्रत ग्रहण करना चाहिए।

जो विना नियमं मर्त्यो व्रतं वा जप्यमेव वा।
चातुर्मास्यं नयन्मूर्खो जीवन्नपि मृतो हि सः॥

(हरिभक्तिविलास १५/६०)

अर्थात् जो व्यक्ति कोई नियम या व्रत धारण किये बिना अथवा जपादिसे रहित होकर चातुर्मास्यका समय यों ही बिता देता है, वह मूर्ख व्यक्ति जीवित रह कर भी मृतके समान है।

व्रतमें ग्रहणीय और वर्जनीय बातें

व्रतके पालनीय विधियोंके सम्बन्धमें स्कन्दपुराणमें इस प्रकार कहा गया है—

जप-होमाद्यनुष्ठानं नाम-संकीर्त्तनस्तथा।
स्वीकृत्य प्रार्थयेद्देवं गृहीतनियमो बुधः॥

(हरिभक्तिविलास १५/६५)

अर्थात्, व्रतको धारण करनेवाले बुद्धिमान व्यक्ति होम आदिका अनुष्ठान और श्रीनाम संकीर्त्तन करेंगे। उन्हें भगवान्के निकट ऐसी प्रार्थना करनी चाहिये कि 'हे देव! मैं आपके सामने यह व्रत धारण कर रहा हूँ। हे केशव! आप ऐसी कृपा करें, जिससे मेरा यह व्रत बिना किसी विघ्न-बाधाके सिद्ध हो जाय।'

अब इस व्रतकी वर्जनीय बातोंका उल्लेख करते हैं—

श्रावणे वर्जयेत शाकं दधि भाद्रपदे तथा।
दुग्धमाश्वयुजे मासि कार्त्तिके चामिषं त्यजेत्॥

(ह. भ. वि. १५/६१ संख्याधृत स्कन्दपुराण)

—चातुर्मास्यके प्रथम भागमें अर्थात् श्रावण मासमें शाक, भाद्रमें दधि, आश्विनमें दुग्ध

और कार्त्तिकमें आमिष अर्थात् मांस जातीय वस्तुओंका परित्याग करना चाहिए। कोई-कोई शाकसे पकाये हुए व्यञ्जन मानते हैं। सारांश यह है कि समस्त प्रकारके भोगोंको त्यागकर निरन्तर हरि-संकीर्तन करना चाहिए।

"रुच्यं तत्तत्काल-लभ्यं फल-मूलादि वर्जयेत्।"

समयोचित फल-मूल कन्द आदि खानेसे जीवन धारण तो होता है, किन्तु अधिक मात्रामें इनका सेवन करनेसे भगवत्-स्मृति मन्द हो जाती है तथा जड़ विषयोंमें अतिशय आसक्ति बढ़ जाती है। इसलिए चातुर्मास्यमें इन सबका परित्याग कर संयत होकर हरि-कीर्त्तन करना चाहिये।

एक ही साथ नाना प्रकारके त्याग संभव नहीं हैं। अतः सामर्थ्यवानोंके लिए अधिक-से-अधिक जितना त्याग संभव हो, उतना ही अच्छा है। कर्मीलोगोंमें विषय-भोगकी लालसा अधिक होती है। इसीलिए विषय-भोगकी लालसाके त्यागका शास्त्रोंमें बड़ा माहात्म्य बतलाया गया है। सारांश यह कि त्याग द्वारा विषयोंके प्रति आसक्ति कुछ संकुचित होनेपर भगवदनुकम्पाका सुयोग उपस्थित होता है। आत्म-धर्म या नित्य भगवत्-सेवन धर्मको प्रस्फुटित करानेके लिए अपनी-अपनी रुचिके अनुकूल शरीर और मनका धर्म जितना ही अधिक संकुचित किया जा सके, उतना ही मङ्गलजनक है। क्योंकि शरीर और मनका धर्म जितना ही संकुचित होगा, साधकका हरिसेवामें उतना ही अधिक उत्साह बढ़ता जायेगा।

विधि

चातुर्मास्यके दिनोंमें जमीनपर सोना चाहिए, पत्तलमें भोजन करना चाहिए। हो सके तो प्रतिदिन शामको एक वक्त भोजन करना चाहिए। प्रतिदिन ब्रह्ममुहूर्तमें स्नान अवश्य करना चाहिए तथा नियमसे रह कर भगवान्‌की प्रतिदिन विधिवत् पूजा करनी चाहिए। संख्यापूर्वक नाम, आरती-दर्शन, तुलसी-पूजा, मंत्रका जप आदि अवश्य करना चाहिए।

व्रतीको योगका अभ्यास करना चाहिए। समस्त प्रकारके योगोंमें भक्तियोग श्रेष्ठ है, क्योंकि भक्ति आत्माकी नित्य वृत्ति है। राजयोग अर्थात् ज्ञानयोग—मनकी एक अनित्य वृत्ति है तथा कर्मयोग या हठयोग—शरीर और मनकी मिश्रित एक दूसरी अनित्य वृत्ति है। अतः भक्तियोगका अभ्यास ही श्रेयस्कर है।

इन चार महीनों तक मौन-व्रत अवलम्बन करनेसे विशेषरूपमें हरिकीर्त्तनका सुयोग पाया जाता है। जमीन पर सोने और बिना पात्रके भोजन करनेसे हृदयमें एक प्रकारका स्वाभाविक दैन्य उत्पन्न होता है, जो हरिसेवाके लिए बड़ा ही उपयोगी और अनुकूल होता है। चातुर्मास्यकी समस्त विधियोंको अनुकूल कर लेने पर भजनमें अत्यधिक सहायता मिलती है।

इन सब नियमोंके अतिरिक्त नक्त भोजन (रातमें तारोंको देख कर जो भोजन किया जाता है), पंच गव्य (गायसे प्राप्त होनेवाले पाँच द्रव्य—दूध, दही, घृत, गोबर और गोमूत्र) का भोजन, तीर्थ-स्नान, अयाचित भोजन, भगवान्‌के मन्दिरमें संकीर्तन, वहाँ शास्त्रोंका पठन-पाठन या श्रवण, बिना तेल-साबुन लगाये स्नान आदि विधियोंका नियमपूर्वक पालन करना चाहिए।

धाम-वास, भागवत-श्रवण, नाम-संकीर्तन, साधु-सङ्ग (भक्तोंकी सेवा)और श्रद्धाके साथ विग्रह-सेवा—भक्तिके ६४ अङ्गोंमेंसे ये पाँच

प्रधान हैं। (श्रीलरूप गोस्वामी) आत्मकल्याणके लिए इन पाँच अङ्गोंका उत्तमरूपसे पालन कर्तव्य है। चातुर्मास्यके समय इन भक्ति-अङ्गोंके पालनकी विशेष महिमा है।

निषेध

व्रतके दिनोंमें सेम, बरवटी (बीन), परमल, बैंगन तथा वासी और दूषित अन्नका परित्याग करना चाहिए। सामर्थ्यवान व्रतीको नमक, तेल, मधु, पुष्पोंका उपभोग तथा कटु, अम्ल, तिक्त, मधुर, क्षार काषाय आदि रसोंको त्याग देना चाहिए। प्याज, लहसुन, नागरमोथा, छत्री, गाजर, टमाटर, मूली, लौकी, उरद, मसूर, मादक द्रव्य (शराब, चाय, पान, बीड़ी, सिगरेट, गाँजा, भांग, गुटखा) तथा माँस, मछली, अंडे आदि आमिष खाद्योंका वर्जन करना चाहिए। हो सके तो पकाए हुए द्रव्योंका भोजन और मिट्टीके वर्त्तनमें पकाये हुए पदार्थोंका भोजन न करना चाहिए तथा दही, दूध और मक्खनका भी परित्याग कर देना चाहिए। एक दिन अन्तर एक दिन उपवास करना उत्तम है। नख और केश आदि कटवाने नहीं चाहिए। क्योंकि इनसे विलासिता बढ़ती है। विशेषरूपसे ब्रह्मचर्यका पालन करना अवश्य कर्तव्य है।

शास्त्रोंमें चातुर्मास्यका बड़ा माहात्म्य बतलाया गया है। किन्तु ये समस्त फल उन कर्मियोंको भक्तिकी ओर प्रवृत्त करनेके लिए ही कहे गये हैं, जो सर्वदा कर्मफलमें आसक्त रहा करते हैं तथा भगवद्भक्तिके प्रति उदासीन रहते हैं। जिस प्रकार एक रोगी बालकको लड्डूका लोभ दिखला कर दवा दी जाती है, ठीक उसी प्रकार कर्मकाण्डमें आसक्त व्यक्तियोंको बड़े-बड़े फलोंका लोभ दिखलाकर भक्तिमार्गमें क्रमशः प्रवेश कराया जाता है। ज्ञानी और भक्तोंको लौकिक और पारत्रिक (स्वर्ग) किसी भी फलकी कामना नहीं होती। भक्तोंको तो ज्ञानियोंके काम्य—मुक्तिफलकी भी कामना नहीं करनी चाहिये। भगवद्भक्ति होने पर मोक्षकी वासना भी अत्यन्त घृणित प्रतीत होने लगती है। सम्पूर्णरूपसे विशुद्ध कृष्णसेवाकी प्राप्ति ही चातुर्मास्यका चरम फल है।

चातुर्मास्यके समय अवश्य पालनीय तिथियाँ

जुलाई १३	श्रीगुरुपूर्णिमा, श्रीव्यासपूजा। चातुर्मास्य व्रत प्रारम्भ।
जुलाई २५	कामिका एकादशी व्रत।
अगस्त ८	पवित्रारोपणी एकादशी व्रत, श्रीश्रीराधा-गोविन्दजीकी झूलनयात्रा प्रारम्भ।
अगस्त १२	श्रीबलदेव पूर्णिमा व्रत, झूलनोत्सव समाप्त, रक्षाबन्धन।
अगस्त २०	श्रीकृष्णजन्माष्टमी व्रत।
अगस्त २३	अन्नदा एकादशी व्रत।
सितम्बर ४	श्रीराधाष्टमी।
सितम्बर ६	पार्श्व एकादशी व्रत।
सितम्बर २२	इन्दिरा एकादशी व्रत।
अक्टूबर ६	पाशांकुशा एकादशी व्रत।
अक्टू. १०	शरद पूर्णिमा, श्रीकृष्णकी शारदीय रासलीला, कार्तिकव्रत, ऊर्जाव्रत, दामोदरव्रत, नियम-सेवा प्रारम्भ।
अक्टू. २१	रमा एकादशी व्रत।
नवम्बर ४	उत्थान एकादशी व्रत।
नवम्बर ८	पूर्णिमा, श्रीकृष्णकी हैमन्तिकी रासयात्रा, चातुर्मास्य व्रत, ऊर्ज्जाव्रत, दामोदर व्रत, नियमसेवा समाप्त।

श्रीगुरु-परम्परा और सम्प्रदाय-प्रणाली

[वर्ष ४७, संख्या ४, पृष्ठ ८३ से आगे]

—ॐविष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज

सत्सम्प्रदायके सभी प्रकारके विचार अच्छे ही होते हैं। परन्तु असत् सम्प्रदायोंके आंशिक विचार ही ठीक होते हैं। भागवतमें ऐसा ही विचार दिखाया गया है।

यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्यकिञ्चना
सर्वैर्गुणैस्तत्र समासते सुराः।
हरावभक्तस्य कुतो महद्गुणा
मनोरथेनासति धावतो बहिः॥

जिसके हृदयमें भक्ति है, श्रद्धा है, भगवानके प्रति दृढ़ विश्वास है, ऐसे व्यक्तिके सभी विचार अच्छे ही होते हैं। वे समस्त गुणोंके भण्डार होते हैं। परन्तु जिसकी भगवानमें भक्ति नहीं है, श्रद्धा नहीं है तथा जो भगवान पर निर्भर नहीं है, क्या ऐसे व्यक्तिमें सद्गुण हो सकते हैं? *''मनोरथेनासति धावतो बहिः''*—वे असत् मनोरथोंके द्वारा परिचालित अर्थात् मनकी इच्छाओंके अनुसार असत् वस्तुओंके प्रति धावित होते हैं। जो अपना ही कल्याण नहीं कर सकता, वह दूसरेका कल्याण क्या करेगा? ये समस्त विचार शास्त्रोंमें तो हैं ही। फिर हम इन विचारोंको स्वीकार क्यों नहीं कर पा रहे हैं? आजकल संसार युक्तियोंके अनुसार चलता है अर्थात् वे प्रत्येक वस्तुको अपनी बुद्धिके द्वारा जाननेकी चेष्टा करते हैं। यहाँ तक कि पारमार्थिक विषयोंमें भी वे अपनी बुद्धिका उपयोग करते हैं। इसलिए जहाँपर सत्सम्प्रदायकी बात शास्त्रोंमें कही गई है, वहीं पर असत् सम्प्रदायोंकी बात भी कही गई है। यह दलबाजी क्या है? चोरोंका भी एक दल होता है, जो सब समय ऐसे विचार करते हैं कि जो हमपर शासन करनेवाले हैं, हम यदि किसी प्रकारसे इन्हें अपने वशमें कर लें तो हम आसानीसे चोरी, डकैती कर सकते हैं। यह क्या अच्छी बात है? मेरे गुरुदेव एक बात कहते थे, देखो, चोरोंका एक दल होता है और साधुओंका भी एक दल होता है। अतः मैं इन दोनोंमेंसे किसे मानूँगा? मैं अनुशासन एवं नीति-आदर्श मानूँगा या इन सभीको परित्याग कर दूँगा? सारा संसार यदि असामाजिक तत्त्वोंसे भर जाए तो साधु क्या करेंगे? वे अपनी प्रतिज्ञा लेकर बैठे ही रह जाएँगे अर्थात् वे अकेले ही भगवानका भजन करेंगे।

विश्व यदि चले जाय काँदिते काँदिते।
एका आमि पड़े रब कर्त्तव्य साधिते॥

यह प्रतिज्ञा सबके लिए आवश्यक है। यदि यह प्रतिज्ञा हम न करें तो कभी भी अपने अस्तित्वकी रक्षा नहीं कर पायेंगे। चोर लोग विचार करते हैं कि हम चोरी, डकैती, बदमाशीके द्वारा अपना जीवन निर्वाह करेंगे। साधुलोग सोचते हैं कि हम इन समस्त प्रकारकी बुराइयोंको परित्यागकर नीति-आदर्शके अनुसार चलेंगे। इससे स्पष्ट हो जाता है कि सत्-सम्प्रदाय और असत्-सम्प्रदायमें बहुत अन्तर है।

सम्प्रदाय-प्रणाली क्या है? सम्प्रदाय—सत् शिक्षा। अर्थात् जिसमें सत् शिक्षा प्रदान की जाती है, उसे सम्प्रदाय कहते हैं। जो इसे स्वीकार करते हैं, वे शास्त्र-अनुशासनके अनुगत होते हैं। हमारे पूर्व-पूर्व गोस्वामीवर्गने इन समस्त विषयोंका बहुत सुन्दर ढङ्गसे वर्णन किया है। मध्व सम्प्रदायके आचार्य श्रीमद् आनन्दतीर्थ पूर्णप्रज्ञ मध्वाचार्यको श्रीजीव गोस्वामीने वृद्ध-वैष्णव कहा है। वृद्ध-वैष्णव कहकर उन्होंने उन्हें सम्मान दिया है। जो स्वयं समस्त शास्त्रोंमें, तत्त्व-सिद्धान्तोंमें पारङ्गत हैं, जिनके बहुत-से तत्त्व-सिद्धान्तपूर्ण ग्रन्थ हैं, साधारण मनुष्य आजकल जिनका अर्थ ही नहीं समझ पा रहा है, ऐसे जीव गोस्वामी जैसे महापुरुष अपनेसे ऊपरवाले महापुरुषोंकी शिक्षाको ही महत्व देते हैं। वास्तवमें इस संसारमें जो महापुरुष हैं अथवा विद्वान हैं, वे ही हमारे पूज्य होने चाहिए। यदि हम

कुछ पढ़ाई-लिखाई सीखकर ज्ञान अर्जन करते हैं, तो उसका फल क्या है? उसका फल यह है कि हम अपनेसे श्रेष्ठ लोगोंके विचारोंको स्वीकार करेंगे। उनकी शिक्षा एवं आदर्शोंको सम्पूर्ण रूपसे मानेंगे। यदि हमारे भाव ऐसे न हों, तो हम उस धारामें खड़े नहीं रह सकते।

एक दिग्विजयी पण्डित था, जिसने नवद्वीपके अतिरिक्त सारे भारतवर्षको अपने पाण्डित्यके बलपर जीत लिया था। नवद्वीपको उस समय विद्याका प्रधान केन्द्र माना जाता था। उसने विचार किया यदि किसी प्रकारसे यहाँके पण्डितोंको जीत लूँ, तो मुझे दिग्विजयी उपाधि प्राप्त हो सकती है। अतः वह शास्त्रार्थ करनेके लिए नवद्वीपमें आया। जब वह निमाइ पण्डित (श्रीचैतन्य महाप्रभु) के समक्ष आया, महाप्रभु उससे बोले—"हम गङ्गाके किनारे बैठे हैं। आप कृपापूर्वक गङ्गाकी महिमाका वर्णन कीजिए।" यह सुनकर उस पण्डितने धारा-प्रवाह रूपमें एक सौ श्लोकोंके माध्यमसे गङ्गाजीकी महिमाका वर्णन किया। महाप्रभुने उससे उन श्लोकोंमेंसे ठीक बीचके एक श्लोककी व्याख्या करनेके लिए कहा।

महत्त्वं गङ्गायाः सततमिदमाभाति नितरां
यदेषा श्रीविष्णोश्चरणकमलोत्पत्तिसुभगा।
द्वितीय-श्रीलक्ष्मीरिव सुरनरैरर्च्यचरणा
भवानीभर्त्तुर्या शिरसि विभवत्यद्भुतगुणा॥

यह सुनकर वह पण्डित अवाक् रह गया। फिर जब प्रभुने उसके श्लोकमें दोष दिखाए, तो उसका सारा अभिमान चूर्ण हो गया। वह विचार करने लगा कि यह निमाइ पण्डित एक व्याकरणका अध्यापक है और मैं इसके आगे हार गया। परन्तु निमाइ पण्डित बोले—"रात अधिक हो गयी है, आप घरके जाकर विश्राम कीजिए। पुनः कल आलोचना होगी।" वह पण्डित जिनसे पराजित हुआ वह साधारण पण्डित नहीं, स्वयं सरस्वतीके पति हैं, दिग्विजयी पण्डित इस बातको नहीं जानता था। वह दुःखी होकर घर गया तथा भोजनकर सो गया। रात्रिके समय सपनेमें स्वयं सरस्वती देवी उसके पास आईं और बोलीं—"पण्डित, सारे भारतको जय करनेपर भी तू नवद्वीपमें परास्त हुआ है। इसलिए तेरा मन बहुत खराब हो गया है। क्या तू जानता है कि जिनसे तू पराजित हुआ है, वे कौन है? वे मेरे स्वामी हैं। इसीलिए जब तू उनसे शास्त्रार्थ कर रहा था, उस समय मैं तेरी जिह्वापर विराजमान नहीं हुई। इसलिए तू परास्त हो गया। तू धन्य हो गया। तू कल प्रातः उनके पास जा, उनसे क्षमा माँग तथा उनसे उपदेश ग्रहण कर।" बादमें देखा जाता है कि उसने ऐसा ही किया। महाप्रभुने भी कृपाकर उसे उपदेश प्रदान किये।

'दिग्विजय करिब'—विद्यार कार्य नहे।
ईश्वरे भजिले, सेइ विद्या 'सत्य' कहे॥
मन दिया बुझ, देह छाड़िया चलिले।
धन वा पौरुष सङ्गे किछु नाहि चले॥
एतेके महान्त सब सर्व परिहरि।
करेन ईश्वर-सेवा दृढ़-चित्त करि॥
एतेके छाड़िया, विप्र, सकल जञ्जाल।
श्रीकृष्णचरण गिया भजह सकाल॥
यावत् मरण नाहि उपसन्न हय।
तावत् सेवह कृष्ण करिया निश्चय॥
सेइ से विद्यार फल जानिह निश्चय।
कृष्णपादपद्मे यदि चित्त-वृत्ति रय॥
महा उपदेश एइ कहिलुँ तोमारे।
'सबे विष्णुभक्ति सत्य अनन्त-संसारे॥'

अर्थात् दिग्विजय करना विद्याका कार्य नहीं है। यदि भगवानका भजन किया जाय, तभी विद्याकी सार्थकता है। पण्डित! तुम ध्यानपूर्वक सुनो। अन्त समयमें शरीर छूटने पर धन, मान, सम्मान, विद्या कुछ भी साथ नहीं जाता है। इसीलिए पूर्व-पूर्व महापुरुषोंने सब कुछ परित्यागकर दृढ़तापूर्वक भगवानकी सेवा की है। अतः तुम भी इन समस्त झंझटोंको छोड़कर कृष्णभजन करो। जबतक तुम्हारी मृत्यु नहीं आ जाती, तबतक दृढ़तापूर्वक कृष्णभजन करो। यही विद्याका वास्तविक फल है। यह मैं तुम्हें महा उपदेश प्रदान कर रहा हूँ। इस अथाह संसारमें विष्णुभक्ति ही एकमात्र सत्य है। (क्रमशः)

श्रीगौराङ्ग-सुधा

(वर्ष ४७, संख्या ४, पृष्ठ ८७ से आगे)

—श्रीपरमेश्वरी दास ब्रह्मचारी

वहाँपर पहुँचकर क्रुद्ध युवाओंने काजीका घर तथा बाग-बगीचोंको उजाड़ना आरम्भ कर दिया। प्रभु उसके द्वारपर बैठ गए तथा उन्होंने कुछ विज्ञ लोगोंको काजीको बुलानेके लिए भेज दिया। कुछ क्षण पश्चात् काजी भय एवं लज्जासे सिर झुकाए हुए वहाँपर आया। प्रभु उसे सम्मानपूर्वक अपने पास बिठाते हुए बोले—"काजी महाशय! मैं आपके दरवाजेपर अतिथि बनकर आया हूँ, परन्तु आप मुझे देखकर घरके अन्दर छिप गए। यह आपका कैसा धर्म है? आपने ऐसा अनुचित कार्य क्यों किया?"

काजी बोला—"जब मैंने देखा कि आप क्रोधित होकर आ रहे हैं, तो भयभीत होकर मैं घरमें छिप गया। अब आपका क्रोध शान्त हो गया है, इसलिए मैं आपके सामने आया हूँ। आज तो मेरा परम सौभाग्य उदित हुआ है कि आप जैसे अतिथि मेरे घरपर आये हैं। गाँवके सम्बन्धमें आपके नाना नीलाम्बर चक्रवर्ती मेरे चाचा हैं। इस प्रकार आप मेरे भान्जे हैं। भान्जा कभी भी मामाके अपराधोंको ग्रहण नहीं करता।

यह सुनकर प्रभु बोले—"मैं आपसे एक प्रश्न पूछने आया हूँ।"

काजी—"प्रभो! आज्ञा कीजिए कि आपके मनमें क्या है?"

प्रभु—"आपलोग गायका दूध पीते हैं। इस प्रकार गाय तुम्हारी माता हो गई। बैल तुम्हारे खेतोंमें हल जोतता है, जिससे फसलें पैदा होती हैं। इस प्रकार वह तुम्हारा पिता हो गया। परन्तु तुम अपनी मातास्वरूप गाय तथा पितास्वरूप बैलको मारकर खाते हो। यह तुम्हारा कैसा धर्म है? ऐसा दुष्कर्म करनेका साहस तुम्हारा कैसे होता है?"

काजी—"प्रभो! जैसे आपके वेद-पुराण आदि शास्त्र हैं, उसी प्रकार हमारा शास्त्र भी 'कुरान' है। उसमें दो मार्ग बतलाए गए हैं—प्रवृत्ति मार्ग एवं निवृत्ति मार्ग। निवृत्ति मार्गमें जीवमात्रका वध निषिद्ध है, परन्तु प्रवृत्ति मार्गमें गोवधकी विधि बताई गई है। अतः शास्त्रविधिके अनुसार वध करनेसे पाप नहीं लगता। यहाँतक कि आपके शास्त्रोंमें भी गोवधकी विधि है। बड़े-बड़े ऋषि-मुनि गोवध करते हैं।"

यह सुनकर प्रभु बोले—"ऐसी बात नहीं है। वेदोंमें ऐसा वर्णन है कि जीवमात्रकी हिंसा न करो। शास्त्रोंका आदेश है कि जो व्यक्ति किसी प्राणीको जीवित कर सकता है, केवल उसे ही किसी प्राणीकी हत्या करनेका अधिकार है। अतः हमारे ऋषि-मुनि वेदमन्त्रोंको सिद्ध करनेके लिए बूढ़ी गायका वध करते थे, परन्तु मन्त्र सिद्धिके पश्चात् पुनः उसे जीवित भी कर देते थे। उस समय वह बूढ़ी गाय जवान हो जाती थी। इस प्रकार गायका कल्याण ही होता था, अकल्याण नहीं। अतः इसे गोवध नहीं कहा जा सकता।" परन्तु कलियुगमें ऐसे शक्तिमान ब्राह्मण न होनेके कारण इस युगमें गोवध निषेध है—

अश्वमेधं गवालम्भं संन्यासं पलपैतृकम्।
देवरेण सुतोत्पत्तिं कलौ पञ्च विवर्जयेत्॥

(ब्रह्म वैवर्त्त)

कलियुगमें अश्वमेध, गोमेध, संन्यास (एकदण्ड), मांस द्वारा पितृश्राद्ध तथा देवरके द्वारा पुत्र-उत्पत्ति

निषेध है।

तुमलोग केवल मारना जानते हो, जीवित करना नहीं। इसलिए गोवधके पापसे तुम्हें नरक जाना पड़ेगा। गायके शरीरमें जितने केश हैं, गायका वध करनेवालेको उतने हजार वर्षोंतक रौरव नामक नरकमें सड़ना पड़ता है। भ्रमित होनेके कारण ही तुम्हारे शास्त्रकारोंने ऐसा अन्यायपूर्ण आदेश दिया है।"

यह सुनकर काजी स्तब्ध हो गया। उसके मुँहसे एक शब्द न निकला। कुछ क्षण पश्चात् अपनेको संयतकर बोला—"प्रभो! आपने जो कहा, वह अटल सत्य है। हमारे कुछ आधुनिक शास्त्रोंमें ही दोष हैं। मैं इसे अच्छी प्रकारसे जानता हूँ। परन्तु एक मुस्लिम होनेके कारण मुझे उनको मानना पड़ता है।"

यह सुनकर प्रभु हँसते हुए बोले—"मामा! मैं आपसे और एक प्रश्न पूछना चाहता हूँ। आप निष्कपटरूपसे उत्तर देंगे। मुझसे कुछ भी मत छिपाना। मैंने सुना है कि आप हिन्दूधर्मके कट्टर विरोधी हैं। यदि कोई आपको भगवानका कीर्तन या पूजापाठ करता हुआ मिल जाता है, तो आप उसे कठोर दण्ड देते हैं। आज आपके सामने आपके घरमें ही ये सभी लोग कीर्तन कर रहे हैं, परन्तु आप इनका विरोध नहीं कर रहे हैं, इसका क्या कारण है?"

सुनकर काजी कुछ लज्जित-सा होकर धीरेसे प्रभुसे बोला—"हे गौरहरि! इसका कारण मैं आपको एकान्तमें बताऊँगा।"

प्रभु बोले—"ये सभी लोग अन्तरङ्ग हैं, अतः स्पष्टरूपसे इन सबके सामने ही कहिए। भयकी कोई बात नहीं है।"

यह सुनकर काजी बोला—"प्रभो! उस दिन जब मैंने एक हिन्दूके घर जाकर मृदङ्ग फोड़ दिया था, उसी दिन रात्रिके समय जब मैं गहरी नींदमें सो रहा था, तो अकस्मात् एक अद्भुत प्राणी मेरी छातीपर बैठ गया। उसके ऊपरका शरीर तो सिंह जैसा, परन्तु नीचेका शरीर मनुष्य जैसा था। वह भयङ्कर रूपसे अट्टहास कर रहा था। उसने अपने तीखे नाखुनोंको मेरी छातीमें घुसा दिया तथा गर्जन करते हुए बोला—'अरे दुष्ट! तेरा इतना साहस कि तूने मेरा मृदङ्ग तोड़ा तथा तू मेरे कीर्तनमें बाधा डालता है, मैं आज उसके बदले तेरी छाती फाड़ डालता हूँ।' भयके कारण मैंने आँखें बन्द कर लीं तथा मेरा शरीर काँपने लगा। मुझे भयभीत देखकर उसे मुझपर कुछ दया आ गई तथा वह कुछ कोमल स्वरमें बोला—"मैं आज तुझे सावधान कर रहा हूँ। उस दिन तूने कुछ विशेष उत्पात नहीं मचाया, इसीलिए तुझे आज क्षमा कर रहा हूँ। परन्तु यदि आजके बाद तूने कीर्तनमें बाधा पहुँचाई तो तुझे तेरे वंशके साथ नष्ट कर दूँगा। ऐसा कहकर वह अन्तर्धान हो गया। अभी तक मेरी छातीमें नाखुनोंके निशान हैं।" ऐसा कहकर जब उसने अपनी छाती दिखाई तो सभी भक्तोंको अति आश्चर्य हुआ।

काजी बोला—"यह बात मैंने किसीको नहीं बताई। एक दिन मेरा एक सेवक मेरे पास आया तथा बोला कि मैं संकीर्तनको बन्द कराने गया था, परन्तु अचानक एक आगकी लपट मेरे मुखपर आई, जिससे मेरी दाढ़ी जल गई तथा मुख काला पड़ गया। उसकी यह बात सुनकर मैं और भी अधिक भयभीत हो गया। तबसे मैंने घरसे बाहर निकलना ही बन्द कर दिया, जिससे नगरवासी निर्भय होकर कीर्तन करने लगे। हिन्दुओंको स्वतन्त्ररूपसे कीर्तन करने देख मुसलमान लोग मेरे पास आकर शिकायत करने लगे कि नवद्वीपमें हिन्दूधर्म तेजीसे बढ़ रहा है। चारों ओर 'हरि-हरि', 'कृष्ण-कृष्ण' के अतिरिक्त कुछ भी सुनाई नहीं पड़ रहा है। यह सुनकर मैंने उनसे पूछा कि हिन्दूलोग राम-कृष्ण आदि नाम

जपते हैं, यह तो ठीक है, परन्तु तुम लोग मुसलमान होकर हिन्दुओंके देवताओंका नाम क्यों ले रहे हो? इसपर वे कहने लगे कि पहले तो हम हिन्दुओंको उपहास करनेके लिए यह कहते हुए उनके देवताओंका नाम लेते थे कि देखो-देखो, ये लोग राम-कृष्ण-हरि बोल रहे हैं। अतः अवश्य ही ये किसीके घरमें चोरी करेंगे। परन्तु न जाने इन हिन्दुओंके पास कौन-सा मन्त्र है कि जिसके फलसे उपहास करते-करते अब इच्छा न रहनेपर भी हमारे मुखसे सदा-सर्वदा 'हरेकृष्ण- हरेकृष्ण' निकलता रहता है। यह सुनकर मैंने उन्हें घर भेज दिया। उसी समय पाँच-सात हिन्दूलोग मेरे पास आए तथा शिकायत करने लगे कि इस निमाइपण्डितने हिन्दूधर्मका नाश कर दिया। इसने जिस 'हरेकृष्ण-हरेकृष्ण' कीर्तनको प्रारम्भ कर दिया है, उसके बारेमें हमने आजतक कहीं भी नहीं सुना। शास्त्रोंमें चण्डीजागरण (देवी जागरण) की बात है, परन्तु ये तथा इसके साथ रहनेवाले ढोंगी लोग देवीजागरणमें उपस्थित नहीं होते। पहले तो यह अच्छा ही था, परन्तु जबसे यह गयासे लौटा, तभीसे यह पागलपन कर रहा है। ये तथा इसके साथ हजारों लोग सारी रात मृदङ्ग एवं करताल बजाते हुए चिल्ला- चिल्लाकर कीर्तन करते हैं, जिससे हम सारी रात सो नहीं पाते। अब तो सभी लोग उसे 'निमाइ' न कहकर 'गौरहरि' कहते हैं। हिन्दूशास्त्रोंमें ऐसा वर्णन है कि भगवानका महामन्त्र (नाम) बहुत प्रभावशाली है, परन्तु यदि कोई उच्च स्वरसे सबके सामने इसका उच्चारण करे तो इसकी शक्ति नष्ट हो जाती है। अतः हम बहुत आशा लेकर आपके पास आए हैं कि आप यहाँके मालिक होनेके कारण हमारे धर्मकी रक्षा करनेके लिए इस निमाइपण्डितको बुलाकर उसे कुछ भय दिखाइए। यह सुनकर मैंने उन्हें प्रेमसे समझाकर यह कहकर वापस भेज दिया कि मैं अवश्य ही निमाइपण्डितको निषेध करूँगा।" ऐसा कहकर काजी हाथ जोड़कर कहने लगा—"मैंने हिन्दुओंके ईश्वर नारायणके विषयमें सुना है। मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि आप ही वे नारायण हैं।"

सुनकर प्रभु हँसते-हँसते काजीको छूकर कहने लगे—"मामा! आपके मुखसे कृष्णनाम निकल रहा है। यह तो बड़ी विचित्र बात है। इस प्रकार आपके समस्त पाप नष्ट हो गए हैं तथा आप परमपवित्र हो गए हैं। आपने 'हरि', 'कृष्ण', 'नारायण' इन तीन नामोंका उच्चारण किया है। अतः आप बहुत भाग्यवान एवं पुण्यवान हैं।

यह सुनकर काजीके दोनों नेत्रोंसे अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी तथा वह प्रभुके चरणोंमें गिरकर रोते-रोते बोला—"हे प्रभो! आपकी महिमा अपार है। आपकी कृपासे मेरी दुर्बुद्धि नष्ट हो गई है। अब आप ऐसी कृपा कीजिए कि आपके श्रीचरणोंमें मेरी दृढ़ भक्ति हो जाए।"

काजीकी विकलता देखकर प्रभु कहने लगे—"मामा! मैं आपसे वचन चाहता हूँ कि नवद्वीपमें कीर्तन बन्द न हो।"

यह सुनकर काजी बोला—"मैं आपको वचन देता हूँ कि मेरे वंशमें यदि किसीने कीर्तनका विरोध किया, तो मैं उसे परित्याग कर दूँगा।"

यह सुनकर प्रभु 'हरि-हरि' बालेकर उठ खड़े हुए। यह देखकर अन्यान्य वैष्णवलोग भी 'हरि-हरि' कहते हुए उठ खड़ हुए। अब प्रभु कीर्तन करते हुए अपने भक्तोंके साथ वहाँसे वापस लौट पड़े। काजी भी उल्लसित होकर कीर्तन एवं नृत्य करते हुए प्रभुके साथ ही चल पड़ा। कुछ दूर जाकर प्रभुने प्रेमसे काजीको वापस भेज दिया। काजी आनन्दसे रोते हुए वापस अपने घरको आ गया। (क्रमशः)

सावनकी आई बहार

—डा. मधु खण्डेलवाल (साहित्याचार्य)

श्रीकृष्ण अपने सखाओंके साथ वर्षाऋतुकी शोभा देखते हुए मुग्ध हो गए, वर्षा नायिका कितने ही कौतुकोंके साथ खेल रही थी, उसे भी तो श्रीकृष्णकी सर्वतोभावमयी भावनाके द्वारा चरण सेवा करनी थी, उसका शरीर मेघवर्णका था, दोनों दिशाओंमें दामिनीरूप चञ्चल-नेत्रोंसे स्वयं ही चकित हो देख रही थी, ईषत् विकसित मालती-पुष्प-माला एवं स्निग्ध, अतुलनीय शोभावाले कदम्ब पुष्प बृक्षरूप विशाल रोमाञ्चोंको हर्षपूर्वक धरण किए थी, स्निग्ध एवं मुग्ध दिशा ही तो उसका मुख थी, जिसमें आनन्दमय अश्रुरूप मेघ-बिन्दु गिर रहे थे, ककुभावली (अर्जुन वृक्ष) की सुगन्धित वायु-श्वासोंसे युक्त थी, अतिशय सरस नृत्य करनेवाले मत्त-मयूरके उत्फुल्ल पंख ही उस वर्षा-नायिकाके केश-कलाप थे, चञ्चल एवं मनोहर बक-पंक्ति ही उसके गलेकी मोतियोंकी माला थी, उसके चरण-चिह्न बीरबहूटी (रक्तवर्ण कीट) की 'गो' (किरण) रूप महावरसे युक्त थे, नवीन घाससे युक्त सरस भूतल ही उसकी शय्या थी, जिसकी हरीतिमाने मरकत मणिमय मञ्जरीके प्रकाशका भी हरण कर लिया था, रस वर्षा करनेवाले मेघोंका रिमझिम नाद उस वर्षा-बालाका सुमधुर कण्ठनाद था, नवीन वनोंकी श्रेणीमें प्रकाशित नीलिमा ही उसकी साड़ी थी, वेगसे चलनेवाले भ्रमर उसके कटाक्षपात थे और उसका अधिवास (अतर, फुलेल आदि सुगन्धित द्रव्य) था कदम्बका पराग।

श्रीकृष्ण अवलोकन कर रहे थे कि बर्षा आगमनसे धरतीमें मानो श्वास सञ्चार हो गया, वासरमणि (सूर्य) निहित हो गए, मयूर गर्वित हो गए, चातक सरस शब्द करने लगे, कदम्ब प्रफुल्लित हो गये, ब्रह्माण्डका भाण्डरूप 'विवर' (छिद्र) कस्तूरीगणसे आलिङ्गित हो गया, पर्वतोंने स्नान कर लिया, नदियोंकी पुलिनरूप हड्डियाँ लुप्त हो गईं, गोधनको घास निकट ही सुलभ हो गया, मृग राग-रङ्ग वाले हो गये—यह देख ब्रजपुरमहेन्द्र-नन्दकिशोर रसमयताकी पूर्णताको प्राप्त करने लगे।

श्रीकृष्णकी गायें दूर जानेमें शिथिलताका अनुभव कर रही थी, पासमें ही क्षण-मात्रमें ही उनकी उदरपूर्ति हो गई और वहीं 'शाद' अर्थात् नवीन घाससे हरे-भरे स्थानके मध्यमें बैठ गईं तथा जुगालीसे शिथिल अपने मुखको श्रीकृष्णकी ओर कर लिया—इस आलस्य आदरपूर्वक अवलोकनसे श्रीकृष्ण हर्षित हो उठे, उन्होंने कमलके समान उजली हँसीसे मेघावृत अन्धकारको दूर कर दिया, नवीन कदम्बकी कलिकाओंको गेंद बनाकर खेल रहे थे, उस खेलसे विराम ले लिया। श्रीकृष्ण मधुर-लीलाकी परिपाटीमें तत्पर हो त्रिभङ्ग-ललित रूपमें खड़े हो गए। लकुटीके अग्रभाग पर अपनी बाईं-बगलका तल भाग रख दिया, बाईं जंघाके ऊपर तेजके वेगको धारण करनेवाली दाहिनी जंघाको धर दिया एवं मनरूप मल्लको ग्रहण करनेवाले 'मल्लार' रागका आलाप प्रारम्भ कर दिया।

हर्षमय अश्रुप्रवाह जैसे रुक नहीं सकता, उसी प्रकार वर्षा भी अवरुद्ध न हो सकी, भगवानके दर्शनकी चेष्टा करनेवाली उन गायों पर उस वर्षाका कोई प्रभाव न हुआ, वह धारासम्पत्ति उनके आहारकी गर्मीको शान्त करनेके कारण सुखरूप ही था।

सखाओंने अपने दुपट्टे श्रीकृष्णके मस्तक पर अपने-अपने हाथसे ऊपरकी ओर तान दिये, वस्त्रोंने उन मेघोंके जलको तत्काल धरतीपर गिरा दिया—कितनी सुन्दर समयोचित सेवा हो रही थी! सखाओंने आनन्दपूर्वक श्रीकृष्णसे कहा—"हे जगदेकवल्लभ (सभीके मुख्य प्रीतिपात्र)! इस मल्लार रागका यह प्रत्यक्ष स्वभाव है कि इस रागके गमक-केवल मेघोंको बुलाते हैं, बरसाते नहीं पर आपके द्वारा गाये गए मल्लार रागसे तो ये मेघ अपने आनन्दाश्रुओंको न रोक पाए। प्रिय सखे, अब गान कलासे कोई प्रयोजन नहीं है, मेघोंसे सूर्यके ढक जाने पर हम दिनकी मर्यादा नहीं देख पा रहे, अतः भैया! यहाँसे शीघ्र चल दें, अपनी सब गौओंको भूतलरूप शय्यासे उठा लें।

वनसे चल दिए श्रीकृष्ण नन्दग्रामकी ओर आज मनुजाकृति परब्रह्मकी शोभा अनुपमेय थी, वे सर्वमनोरञ्जक वेणुनाद करते हुए दिशा-विदिशाको जा रहे थे। देखते-देखते गैयाओंका आपीन (स्तनोंका ऊपरी भाग) पयसे परिपूर्ण हो रहा था, अतः वे बड़ी मद्धिम चालसे आलस्यपूर्वक चल रही थीं।

जब श्यामसुन्दर नन्दग्राम पहुँचे तो उन्होंने देखा कि सन्ध्या पूर्ण-स्नान करके मेघ वर्णकी महान् उज्ज्वल साड़ी धारण किए थी, मयूरोंके अतिशय लम्बे पिच्छोंके रूपमें अपने घने केशपाशको फैलाकर सुखा रही थी। पश्चिम दिशामें लगे हुए सन्ध्यारागको जो बिम्बफलकी प्रभाको भी तिरस्कार करनेवाला था, उसी सिन्दूरको उसने भालपर धारण कर रखा था, इस प्रकार वर्षा-वाला सायंस्नान, वस्त्रधारण, केशपोषण, सिन्दूर-प्रसाधन आदिके द्वारा श्रीकृष्णका अभिनन्दन कर रही थी। जो वर्षा-वारि अटारियों पर चारों ओर स्थित था, वह आपसमें मिलकर महती मात्रामें एकत्रित हो गया और यह निष्पाप पवित्र वर्षा-जल धेनुओंके चरणोंको धोनेका प्रयत्न करने लगा। इस जलकी धारासे एक अद्भुत सुगन्ध आ रही थी कि ऐसा लगता था मानो उसने 'एलबालुक' लता एवं कर्पूरकी धूलिको जीतनेवाला 'रेणुका' नामक लताको भी पराजित कर दिया हो।

अब मन्मथ-मन्मथ श्रीकृष्णने विशाल गोसमूहको पहुँचा दिया, प्रेमपूर्वक निरीक्षणरूप 'क्षण' (उत्सव) के द्वारा सभी साथियोंको सम्मानपूर्वक सन्तुष्ट करके अपने-अपने भवनके प्रति विदा कर दिया, माताने अति निपुणतापूर्वक यथायोग्य अन्न-पान आदि खिलाकर शय्यापर सुला दिया। शय्या कर्पूरके सदृश सफेद थी, तकिया मणि-मन्त्र-औषधिसे युक्त था, परम कोमल एवं अतिशय सुगन्धित था। विशिष्ट सुगन्धसे युक्त होनेके कारण भ्रमरगण वहाँ गुञ्जार करते रहते थे।

(क्रमशः)

विदेशोंमें श्रीचैतन्यमहाप्रभुकी वाणीका प्रचार

[पूर्व प्रकाशित संवादके बाद]
(२२ जून २००३ को प्राप्त संवादके अनुसार)

श्रीलमहाराजजी ह्यूस्टन, आस्टिन, चिकागोमें प्रचार करनेके बाद यूरोप महादेश स्थित हालैण्डके आम्स्टर्डम एवं विश्वका सबसे बड़ा बन्दरगाह रोटरडम, इंग्लैण्डके ब्राइटन, बर्मिघम, लन्दन आदि स्थानमें प्रचार सेवा अच्छी तरह सम्पन्न कर अभी स्पेनके मालागामें प्रचार-सेवामें व्यस्त हैं। मालागामें प्रचारके बाद श्रीलमहाराजजी ग्रानेडा और स्पेनकी राजधानी माड्रीडमें प्रचारकर जर्मनीकी राजधानी बर्लिन और फ्रान्कफर्टमें प्रचार कर आष्ट्रियाकी राजधानी वीएनामें प्रचार करने जायेंगे। वीएना प्रचार समाप्तिके बाद ९-७-०३ तारीखको साधनभूमि भारतमें प्रत्यावर्तन करेंगे।

इतने दिन तक प्रचारके प्रधान-प्रधान विषय थे—श्रीमद्भागवतमें वर्णित विभिन्न उपाख्यानोंकी शिक्षा और साधक जीवनमें उन शिक्षाओंका प्रभाव, श्रीबलदेव विद्याभूषण प्रभुकी श्रीब्रह्म-माध्व-गौड़ीय सम्प्रदायके प्रति विशेष सेवा, श्रीगङ्गामाता गोस्वामिनीका जीवन चरित्र, श्रील रघुनाथदास गोस्वामीका जीवनचरित्र व उनकी शिक्षा, (श्रीरूपानुग धारामें स्नात होनेकी अभिलाषा करनेवाले साधकको अवश्य ही श्रीदास गोस्वामीका अनुगमन करना होगा। श्रीदास गोस्वामीजीके आनुगत्यके बिना किसीकी भी रूपानुग धारामें स्नात होनेकी अभिलाषा पूर्ण नहीं हो सकती।) श्रीजगन्नाथदेवकी स्नानयात्रा और अनवसर कालका रहस्य, श्रीश्यामानन्द प्रभुकी भजन-परिपाटी एवं उनके प्रति सम्प्रदाय-संरक्षक श्रीजीव गोस्वामीकी विशेष कृपा, श्रीगौरशक्ति गदाधरके प्रकाश सप्तम गोस्वामी सच्चिदानन्द श्रीलभक्तिविनोद ठाकुरका अप्राकृत जीवनचरित और उनकी शिक्षा, श्रीगुण्डिचा मन्दिर मार्जनका रहस्य, श्रीमन्महाप्रभुसे पहलेकी रथयात्रा और श्रीमन्महाप्रभुके समयकी रथयात्राकी तुलनात्मक आलोचना तथा स्वरूप दामोदर प्रभुकी शिक्षा।

विभिन्न विषयोंमें विभिन्न दृष्टिकोणोंसे आलोचना होनेपर भी ह्यूस्टन और बर्मिघममें आयोजित धर्मसभाका एक विशेष वैशिष्ट्य है। ह्यूस्टन धर्मसभाका विशेष वैशिष्ट्य यह है—

३१-५-०३ तारीखकी धर्मसभामें आलोच्य विषय था—How to obtain Real happiness in this life. इस धर्मसभामें ह्यूस्टन स्थित मीनाक्षी मन्दिरसे डा. मुखर्जी, आर्यसमाज मन्दिरसे डा. प्रेमचन्द श्रीधर, जैन सम्प्रदायसे Samani charita pragya, Christian Community से मि. जन् कुन्नापु तथा तहल किशोर शास्त्री, श्रीरामचन्द्र दास, श्यामारानी दासी आदि अनेक प्रमुख व्यक्ति उपस्थित थे। जिनके सम्मानमें इस सेमिनारका आयोजन किया गया था, वे थे प्रमुख वक्ता स्वामी बी. वी. नारायण। विभिन्न वक्ताओंके द्वारा विभिन्न प्रकारसे सुखलाभके उपायोंकी व्याख्या करने पर अन्तमें श्रीलमहाराजजी बोले—आजकी धर्मसभाका आलोच्य विषय How to obtain Real happiness in this life. सर्वप्रथम हमें जानना चाहिए कि

सुख कौन चाहता है तथा दुःख क्यों नहीं चाहता? इस आवश्यकता (डीमाण्ड) द्वारा ही समझा जा सकता है कि इस जगतमें निरवच्छिन्न (अखण्ड) सुख नहीं है, शाश्वत सुख नहीं है। यह जगत केवलमात्र दुःख एवं समस्याओंके द्वारा परिपूर्ण है। सुखको कौन चाहता है? यह जड़ शरीर या आत्मा? हमलोग जो कुछ करते हैं, समस्त कार्य इस जड़ शरीरको सुखी करनेके लिए। फिर भी हमलोग जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधिके हाथसे इस शरीरकी रक्षा कर नहीं पाते हैं। दूसरी ओर आत्मा अजर, अमर, जन्म–मृत्यु–जरा–व्याधिसे अतीत है। आत्माके सुखके लिए तो हम कुछ भी नहीं करते। आज विज्ञानमें Transportation, Communication, Medical Science में जो उन्नति हम देख रहे हैं, वह केवलमात्र जड़ शरीरको सुखी करनेके लिए ही है, आत्माके लिए नहीं। पहले हमें आत्माके सम्बन्धमें जानना होगा, तभी तो आत्माको किस प्रकार सुखी किया जा सकता है, हम जान सकेंगे। इस विषयमें एक छोटे–से उपाख्यानके द्वारा उदाहरण दे रहा हूँ। उससे यह विषय स्पष्ट हो जाएगा। आप सभी लोग हिरण्यकशिपु एवं हिरण्याक्षके बारेमें जानते हैं। हिरण्याक्ष वराह भगवानके द्वारा मारे जानेपर उसके समस्त परिवारके क्रन्दनरत होनेपर हिरण्य–कशिपुने शोकाकुल परिवारीजनोंको निम्न प्रकारसे सान्त्वना प्रदानकर उनका शोक दूर करनेकी चेष्टा की—

प्राचीन कालमें सुयोग्य नामके एक राजा थे। दिग्विजयकी अभिलाषासे उन्होंने पार्श्ववर्ती राज्यों पर आक्रमण किया। राजा सुयोग्य सब प्रकारसे योग्य होनेपर भी भाग्यचक्रसे युद्धमें उनकी मृत्यु हो गई। उनका शरीर टुकड़े–टुकड़े होकर युद्धभूमिकी शोभाका वर्द्धित कर रहा था। युद्धके पश्चात् सुयोग्य राजाके शरीरको एकत्रित कर राजभवनमें लाया गया। शोकसन्तप्त राजपरिवार प्रजाओंके साथ विलाप करने लगे। उन्हें सान्त्वना देनेके लिए कोई नहीं था। क्रन्दन–ध्वनि अन्तमें यमलोक तक पहुँच गई। यम महाराज कोई उपाय न देखकर पाँच सालके बालकका रूप धारणकर अवतरित हुए। अनेक व्यक्तियोंसे रोने–चिल्लानेका कारण पूछने पर भी कोई उत्तर न पाकर एक वृद्ध व्यक्तिके पास जाकर पूछने लगे—

बाबा! बाबा! आप सभी लोग क्यों रो रहे हैं? इतने विलापका क्या कारण है, मुझे कोई बता नहीं रहा है, आप बताइए।

वृद्ध व्यक्ति—तुम अत्यन्त छोटे बालक हो, तुम इस शोकग्रस्त राजपरिवार और प्रजाओंके रोनेका कारण समझ नहीं पाओगे। इसलिए तुम दूसरे बालकोंके साथ आनन्दपूर्वक खेलो।

बालक (छद्मवेशधारी महाराज यम)—आप मुझे विलापका कारण बताइए, मैं समझता हूँ कि मैं जितना समझ पाऊँगा, दूसरा कोई उतना समझ नहीं पायेगा।

वृद्ध व्यक्ति—महाराज सुयोग्य मर गये हैं।

बालक—मर गये हैं तो कब लौटेंगे?

वृद्ध व्यक्ति—वे अब इस जीवनमें नहीं लौटेंगे।

बालक—क्यों नहीं लौटेंगे?

वृद्ध व्यक्ति—बाबा, तुम नितान्त बालक

हो, तुम ये सब समझ नहीं पाओगे, इसीलिए तो मैंने तुमसे पहले ही कहा था कि तुम खेलकूद करो।

बालक—मैं वास्तवमें समझ चुका हूँ कि वे मर गये हैं। जैसे—कोलकाता गये हैं, दिल्ली गये हैं, लन्दन गये हैं, अमेरिका गये हैं, दो दिन, चार दिन, दस दिन, पन्द्रह दिनके बाद अवश्य ही लौटेंगे। इसी प्रकार यदि वे किसी 'मर' नामक स्थानपर गये हैं, तो कितने दिनमें लौटेंगे?

(बालकके इस प्रकारके अद्भुत प्रश्नोंको सुनकर सभी लोग रोना बन्दकर pindrop silent होकर सुनने लगे।)

वृद्ध—नहीं, राजा और नहीं लौटेंगे। जहाँ जानेसे कोई नहीं लौटता, महाराज वहीं गये हैं।

बालक—राजा तो आपलोगोंके सम्मुख सोये हुए हैं, उन्हें जगाइए, उनसे बात कीजिए।

वृद्ध व्यक्ति—राजा सदाके लिए सो गये हैं, उनकी नींद कभी नहीं टूटेगी।

बालक—राजा और क्यों नहीं जागेंगे?

वृद्ध व्यक्ति—राजाकी आत्मा शरीरसे बाहर निकल गयी है, इसलिए राजाकी न नींद टूटेगी न ही बात करेंगे।

बालक (मन्द मुस्कानके साथ)—अहो! आत्मा निकल गयी है। क्या आपलोगोंने कभी राजाकी आत्माका दर्शन किया है? आत्मा कितनी लम्बी, कितनी चौड़ी है, क्या खाती है, क्या पहनती है, क्या आपलोगोंमेंसे कोई जानते हैं?

विस्मयके साथ अनेकोंने उत्तर दिया—नहीं, आत्माको हमने कभी नहीं देखा।

बालक—जिसके बारेमें आपलोग नहीं जानते हैं, जिसको आपने नहीं देखा है, उसके लिए रोना निरर्थक है। आत्मा अजर, अमर अर्थात् जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधिसे अतीत है। आत्माको अस्त्र-शस्त्र द्वारा काटा नहीं जा सकता, जलमें भिगाया नहीं जा सकता, आगसे जलाया नहीं जा सकता। आत्मा नित्य, शाश्वत तथा सनातन है एवं भगवानका अंश है। इसलिए भगवानने कहा है—नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि... एवं ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।

आत्मतत्त्वज्ञान दानकर बालक अन्तर्हित हो गया। सभी लोग शोक-मोहसे मुक्त होकर अपने-अपने कार्यमें नियुक्त हो गए।

इसलिए हमें द्वादश महाजनोंमें अन्यतम यम महाराजके उपदेशके अनुसार आत्माको किस प्रकार सुखी किया जा सकता है, जानना होगा। विभिन्न युगमें सुखलाभके विभिन्न उपाय रहनेपर भी कलियुगमें वास्तव सुखलाभका एकमात्र उपाय—"***हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्। कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।***" कलियुगमें सुखी होनेका एकमात्र उपाय हरिनाम, हरिनाम एवं हरिनाम है। इसके अतिरिक्त दूसरी कोई गति नहीं है, नहीं है, नहीं है। (तीन बार कहना दृढ़ताका सूचक है।) पृथ्वीके कोई भी प्रान्तके लोग क्यों न हो, आप हरिनामका उच्चारण करके देखिए, मन शान्त हो जाएगा, उद्वेग चला जाएगा तथा सभी विषयोंमें सामञ्जस्य कर पायेंगे।

ह्यूस्टनके मेयरने श्रीलमहाराजजीके विभिन्न प्रवचनोंको इन्टरनेट रेडियो तथा टेलिविजनके माध्यमसे सुनकर जो प्रशंसासूचक पत्र दिया था, वह अगले पृष्ठपर प्रदत्त है।

श्रीश्रीवैष्णवचरणे दण्डवन्नति पूर्विकेयम्

त्रिदण्डिभिक्षु श्रीभक्तिवेदान्त माधव

Srila Nārāyana Mahārāj

I, Lee P. Brown, Mayor of the City of Houston, hereby take pleasure in appointing you an

Honorary Citizen

of the city of Houston, Texas in recognition of the outstanding success you have achieved in your vocation and in appreciation of the valuable contributions you have made and are making through unselfish public service for the benefit and welfare of humanity. Furthermore, as a token of high esteem, I have selected you to serve as a

Goodwill Ambassador

Of this city, with full power and authority to inform others of the genuine hospitality and friendly atmosphere that prevail in Houston and of the many advantages and unlimited opportunities that our great city has to offer.

In witness whereof, I have hereunto set my hand and have caused the official Seal of the City of Houston to be affixed this 31st day of May 2003, A.D.

Lee P. Brown
Mayor of the City of Houston

श्रीश्रीगुरु–गौराङ्गौ–जयतः

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे

वैकुण्ठ–वार्त्तावह

बृहत्–मृदङ्ग

श्रीभागवत–पत्रिका

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः।
ज्ञान वैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना॥

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा॥

आराध्यो भगवान् व्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावनं, रम्या काचिदुपासना व्रजवधूवर्गेण या कल्पिता।
श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान्, श्रीचैतन्य महाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो नः परः॥

एक भागवत बड़ भागवत शास्त्र । आर एक भागवत भक्तिरसपात्र॥
दुई भागवत द्वारा दिया भक्तिरस । ताहाँर हृदये तार प्रेमे हय वश॥

वर्ष ४७ | श्रीगौराब्द ५१७ | वि. सं. २०६० श्रावण मास, सन् २००३, १३ अगस्त—१० सितम्बर | संख्या ६

श्रीकृष्णनामाष्टकम्

(श्रीमद्रूप–गोस्वामी–विरचितम्)

अनुवादक—श्रीवनमालीदासजी महाराज

निखिलश्रुतिमौलिरत्नमाला–द्युतिनिराजितपादपङ्कजान्त ।
अयि मुक्तकुलैरुपास्यमानं परितस्त्वां हरिनाम! संश्रयामि॥१॥

हे हरिनाम! मैं आपका सर्वतोभावसे आश्रय ग्रहण करता हूँ; क्योंकि आपका महत्व विचित्र है। देखो, समस्त श्रुतियोंकी मुकुटमणिरूप रत्नोंमालाकी चमचमाती हुई कान्तिके द्वारा आपके चरणकमलोंके अन्त भागकी अर्थात् नखोंकी आरती उतारी जाती है और मुक्त मुनिगण भी आपकी उपासना करते रहते हैं। तात्पर्य—सर्वोपनिषदोंके पुरुषार्थ रूपसे प्रतिपाद्य एवं मुक्त मुनिकुल सेव्य आप ही हैं॥१॥

ननु दुरिताक्रान्ताय ते कथं संश्रयं दास्यामि तत्राह—

जय नामधेय! मुनिवृन्दगेय! हे, जनरञ्जनाय परमक्षराकृते।
त्वमनादरादपि मनागुदीरितं, निखिलोग्रतापपटलीं विलुम्पसि॥२॥

यदि कहें कि पापोंसे आक्रान्त तेरे जैसेको कैसे अपना आश्रय दे दूँगा, तब कहते हैं—हे मुनिगणोंके द्वारा गायन करने योग्य एवं भक्तोंके अनुरञ्जनके लिए ही अक्षरोंकी आकृति धारण करनेवाले हरिनाम! आपकी जय हो! अर्थात् आपका उत्कर्ष सदैव विद्यमान रहे, अथवा अपने उत्कर्षको प्रकट करें। प्रभो! वह उत्कर्ष यह है कि आप तो अनादर पूर्वक—अर्थात् सांकेत्य-परिहास आदिके रूपमें किंचित् उच्चारित होनेपर भी लिंगदेह पर्यन्त समस्त भयंकर पापसमूहको समूल रूपसे नष्ट कर देते हैं। अतः मुझे भी अपनी शरणागति अवश्य प्रदान करेंगे॥२॥

न च नामाभासः पापान्येव दग्ध्वा निवर्तते अपितु स्ववाच्ये भक्तिं च प्रकाशयतीत्याह—

यदाभासोऽप्युद्यन्कवलितभवध्वान्तविभवो, दृशं तत्त्वान्धानामपि दिशति भक्तिप्रणयिनीम्।
जनस्तस्योदात्तं जगति भगवन्नामतरणे, कृती ते निर्वक्तुं क इह महिमानं प्रभवति॥३॥

नामाभास केवल पापोंको ही जलाकर निवृत्त नहीं होता, अपितु अपने वाच्य श्रीराम-कृष्ण आदि स्वरूपमें भक्तिको भी प्रकाशित करता है, यह कहते हैं—हे भगवन्नाम रूप सूर्य! इस संसारमें कौन प्रवीण पण्डितजन आपकी असमोर्ध्व महिमाको यथार्थ रूपेण कहनेमें समर्थ है? अर्थात् कोई भी नही; क्योंकि आपका आभासमात्र भी प्रकट होकर संसारके अज्ञान रूप अन्धकारके वैभवको कवलित (ग्रास) कर लेता है और तत्त्वदृष्टि विहीन जनोंको श्रीहरिभक्ति देनेवाली दृष्टि प्रदान करता है॥३॥

अथैकान्तिक भावेनोपासितं नाम भोगैकविनाश्यमपि प्रारब्धं विनैव भोगाद्विनाशतीत्याह—

यद् ब्रह्म साक्षात्कृतिनिष्ठयापि, विनाशमायाति बिना न भोगैः।
अपैति नामस्फुरणेन तत्ते, प्रारब्धकर्मेति विरोति वेदः॥४॥

अब निष्ठापूर्वक जपा हुआ नाम—भोगके द्वारा विनाश्य प्रारब्ध कर्मको भोगके बिना ही नष्ट कर देता है। इसी भावको कहते हैं—हे नाम भगवन्! जो प्रारब्ध कर्मको भोगोंके बिना ब्रह्मकी अविच्छिन्न तैल धारावत की गयी साक्षात्कारकी निष्ठाके द्वारा भी विनष्ट नहीं हो पाता, वह प्रारब्ध-कर्म आपकी स्फूर्त्ति मात्रसे अर्थात् भक्तोंकी जिह्वा पर स्फुरण होने मात्रसे दूर भाग जाता है, इस बातको वेद उच्चस्वरसे कहता है। अर्थात् ब्रह्म विद्याके साक्षात्कारसे संचित एवं क्रियमाण कर्मोंका नाश तो हो जाता है; किन्तु फल देनेके लिए प्रवृत्त पुण्य-पापरूप प्रारब्ध-कर्मका नाश तो भोगसे ही होता है, ब्रह्मविद्यासे नहीं। परन्तु वह प्रारब्ध कर्म भी नामोच्चारण मात्रसे विनष्ट हो जाता है, इसमें वेद प्रमाण हैं। यथा—(स एव सर्वेभ्यः पाप्मभ्य उदितः, उदेति ह वै सर्वपाप्मभ्यो य एवं वेद उदिति तस्य नाम) वह सब पापोंसे छूट गया और वह व्यक्ति ही सब पापोंसे छुटकारा पाता है, जो भगवान्के 'उत्' ऐसे नामको जानता है॥४॥

भक्तेभ्यो विचित्रानन्दान्प्रदातुं बहुरूपतयाविर्भावादतिकरुणमिदं नामेतिभावेनाह—

अघदमन–यशोदानन्दनो नन्दसूनो, कमलनयन–गोपीचन्द्र–वृन्दावनेन्द्राः।
प्रणतकरुण–कृष्णावित्यनेकस्वरूपे, त्वयि मम रतिरुच्चेर्वर्धतां नामधेय!॥५॥

अब भक्तोंको विचित्र आनन्द देनेके लिए अनेक रूपसे प्रकट होनेके कारण यह नाम–भगवान् विशेष दयालु हैं, इस भावसे कहते हैं—हे नाम भगवन्! पूर्वोक्त रूपसे अतर्क्य महिमा वाले आपमें मेरी प्रीति दिन दूनी, रात चौगुनी बढ़ती रहे! आपके अनेक स्वरूप इस प्रकारके हैं—'हे अघदमन! हे यशोदानन्दन! हे नन्दसूनो! हे कमलनयन! हे गोपीचन्द्र! हे वृन्दावनेन्द्र! हे प्रणतकरुण! हे कृष्ण!' इत्यादि॥५॥

अतिकरुणत्वं ते स्फुटमस्ति, अतस्त्वामेव संश्रयामीति भावेनाह—

वाच्यं वाचकमित्युदेति भवतो नाम स्वरूपद्वयं–पूर्वस्मात्परमेव हन्त करुणं तत्रापि जानीमहे।
यस्तस्मिन् विहितापराधनिवहः प्राणी समन्ताद्भवे–दास्येनेदमुपास्य सोऽपि हि सदानन्दाम्बुधौ मज्जति॥६॥

आपकी अतिशय दयालुता प्रसिद्ध है; अतः आपका ही आश्रय लेता हूँ—इस भावसे कहते हैं—हे नाम! आपके वाच्य एवं वाचक रूपसे दो स्वरूप संसारमें प्रकट होते हैं, अर्थात् "वाच्य" शब्दसे सच्चिदानन्द विग्रहवाले कृष्ण लिये जाते हैं और "वाचक" शब्दसे श्रीकृष्ण, गोविन्द इत्यादि वर्णसमूहरूप वाले आपको हम अधिक दयालु जानते हैं; क्योंकि जो प्राणी आपके वाच्य स्वरूपके प्रति अनेक अपराध कर चुका है, वह भी वाचकस्वरूप आपकी जिह्वाके स्पर्शमात्रसे उपासना करके सदैव आनन्द–समुद्रमें गोता लगाता रहता है॥६॥

ननु द्वात्रिंशत्सेवापराधा नाम्ना विनश्येयुर्नामापराधाः साधुनिन्दादयो दश केन? तेऽपि नाम्नैवेत्याह—

सूदिताश्रितजनार्तिराशये रम्यचिद्घनसुख स्वरूपिणे।
नाम गोकुलमहोत्सवाय ते कृष्ण पूर्णवपुषे नमो नमः॥७॥

बत्तीस सेवापराध तो नामके द्वारा नष्ट हो सकते हैं, परन्तु साधुनिन्दा आदि दश नामापराध किससे नष्ट होंगे—इसके उत्तरमें वे भी नामके द्वारा ही नष्ट होंगे, इस भावसे कहते हैं—'हे आश्रित जनोंके पीड़ासमूहको नष्ट करनेवाले, रमणीय सच्चिदानन्द स्वरूपवाले, गोकुलके महोत्सव–स्वरूप एवं व्यापक स्वरूपवाले हे कृष्णनाम! पूर्वोक्त गुणविशिष्ट आपके प्रति बार–बार नमस्कार है।' यहाँ पर पीड़ासमूहसे सभी अपराधोंका ग्रहण है, अर्थात् नामापराधीकी नामापराधरूप सब पीड़ाओंको नाम ही नष्ट करते हैं, यह स्मृतियों में वर्णित है—नामापराधयुक्तानां नामान्येव हरन्त्यधमित्यादि॥७॥

अथ नाम्नः स्वस्मिन् स्फूर्त्तिं प्रार्थयते—

नारदवीणोज्जीवन सुधोर्मिनिर्यास माधुरीपूर।
त्वं कृष्णनाम! कामं स्फुर मे रसने रसेन सदा॥८॥

हे नारदकी वीणाको सचेत करनेवाले, हे अमृतमय तरङ्गोंके सार! हे मधुरताके समूह! हे कृष्ण नाम! आप मेरी जिह्वापर स्वेच्छापूर्वक रसयुक्त होकर सदैव स्फूर्ति पाते रहें। इस प्रकारकी प्रार्थना पञ्चम स्कन्धमें भी है। नामके कृपाकी बिना जिह्वा नाम लेनेमें समर्थ नहीं है—यही तात्पर्यार्थ है॥८॥⑧

प्रश्नोत्तर

(अवतार तत्त्व)

—ॐविष्णुपाद श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

प्र. १—अवतार-तत्त्व क्या है? भगवान जगतमें क्यों अवतीर्ण होते हैं?

उ.—मायाबद्ध जीव अपने-अपने भावको प्राप्त कर जिन-जिन स्वरूपोंको पाते हैं, श्रीकृष्ण भी उनके प्राप्त भावको स्वीकार करते हुए अपनी अचिन्त्य शक्तिके द्वारा आध्यात्मिक रूपमें अवतीर्ण होकर उनके साथ लीलाएँ करते हैं। जीव जब मत्स्यावस्थाको प्राप्त करता है, भगवान भी उस समय मत्स्यावतार होते हैं। मत्स्य-निर्दण्ड है। निर्दण्डता क्रमशः वज्रदण्डावस्था होनेपर कूर्मावतार, वज्रदण्ड क्रमशः मेरुदण्ड होनेपर वराहावतार होते हैं। नर-पशुभाव गत जीवमें नृसिंहावतार, क्षुद्रमानवमें वामनावतार, मानवके असभ्यावस्थामें परशुराम एवं सभ्यावस्थामें रामचन्द्र होते हैं। मानवोंके सर्वविज्ञान सम्पन्न होने पर स्वयं भगवान कृष्णचन्द्र आविर्भूत होते हैं। मनुष्य तर्कनिष्ठ होने पर भगवद्भाव बुद्धरूपमें अवतीर्ण होते हैं और नास्तिक होनेपर कल्कि भगवान अवतीर्ण होते हैं। ऐसा प्रसिद्ध मतके अनुसार है। जीवोंके क्रमोन्नत हृदयमें सभी भगवद्भावोंको समय-समय पर उदय होते हुए देखा गया है, वे सभी भगवद्भाव ही 'अवतार' हैं। उन सभी भावोंकी उत्पत्ति और कार्योंमें प्रापञ्चिकत्व नहीं है। जीवोंकी उन्नतिके इतिहासकी आलोचना करते हुए ऋषियोंने ऐतिहासिक कालको दस भागोंमें विभक्त किया है। जब-जब एक-एक अवस्थान्तर लक्षण प्रधान रूपमें देखा गया है, उस समयके उन्नत भावको 'अवतार' कह कर वर्णन किया गया है। कुछ विद्वानोंने कालको चौबीस भागमें विभक्त किया है। किसी-किसीने अठारह भाग कर अठारह अवतारोंका निरूपण किया है।

(कृ. स. ३/५-१२ का अनुवाद)

प्र. २—अवतार तत्त्वका वैज्ञानिक-विचार क्या है?

उ.—अदण्डावस्थासे मनुष्योंकी पूर्णावस्था तक किन्हीं-किन्हीं ऋषियोंने आठ, किसी-किसीने अठारह और किसी-किसीने चौबीस अवतारका वर्णन किया है। दसों अवतार ही प्रायः अधिकांश वैज्ञानिक ऋषियोंके मतानुसार प्रसिद्ध हैं। इन सभी ऋषियोंने जीवके प्रथम बद्धावस्थामें पहलेसे लेकर आखिर तक दस विशेष विशेष अवस्थाओंकी कल्पना की है। पहली अवस्थामें अदण्डावस्था, दूसरी अवस्थामें वज्रदण्डावस्था, तीसरी अवस्थामें मेरुदण्डावस्था, चौथी अवस्थामें उत्थित मेरुदण्डावस्था अर्थात् नर-पशु अवस्था, पाँचवीं अवस्थामें क्षुद्र नरावस्था, छठवीं अवस्थामें असभ्य नरावस्था, सातवीं अवस्थामें सभ्य नरावस्था, आठवीं अवस्थामें ज्ञानावस्था, नौवीं अवस्थामें अतिज्ञानावस्था, और दसवीं अवस्थामें प्रलयावस्थाकी कल्पना की है। जीवोंका इस प्रकारके ऐतिहासिक अवस्था क्रमसे मत्स्य,

कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध और कल्कि—ये दस अवतार अप्राकृत लीलारूपमें लक्षित होते हैं।

(त. सू. छठवाँ सूत्र)

प्र. ३—अद्यावतारकी क्या लीला है?

उ.—सृष्टिकामयुक्त संकर्षण ही प्रपञ्चकी सृष्टिके निमित्त अवतीर्ण कृष्णांश हैं। वे कारण समुद्रमें आद्यावतार पुरुषरूपमें शयन करते हुए मायाके प्रति ईक्षण करते हैं। वही ईक्षण सृष्टिका निमित्त कारण है।

(ब्र. सं. ५/८)

प्र. ४—भगवानके आविर्भावका क्या कारण है?

उ.—ईश्वरके विलास दो प्रकारके हैं। चिदचिदात्मक ब्रह्माण्ड सृष्टि और अलग नियमोंके द्वारा जगतकी व्यवस्था करना ही उनका पहले प्रकारका विलास है। शुष्क ज्ञानीलोग ऐसे विलासका थोड़ा बहुत अनुभव कर सकते हैं। इस भगवद् रचित ब्रह्माण्डमें भगवानकी जो लीलाएँ होती हैं।, वही उनका दूसरे प्रकारका विलास है। जीव ही भगवानकी लीलाओंका सहचर है। जीव भोगेच्छासे अपने स्वरूपसे विच्युत होकर जड़सङ्गवशतः जिन-जिन अवस्थाओंको प्राप्त होते हैं, उन-उन अवस्थाओंके अनुरूप भगवदाविर्भावका भी दर्शन करते हैं। जीवोंके प्रति अपार करुणा ही भगवदाविर्भावका एकमात्र कारण है। (त. स. छठवाँ सूत्र)

प्र. ५—श्रीमूर्ति या अर्चावतारकी क्या अवश्यकता है?

उ.—सभी निराकार तत्त्वोंके ही निदर्शन होते हैं। यद्यपि निदर्शन लक्षित वस्तुसे भिन्न है, तथापि उसके द्वारा उस वस्तुका भाव उपस्थित होता है। घड़ीके द्वारा निराकार काल, प्रबन्धके द्वारा अति सूक्ष्मज्ञान एवं प्रकृतिके द्वारा दया-धर्मादि सभी निराकार विषय जब परिज्ञात होते हैं, तब भक्तिके साधनमें आलोच्यगत लिङ्गरूप श्रीविग्रहके द्वारा जो उपकार होता है, उसमें कोई सन्देह नहीं है। (प्रे. प्र. ५ वाँ परिच्छेद)

प्र ६.—क्या वैष्णवोंकी श्रीमूर्तिकी सेवा पौत्तलिकता है?

उ.—वैष्णव लोग जिस विग्रहकी पूजा करते हैं, वह ईश्वरका ही स्वरूप है, केवल पुतली नहीं है। वह ईश्वर-भक्तिका उद्दीपक और निदर्शन मात्र है।

(प्रे. प्र. ५ वाँ परिच्छेद)

प्र. ७—श्रीविग्रह कैसे भगवत् स्वरूपका साक्षात् निदर्शन है?

उ.—श्रीविग्रह भगवत् स्वरूपके साक्षात् निदर्शन हैं। वे स्वरूपेतर वस्तु नहीं हो सकते। सब प्रकारके शिल्प और विज्ञानने जिस प्रकार अलक्षित तत्त्वका स्थूल प्रतिरूप होता है, उसी प्रकार श्रीविग्रह जड़ आँखोंसे अगोचर भगवत् स्वरूपका प्रतिरूप है। भक्तोंके भगवत् स्वरूपका प्रतिरूप यथार्थ है। भक्तजन अपनी विशुद्ध भक्तिवृद्धि रूप फलके द्वारा अनुक्षण ऐसा अनुभव करते हैं। विद्युत पदार्थके साथ विद्युत-यन्त्रका जो प्रकृत सम्बन्ध है, उसे केवल विद्युत फलकोत्पत्तिरूप फलके द्वारा जाना जाता है। इस विषयमें जो अनभिज्ञ हैं, वे विद्युतयन्त्रको देखनेसे क्या समझेंगे? जिनके हृदयमें भक्ति नहीं है, वे श्रीविग्रहको पुत्तलिका छोड़कर और क्या समझ सकते हैं? (चै. शि. ५/३)

प्र. ८—भक्तजनोंके अर्चावतार और ज्ञानियोंके प्रतीकमें क्या भेद है?

उ.—श्रीमूर्त्ति पहले जीवके चिद्भागमें प्रतिभात होकर मनमें उदित होती है। मनसे निर्मित श्रीमूर्त्तिमें भगवान भक्तियोगके द्वारा आविर्भूत हो पड़ते हैं। उस समय भक्त उनके दर्शनसे हृदयमें जिस चिन्मय मूर्त्तिका दर्शन करते हैं, उनके साथ श्रीमूर्त्तिकी एकता स्थापन करते हैं, किन्तु ज्ञानियों द्वारा पूजित विग्रह वैसी नहीं होती। उनके मतानुसार एक पार्थिव तत्त्वमें ब्रह्मता कल्पित होकर पूजाकाल तक उपस्थित रहता है। पश्चात् वह मूर्त्ति पार्थिव वस्तु छोड़कर और कुछ भी नहीं है। (जै. ध., ५ म. अ.)

प्र. ९—सभी अधिकारके व्यक्ति क्या श्रीविग्रहकी सेवा करते हैं?

उ.—प्रतिमा-पूजा मानव-धर्मका भित्तिमूल है। महाजनोंने विशुद्ध ज्ञानयोगके द्वारा परमेश्वरकी जिस मूर्त्तिको देखा है, वे अपने भक्तिपूत-चित्तमें उसी शुद्ध चिन्मय मूर्त्तिकी भावना करते हैं। ऐसी भावना करते-करते जिस समय भक्त-चित्त जड़-जगतके प्रति प्रसारित होता है, उस समय ही जड़जगतमें उस चित्त स्वरूपका प्रतिफलन अंकित होता है। भगवत् श्रीमूर्त्ति इस प्रकार महाजनोंके द्वारा प्रतिफलित होकर प्रतिमा हुए हैं। वे प्रतिमाएँ ही उच्चाधिकारियोंके लिए सर्वदा चिन्मय-विग्रह हैं, मध्यमाधिकारीके लिए मनोमय विग्रह हैं, और निम्नाधिकारीके लिए पहले जड़मय विग्रह होने पर भी क्रमशः भावशोधित बुद्धिमें चिन्मय-विग्रहका उदय होता है। अतएव सभी अधिकारियोंके द्वारा ही श्रीविग्रहकी प्रतिमा पूजनीय हैं। कल्पित मूर्त्तिकी पूजाकी कोई आवश्यकता नहीं है, किन्तु नित्यमूर्त्तिकी प्रतिमा विशेष मङ्गलमय है।

प्र. १०—प्रतीक-विरोधी युक्तिवादी किस प्रकारके मूर्त्ति पूजक हैं?

उ.—कोई-कोई चित्तमें भक्ति-परिप्लुत होकर आत्मामें, मनमें एवं जगतमें परमेश्वरकी प्रतिच्छविरूप श्रीमूर्तिकी स्थापना करते हैं। उसमें तादात्म्यज्ञानयुक्त होकर उसका अर्चन करते हैं। किसी-किसी धर्ममें अधिकतर तर्कप्रियताके कारण मन ही मन ईश्वर भावका गठन कर उसीमें उपासना करते हैं। किन्तु प्रतिमूर्तिको नहीं माना जाता। अगर देखा जाय, तो वस्तुतः सभी ही प्रतिमूर्तियाँ हैं। (चै. शि. १/१)

प्र. ११—सारग्राही वैष्णवगण श्रीश्रीजगन्नाथ-जीका किस विचारसे युक्त होकर दर्शन करते हैं?

उ.—The system of Jagannath is viewed in two different ways. The superstitious and the ignorant take it as a system of idolatry by worshipping the idols in the temple as God. Almighty appearing in the shape of a carved wood for the salvation of the Orias. But the Saragrahi Vaishnavas find the idols as emblems of some eternal truth which has been explained in the Vedanta Sutras of Vyasa.

(The Temple of Jagannath at Puri)

(क्रमशः)

श्रील प्रभुपादजीका उपदेशामृत

प्र. १२२—साधु क्या करते हैं?

उ.—दुष्ट व्यक्तियोंकी दुष्ट बुद्धिका नाश करना ही साधुका परम कर्तव्य है। साधुका अर्थ ही है कि वे हाथमें खड्ग लेकर यूपकाष्ठ (यज्ञमें वह खम्भा जिसमें बलिका पशु बाँधा जाता है) के निकट खड़े हैं तथा मनुष्यकी वासनाएँ जो कि कभी तृप्त न होनेवाले बकरीके समान हैं, उन वासनाओंका अपनी वाक्यरूप अस्त्रके द्वारा छेदन करते हैं। साधु कभी भी किसीकी भी चापलूसी करते हैं। साधु यदि किसीकी चापलूसी करे तो वह साधु हो नहीं सकता क्योंकि साधु तो हमारा मङ्गलकारी ही होगा। परन्तु ऐसा व्यक्ति हमारा मङ्गल नहीं कर सकता जो हमारी चापलूसी करे। वह तो वास्तवमें हमारा शत्रु है।

वैष्णव लोगोंकी असत्सङ्ग करनेकी प्रवृत्ति नहीं होती, परन्तु ऐसे असत् सङ्गियोंका कल्याण करनेके लिए वैष्णव लोग अपने वाक्यरूपी अस्त्रके द्वारा ऐसे असत् सङ्गियोंकी असत् प्रवृत्तिको छेदन करते हैं तथा उन्हें सत्सङ्गमें ले आते हैं। यदि हम निष्कपटरूपसे श्रीगुरुदेवके चरणकमलोंका आश्रय ग्रहण करें तो अवश्य ही इसी जन्ममें हमें भगवानका साक्षात्कार होगा।

प्र. १२३—श्रीविग्रह क्या वस्तु है?

उ.—श्रीविग्रह भगवानके अर्चावतार हैं।

प्रतिमा नह तुमि साक्षात् व्रजेन्द्रनन्दन।

स्वयं श्रीशचीनन्दन गौरहरिने जगन्नाथजीका दर्शनकर कहा था—आप विग्रह नहीं हैं, आप साक्षात् व्रजेन्द्रनन्दन श्यामसुन्दर ही हैं। अतः हमें विग्रहको साधारण व्यक्तिविशेषकी मूर्तिकी भाँति नहीं मानना चाहिए। बद्ध जीवकी भाँति भगवानके विग्रहमें देह और देहीका भेद नहीं है।

श्रीविग्रह सच्चिदानन्दस्वरूप, परम कृपामय भगवद् अवतार हैं।

प्र. १२४—सर्वश्रेष्ठ आराधना क्या है?

उ.—मधुर रससे नन्दनन्दनकी सेवा ही समस्त साधनोंमें सर्वश्रेष्ठ एवं साध्योंमें भी सर्वश्रेष्ठ है। नन्दनन्दनकी उपासना ही उपासनाकी पराकाष्ठा है। ब्रजदेवियोंने नन्दनन्दनके ऐश्वर्यसे मुग्ध होकर उन्हें अपने प्रेमीके रूपमें स्वीकार नहीं किया, क्योंकि कृष्णका कोई ऐश्वर्य उन ब्रजदेवियोंको आकर्षित नहीं कर सकता। कृष्णके प्रति उनकी प्रीति तो स्वाभाविक रूपसे ही है। वे सदा-सर्वदा केवल कृष्णके सुखके लिए ही चेष्टा करती हैं। इसी अहैतुकी महती कामनाके कारण ही वे कृष्णको कान्तरूपमें वरण कर पायीं।

प्र. १२५—चित्तको स्थिर करनेका सहज उपाय क्या है?

उ.—एकमात्र कृष्णनामकीर्तनके द्वारा ही मनको स्थिर किया जा सकता है। कर्म, ज्ञान, योग आदिके द्वारा कुछ क्षणके लिए मन स्थिर तो हो जाता है, परन्तु कुछ क्षण पश्चात् वह पुनः पहले जैसा ही हो जाता है, बल्कि उससे भी अधिक चञ्चल हो जाता है।

प्र. १२६—क्या हमारा शिष्य बनाना उचित है?

उ.—हमें शिष्य नहीं करना है। हमें शिष्य बनना है। अर्थात् निरन्तर गुरु एवं कृष्णकी सेवामें नियुक्त रहना है। वैष्णवलोग समस्त वस्तुओंमें ही गुरु दर्शन करते हैं अर्थात् वे सभी वस्तुओंको भगवानकी सेवाकी वस्तु मानते हैं। वैष्णव अभिमान आनेपर विष्णु एवं वैष्णवकी सेवा नहीं हो सकती। मैं कुछ नहीं करता और कुछ नहीं करूँगा, भगवान जैसा करावायेंगे, वैसे करूँगा, ऐसे कर्तृत्व अभिमानरहित, निरन्तर भगवानकी सेवामें रत व्यक्ति ही जीवका कल्याण कर सकते हैं। अर्थात् जीवको कृष्णोन्मुख कर सकते हैं। मैं कुछ नहीं करता, सबकुछ भगवान ही करवा रहे हैं, हृदयमें कपटता रखकर मुखसे ऐसा कहनेपर नहीं चलेगा। वास्तवमें ही मैं भगवानके द्वारा चालित हूँ—ऐसी अनुभूति होनी चाहिए।

प्र. १२७—यदि ऐसा ही है तो आपने बहुत-से शिष्य क्यों किये?

उ.—वास्तवमें आजतक मैंने किसीको शिष्य नहीं बनाया, बल्कि जिन्हें तुम मेरा शिष्य कह रहे हो, वे सभी मेरे गुरुवर्ग हैं।

दूसरोंका सङ्ग करनेका तात्पर्य है, उससे कुछ ग्रहण करना। मैंने अपने श्रीगुरुदेवसे जो पाया है, उसके अतिरिक्त मैं किसीसे कुछ भी ग्रहण नहीं करता। अपने गुरुदेवके निर्देशके अतिरिक्त मैं और किसीके निर्देशानुसार कार्य नहीं करता हूँ।

अपने लिए मैं किसीसे कुछ भी ग्रहण नहीं करता हूँ। गुरु एवं कृष्णकी सेवाके लिए श्रद्धा या प्रीतिपूर्वक यदि कोई कुछ देता है, तो उसे आदरपूर्वक ग्रहणकर उसके द्वारा भगवानकी सेवा करनेमें ही मङ्गल है। किसी वस्तुके प्रति भोगदृष्टि न कर उसे भगवानकी सेवामें लगानेका रहस्य जाननेपर ही भजन-राज्यमें प्रवेश किया जा सकता है।

प्र. १२८—वास्तविक सेव्य (सेवा ग्रहण करनेवाला) कौन है?

उ.—कृष्ण ही जगतके एकमात्र सेव्य हैं। वे ही समस्त वस्तुओंके प्रभु हैं। कृष्ण ही सभीके एकमात्र सखा, सभी माता-पिताओंके एकमात्र पुत्र, समस्त स्त्रियोंके एकमात्र कान्त (प्रेमी) हैं। कृष्ण जिसके सेव्य वस्तुके रूपमें प्रकाशित होते हैं, वे किसी दूसरेकी सेवा कर ही नहीं सकते।

समस्त कारणोंके कारण कृष्ण हैं। वे ब्रह्म, परमात्मा एवं अन्यान्य विष्णु अवतारोंके भी कारण हैं।

प्र. १२९—हमारा सबसे बड़ा कर्तव्य क्या है?

उ.—यह मनुष्य जन्म क्षणभंगुर एवं अतीव दुर्लभ है। अतः हमें पाषण्डता, अपराध या व्यर्थ कार्योंमें समय नष्ट न कर, सबकुछ छोड़कर हरिभजन करना चाहिए। अनेक जन्मोंके पश्चात् हमें यह मनुष्य जन्म प्राप्त हुआ है। यह मनुष्य जन्म सब जन्मोंसे दुर्लभ—केवल दुर्लभ ही नहीं, बल्कि सुदुर्लभ है। यह अनित्य होनेपर भी परमार्थप्रद है। अर्थात् इसके द्वारा परमार्थको प्राप्त किया जा सकता है। जो बुद्धिमान एवं चतुर हैं, वे साधनके उपयोगी इस शरीरके नष्ट होनेसे पहले ही अन्यान्य विषय वस्तुओंको छोड़कर अपने आत्मकल्याणके लिए चेष्टा करते हैं।

यदि हमें अपना आत्मकल्याण करना है तो हमें सद्गुरुका चरणाश्रय करना होगा। सद्गुरु हमारे बहिर्मुख रुचिके अनुकूल बातें नहीं कहते। हमारा सबसे बड़ा एवं नित्य कर्तव्य कृष्णभजन करना है। वे इसी परम कर्तव्य भगवद् भजनकी शिक्षा ही देते हैं। जगतके लोग हमारी रुचिके अनुकूल बातें कहकर हमारे मनको आकर्षित करते हैं तथा हमारे प्रिय बन जाते हैं। किन्तु जो मेरा ऐसा अकल्याण नहीं करना चाहते, वास्तवमें ही मुझे दुःखी देखकर मेरे कल्याणकी चिन्ता करते हैं। ऐसे परदुःखदुःखी श्रीगुरुदेव ही हमारे परमबन्धु हैं। श्रीमद्भागवत ऐसे मुक्त गुरुदेवके चरणोंमें शरणागत होनेका उपदेश ही दे रहे हैं। हमारा जो कुछ भी है, सबको छोड़कर गुरुदेवके चरणोंमें एकान्तरूपसे आश्रय लेना चाहिए।

प्र. १३०—स्वाधीनता प्राप्तिका उपाय क्या है?

उ.—भगवानके चरणोंमें शरणागत हुए बिना स्वाधीनता या शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती। गुरुके आनुगत्यमें भगवानकी सेवा ही स्वतन्त्रताका सद्व्यवहार है। वही पूर्ण स्वाधीनता है। वास्तविक स्वाधीनता ही जीवका नित्य स्वभाव-धर्म है।

प्र. १३१—हम स्वयंको कैसे जान सकते हैं?

उ.—मैं कृष्णदास हूँ, किन्तु वर्तमान अवस्थामें कृष्णकी सेवामें मेरा लेशमात्र अधिकार नहीं है। इस अवस्थामें मैं कृष्णका सान्निध्य प्राप्त करनेमें असमर्थ हूँ। अतः मेरे लिए यह जानना आवश्यक है कि मैं कृष्णदास हूँ। साधुसङ्ग न होनेसे अथवा कृष्णके चरणोंमें शरणागत हुए बिना कोई भी अपनी बुद्धिसे अपने स्वरूपको नहीं जान सकता।

प्र. १३२—श्रीचैतन्य महाप्रभुने क्या किया?

उ.—महाप्रभुने ऐसे उपदेश दिए जिससे पृथ्वीके समस्त मनुष्य कृष्णकी सेवा कर सकें। यद्यपि वे स्वयं कृष्ण हैं, तथापि उन्होंने भक्तभावको अङ्गीकारकर कृष्णको प्राप्त करनेका उपाय बताया। यहाँ तक कि उन्होंने स्वयं आचरण करके भी दिखाया। कृष्णके पार्षद श्रीरूप गोस्वामीजीने महाप्रभुकी स्तुति की है।

नमो महावदान्याय कृष्णप्रेम प्रदायते।
कृष्णाय कृष्णचैतन्य नाम्ने गौरत्विषे नमः॥

अर्थात् हे श्रीकृष्णचैतन्य! आप महावदान्य हैं। आपने साधारण जागतिक शिक्षा-केन्द्रोंकी स्थापना नहीं की, अनाथाश्रमोंकी स्थापना नहीं की। आपने सत्कार्य जैसे—कुएँ खुदवाना, अस्पताल बनवाना इत्यादि नहीं किये, परन्तु आपने जगतमें पारमार्थिक शिक्षा-मन्दिरोंकी स्थापना की। आप ही समस्त अनाथोंके आश्रय हैं। आपने ही भक्तिरसामृतसिन्धुका आविष्कार किया। आपने गौड़ीय अस्पताल अर्थात् भवरोग चिकित्सालय स्थापन किया। आपकी दया अमन्दोदया है अर्थात् आपकी दयाके द्वारा किसीका लेशमात्र भी अकल्याण नहीं हो सकता। परन्तु जगतमें जितनी प्रकारकी दया प्रचलित हैं, उनके द्वारा किसी न किसी रूपमें किसी न किसीका अकल्याण होता है। इसलिए आप महावदान्य हैं। आप वास्तवमें ही सम्पूर्णरूपसे कृष्णप्रेमको देनेवाले

हैं। आत्माकी जो सहज सेवावृत्ति है, उसके सेव्य भी आप ही हैं। आप आकर्षक हैं। जीवोंकी चेतनताको उन्मेषित करनेके लिए अर्थात् जीवोंकी स्वाभाविक सेवा-प्रवृत्तिको विकसित करनेके लिए आप ये सब लीलाएँ कर रहे हैं।

हे श्रीकृष्णचैतन्य! आप सविशेष पूर्ण चिदानन्दविग्रह हैं। आपका नाम, रूप, गुण एवं लीला इत्यादि सब सत्य एवं नित्य हैं। आप पूर्णशक्तिमानविग्रह श्रीकृष्ण ही हैं। आपकी जिस शक्तिके द्वारा जगतवासी मोहित हो रहे हैं, उस शक्तिका नाम भुवनमोहिनी महामाया है। उस शक्तिके ईश्वर कृष्ण भुवनमोहन हैं। उस भुवनमोहनको जो मोहित करती हैं, वे भुवनमोहिनी श्रीमती राधिकाजी हैं। आप श्रीमती राधिकाकी भाव एवं कान्तिसे विभावित हैं। आपकी इस औदार्यमयी लीलामें कृष्णका राधारमण भाव नहीं है। कृष्णकी पूर्णसेवामयी मूर्ति राधाजीका भाव ही है। अर्थात् आपका चित्त राधाजीके भावसे विभावित है।

आप कृष्णप्रेम प्रदान करनेवाले हैं, इसलिए आप महावदान्य हैं। आप प्रेममय विग्रह हैं, अर्थात् प्रकृष्टरूपमें प्रेम प्रदान करनेके लिए ही आप आये हैं। आप अन्य कोई नहीं, साक्षात् कृष्ण ही हैं।

ॐविष्णुपाद १०८श्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजजीकी हरिकथा

पढ़ाई-लिखाईकी क्या यही महिमा है? हम आज कल पढ़ाई-लिखाई सीखकर विद्या प्राप्तकर नास्तिक क्यों हो रहे हैं? आजकल भगवानको अस्वीकार करना जैसे एक बहादुरीका विषय हो चुका है। आज सहज ही लोग कह देते हैं कि भगवान नामकी कोई वस्तु नहीं है। ऐसे लोगोंसे यदि प्रश्न पुछा जाए कि यदि कुछ भी नहीं हैं, तो तुम कोन हो? आज कल माता-पिताको भी अस्वीकार किया जा रहा है। तुम कहाँसे आये हो? क्या आकाशसे टपक पड़े हो? जब कुछ भी नहीं है, तो तुम्हारी बात कौन सुनेगा? आजकल नास्तिक जगत ऐसा ही हो गया है। विद्या प्राप्त करके भी लोग एक प्रकारके नास्तिक हो गये हैं तथा जिन्होंने पढ़ाई-लिखाई नहीं सीखी, वे भी एक तरहके नास्तिक हैं। इस प्रकार नास्तिक दो प्रकारके होते हैं। इनमेंसे अच्छे व्यक्तियोंको चुनना असम्भव हैं। यदि इनमेंसे अच्छे लोगोंको चुनने जाएँ तो कुछ भी नहीं बचेगा। नास्तिक सदा नास्तिक ही रहेंगे, उन्हें कदापि आस्तिक नहीं बनाया जा सकता। स्वयं भगवानने भी इस विषयमें निषेध किया है। गीताके षोलहवें अध्यायमें हम देखते हैं कि नास्तिकोंकी तालिका देते समय कृष्णने अर्जुनसे कहा है—"अर्जुन! अभी तक मैंने तुम्हें आस्तिकोंके विषयमें तथा भगवद्भक्तोंके विषयमें बताया। अब नास्तिकोंके विषयमें सुनो—

असत्यमप्रतिष्ठन्ते जगदाहुरणीश्वरम्।
अपरस्परसम्भूतं किमन्यत् कामहैतुकम्॥

अर्थात् वे लोग जगतको मिथ्या, आश्रयहीन, ईश्वरशून्य, एक दूसरेके संसर्गसे अथवा स्वतः उत्पन्न कहते हैं। इतना ही नहीं वे इसे केवल काममूलक कहते हैं। 'असत्यमप्रतिष्ठन्ते' कौन है? ब्रह्म सत्य है और जगत मिथ्या है—जो एसा कह रहे हैं, उन निर्विशेषवादी, शून्यवादियोंकी बात कह रहे हैं। शास्त्र कहते हैं—यदि ब्रह्म सत्य है, तो जगत भी सत्य है। क्योंकि हम जगतको अपने सामने देख रहे हैं। हाँ, इसे विनाशशील या अनित्य कहा जा सकता है। किन्तु असत्य कैसे कह सकते है? अतः ये सभी एक प्रकारके नास्तिक हैं। 'जगदाहूरनीश्वरम्'—जगतका कोई मालिक नहीं है, कुछ लोगोंका ऐसा विचार है। क्योंकि वे सोचते हैं कि मालिकको नहीं माननेसे हम मनमानी कर सकते हैं। दुष्ट बच्चे सर्वदा ही चेष्टा करते हैं कि माता-पितासे छिपकर अपनी इच्छानुसार खेलकूद करें। ऐसा नहीं हो सकता, क्योंकि यही नास्तिकता है। यह बात नीति-आर्दशोंके विपरीत है। 'अपरस्परसम्भूतम्'—Atom Molecules Theory यहाँ आ जाती है। इस प्रकार वे कणादके वैशेषिक दर्शनको मानते हैं। कणादका कहना है—अणु एवं परमाणुके परस्पर मिलनेसे स्वतः ही जगतकी सृष्टि हो जाती है। अतः किसीको माननेकी क्या जरूरत है? जगतका कोई मालिक नहीं है। अन्तमें कह रहे हैं—'किमन्यत् कामहैतुकम्'—अर्थात् कुछ लोगोंका कहना है कि जगतका मालिक भगवानने हमारे लिए कुछ भी नहीं किया। उन्होंने जो कुछ भी किया अपनी कामना वासनाको पूर्ण करनेके लिए। नास्तिकोंका यही विचार है। वे भगवानको स्वीकार करना नहीं चाहते। वे अच्छे भावोंको न लेकर खराब भावोंको लेते हैं। यह तो सत् समालोचना नहीं है। Comparative study को ही सत् समालोचना कहा जाता है। हमें अच्छाई और बुराई दोनोंका साथ-साथ विचार करना होगा। परन्तु आजकल मनुष्य ऐसा नहीं कर रहा है। सभी नास्तिक क्यों हो रहे हैं? आजकल राजनैतिक समाजनैतिक सभी क्षेत्रोंमें जो देखा जा रहा है, सुना जा रहा है, उससे बहुत आश्चर्य होता है। इन सबकी जड़ क्या है? इसकी जड़में कुछ नहीं, यह केवल विदेशी शिक्षाका कुप्रभाव है। God-less education, नीति-आदर्श रहित शिक्षाका प्रभाव ही जगतमें फैला हुआ है। वास्तवमें हम अच्छी वस्तुको ग्रहण करना नहीं चाहते हैं, खराब वस्तुको ही ग्रहण pick up करना चाहते हैं, यही हमारा दुर्भाग्य है।

ऋषिमुनियोंने हमारे कल्याणके लिए जो बिचार बताये हैं, उनको अस्वीकार करनेमें हम अपनेको बहुत बड़ा समझते हैं। हम मानव हैं। हमारा नाम मानव क्यों हुआ? मनुकी सन्तान होनेके कारण ही हमें मानव कहा जाता है। किन्तु महर्षि मनुने हमारे लिए जो शिक्षा प्रदान की, हम उनका लेशमात्र भी पालन नहीं कर रहे हैं, बल्कि उन शिक्षाओंमें दोष निकाल रहे हैं। जिस प्रकार मणियोंसे बने हुऐ भवनमें चींटी छिद्र ही खोजती है, ठीक ऐसी ही अवस्था हमारी है। स्वायम्भुव मनुने जीवोंके कल्याणके लिए ही विधि नियमका वर्णन किया है।

परन्तु हमे ये विधि–नियम अच्छे क्यों नहीं लगते? हम इतने लापरवाह हैं कि उन सबको परित्याग करने जा रहे हैं। क्या यह अच्छी बात है?

आजकल ऐसे ही विचार चल रहे हैं। हम उनके सभी अच्छे विचारोंकी अवहेलना कर रहे हैं। मनु, अत्रि, याज्ञवल्क्य, ऊषणा, अङ्गिरा, बृहस्पति, व्यास, पराशर, शंख, दक्ष, गौतम, शातातप, वशिष्ठ इत्यादिने सामाजिक नीतियोंकी रक्षा की है। समाज किस प्रकार सुचारुरूपसे चल सके, इन लोगोंने इसके लिए व्यवस्था की। परन्तु हम उन सबको स्वीकार नहीं कर पा रहे हैं, क्यों? इसके मूलमें उच्छृंखलता है। हमें ये सब नीति–आदर्श अच्छे नहीं लग रहे हैं। जब कि हम किस प्रकार सद्भावसे जीवनयापन कर सकें, इस विषयमें ही वे कह गये हैं। उनके इन विचारोंके अनुसार ही आज हमारा संविधान तैयार हुआ है। भारतीय संविधानमें जितने नियम हैं, वे सब नियम हमारे शास्त्रोंसे ही लिये गये हैं। अन्ततः ८५ प्रतिशत नियम शास्त्रोंके अनुसार ही हैं। इनको अस्वीकार करनेकी क्षमता क्या किसीमें है? केवल हमारा Indian Parliament ही नहीं, अपितु British एवं German Parliament में भी एक ही प्रकारके नियमकानून हैं। ये सब ऋषियोंका अवदान है। वर्तमान कालमें उन ऋषियोंको कहा जा रहा है कि उन्होंने हमें क्या दिया? आजकल अंग्रेजीके दो पन्ने पढ़कर, विदेशी शिक्षामें शिक्षित होकर युवक और युवतियाँ कह रहे हैं—आर्यऋषिलोग कुछ नहीं जानते। उन्होंने हमें कुछ भी नहीं दिया। उनसे पूछा जाए कि यदि मेरे पिताजीने मुझे कुछ नहीं दिया, दादा–परदादाने मुझे कुछ नहीं दिया, तो हमने यह सब कहाँसे प्राप्त किया। आजकलके लड़के– लड़कियाँ गुरुगिरि करना चाहते हैं। यह बहुत आश्चर्यकी बात है? ऐसी बातें सुनकर तो कानोंमें उंगली देनी चाहिए।

आजकल मनुष्य अत्यन्त विभ्रान्त एवं पथभ्रष्ट हो चुका है। भगवान इन्हें सद्बुद्धि प्रदान करें। सनातन शास्त्रोंमें सनातन आर्य ऋषियोंके आशीर्वाद हैं। इस बातको हम क्यों भूले जा रहे हैं? यदि विशुद्ध साम्प्रदायिकता ही आर्यऋषियोंका गौरव है, तो उसे ग्रहणकर हम गौरवान्वित क्यों नहीं होना चाह रहे हैं? उनके उपदेशोंके विरुद्ध चलकर क्या हम कभी उनके निकट कृतज्ञ रह पायेंगे या उनका ऋण उतार पायेंगे? आश्चर्य है। वे बोल सकते हैं कि हम कालके प्रभावमें आ चुके हैं। हम स्वीकार करते हैं कि यह ठीक है कि कालका प्रभाव भी है, तथापि उसमें भी तो कुछ percentage होनी चाहिए अर्थात् उसकी भी तो कुछ सीमा होनी चाहिए। क्या सभी मनुष्य नास्तिक हो जायेंगे? क्या सभी लोग नीति–आदर्शविहीन हो जायेंगे? हम कितना नीचे गिर चुके हैं, इस विषयमें यदि हमसे श्रेष्ठ लोग हमारी रक्षा न करें तो हमारी रक्षा असम्भव है। हम कितनी बहादुरी क्यों न दिखाएँ, इस विषयमें हमारी बहादुरी चलनेवाली नहीं है। हमारी रक्षा एकमात्र नीति–आदर्श ही कर सकते हैं। यदि हम उन नीति–आदर्शोंको ग्रहण करें, तभी हमारा कल्याण हो सकता है। यदि ऐसा न कर उनका परित्याग करेंगे, तो यह निश्चितरूपसे आत्महत्या करना ही होगा। कुछ बचेगा नहीं। सब सर्वनाश हो जाएगा। (क्रमशः)

श्रीगौराङ्ग-सुधा

(वर्ष ४७, संख्या ५, पृष्ठ ११४ से आगे)

—श्रीपरमेश्वरी दास ब्रह्मचारी

लौहपात्रमें जलपान

काजीका उद्धारकर प्रभु लाखों भक्तोंके साथ आनन्दसे नृत्य एवं कीर्तन करते हुए श्रीधरके घर उपस्थित हुए। उनका घर बहुत ही पुराना तथा जगह-जगहसे टूटा हुआ था। प्रभु आनन्दसे आङ्गनमें नृत्य करने लगे। नृत्य करते-करते उनकी दृष्टि द्वारपर रखे हुए एक लोहेके जलपात्र पर पड़ी। जगतको अपने भक्तके प्रति अपना अद्भुत प्रेम दिखानेके लिए प्रभुने वह पात्र उठा लिया तथा आनन्दसे जल पान करने लगे। प्रभुको इस प्रकार उस अपवित्र लोहेके पात्रसे जल पीते देखकर श्रीधर दुःखी होकर कहने लगे—"हाय! हाय! मैं मर गया। मेरा सर्वनाश करनेके लिए ही प्रभु मेरे घरपर आये हैं।" ऐसा कहते ही वे महाभाग्यशाली श्रीधर मूर्च्छित हो गये। प्रभु सभी भक्तोंसे कहने लगे—"श्रीधरका जल पानकर आज मेरा शरीर पवित्र हो गया है तथा कृष्णके चरणकमलोंमें मेरी दृढ़ भक्ति हो गयी है।" ऐसा कहते हुए प्रभु भावविभोर हो गये तथा उनके नेत्रोंसे अविरल अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी।

अपने भक्तके प्रति प्रभुका अपूर्व वात्सल्य भाव देखकर भक्तवृन्द आनन्दसे कृष्ण-कृष्ण कहते हुए क्रन्दन करने लगे। इस प्रकार प्रभुने दिखाया कि भक्तकी कोई भी वस्तु अपवित्र नहीं होती। दाम्भिकोंके द्वारा दिये हुए रत्नपात्र, दिव्य जल एवं आसनकी ओर प्रभु ताकते तक नहीं, ग्रहण करना तो दूर रहे। उनके भक्त उन्हें जो कुछ भी देते हैं, उसे वे परम आनन्दपूर्वक ग्रहण करते हैं। वे यह नहीं देखते हैं कि भक्तने उसे शास्त्रविधिपूर्वक मन्त्र उच्चारण करते हुए भोग लगाया है कि नहीं। यदि संकोचके कारण भक्त अपनी तुच्छ वस्तुओंको अर्पण नहीं कर पाता है, तो वे बलपूर्वक उससे छीनकर खा लेते हैं। इसका उदाहरण सुदामा विप्र हैं। वे अपने साथ चावल लाये थे, कृष्णको देनेके लिए। परन्तु कृष्णका वैभव दर्शनकर उन चावलोंको देनेका साहस नहीं हुआ। अन्तर्यामी प्रभु उनके मनकी बातको समझ गये थे। अतः उन्होंने बलपूर्वक सुदामासे वे चावल छीनकर खा लिये थे। इसके विपरीत परम ऐश्वर्यशाली व्यक्ति यदि दिव्य वस्तुएँ उन्हें अर्पण करते हैं, तो वे उन वस्तुओंकी ओर ताकते तक नहीं। भगवान अपने भक्तके प्रेमके वशीभूत हो जाते हैं। यहाँ तक कि यदि भक्त उन्हें बेचना भी चाहे, तो वे चुपचाप बिक जाते हैं। समस्त वेद-पुराण आदि घोषणा करते हैं कि भगवान "भक्तवत्सल" हैं। वे एकमात्र अपने भक्तोंके समक्ष ही अपने आपको प्रकाशित करते हैं, कर्मी, ज्ञानी, योगियोंके समक्ष नहीं। कृष्णदास होना साधारण बात नहीं है। यद्यपि ब्रह्मा, शिव एवं अनन्तदेव

भगवानके समान ही हैं, तथापि वे भी कृष्णदासकी पदवी प्राप्त करना चाहते हैं। अपने भक्तका नाम सुनकर ही कृष्ण अधीर हो उठते हैं। भक्त भी भगवानके अतिरिक्त किसीको नहीं जानता। ऐसे भक्तोंके लिए ही प्रभुका अवतार होता है। कृष्णको सदैव अपने भक्तोंकी चिन्ता रहती है। क्योंकि भक्त अपनी ऐकान्तिकी भक्तिके द्वारा भगवानको पूर्णरूपसे वशीभूत कर लेते हैं। अतः यदि कोई व्यक्ति भक्तिको त्यागकर करोड़ों जन्मों तक योग, यज्ञ एवं तप आदिका अनुष्ठान भी करे, तो उसके सभी अनुष्ठान व्यर्थ हो जाते हैं। ज्ञान, कर्म, योग आदि अपनी इच्छासे फल देनेमें असमर्थ हैं, क्योंकि ये सभी भक्तिके दास-दासियाँ होनेके कारण स्वतन्त्र नहीं हैं। यदि भक्तिदेवी इन्हें फल प्रदान करनेकी शक्ति प्रदान करे, तभी ये कर्म, ज्ञान, योग आदि स्वर्ग, मुक्त एवं सिद्धि आदि देनेमें समर्थ होते हैं। अतः सभीको भक्तिका सहारा लेना पड़ेगा। इसके विपरीत यदि कोई कर्म, ज्ञान, योग, तप आदिको त्यागकर सम्पूर्णरूपसे भक्तिका आश्रय ग्रहण करता है, तो उसे ये सभी अनित्य फल सहज रूपमें ही प्राप्त हो जाते हैं। ये सभी भक्तिके गौण फल हैं। परन्तु भक्त इन अनित्य वस्तुओंको भगवानके देनेपर भी ग्रहण नहीं करता। वह तो भगवानका धाम प्राप्त करता है।

अद्वैताचार्यको विश्वरूपका दर्शन

इस प्रकार प्रभु साक्षात् भक्तिरसमय ही हो गये थे। यदि कभी किसीके मुखसे किसी भी तरहसे "हरि" सुन लेते हैं, तो वे अपने आपको ही भूल जाते थे। उनके श्रीअङ्गमें कम्प, अश्रु, पुलक आदि अष्ट सात्त्विक भाव प्रकट होने लगते तथा वे जमीन पर लोट-पोट होने लगते। प्रभुके इन भावोंका दर्शन तो ब्रह्मा, शिव आदि देवताओंके लिए भी दुर्लभ है, परन्तु नवद्वीपवासी महासौभाग्यवान लोग इन भावोंको सहजरूपमें ही दर्शन कर रहे थे। कभी-कभी प्रभु कहने लगते—"मैं ही मदनगोपाल हूँ।" परन्तु अगले ही क्षण कहने लगते—"मैं कृष्णका नित्य दास हूँ।" कभी तो वे गोपीभावमें आविष्ट होकर "गोपी, गोपी, गोपी" कहने लगते। उस समय यदि कोई उनके साथ कृष्णका नाम ले लेता, कृष्णनाम सुनकर अत्यन्त क्रोधित होकर कहने लगते—"तू मेरे सामने अपने कृष्णका नाम भी मत ले। वह तो महा दस्यु है। उस शठ, धृष्ट एवं कपटीका भजन करनेसे क्या होगा? वह अपनेको स्त्रीजित कहता है, परन्तु उसने एक स्त्रीके नाक-कान काट लिये। वह अपनेको वीर कहता है, परन्तु छिपकर बालीके प्राण हर लिये। मेरा ऐसे चोरसे कोई सम्बन्ध नहीं।" ऐसा कहकर "कृष्ण-कृष्ण" बोलनेवालेको बहुत दूर खदेड़ते थे। कभी-कभी आनन्दित होकर गोकुल-गोकुल, वृन्दावन- वृन्दावन या मथुरा-मथुरा कहने लगते। कभी भूमिपर अपने उंगलियोंसे कृष्णकी त्रिभङ्ग आकृति बनाने लगते। जब वह आकृति तैयार हो जाती, तो उसे देखकर इतना रोने लगते कि उनके नेत्रोंसे बहनेवाले अश्रुओंसे भूमि भी गीली हो जाती थी। कुछ क्षण पश्चात् रोना भूलकर सभी भक्तोंसे कहते—"चलो भैया!

हम वृन्दावन दर्शनके लिए चलें, जहाँपर झुण्डके झुण्ड सिंह, बाघ, भालू रहते हैं। कभी तो ऐसी अपूर्व अवस्था हो जाती कि रातको दिन तथा दिनको रात बताने लगे। इस प्रकार प्रेमकी अपूर्व अवस्था प्रभुके शरीरमें दिखायी पड़ती। प्रभुके ऐसे भक्तिके आवेशका दर्शनकर सभी भक्तवृन्द एक दूसरेके गलेसे लिपटकर क्रन्दन करने लगते। अब प्रभु अपने घरमें कम तथा अपने भक्तोंके घर अधिक रहने लगते। यदि घरमें आते भी थे, तो किसीसे लौकिक व्यवहार नहीं करते थे। केवल शचीमाताका मन रखनेके लिए उनके साथ कुछ वार्तालाप करते थे। नवद्वीपके समस्त वैष्णव प्रभुके प्रेममें डूबे रहते थे।

एक दिन जब कीर्तन चल रहा था, तो अकस्मात् श्रीअद्वैताचार्य गोपीभावमें नृत्य करने लगे। उनके भावोंको समझकर उपस्थित वैष्णवलोग उसीके अनुरूप कीर्तन करने लगे। उन्हें नृत्य करते हुए दो प्रहर बीत गये थे, परन्तु उनका आवेश कम होनेका नाम नहीं ले रहा था, बल्कि क्षण-प्रतिक्षण बढ़ता ही जा रहा था। कीर्तन करते-करते सभी भक्तवृन्द थक गये थे। अतः सभी वैष्णवोंने बहुत मुश्किलसे उन्हें शान्त किया। उन्हें शान्तकर सभी लोग गङ्गास्नानके लिए चले गये। सबके जानेके बाद उनका आर्तिभाव पुनः बढ़ गया। उस समय प्रभु किसी कारणसे अपने घर गये हुए थे। वे वहींपर अद्वैताचार्यके आर्त्तिभावको समझ गये। अतः भक्तोंकी आर्तिको दूर करनेवाले प्रभु अद्वैताचार्यके पास आ गये, जहाँपर वे भूमिपर लोट-पोट हो रहे थे। उनकी आर्ति देखकर प्रभुने उनका हाथ पकड़ा तथा उन्हें मन्दिरके भीतर ले जाकर अन्दरसे मन्दिरका दरवाजा बन्द कर दिया। तत्पश्चात् प्रभु हँसते हुए कहने लगे—"आचार्य! आपकी क्या इच्छा है, बोलिये। आप मुझसे क्या चाहते हैं?"

अद्वैताचार्य कहने लगे—"प्रभो! आप समस्त वेदोंके सार हैं। मैं केवल आपको ही चाहता हूँ, आपके अतिरिक्त मुझे कुछ भी नहीं चाहिए।"

प्रभु—"आचार्य! मैं तो आपके सामने ही हूँ। आप मुझसे क्या चाहते हैं?"

अद्वैताचार्य—"प्रभो! आपने सत्य ही कहा कि आप साक्षात् रूपसे मेरे सामने हैं। परन्तु आज मैं आपका ऐश्वर्य देखना चाहता हूँ।"

प्रभु—"आप क्या देखना चाहते हैं, निःसंकोचपूर्वक कहिए।"

अद्वैताचार्य—"बहुत समय पहले कुरुक्षेत्रके मैदानमें आपने प्रिय अर्जुनको जिस विश्वरूपका दर्शन कराया था, आपके उसी विश्वरूपको दर्शन करनेकी मेरी इच्छा हो रही है।" आचार्य अभी ऐसा कह ही रहे थे कि उसी क्षण उन्होंने कुरुक्षेत्रके मैदानका दर्शन किया। दोनों सेनाएँ सज-धजकर युद्धके लिए आमने-सामने खड़ी थीं। उनके मध्यमें एक दिव्य रथ खड़ा था, जिसपर भगवान चतुर्भुज रूप धारण किये हुए विराजमान थे। उन्होंने अपने चारों भुजाओंमें शंख, चक्र, गदा एवं पद्म धारण किये हुए थे। अगले ही क्षण उन्हें प्रभुके शरीरमें अनन्त ब्रह्माण्ड, चन्द्र,

सूर्य, समुद्र, पर्वत, नदी एवं उपवन दीखने लगे। उन्हें पुनः-पुनः प्रभुके करोड़ों नेत्र, करोड़ों बाहु एवं करोड़ों मुखके दर्शन हुए। उनके समक्ष अर्जुन हाथ जोड़कर उनकी स्तुति कर रहे थे। प्रभुके इस स्वरूपका दर्शन बहुत ही दुर्लभ है। प्रभुकी कृपासे ही आचार्यजीने ऐसे स्वरूपके दर्शन किये। दर्शनकर अद्वैताचार्य आनन्दसे क्रन्दन करने लगे तथा बहुत ही दीनतापूर्वक प्रभुसे उनके दास्यकी प्रार्थना करने लगे।

जब इधर प्रभुने विश्वरूप प्रकट किया, उस समय नित्यानन्दप्रभु नवद्वीपमें यहाँ-वहाँ भ्रमण कर रहे थे। परन्तु वे जान गये थे कि मेरे प्रभुने विश्वरूप प्रकट किया है। अतः वे अति शीघ्र वहाँपर आ पहुँचे तथा मन्दिरके बाहर खड़े होकर गर्जन करने लगे। प्रभु विश्वम्भर भी जान गये कि नित्यानन्दजी आये हैं। अतः उन्होंने दरवाजा खुलवा दिया। दरवाजा खुलते ही अपने प्रभुको विराट रूपमें दर्शनकर उन्होंने दण्डवत् प्रणाम किया। प्रभु बोले—"नित्यानन्द! उठो। तुम मेरे प्राणस्वरूप हो। तुम मेरा तत्त्व भलीभाँति जानते हो। जो तुमसे प्रेम करता है, मैं केवल उसीका हूँ। तुमसे अधिक प्रिय मुझे कोई नहीं है। तुममें एवं इन अद्वैताचार्यमें जो भेदबुद्धि करता है, वह तो भ्रष्टबुद्धि है। अतः वह मेरी कृपा प्राप्त नहीं कर सकता।

नित्यानन्द एवं अद्वैताचार्यको अपने समक्ष देखकर मन्दिरके अन्दर ही प्रभु उन्मत्त होकर नृत्य करते हुए गरजते हुए कहने लगे—देखो! देखो। वे दोनों प्रभुका नाम ले-लेकर आर्त्त स्वरसे क्रन्दन करने लगे। कुछ क्षण पश्चात् श्रीगौरसुन्दर शान्त हो गये तथा अपने घर चले गये। अब उन दोनोंमें प्रेम-कलह आरम्भ हो गया। अद्वैताचार्य कुछ बिगड़ते हुए बोले—"अरे पागल! नशेड़ी! तुम्हें यहाँ किसने बुलाया? मन्दिरका द्वार तोड़कर अन्दर आ गया। तुझे संन्यासी कौन कहता है? ऐसी कोई जाति नहीं है, जहाँ तूने न खाया हो। इसके अतिरिक्त तेरी कौन-सी जाति है, इसका भी ठीक नहीं है। यह वैष्णवोंका स्थान है। यदि यहाँसे शीघ्र ही नहीं भागेगा, तो अच्छा नहीं होगा।" नित्यानन्द प्रभु कहने लगे—"अरे नाड़ा! चुपचाप बैठा रह। अधिक बोलेगा तो पिटाई कर दूँगा। अरे बूढ़े ब्राह्मण! तुझे क्या मेरा भय नहीं है, मैं प्रभुका भाई हूँ? तू स्त्री और पुत्रोंमें फँसा हुआ घोर विषयी व्यक्ति है और मैं इस संसारसे परम विरक्त संन्यासी हूँ। यदि मैं तुम्हें मारूँगा भी, तू कुछ नहीं बोल पाएगा। इसलिए मेरे सामने ज्यादा अहंकार मत कर।" यह सुनकर अद्वैताचार्य क्रोधसे जलते हुए दिगम्बर हो गये तथा बहुत ही अपशब्द कहने लगे—"मछली खाता है, मांस खाता है, कैसा संन्यासी है तू? यह देख, मैंने कपड़े त्याग दिये, मैं दिग्वासी हो गया। तेरे माता-पिता कौन हैं, किस देशका रहनेवाला है, तेरे विषयमें कौन जानता है? संन्यासी उसे कहते हैं जो कुछ नहीं चाहता। परन्तु तू तो दिनमें तीन-तीन बार खाता है। एक वह मूर्ख श्रीनिवास पण्डित है, ब्राह्मण होकर भी तेरे जैसे पागलको अपने घरमें आश्रय देता है। तेरे जैसे अवधूतने उसकी जातिका भी नाश कर दिया।"

इस प्रकार कृष्णप्रेमरसमें उन्मत्त होकर वे दोनों परस्पर प्रेम-कलह करते ही रहते थे। परन्तु उनके इस प्रेमकलहको देखकर तथा उनकी इस महिमाको न जानकर जो व्यक्ति एकको उचित और दूसरेको अनुचित जानकर निन्दा करता है, उसका सर्वनाश निश्चित है। जो अद्वैताचार्यका पक्ष लेकर नित्यानन्दप्रभुका अनादर करता है, अद्वैतप्रभु उससे कभी प्रसन्न नहीं हो सकते। भगवान एवं भक्तोंकी लीलाको कौन समझ सकता है, यदि वे स्वयं कृपा न करें। इस प्रकार जो समस्त वैष्णवोंमें अभेद दर्शनकर कृष्णका भजन करते हैं, वे अवश्य ही इस भव-सागरसे तर जाते हैं। (क्रमशः)

श्रीगुरु-पूर्णिमा महोत्सव

प्रत्येक वर्षकी भाँति इस बार भी श्रीगुरु-पूर्णिमाका उत्सव बड़ी धूम-धामके साथ मनाया गया। हजारों श्रद्धालु भक्तोंने ॐविष्णुपाद श्रीश्रीद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीके श्रीचरणकमलोमें श्रद्धा-पुष्पाञ्जलि प्रदान की। इसी गुरु-पूर्णिमाके दिन श्रीमन्महाप्रभुके प्रिय परिकर श्रील सनातन गोस्वामी पादजीकी तिरोभाव-तिथि भी मनाई जाती है। श्रील महाराजजीने बताया कि श्रीसनातन गोस्वामी पाद सभी ब्रजवासियोंसे अत्यधिक प्रीतिपूर्ण भाव रखते थे और जब उन्होंने इस तिथि पर नित्यलीलामें प्रवेश किया, तो सभी ब्रजवासियोंने मुण्डन किया और सनातन गोस्वामीके कलेवरको लेकर गोवर्धन परिक्रमा की, इसलिए यह तिथि ब्रजमें मुण्डिया पूर्णिमाके नामसे भी जानी जाती है।

श्रीगुरु-पूर्णिमाके उपलक्ष्यमें श्रीवेदव्यासजीके जीवन-चरित्र और उनकी शिक्षाओंकी आलोचना करते हुए श्रीलमहाराजजीने बताया कि श्री चैतन्यमहाप्रभुकी शिक्षानुसार श्रीमद् भागवतको ही अमल प्रमाण स्वीकार किया गया है, और जितने भी अन्यान्य शास्त्र हैं, श्रीमद्भागवतने उन सबको कैतवधर्मके अन्तर्गत लाकर खड़ा कर दिया है। श्रीमद्भागवतमें मत्सरता नहीं है। कर्मकाण्ड, ज्ञानकाण्ड आदि जिनको विषके पात्र कहा गया है, उन्होंने श्रीमद्भागवतको छोड़कर अन्यान्य सभी शास्त्रोंमें थोड़ा-बहुत स्थान अवश्य ही बना लिया है। इसलिए श्रीमद्भागवतके अतिरिक्त अन्यान्य शास्त्रोंको अमल प्रमाण स्वीकार नहीं किया गया है।

श्रीमद्भागवत वैष्णवोंकी अत्यधिक प्रिय है। श्रीरूपानुग-वैष्णव श्रीमन्महाप्रभुकी वाणीका आदर करके उनके आनुगत्यमें ही भागवतको समझते हैं। अमल-प्रमाण श्रीमद्भागवत आदिके अतिरिक्त अन्यान्य शास्त्रोंसे हम श्रीगौड़ीय वैष्णोंवोंका अधिक कुछ लेना-देना नहीं है। श्रीरूपानुग-वैष्णवाचार्य श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी इसी भावको लेकर ही अपनी श्रीमनःशिक्षामें कहते हैं कि—

न धर्मं नाधर्मं श्रुतिगणनिरुक्तं किल कुरु
ब्रजे राधाकृष्ण-प्रचुरपरिचर्यामिह तनु।
शचीसूनुं नन्दीश्वरपतिसुतत्वे गुरुवरं
मुकुन्दप्रेष्ठत्वे स्मर परमजस्रं ननु मनः॥

हे मेरे प्यारे मन! श्रुतियोंमें कथित धर्म और अधर्म कुछ भी मत करो, बल्कि

श्रुतियोंने चरम सिद्धान्तके रूपमें जिनको सर्वोपादेय, चरम उपास्य एवं सर्वोपरि परम तत्त्व निर्धारित किया है, उन श्रीश्रीराधाकृष्ण युगलकी प्रेममयी प्रचुर परिचर्या करो। श्रीराधामाधव-कान्ति सुवलित शचीनन्दन श्रीचैतन्य महाप्रभुको श्रीनन्दनन्दनसे अभिन्न तथा श्रीगुरुदेवको श्रीमुकुन्द-प्रेष्ठ जानकर उनका सदा-सर्वदा स्मरण करो।

अन्य स्थानोंपर भी कहा गया है कि

धर्म नामें जत कथा पृथिवीते चले।
भागवत कहे ताहा परिपूर्ण छले॥

पूनामें प्रचार

श्रीगुरुपूर्णिमाके उपरान्त श्रीलमहाराजजी दिल्ली होते हुए प्रचार हेतु पूना रवाना हुए। १६-७-२००३ से लेकर १८-७-२००३ तक उन्होंने अपनी प्रचार पार्टी सहित वहाँ पर 'आत्मतत्त्व' के विषयमें आलोचना की। श्रीलमहाराजजीने बताया कि सभी लोग सुख क्यों चाहते हैं? क्योंकि 'ममैवांशो जीवलोके' अर्थात् सभी जीव भगवानके अंश हैं तथा भगवान सुखमय वस्तु हैं, इसलिए प्रत्येक जीव भी सुख चाहता है। परन्तु वास्तवमें सुख कैसे प्राप्त होगा, वह इसे नहीं जानता है। इसलिए कलियुगके भविष्यकी चिन्ता करके ही शौनक आदि ऋषियोंने श्रीसूतजीसे प्रश्न किया—

इह घोरे कलौ प्रायो जीवश्चासुरतां गतः।
क्लेशाक्रान्तस्य तस्यैव शोधने किं परायणम्॥

(श्रीमद्भा. १-१-६)

इस घोर कलियुगमें जीव प्रायः आसुरी स्वभावके हो गये हैं, विविध क्लेशोंसे आक्रान्त इन जीवोंको शुद्ध बनानेका सर्वश्रेष्ठ उपाय क्या है?

श्रेयसां यद्भवेच्छ्रेयः पावनानां च पावनम्।
कृष्णप्राप्तिकरं शश्वत्साधनं तद्वदाधुना॥

(श्रीमद्भा. १-१-७)

सूतजी! आप हमें कोई ऐसा शाश्वत साधन बताइये, जो सबसे अधिक कल्याणकारी तथा पवित्र करनेवालोंमें भी पवित्र हो तथा जो भगवान श्रीकृष्णकी प्राप्ति करा दे।

चिन्तामणिर्लोकसुखं सुरद्रुः स्वर्गसम्पदम्।
प्रयच्छति गुरुः प्रीतो वैकुण्ठं योगिदुर्लभम्॥

(श्रीमद्भा. १-१-८)

चिन्तामणि केवल लौकिक सुख दे सकती है और कल्पवृक्ष अधिकसे अधिक स्वर्गीय सम्पत्ति दे सकता है, परन्तु गुरुदेव प्रसन्न होकर भगवानका योगिदुर्लभ नित्य वैकुण्ठ धाम दे देते हैं।

अनेक प्रश्नोंको सुनकर श्रीसूत गोस्वामीने सर्वप्रथम अपने परमाराध्यतम गुरुपादपद्म श्रीलशुकदेव गोस्वामीके चरणोंका स्मरण करके मङ्गलाचरण किया।

यं प्रव्रजन्तमनुपेतमपेतकृत्यं,
द्वैपायनो विरहकातर आजुहाव।
पुत्रेति तन्मयतया तरवोऽभिनेदु-
स्तं सर्वभूतहृदयं मुनिमानतोऽस्मि॥

बेटा! बेटा! तुम कहाँ जा रहे हो? उस समय वृक्षोंने तन्मय होनेके कारण श्रीशुकदेवजीकी ओरसे उत्तर दिया था। ऐसे सर्वभूत हृदय-स्वरूप श्रीशुकदेवमुनिको मैं नमस्कार करता हूँ।

अपने गुरुदेवका स्मरण एवं उनकी कृपाकी भिक्षा करनेके उपरान्त ही उन्होंने शौनक

ऋषिके प्रश्नोंका उत्तर देना आरम्भ किया। इसके द्वारा श्रील सूत गोस्वामीजी शिक्षा दे रहे हैं कि गुरुकरण किये बिना भगवानकी भक्ति कदापि सम्भव नहीं है और भक्तिके बिना भगवान अन्य किसी उपायसे प्राप्त नहीं होते। भक्ति किसे कहते हैं?

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा॥

गुरुकरणकी आवश्यकता, भगवत्ताके तारतम्यसे भगवानका तारतम्य, श्रीकृष्णका कंसको मारना तथा ब्रजमें कभी भी वापिस लौटकर नहीं आना इत्यादि अनेक विषयों पर विशद आलोचना हुई।

मुम्बईमें प्रचार

पूनासे प्रचार समाप्त करके श्रीलमहाराजजी मुम्बई प्रस्थान किये। वहाँपर १९-७-२००३ से २१-७-२००३ पर्यन्त गोरेगाँव स्पोर्टस क्लब, न्यू लिंक रोड, मालाड (वेस्ट), मुम्बईमें श्रीलमहाराजजीने अपनी दिव्य व ओजस्वी वाणीसे सभी श्रोताओंको मन्त्रमुग्ध कर दिया। मुम्बईमें प्रचारके मुख्य विषय थे—श्रीचैतन्य महाप्रभुके जगतमें अवतरित होनेका कारण, श्रीचैतन्य महाप्रभुके मनोऽभीष्ट, प्रेमनिर्यास, रागानुगा भक्ति व रूपानुगा भक्तिमें तारतम्य इत्यादि।

श्रीलमहाराजजीके श्रीमुखसे निःसृत हरि-कथाका श्रवण करनेके लिए भजन गायक श्रीहरिओम शरण, नन्दिनी शरण, श्रीविनोद अग्रवाल, श्रीरविन्द्र जैन तथा दूरदर्शन धारावाहिक रामायण और महाभारतके अनेक कलाकार उपस्थित हुए।

श्रीरूपगोस्वामी पादका विरह-तिथि महोत्सव

दिनांक ९ अगस्त, शनिवारको श्रीरूप-सनातन गौड़ीय मठ, वृन्दावनमें त्रिदिवस व्यापी श्रीरूप गोस्वामीका विरहोत्सव विराट रूपसे आयोजित हुआ। प्रथम दिनकी धर्मसभामें सभापतिका पद श्रीचैतन्यकृष्णाश्रय तीर्थ महाराज (श्रीअतुलकृष्ण गोस्वामी) ने सुशोभित किया। प्रधान अतिथिके रूपमें डॉ. श्रीवासुदेवकृष्ण चतुर्वेदी (सप्ताचार्य) के अतिरिक्त कई अन्य वक्ता भी थे। सभापति महोदयने बताया कि श्रीरूपगोस्वामी पर श्रीमन्महाप्रभुका प्रचुर आशीर्वाद था। श्रीरूपगोस्वामीकी तुलना व उपमा जगतमें नहीं है। कृष्णनाम अमृत है। एक कृष्णनामसे काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य—इन षड् रिपुओंका विष मर जाता है और हमारे जीवनका समस्त गरल कृष्णप्रेममें तरङ्गायित हो जाता है। उन्होंने कहा कि सम्मानसे बड़ा कोई गरल नहीं है।

सभाके प्रधान अतिथिने कहा कि श्रीमन्महाप्रभुने श्रीरूप गोस्वामीको शिक्षा व कृपा पहले प्रदान की।

सभाके आयोजक पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीने बताया कि श्रीरूपगोस्वामीकी इच्छा थी कि उनके द्वारा रचित श्रीउज्ज्वलनीलमणि ग्रन्थ श्रीकृष्णके मकर कुण्डलोंके समीप रहकर

उनके कर्णोंको रसायन प्रदान करे। उन्होंने यह भी कहा कि श्रीरूपगोस्वामीने तत्त्वोंका मन्थन करके नीलमणि निकाली, जिसमें सबका अधिकार नहीं है, चूँकि शान्त, दास्य, सख्य और वात्सल्य रसके उपासक इस रसके लिए अनुपयुक्त हैं तथा जिन लोगोंको इस मधुर रसमें रुचि भी है, किन्तु रस-संस्कार न होनेके कारण उनके लिए दुरूह है, इसलिए श्रीलरूप गोस्वामीने श्रीभक्तिरसामृत-सिन्धुके परिशिष्टमें श्रीउज्ज्वलनीलमणि जैसे महान ग्रन्थकी रचना की। केवलमात्र मधुर रसाश्रयी, संस्कारयुक्त वैष्णव ही इस ग्रन्थके उपयुक्त पात्र हैं। रागमार्गके द्वारा ही इस रसमें प्रवेश होता है। इसीको देनेके लिए ही श्रीचैतन्यमहाप्रभु जगतमें आविर्भूत हुए। वैधीभक्त इसका रसास्वादन नहीं कर सकते।

पूज्यपाद महाराजश्रीने आगे कहा कि मिलनमें ही सब समय आनन्द होता है, परन्तु विप्रलम्भके बिना सम्भोगकी पुष्टि नहीं होती। गोपियों व श्रीराधाजीमें परकीया भाव था। ललिता, विशाखा आदि श्रीराधाजीके पास निकुंज लीलामें जानेमें संकोच करती हैं। पर श्रीरूपमंजरी (श्रीरूपगोस्वामीपाद) वहाँ निःसंकोच पहुँच जाती हैं। श्रीचैतन्य महाप्रभुका मनोऽभीष्ट श्रीरूपगोस्वामीपादने पूरा किया। उत्तम भक्तिके सम्बन्धमें श्रीरूपगोस्वामीने कहा है कि कृष्णके लिए रुचिकर तथा उनकी सेवाकी वासनासे किया गया शुद्ध वैष्णवोंके आनुगत्यमें नैरन्तर्यमयी अनुशीलन ही उत्तमा भक्ति है।

हरि-गुरु-वैष्णवोंकी सेवाके लिए जो किया जाता है, वही उत्तम भक्ति है। संसारकी हमारी हर वस्तु हरि-सेवाके लिए है। पति-पत्नी, पुत्री, घर-संपत्ति, चाकरी आदिके प्रति आसक्तिको हरिके प्रति मोड़ देना चाहिए। सेवाके द्वारा गुरु-वैष्णव प्रसन्न होंगे, तो श्रीराधाकृष्ण भी अवश्य प्रसन्न होंगे। सकाम भक्ति नहीं होनी चाहिए, वह निष्काम हो। हमारा लक्ष्य शुद्ध होना चाहिए और हृदय भी शुद्ध होना चाहिए। श्रीरूपगोस्वामी पाद कहते हैं कि भजन करते-करते शुद्ध हरिना स्फूर्ति होनेपर प्रारब्धके पाप भी नष्ट हो जाते हैं।

१० अगस्तकी धर्मसभाके सभापति पदको सुशोभित करते हुए डॉ. श्रीअच्युतलाल भट्टने कहा कि कृपाशिरोमणि पूज्यपाद भक्तिवेदान्त नारायण महाराजजी द्वारा प्रतिवर्ष श्रीरूपगोस्वामी पादके पर्वपावनका प्रयास स्तुत्य है। भट्टजीने कहा कि भगवान श्रीगौरसुन्दर (श्रीचैतन्य महाप्रभु) हमारी एकमात्र गति हैं। जहाँ गौरहरि अवतरित हुए, उनके साथ उनके पार्षद भी अवतरित हुए। वृन्दावन रसिकोंकी राजधानी है। रसिकोंकी कृपाप्रसादको यदि संभालकर नहीं रख सके, तो हम सदैवके लिए उससे वंचित हो जायेंगे।

भक्तिसाहित्य सृजनमें श्रीरूपगोस्वामीका एक महत्वपूर्ण योगदान था। भक्तिसाहित्य उस समयतक लिखा जा चुका था, परन्तु जंगलमेंसे फूलोंको चुन-चुनकर गुलदस्ता बनाना एक बहुत बड़ा योगदान था, जो श्रीरूप गोस्वामीने किया। श्रीभट्टजीने आगे कहा कि भक्ति साधन द्वारा सिद्ध नहीं होती है, यह कृपासाध्य वस्तु है। भक्तिमें निष्ठा होना बड़ी चीज है। श्रीरूपगोस्वामीने जो दिया वह

बौद्धिकवर्गको दिया। रसोपासनामें श्रद्धा, निष्ठा, रुचि, आसक्ति, भाव, रति और प्रेम प्राप्त होती है। ज्ञानी जनोंको यदि रसिक सन्तोंका संग प्राप्त हो जाए, तो उनके हृदयमें भक्तिका संचार होता है। रसिकोंकी कृपा आज हम सबपर ग्रन्थोंके माध्यमसे बरस रही है। भक्तिकाल भक्तोंके लिए होगा, ऐसा नहीं है। भक्तिका फल गोविन्दकी सेवा है। भक्तिके विवेचनमें श्रीरूपगोस्वामीकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

११ अगस्तको सभापतिका पद पूज्यपाद श्रीभक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजने सुशोभित किया। प्रधान अतिथिके रूपमें पूज्यपाद भक्तिविज्ञान भारती महाराज और डॉ. नरेन्द्र बंसल तथा वक्ताके रूपमें डॉ. श्रीप्रेमनारायण श्रीवास्तव उपस्थित थे।

पूज्यपाद श्रीभक्तिविज्ञान भारती महाराजने बतलाया कि ब्रजमण्डलको श्रीरूपसनातनने ही प्रकाशित किया। महाप्रभुकी श्रीरूपसे भेंट प्रयागमें हुई। महाप्रभुने इनको ब्रजमण्डल जाकर चार कार्य करनेके लिए आदेश दिया। प्रेमभक्तिका प्रचार, लुप्त तीर्थोंका उद्धार, प्रेमभक्तिके प्रतिपादक ग्रन्थोंकी रचना और भूमिगत विग्रहोंका प्रकाश।

डा. नरेन्द्र बंसलने अपने भाषणमें बतलाया कि श्रीरूपगोस्वामीपादने भागवत-चेतनाको विश्वमें फैलाया। षड्गोस्वामियोंने निकुंज लीलाका वर्णन किया। धर्मसाहित्यने मनुष्यको मनुष्य बनानेका प्रयास किया और श्रीरूप गोस्वामीने मनुष्यको वैष्णव बनानेका प्रयास किया। श्रीरूपगोस्वामीपादमें उत्कट वैराग्यकी भावना थी। वे लौकिक भावनासे शून्य थे। उनसे पूर्व किसीने भी रति, प्रेम और रसशास्त्रका उल्लेख नहीं किया। रूप गोस्वामी नित्य वृक्षके नीचे बैठकर ग्रन्थ सृजन करते थे। उन्होंने कर्म, ज्ञान और भक्तिका समन्वय किया, तीर्थोंका उद्धार किया और भगवत् सेवाको प्रमुख स्थान दिया।

अन्तमें महाराजजीने कहा कि ज्ञान और भक्तिको एक करना उचित नहीं है। निर्विशेष ज्ञान व्यर्थ है। जहाँ ज्ञानकी समाप्ति होती है, वहाँसे भक्ति आरम्भ होती है। निर्विशेष ज्ञान भक्तिका विरोधी है। इसकी तो बात ही क्या, भगवानका ऐश्वर्य-ज्ञान भी ब्रज-प्रेममें बाधक है। ब्रजके प्रेमी भक्त और ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण भी अपने-अपने ऐश्वर्यको भूलकर परस्पर रसास्वादन करते हैं। श्रीमन्महाप्रभुने श्रीरूपको अत्यन्त योग्यपात्र जानकर उनमें सर्वशक्तिका संचार किया। श्रीमन्महाप्रभुने ब्रजकी प्रेमकोठरीकी महारसके एक बिन्दुको श्रीरूपगोस्वामीको बलपूर्वक पान कराया था। उस एक बिन्दुको पानकर उन्होंने जिन ग्रन्थोंको प्रकाशित किया, वे समस्त जगतको प्रेममें डुबानेमें समर्थ हैं। उन्होंने श्रीमन्महाप्रभुके मनोऽभीष्टको अवगत होकर प्रेमभक्तिको प्रकाशित किया। श्रीरूप गोस्वामीने मधुररसके ग्रन्थोंकी रचना की। जो रूपानगुग श्रीरघुनाथदास गोस्वामी और श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामीका आश्रय लेंगे, वे ही मधुररसका आस्वादन कर सकते हैं।

अन्तमें महाराजजीने आगन्तुक विद्वानों और उपस्थित श्रोतृमण्डलीको धन्यवाद ज्ञापितकर इस विरहोत्सवका समापन किया।⑧

(संवाद प्रस्तुति—श्रीओमप्रकाश ब्रजवासी)

विरह संवाद

स्वधाममें श्रीकालाचाँद ब्रह्मचारी

परमाराध्यतम गुरुपादपद्म १०८श्री श्रीमद्भक्ति-प्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीके कृपापात्र दीक्षित शिष्य श्रीपाद कालाचाँद ब्रह्मचारी विगत १६ अगस्त, २००३ शनिवारको सायं ७-३० बजे सज्ञान अवस्थामें हरिनाम स्मरण करते-करते श्रीमथुरा धामके श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें परलोकगमन कर गये। उस समय मठमें देशी और विदेशी बहुत-से संन्यासी, ब्रह्मचारी और गृहस्थ भक्त उपस्थित थे। परमपूज्यपाद श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराजजी श्रीबृहद्भागवतामृतका प्रवचन कर रहे थे, सन्ध्या-आरती होनेवाली थी, उसी समय उनका परलोकगमन हुआ। सभी लोग संकीर्तन करते हुए उनको श्रीयमुनाके तट ध्रुवघाटपर ले गये और शास्त्रीय विधियोंसे उनका अन्तिम संस्कार सम्पादित किया गया।

वे मूलतः पूर्व बंगवासी थे। किन्तु १६ वर्षकी अवस्थामें श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, नवद्वीपमें श्रीगौरजन्मोत्सवके समय श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति तथा उसके अन्तर्गत गौड़ीय मठोंके संस्थापक आचार्य १०८श्री श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीके निकट दीक्षित होकर मठकी सेवामें नियुक्त हुए। वे श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ आदि शाखामठ समूहोंमें विविध प्रकारकी सेवामें नियुक्त रहे। तत्पश्चात् श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुराके विविध सेवाकार्योंमें संलग्न रहे।

वे बहुत ही मधुर स्वभावके थे। वे भगवत् भक्तिके सिद्धान्तों तथा हरिकथा कीर्तनमें बड़े दक्ष थे। लोग उनकी मधुर हरिकथाओंको सुनकर मुग्ध हो जाते थे। वे अपने अन्तिम जीवनमें श्रीदुर्वासा आश्रम तथा श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें रहकर अपने मधुर प्रवचनोंसे सबको आकर्षित करते थे। वे पिछले कुछ महीनोंसे अस्वस्थ चल रहे थे। मथुरा और दिल्लीके अच्छेसे अच्छे अस्पतालोंमें उनकी चिकित्सा की गयी। पूज्यपाद महाराजजीने विदेशमें रहकर भी उनकी चिकित्सा व्यवस्था करनेमें कोई संकोच न कर बड़ी उदारतापूर्वक प्रचुर धन व्यय करनेका आदेश देकर उनकी पूर्णरूपसे देखभाल करनेकी व्यवस्था की। किन्तु अन्तमें उच्च चिकित्साके बावजूद भी भगवद् इच्छासे हम उनको स्वस्थ अवस्थामें नहीं देख पाये और अन्तमें मथुराके श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें प्रत्यावर्तनकर स्वधाम पधार गये।

वे ५३ वर्षके थे। हमलोग ऐसे ऐकान्तिक और शुद्ध वैष्णवके परलोकगमनसे विरह- व्यथाका अनुभव करते हैं। इस संसारमें सबसे बड़ा दुःख है—वैष्णवका विरह। हम उनके श्रीचरणोंमें प्रार्थना करते हैं कि वे जहाँ भी जिस रूपमें रहकर अपने इष्टदेव श्रीश्रीगुरुगौराङ्ग राधागोविन्दजीकी सेवामें नियुक्त हों और हम सबपर कृपा वर्षण करें।

—जनैक विरही

डॉ. वासुदेवकृष्ण चतुर्वेदी चित्रकूटमें डी. लिट्. की मानद उपाधिसे सम्मानित

श्रीभागवत पत्रिकाके संपादक-संघपति, भारतके प्रसिद्ध संस्कृत विद्वान सात विषयोंमें आचार्य, वृन्दावन स्थित आई. ओ. पी. कालेजमें रीडर एवं संस्कृत विभागके अध्यक्ष रह चुके डा. वासुदेवकृष्ण चतुर्वेदीजीकी संस्कृत सेवाओंको देखते हुए दिनांक 4 अगस्त, 2003 को जगद्गुरु रामभद्राचार्य विश्वविद्यालय, चित्रकूटके प्रथम दीक्षान्त समारोहके भव्य आयोजनमें डा. चतुर्वेदीजीको उनके द्वारा की गयी संस्कृत भाषाके प्रचार एवं प्रसार तथा उपलब्धियोंको दृष्टिगत रखते हुए उन्हें यह मानद उपाधि देकर सम्मानित किया गया। उल्लेखनीय है कि डा. चतुर्वेदीजी आगरा विश्वविद्यालयसे विगत लगभग २० वर्ष पूर्व डी. लिट्. की उपाधि प्राप्तकर चुके हैं परन्तु किसी विश्वविद्यालय द्वारा उन्हें प्रथम बार मानद उपाधिसे सम्मानित किया गया है। इस कार्यक्रममें डा. चतुर्वेदीजीके अतिरिक्त देशके मानव संसाधन मंत्री डा. मुरलीमनोहर जोशी एवं यू. जी. सी.के चेयरमैन डा. अरुण निम्बेश्रवरको भी उनके उल्लेखनीय योगदानके लिए डी. लिट्. की मानद उपाद्धिसे सम्मानित किया गया।

उल्लेखनीय है कि डा. चतुर्वेदीजीके अनेकों ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं तथा कई ग्रन्थ उ. प्र. शासन तथा अन्य प्रान्तोंकी सरकारों द्वारा पुरस्कृत भी हो चुके हैं। डा. चतुर्वेदीजीकी संस्कृत सेवाको देखते हुए राजस्थान, महाराष्ट्र एवं आन्ध्र प्रदेशकी सरकारों द्वारा समय-समय पर सम्मानित किया जा चुका है। वर्तमानमें डा. चतुर्वेदीजी महाराष्ट्रकी राजधानी मुम्बईमें रहकर संस्कृत भाषाके प्रचार एवं प्रसारमें लगे हुए हैं। डा. चतुर्वेदीजीने अपने सम्पूर्ण जीवनकी संचित पूँजी चेरिटेबिल ट्रस्टको समर्पित कर वृन्दावनमें भक्ति महारानी मंदिरका निर्माण एवं "संस्कृत भवन"की स्थापनाकर उल्लेखनीय कार्य किया है, जिसमें उनके विभिन्न प्रान्तोंके भक्तोंका योगदान रहा है। यह उल्लेखनीय है कि मथुरामें भी जब श्रीकृष्ण जन्मभूमि स्थित भव्य निर्मित भागवत भवनकी नींव रखी जा रही थी, तब आयोजित अष्टोत्तर श्रीमद् भागवत सप्ताह पारायणका प्रधान व्यास बनानेके लिए देशके कोने-कोनेसे विद्वानोंका चयन कर उनमें प्रधान व्यासका निर्धारण किया जाना था। तब सबमें सुयोग्य डा. चतुर्वेदीजीको प्रधान पीठके प्रधान व्यासके आसन पर विराजमान किया गया था तथा मूल संस्कृत भागवतका पारायण कराया गया था, जो अपने आपमें अत्यन्त कठिन कार्य है। तब डा. चतुर्वेदीजीने अपनी विद्वत्ताका परिचय देते हुए सफलतापूर्वक भव्य आयोजन सम्पन्न कराया था। उस समय भेंटमें प्राप्त बड़ी धनराशि डा. चतुर्वेदीजी द्वारा मंदिर निर्माणमें समर्पित कर दी थी जिसके आयोजनमें उपस्थित श्री बिरलाजी, डालमियाँजी तथा हनुमान प्रसादजी पोद्दार द्वारा मुक्त कंठसे इन डा. चतुर्वेदीजीकी विद्वत्ता एवं त्यागकी सराहना की थी।

श्रीब्रजमण्डल परिक्रमा—२००३

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा फोनः ०५६५-२५०२३३४

	१०	अक्टूबर	शुक्रवार (मथुरामें) श्रीशरदपूर्णिमा, कार्तिकव्रत आरम्भ, विश्रामघाटमें परिक्रमाका संकल्प, श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीका विरह महोत्सव।
	११	अक्टूबर	शनिवार (प्रतिपदा) कालीय दह, श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती भजन कुटीर और समाधि, श्रीसनातन गोस्वामीका भजन कुटीर, श्रीमदनमोहन, दानगली।
बस द्वारा	१२	अक्टूबर	रविवार (द्वितीया) (वृन्दावनसे) मधुवन, तालवन, कुमुदवन, बहुलावन।
	१३	अक्टूबर	सोमवार (तृतीया) श्रीगोपीनाथ, धीरसमीर, वंशीवट, गोपीश्वर महादेव, श्रीगोविन्ददेवजी, बनखण्डी।
बस द्वारा	१४	अक्टूबर	मंगलवार (चतुर्थी) (वृन्दावनसे) भद्रवन, भाण्डीरवन, मानसरोवर, लौहवन।
	१५	अक्टूबर	बुधवार (पंचमी) सेवाकुञ्ज, श्रीराधादामोदर, इमलीतला, श्रीगोपीनाथ गौड़ीय मठ, शृङ्गारवट, निधुवन, श्रीराधारमण, श्रीगोकुलानन्द, श्रीश्यामसुन्दर।
	१६	अक्टूबर	बृहस्पतिवार (षष्ठी) बेलवनका दर्शन।
बस द्वारा	१७	अक्टूबर	शुक्रवार (सप्तमी) (वृन्दावनसे) दाऊजी, ब्रह्माण्डघाट, महावन गोकुल, जुगोत्स्ना गाँवमें हरिकथा और प्रसाद-सेवा, रावल।
बस द्वारा	१८	अक्टूबर	शनिवार (अष्टमी) (वृन्दावनसे) शान्तनु कुण्ड, पैंठा, चन्द्रसरोवरसे होकर गोवर्द्धन, श्रीगिरिधारी गौड़ीय मठमें वास।
	१९	अक्टूबर	रविवार (नवमी) पूज्यपाद श्रीलभक्तिरक्षक श्रीधर महाराजजीका आविर्भाव महोत्सव।
	२०	अक्टूबर	सोमवार (दशमी) गोवर्द्धन बड़ी परिक्रमा—दानघाटी, आन्यौर, गोविन्दकुण्ड, पूछरी, सुरभीकुण्डमें भंडारा, जतीपुरा।
	२१	अक्टूबर	मंगलवार (एकादशी) श्रीहरिदेव, ब्रह्मकुण्ड, चकलेश्वर महादेव, मुखारविन्द, सनातन गोस्वामीकी भजन कुटी आदि।
बस द्वारा	२२	अक्टूबर	बुधवार (द्वादशी) गुलाल कुण्ड, गाँठौली, बहेज, डीग, आदिबद्री होकर गोवर्द्धन।
बस द्वारा	२३	अक्टूबर	बृहस्पतिवार (त्रयोदशी) काम्यवन, वृन्दादेवी, गोविन्दजी, कामेश्वर, पञ्चपाण्डव, विमलाकुण्ड, पिछल पहाड़ी, व्योमासुरकी गुफा, भोजन थाली।
	२४	अक्टूबर	शुक्रवार (चतुर्दशी) हरिकथा एवं दीपावली।
	२५	अक्टूबर	शनिवार (अमावस्या) किल्लोल कुण्ड, ग्वाल पोखरा, श्याम तलैया, रत्नवेदी, रत्नसिंहासन, मुक्तापेड़, चरणचिह्न, नारदकुण्ड, सायंकाल—दीपावली।
	२६	अक्टूबर	रविवार (प्रतिपदा) दानघाटीमें अन्नकूट महोत्सव।
	२७	अक्टूबर	सोमवार (द्वितीया) राधाकुण्ड परिक्रमा, उद्धवकुण्डसे आगे गिरिराज मन्दिरमें अन्नकूट, कुसुम सरोवर।
बस द्वारा	२८	अक्टूबर	मंगलवार (तृतीया) श्रील भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराजजीका तिरोभाव महोत्सव। गोवर्द्धनसे बरसाना, मोदीभवन बरसानामें निवास। रास्तेमें सूर्यकुण्ड, कामईके दर्शन।
	२९	अक्टूबर	बुधवार (चतुर्थी) श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी महाराजजीका तिरोभाव महोत्सव।
	३०	अक्टूबर	बृहस्पतिवार (पंचमी) श्रीलभक्तिश्रीरूप सिद्धान्ती महाराजजीका आविर्भाव महोत्सव, गह्वरवन परिक्रमा।
बस द्वारा	३१	अक्टूबर	शुक्रवार (सप्तमी) कोकिलावन, जावट, बैठान, चरण पहाड़ीमें प्रसाद सेवा।
बस द्वारा	१	नवम्बर	शनिवार (गोपाष्टमी) बरसानासे नन्दगाँव, मार्गमें प्रेमसरोवर, संकेत, उद्धवक्यारी, ललिताकुण्ड, नन्दभवन, नन्दगाँवमें प्रसाद-सेवा, छोटी चरण पहाड़ी, पावन सरोवर, टेर कदम्ब।
	२	नवम्बर	रविवार (नवमी) पीलीपोखर, ऊँचागाँव, सखीगिरि पर्वत।
बस द्वारा	३	नवम्बर	सोमवार (दशमी) बरसानासे खदीरवन, रामघाट, विहारवन, चीरघाट, वत्सवन, गरुड़गोविन्दसे होकर वृन्दावन।
	४	नवम्बर	मंगलवार (एकादशी) श्रील गौरकिशोर दास बाबाजी महाराजका तिरोभाव। श्रीवृन्दावनकी परिक्रमा, रास्तेमें आनन्द धाममें हरिकथा एवं प्रसाद-सेवा।
	५	नवम्बर	बुधवार (द्वादशी) आनन्द धाममें हरिकथा एवं प्रसाद-सेवा।
	६	नवम्बर	बृहस्पतिवार (त्रयोदशी) आनन्द धाममें हरिकथा एवं प्रसाद-सेवा।
	७	नवम्बर	शुक्रवार (चतुर्दशी) श्रीब्रह्महद, अक्रूर घाट, भातरोल, यज्ञ-पत्नी स्थान।
	८	नवम्बर	शनिवार (पूर्णिमा) वैष्णव होम, ऊर्जाव्रत समापन।
	१०	नवम्बर	सोमवार (तृतीया) श्रीदुर्वाषा ऋषि गौड़ीय आश्रम दर्शन।

È È È

श्रीश्रीगुरु–गौराङ्गौ–जयतः

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे

वैकुण्ठ–वार्त्तावह

बृहत्–मृदङ्ग

श्रीभागवत–पत्रिका

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः।
ज्ञान वैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना॥

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा॥

आराध्यो भगवान् व्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावनं, रम्या काचिदुपासना व्रजवधूवर्गेण या कल्पिता।
श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान्, श्रीचैतन्य महाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो नः परः॥

एक भागवत बड़ भागवत शास्त्र । आर एक भागवत भक्तिरसपात्र॥
दुई भागवत द्वारा दिया भक्तिरस । ताहाँर हृदये तार प्रेमे हय वश॥

वर्ष ४७ | श्रीगौराब्द ५१७ | वि. सं. २०६० आश्विन मास, सन् २००३, ११ सितम्बर —१० अक्टूबर | संख्या ७

श्रीनृसिंह–स्तवः

[श्रीलश्रीधरस्वामिविरचितः]

जय जयाजित जह्यग–जङ्गमावृतिमजामुपनीत–मृषागुणाम्।
नहि भवन्तमृते प्रभवन्त्यमी, निगमगीत–गुणार्णवता तव॥१॥

हे अजित! आप जड़–जङ्गम समस्त प्रकारके प्राणियोंके स्वरूपको आच्छादित करनेवाली अनित्य गुणोंकी आश्रय–स्वरूपा मायाका विनाशकर अपना पराक्रम दिखलावें—अपनी विजयकी घोषणा करें। आपके बिना इस विश्वमें कोई कुछ भी करनेमें समर्थ नहीं है॥१॥

द्रुहिण-वह्नि-रवीन्द्रमुखामरा, जगदिदं न भवेत् पृथगुत्थितम्।
बहुमुखैरपि मन्त्रगणैरजस्त्वमूरुमूर्त्तिरतो विनिगद्यसे॥२॥
सकल-वेदगणेरित सद्गुणस्त्वमिति सर्वमनीषि जना रताः।
त्वयि सुभद्रगुण-श्रवणादिभिस्तव पद-स्मरणेन गतक्लमाः॥३॥
नरवपुः प्रतिपद्य यदि त्वयि, श्रवण-वर्णन-संस्मरणादिभिः।
नरहरे न भजन्ति नृणामिदं द्रुतिवदुच्छ्वसितं विफलं ततः॥४॥
त्वदंशस्य ममेशान त्वन्मायाकृतवन्धनम्। त्वदङ्घ्रिसेवामादिश्य परानन्द निवर्त्तय॥७॥
त्वय्यात्मनि जगन्नाथे मन्मनो रमतामिह। कदा ममेदृशं जन्म मानुषं सम्भविष्यति॥९॥
क्वाहं बुद्ध्यादि संरुद्धः क्व च भुमन् महस्तव। दीनवन्धो दयासिन्धो भक्तिं मे नृहरे दिश॥११॥
यत्सत्त्वतः सदाभाति जगदेतदसत् स्वतः। सदाभासमसत्यस्मिन भगवन्तं भजाम तम्॥१३॥
तपन्तु तापैः प्रपतन्तु पर्वतादटन्तु तीर्थानि पठन्तु चागमान्।
यजन्तु यागैर्विवदन्तु वादैर्हरिं बिना नैव मृति तरन्ति॥१४॥

ब्रह्मा, अग्नि, सूर्य और इन्द्र आदि देवता एवं यह विश्व आपसे स्वतन्त्र रूपमें उत्पन्न नहीं हो सकते। इसलिए अनेक मंत्र आपको ही 'अज' और विराटमूर्त्ति' बतलाते हैं॥२॥

निखिल वेद आपकी गुणावलीका प्रचार करते हैं। आपके परम मङ्गलमय गुणोंके श्रवण और कीर्त्तन आदि द्वारा सारे मनीषिजन आपके चरण-कमलोंमें अनुरक्त रहते हैं तथा आपके चरणकमलोंका स्मरणकर समस्त प्रकारके दुःखोंसे छुटकारा पा लेते हैं॥३॥

हे नृसिंह देव! नर शरीर पाकर भी यदि मनुष्य श्रवण-कीर्त्तन-स्मरण आदि द्वारा आपका भजन नहीं करता है, तो उसका साँस ग्रहण करना अर्थात् जीवन धारण करना प्राणहीन हाथीके समान व्यर्थ ही है॥४॥

हे ईश्वर! हे परमानन्द! मैं आपका (अणु) अंश हूँ। आप मुझे अपने श्रीचरणकमलोंकी सेवा प्रदानकर मेरे माया-बन्धनको खोल दें॥५॥

आप जगन्नाथ हैं, आप ही परमात्मा हैं। आपके चरणकमलोंमें मेरा मन लग जाय। आपकी सेवाके लिए सब तरहसे योग्य मेरा मनुष्य-जन्म कब होगा?॥६॥

हे भूमा पुरुष! हे दीनबन्धो! हे दयासागर! कहाँ आवृत बुद्धिवाला मैं, और कहाँ आपका तेज या महिमाराशि। हे नरहरि! मुझे भक्ति प्रदान करें॥११॥

जिनकी सत्तासे यह असत् (अनित्य) जगत् सद् (सत्य) जैसा प्रतीत होता है, इस जगत्में जो एकमात्र सत् पदार्थ है, उस भगवान्का हम भजन करते हैं॥१३॥

मानव भले ही सूर्यके तापमें बैठकर कठोर तपस्या करे, पर्वतसे गिर पड़े, तीर्थोंमें भ्रमण करे, वेद और वेदान्त आदिका पाठ करे, विविध प्रकारके यज्ञोंद्वारा याग करे अथवा तर्कद्वारा वाद-विवाद ही क्यों न करे, परन्तु बिना भगवान्की कृपाके कोई भी मृत्युको जीत नहीं सकता॥१४॥

संसारचक्र–क्रकचैर्विदीर्णमुदीर्ण नानाभवतापतप्तम्।
कथञ्चिदापन्नमिह प्रपन्नं त्वमुद्धर श्रीनृहरे नृलोकम्॥१९॥
यदा परानन्द गुरो भवत्पदे पदं मनो मे भगवल्लभेत।
तदा निरस्ताखिल–साधनश्रमः श्रयेय सौख्यं भवतः कृपातः॥२०॥
भजतो हि भवान् साक्षात् परमानन्द चिद्घनः। आत्मैव किमतः कृत्यं तुच्छदार–सुतादिभिः॥२१॥
मुञ्चन्नङ्ग तदङ्गसङ्गमनीशं त्वामेव सञ्चिन्तयन् सन्तः सन्ति यतो यतो गतमदास्तानाश्रमानावसन्।
नित्यं तन्मुख पङ्कजाद्विगलित–त्वत्पुण्यगाथामृत–स्रोतः संप्लव–संप्लुतो नरहरे न स्यामहं देहभृत्॥२२॥
उद्भुतं भवतः सतोऽपि भुवनं सत्रैव सर्पः स्रजः कुर्वत् कार्यमपीह कुटकनकं वेदोऽपिनैवंपरः॥
अद्वैतं तव सत् परन्तु परमानन्दं पदं तन्मुदा वन्दे सुन्दरमिन्दिरानुत हरे मा मुञ्च मामानतम्॥२३॥
मुकुट–कुण्डल–कङ्कण–किङ्किणी, परिणतं कनकं परमार्थतः।
महदहंकृति–ख–प्रमुखं तथा नरहरेर्न परं परमार्थतः॥२४॥
नृत्यन्ती तव वीक्षणाङ्गनगता कालस्वभावादिभिर्भावान् सत्त्व रजोस्तमोगुणमयानुन्मीलयन्ती बहून्।
मामाक्रम्य पदा शिरस्यतिभरं सम्मर्दयन्त्यातुरं माया ते शरणं गतोऽस्मि नृहरे त्वमेव तां वारय॥२५॥
दण्डन्यासमिषेण वञ्चित–जनं भोगैकचिन्तातुरं समूह्यस्तमहर्निशं विरचितोद्योगक्लमैराकुलम्।
आज्ञालङ्घिनमज्ञमज्ञजनतो सम्माननना–सम्मदं दीनानाथ–दयानिधान परमानन्द प्रभो पाहि माम्॥२६॥
अवगमं तव मे दिश माधव, स्फूरति यन्न सुखासुखङ्गमः।
श्रवण वर्णन, भावमथापि वा–नहि भवामि यथा विधि–किङ्करः॥२७॥
द्यपतयो विदुरस्तमनन्त ते न च भवान् न गिरः श्रुतिमौलयः।
त्वयि फलन्ति यतो नम इत्यतो जय जयेति भजे तव तत्पादम्॥२८॥
सर्वश्रुति शिरोरत्न–निराजित–पदाम्बुजम्। भोग–योगप्रदं वन्दे माधवं कर्म्मि–नम्रयोः॥२९॥

हे नृसिंहदेव! संसारचक्ररूपी आरेसे चीरे गये तथा नाना प्रकारके भवतापों अर्थात् सांसारिक क्लेशोंसे तप्त, किसी प्रकार आपके निकट आये हुए मनुष्योंका आप उद्धार करें॥१६॥

हे भगवन्! हे परमानन्द गुरो! जब मेरा मन आपके श्रीचरणकमलोंमें आश्रय लाभ करेगा, तब आपकी कृपासे ही साधन जन्य मेरा सारा श्रम दूर हो जायेगा एवं परम शान्ति प्राप्त कर सकूँगा॥२०॥

हे नृसिंहदेव! भजन करनेवालोंके निकट आप साक्षात् परमानन्द चिद्घन प्राण–स्वरूप हैं; अतएव इसके बाद स्त्री–पुत्र आदिकी आवश्यकता ही क्या है?॥२१॥

हे नरहरे! स्त्री–पुत्र आदिका सङ्ग छोड़कर दिन–रात सर्वदा आपका चिन्तन करते–करते, अहङ्काररहित साधुजन जिन–जिन आश्रमों और तीर्थोंमें वास करते है, उन–उन स्थानोंमें वास करता हुआ सदा–सर्वदा उन सन्तोंके मुखसे झरते हुए आपके पवित्र कथामृतरूपी झरनेमें स्नान करूँ, तो मेरा पुनर्जन्म न होगा॥२२॥

फूलोंके हारसे निकला हुआ सर्प जैसे असत् होता है, उसी प्रकार सत्–स्वरूप

आपसे उत्पन्न होनेपर भी जगत् सत्य नहीं है, अर्थात् अनित्य है। स्वर्ण-राशि विविध प्रकारके अलङ्कारके रूपमें होकर भी जैसे अविकृत रहती है, परन्तु वेद वैसा नहीं है अर्थात् गौणार्थ द्वारा वैदार्थ भी कल्पित होता है। किन्तु आपका शुद्ध अद्वैत (अतुलनीय) भाव ही सत्य है। अतएव आनन्दपूर्वक रमा द्वारा सेवित आपके सुन्दर परमानन्दप्रद श्रीचरणकमलोंकी वन्दना करता हुँ। हे हरे! मैं आपके चरणोंका दास हूँ, मेरा परित्याग नहीं करेंगे॥२३॥

जैसे स्वर्ण मुकुट, कुण्डल, कंगन और नूपुरके रूपमें बदलनेपर भी वस्तुतः स्वर्ण ही रहता है, उसी प्रकार महत् या चित्त, अहङ्कार, आकाश आदि श्रीनृसिंह-विष्णुसे वस्तुतः भिन्न नहीं है॥१५॥

आपके ईक्षणसे क्षुब्ध हुई आपकी माया नाचते-नाचते काल और स्वभाव द्वारा सत्त्व-रजस्तममय अनेक भावोंको प्रकाशकर मुझ आतुर-असमर्थके सिरपर अत्यन्त निष्ठुर रूपसे आक्रमणकर मुझे पीस रही है; हे नरहरे! मैं आपके शरणमें आया हूँ, आप अपनी मायाका प्रभाव रोकिये॥२५॥

हे दीननाथ! हे अनाथबन्धो! हे प्रभो! मैं दण्ड और संन्यास ग्रहण करनेका छलकर केवल भोग चिन्तासे पीड़ित एक वञ्चित व्यक्ति हुँ। मैं सर्वदा अत्यन्त मोहको प्राप्त हो रहा हूँ, मैं अपने तैयार किये हुए कर्म-क्लेशमें पड़कर बहुत ही दुःखी हूँ। हे परमानन्दमय प्रभो! मैं आपकी आज्ञा न माननेवाला नितान्त मूर्ख हूँ तथा मूर्खके निकट सम्मान पाकर अतिशय अभिमानी हो गया हूँ; आप मेरी रक्षा करें॥२६॥

हे माधव! आपके स्वरूप-ज्ञान और आपके विषयमें श्रवण और कीर्त्तनमें आसक्ति पैदा करें, जिससे मुझे विषयजन्य सुख-दुःख स्पर्श न करे और जिससे मैं केवल प्रेमशून्य विधियोंका दास न हो जाऊँ॥२७॥

हे अनन्त! देववृन्द आपका अन्त नहीं जानते, आप भी अपना अन्त नहीं जानते, वेद भी आपका तत्त्व निरूपण करनेमें समर्थ नहीं हैं; इसलिए आपको नमस्कार है। 'आपकी जय हो', 'जय हो' इत्यादि वचनोंका उच्चारणकर मैं आपके उन दुर्लभ चरणकमलोंका भजन करता हूँ॥२८॥

कर्मी और भक्तके लिए जिनके चरणकमल क्रमशः भोग योगको देनेवाले हैं एवं जिनके चरणकमल निखिल श्रुति-समूहके शिरोरत्न समूह द्वारा निराजित होते हैं, उन माधवको मैं प्रणाम करता हूँ॥२९॥ ❽

प्रश्नोत्तर

(भगवद् रसतत्त्व)

—ॐविष्णुपाद श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

प्र. १—श्रीकृष्ण अखिलरसामृतसिन्धु और असमोर्द्ध्वरसस्वरूप क्यों हैं?

उ.—केवल श्रीकृष्णस्वरूप ही इस सर्वोच्च रस (पारकीय) के एकमात्र विषय हैं।

निरपेक्ष होकर और मतवादजनित भ्रमसे दूर रहकर विचार करने पर यह जाना जाता है कि श्रीकृष्णस्वरूप ही भगवानके सभी स्वरूपोंमें सर्वश्रेष्ठ और निर्मल है। जिस प्रकार अन्यान्य स्वरूप चिन्मय, जड़ातीत, सर्वगुणसम्पन्न और मायाविजयी हैं, उसी प्रकार श्रीकृष्ण स्वरूप भी अप्राकृत गुणोंसे युक्त हैं। कृष्ण स्वरूपकी यही विशेषता है कि वे इस प्रपञ्चमें अपनी पूर्ण चिल्लीलाको प्रकाशितकर स्वीय चिच्छक्तिके द्वारा उन्हें जड़ेन्द्रियग्राह्य भी बना देते हैं। वे प्रपञ्चमें अवतीर्ण होकर प्रापञ्चिकवत् व्यवहार करनेपर भी सर्वैश्वर्यसम्पन्न हैं। बालकोंके साथ प्राणप्रिय बालककी तरह, पिता-माता और गुरुजनोंके निकट आश्रित शिशुकी तरह एवं मधुर रसाश्रित भक्तोंके साथ प्राणनाथकी तरह व्यवहार करने पर भी उन्होंने अपनी ईशिताकी पराकाष्ठा दिखलाई है। मनुष्योंके निकट नरलीला प्रकाश करनेपर भी सभी अधिकारिक देवताओंके निकट सर्वेश्वरकी तरह व्यवहारकर बड़े-बड़े तथा-कथित पण्डितोंको भी आश्चर्यमें डाल दिया है। कृष्ण गोपभावसे अपनी जगदुन्मादिनी लीलाओंको यदि कृपापूर्वक प्रकाशित नहीं करते, तो परमेश्वर (भगवान) को मधुर रसके विषयके रूपमें कौन अनुभव कर सकता था? (श्रीम. शि. ५वाँ अ.)

प्र. २—श्रीकृष्णकी पारकीयता क्या घृणार्हा (घृणा करने योग्य) नहीं है?

उ.—श्रीकृष्ण जहाँ नायक हैं, वहाँ पारकीयता कदापि घृणास्पद नहीं है। साधारण क्षुद्र जीव जहाँ नायक पदवी धारण करते हैं, वहाँ धर्माधर्म विचार करना पड़ता है। (जै. ध. ३१वाँ अ.)

प्र. ३—श्रीराधाकृष्ण क्या तत्त्व हैं?

उ.—श्रीचैतन्यमहाप्रभुकी शिक्षानुसार मधुर रस ही भक्तोंका उपास्य रस है। इस रसमें श्रीमती राधिकाजीके अनुगत न होनेसे रसास्वादन नहीं हो सकता। सच्चिदानन्द तत्त्व ही परब्रह्म हैं। श्रीकृष्ण सच्चिद् रूप हैं और श्रीमती राधिका आनन्दरूपिणी हैं। राधाकृष्ण एक ही तत्त्व हैं। रस विस्तृति (आस्वादन) के लिए वे दो रूपोंमें प्रकटित हुए हैं। (चै. शि. ४/५)

प्र. ४—रस-समुद्रस्वरूप श्रीकृष्णके उद्दीपन-विभाव किस प्रकार होते हैं?

उ.—विजयकुमार जल्दी ही प्रसाद पाकर समुद्रतीरपर भ्रमण करते-करते काशीमिश्र भवनमें पहुँचे।

समुद्रकी तरङ्गों और लहरियोंको देखकर उनके हृदयमें रस-समुद्रके भाव उदित होने लगे। वे सोचने लगे—"आहा, यही समुद्र ही मेरे भावको उदय करा रहा है। जड़ वस्तु होनेपर भी यह मेरे अतिगुप्त चिद्भावका उद्घाटन करा रहा है। प्रभु मुझसे जिस रस-समुद्रकी बात कहते हैं, वह ऐसा ही होता है। मेरी जड़देह और लिङ्गदेह छुटनेपर मैं रस-समुद्रके तीरपर अपने मञ्जरी-स्वरूपसे अवस्थित होकर रसास्वादन करूँगा। नवाम्बुदवर्ण कृष्ण ही मेरे प्राणनाथ हैं। उनके पार्श्वस्थिता श्रीवृषभानुनन्दिनी ही मेरी ईश्वरी अर्थात् जीवितेश्वरी हैं। राधा-कृष्णका प्रणयविकार ही यह समुद्र है। रसभाव-समूह ही यह उर्मिमाला (तरङ्गें) हैं। जब जो भाव उठता है, वही विचित्र लहरी होकर मुझ तटस्थ सखीको प्रेम रसमें डुबा रही है। रस समुद्र

कृष्ण हैं, इसलिए समुद्र भी उनकी ही तरह श्यामवर्णका है और उसमें राधा ही प्रेमतरङ्ग हैं, इसलिए इन तरङ्गोंका रङ्ग गौरवर्ण है। बड़ी-बड़ी तरङ्गें सखियाँ हैं, क्षुद्र-क्षुद्र लहरियाँ सखियोंकी परिचारिका विशेष हैं। उसमेंसे मैं एक दूर तटमें निक्षिप्ता अणु-परिचारिका विशेष हूँ।" ऐसी भावना करते-करते विजयकुमार मुग्ध हो गये। थोड़ी देर बाद चेतना लाभकर धीरे-धीरे श्रीगुरुचरणोंमें उपस्थित होकर दण्डवत् प्रणामकर दीनभावसे बैठ गये।"

(जै. ध. ३४वाँ अ.)

श्रीलप्रभुपादजीका उपदेशामृत

प्र. १३३—साधुसङ्ग कैसे होगा?

उ.—एकाग्रचित्त होकर हरिकथा सुननेपर ही वास्तविक रूपमें साधुसङ्ग होता है। साधुसङ्ग होनेपर ही अर्थात् साधुओंके श्रीमुखसे हरिकथा श्रवण करनेपर ही भगवानके वीर्य और जगतकी दुर्बलताको हम समझ सकते हैं। साधुओंके उपदेशानुसार सेवा करते-करते भगवानकी सेवामें सुदृढ़ विश्वास, आसक्ति एवं प्रीति प्राप्त होती है। कृष्णकी सेवामें भी कृष्णके प्रति प्रीति ही जीवका चरम प्रयोजन है।

प्र. १३४—क्या श्रेयपथ (आत्मकल्याणके मार्ग) में बाधाएँ आती हैं?

उ.—वर्तमान समयमें प्रेयःकामी (जागतिक वस्तुओंकी इच्छा करनेवाला) को देखकर ऐसा लगता है, उसे कोई विशेष प्रकारका कष्ट नहीं है। परन्तु जो आत्मकल्याण (भक्ति) के मार्गपर चलनेवाले हैं, उन्हें अनेक प्रकारके कष्टोंका सामना करना पड़ता है। यदि सूक्ष्मरूपसे विचार किया जाए, तो स्पष्ट हो जाता है कि आत्मकल्याणके मार्गमें असुविधाएँ उपस्थित होनेपर भी यदि साधक उन्हें सहन कर लेता है, तो उसका आत्मकल्याण निश्चित है। इसके विपरीत जागतिक इच्छाओंवाले व्यक्ति पहले सुखी जैसे दीखनेपर भी उनका अन्त बहुत ही कष्टदायक होता है।

प्र. १३५—विवर्त किसे कहते हैं?

उ.—जो वस्तु जो नहीं हैं, उसे वह वस्तु समझना ही विवर्त है। जैसे रस्सीमें सर्पका भ्रम। अर्थात् अन्धकारके कारण रस्सीको साँप समझ लेना।

मैं यह शरीर हूँ—श्रीचैतन्यदेवने यह बात नहीं कही। उन्होंने कहा है—***देहे आत्मबुद्धि हय विवर्तेर स्थान।*** अर्थात् जड़ शरीरके प्रति आत्मबुद्धि करना ही विवर्त है।

देह एवं देही भिन्न हैं। देही मालिक और देह इसकी सम्पत्ति है। देह दो प्रकार होते हैं—सूक्ष्म एवं स्थूल। इन दोनों शरीरोंका मालिक आत्मा है। मन चेतनाभास एवं शरीर चेतनविहीन (जड़) है। इन दोनों प्रकारके शरीरोंके प्रति हम आत्मबुद्धि करते हैं। यही विवर्त या misconception है।

प्र. १३६—चेतन एवं अचेतनमें क्या भेद है?

उ.—अचिद् वस्तु अथवा जड़ वस्तुमें knowing (ज्ञानशक्ति), willing (इच्छाशक्ति) एवं feeling (अनुभव शक्ति) नहीं होती।

जड़ वस्तु respond नहीं कर सकती, परन्तु चेतन कर सकती है। हमारे भीतर एवं पशुओंके भीतर चेतन अधिक मात्रामें तथा वृक्षोंमें अल्प मात्रामें होता है।

प्र. १३७—क्या मनुष्य परजगत (वैकुण्ठ) की बात बता सकता है?

उ.—वैकुण्ठ जगतसे आया हुआ व्यक्ति ही वैकुण्ठ जगतकी बात बतानेमें समर्थ होता है। इस जगतका कोई व्यक्ति उस जगतकी बात बतानेमें समर्थ नहीं हो सकता। उस जगतसे आये हुए महापुरुषोंके श्रीमुखसे भगवानकी कथाओंको श्रवण करनेका सौभाग्य प्राप्त होनेपर ही जीव वैकुण्ठके विषयमें जान सकता है। इस जगतकी विचार प्रणालीके द्वारा उस जगतकी वस्तुओंको ग्रहण नहीं किया जा सकता। Transcendental (अधोक्षज) के साथ phenomenal (अक्षज) को एक साथ मिलाना उचित नहीं है। यदि भाग्य अच्छा हो, तो वैकुण्ठसे आये हुए महापुरुषका दर्शन एवं उनका सङ्ग प्राप्त होता है। श्रीचैतन्यदेव कह रहे हैं—

कृष्ण यदि कृपा करने कोन भाग्यवाने।
गुरु अन्तर्यामी रूपसे शिखाय आपने॥

(चै. च.)

अर्थात् जिस भाग्यवान व्यक्तिपर कृष्ण कृपा करते हैं, वे स्वयं अन्तर्यामी रूपमें शिक्षा प्रदान करते हैं।

प्र. १३८—सभी लोग पारमार्थिक बातोंको क्यों नहीं समझ पाते हैं?

उ.—यदि भाग्य ही नहीं हो, तो किस प्रकार समझ सकते हैं? उसके लिए संस्कार होने चाहिए। जो भाग्यवान हैं, वे ही गुरु-वैष्णवोंके श्रीचरणोंमें प्रणत होकर कथा सुनते हैं। इसलिए वे भगवानकी कृपासे पारमार्थिक बातोंको समझ सकते हैं, परन्तु जो hasty-conclusion (किसी भी वस्तुके निर्णयमें जल्दीबाजी) का आश्रय लेते हैं, वे सत्य वस्तुको ग्रहण करनेमें असमर्थ होते हैं। वे पूर्णज्ञान अर्थात् भगवत् तत्त्व आदिके अनुशीलनमें थोड़ा समय भी नहीं दे सकते। हम बाल्यावस्थासे जिस समाजमें पले हैं, उसमें materialism (भौतिकता) इतने अधिक परिमाणमें है कि नित्य या परमार्थ जीवनकी आलोचनाके लिए एक मुहूर्त समय भी नहीं दे सकते। व्यावहारिक कार्योंमें ही हमारे चौबीस घण्टे नष्ट हो जाते हैं। वास्तवमें हम क्या वस्तु हैं, इस बातको जाननेकी चेष्टा नहीं करते हैं। जब कि शास्त्रोंका उपदेश है कि मानव जीवनके चौबीस घण्टे ही पारमार्थिक विषयमें ही व्यतीत होने चाहिए। बुद्धिमान व्यक्तिका कर्तव्य यह नहीं है कि वह अपना अमूल्य जीवन अपनी इन्द्रिय तर्पणके लिए ही गँवा दे।

सभी जीवोंको अपने-अपने मङ्गलके विषयमें विचार करना चाहिए। हमें स्वार्थपर होना चाहिए। परन्तु संसारमें अधिकांश लोग जागतिक कार्योंमें ही नियुक्त रहते हैं। बाल्यावस्था खेलकूदमें, युवावस्था संसार धर्ममें एवं वृद्धावस्था सम्पत्ति एवं शरीरकी रक्षा करनेमें ही बीता देते हैं। परमार्थ विषयमें वे सम्पूर्ण रूपमें उदासीन रहते हैं। यही दुःखका विषय है।

कुछ लोग कहते हैं—वर्तमान स्वार्थके लिए—आत्माके कल्याणकी चिन्ता करनेकी

आवश्यकता नहीं है। क्योंकि बाल्यकालमें विद्या अध्ययन नहीं करनेसे युवावस्थामें अनेक प्रकारके कष्टोंका सामना करना पड़ता है।

जो समाजके कल्याणकी कामना करते हैं, वे अपने कल्याणके साथ ही दूसरोंके कल्याणकी चिन्ता भी करेंगे। चेतनका धर्म भगवत् सेवा, जिससे कि भोग आदिके द्वारा बाधाप्राप्त न हो, उसके लिए चेष्टा करनी चाहिए। कुछ लोग कह सकते हैं कि पाप कार्योंका परित्यागकर पुण्य कर्म करना उचित है; परन्तु इतना ही पर्याप्त नहीं है। बुद्धिमान व्यक्तिका यही लक्षण है कि वह तात्कालिक कार्योंके साथ नित्य अवस्थानका क्या सम्बन्ध है, पद–पद पर इसका विचार करेगा। इससे विमुख होनेपर हमें असुविधाओंमें पड़ना पड़ेगा। वर्तमान कालमें कोई कार्य करनेपर भविष्यमें उसका फल प्राप्त होता है।

समयका सद् व्यवहार न करनेपर अनेक प्रकारकी असुविधाएँ घेर लेती हैं। वृद्धावस्थामें परलोककी आलोचनाका अभिलाषी व्यक्ति संसारकी चिन्ताओंमें मग्न रहनेके कारण किसी प्रकारका उपकार प्राप्त नहीं कर पाता है।

ॐविष्णुपाद १०८श्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजजीकी हरिकथा

(हिन्दी अनुवाद, मूल—बंगला)

अब जो तृतीय विश्वयुद्ध होने जा रहा है, उसके विषयमें समग्र विश्वके मङ्गलाकांक्षी लोग चिन्तित हैं। परन्तु हमें उसकी कोई चिन्ता नहीं है। जो इस विश्वके पण्डितवर्ग एवं सुधीसमाज है, वे इस विषयमें बहुत ही चिन्ताग्रस्त हैं कि क्या होगा, क्या होगा! जो होना होगा, वही होगा। That cannot be cured must be indured. जिसका प्रतिकार नहीं है, उसे हमें अवश्य ही सहन करना होगा। यदि आस्तिकतासे हमारी रक्षा हो सकती हो, तो हम नास्तिकताका आश्रय ग्रहण क्यों करेंगे? हम आस्तिकताका परित्याग क्यों करेंगे? हमें शान्त–शिष्ट होकर समाजमें चलना चाहिए। सर्वदा ही गुरुवैष्णवोंसे प्रार्थना करते रहना चाहिए। *''असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्युर्मामृतङ्गमय।''* हे सद्गुरो! हे भगवान्! हमें सत्पथकी ओर ले चलो। मैं अज्ञान–अन्धकारमें पड़ा हुआ हूँ। मुझे सत्पथ दिखाओ। तमसो मा ज्योतिर्गमय—मैं सम्पूर्ण रूपसे तामसिक भावके कारण अज्ञानरूपी अन्धकारमें डूबा हुआ हूँ। हे सद्गुरो! हे भगवान्! मुझे ज्ञानालोक प्रदान करें। मृत्युर्मामृतङ्गमय—मैं सम्पूर्णरूपसे मृत्युदशाग्रस्त हूँ। कृपा करके मुझे अमृतप्राप्तिका उपाय बताइये—हम इस प्रकारकी प्रार्थनाएँ क्यों नहीं कर पा रहे हैं? क्यों हम व्यर्थ ही अहङ्कार, दम्भ, दर्प एवं अभिमानमें जल मर रहे हैं? आज समग्र विश्वकी क्या अवस्था हो रही है? चारों ओर मारामारी, काटाकाटी चल रही है।

तृतीय विश्वयुद्ध आना बाकी नहीं है। एक प्रकारसे यह विश्वयुद्धका ही स्वरूप है। हम परमार्थकी चिन्ता न कर केवल अर्थकी चिन्ता ही कर रहे हैं।

आज सभी लोग चिल्लाते हैं—"शान्ति, शान्ति, शान्ति।" किन्तु शान्ति आयेगी कैसे? जिस उपायके द्वारा शान्ति प्राप्त हो सकती है, उसको तो हम पालन नहीं कर रहे हैं। इसलिए हम अशान्त हैं। केवल मुखसे शान्ति बोलनेसे शान्ति आयेगी नहीं। यदि कोई कहे कि पहले खाने, पीने और रहननेकी व्यवस्था हो जाए तो इसका क्या अर्थ हुआ? यदि खाने, पीने, रहनेकी उचित व्यवस्थासे ही शान्ति आ सकती थी, तो अमेरिका, जर्मन इत्यादि ज्ञान और विज्ञानमें उन्नत देश, जहाँपर भौतिक सुखोंका अभाव नहीं है, क्या उन देशोंके लोग शान्त हैं? इतनी सुविधाएँ होनेपर भी वे लोग किसलिए शान्ति-शान्ति कहकर चिल्ला रहे हैं? इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि खाने, पीने एवं रहननेकी उचित व्यवस्थासे ही शान्ति नहीं आ सकती है। शान्ति आ सकती है भगवद् भजनके द्वारा। यदि हमें खाने, पीने, रहननेकी उत्तम-उत्तम सुविधाएँ प्राप्त हो जाएँ, तो हम भगद्भजन करेंगे, न्याय-नीति-आदर्शोंमें प्रतिष्ठित होंगे, यह कोई निश्चित नहीं है। इस चीजको शास्त्रोंने अच्छी तरह समझा दिया है। जो नीतिआदर्शोंका पालन करते हैं, वे कदापि ऐसी निरर्थक बातें नहीं कहेंगे। वे ***''यदृच्छालाभे सन्तुष्ट''***—वे जो कुछ मिल जाता है, उसमें सन्तुष्ट रहते हैं। उनके हृदयमें किसी भी प्रकारका लोभ नहीं होता। जो साधन-भजनपरायण व्यक्ति हैं, वे कभी भी निर्विशेष मतवाद, नास्तिक मतवादका अनुमोदन नहीं करते हैं। आजकी भोगवादी दुनिया सबकुछ नष्ट कर रही है। लाख चेष्टा करनेपर भी उनके अभाव दूर नहीं हो रहे हैं। उनकी इच्छाएँ पूर्ण नहीं हो रही हैं। कैसे आश्चर्यकी बात है? शास्त्र कहते हैं—***''यत् पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः एकस्यापि न पर्याप्तं।''***—अर्थात् पृथिवीमें जितनी भोगकी सामग्री है, जितना सोना-दाना है, वह सब यदि एक व्यक्तिको दे दिया जाए, तो भी उसे खुश नहीं किया जा सकता। ऐसे मनुष्यकी क्या भावना है, समझमें नहीं आता। यह सत्य है कि जीवित रहनेके लिए भोजनकी आवश्यकता होती है। समाजमें रहनेके लिए कुछ प्रयोजनीय वस्तुओंकी आवश्यकता भी होती है। लज्जा निवारण करनेके लिए एक-दो कपड़ोंकी भी आवश्यकता होती है। सिर ढकनेके लिए एक झोपड़ीकी आवश्यकता भी होती है, इसे कौन नहीं समझता? इसे तो सभी जानते हैं। किन्तु शिक्षाका विषय यह है कि ***''यदृच्छालाभे सन्तुष्ट''***। तात्पर्य यह है कि हमें इन चीजोंके लिए उतनी ही चेष्टा करनी चाहिए जितनी आवश्यकता है। इस बातको हम क्यों नहीं समझ पा रहे हैं? The more you give, the more they want—आजकल संसारमें ऐसा ही चल रहा है। ऐसे लोभी लोगोंकी सन्तुष्टि तो किसी प्रकारसे हो ही नहीं रही है। इसलिए शास्त्र कह रहे हैं कि इन भोगोंमें सन्तुष्टि नहीं है। क्योंकि भोगकी एक वस्तु प्राप्त

होनेपर दूसरी वस्तुकी कामना जग जाती है। दूसरी वस्तुकी प्राप्ति होनेपर तीसरी वस्तुकी कामना जग जाती है। अतः सन्तुष्टि तो केवल सीमित प्रयोजन नहीं है। अर्थात् जिसकी इच्छाएँ सीमित हैं, वही व्यक्ति सन्तुष्ट हो सकता है। सीमित प्रयोजन क्या है, हम यही नहीं समझ पा रहे हैं। यह हमारी बुद्धिमें ही नहीं आ रहा है।

निःसङ्गता मुक्तिः पथं यतीनां
सङ्गादशेषाः प्रभवन्ति दोषाः।
आरूढ़योगोऽपि निपत्यतेऽधः
सङ्गादशेषाः प्रभवन्ति दोषाः॥

शास्त्र कह रहे हैं—

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते॥

अर्थात् कामनाओंके द्वारा कामनाओंकी परितृप्ति कभी नहीं हो सकती। इसलिए शास्त्रोंमें निवृत्ति मार्गका वर्णन है। प्रत्येक मनुष्य, प्रत्येक जीव कामना-वासनाओंमें घिरा हुआ है। किन्तु शास्त्र कह रहे हैं—*''निवृत्तिस्तु महाफलाः।''* इसके द्वारा यहाँपर जो निवृत्तिका विचार है, उसके द्वारा हमें सत् फल प्राप्त हो सकता है।

इसलिए शास्त्र निवृत्ति मार्गमें अग्रसर होनेकी शिक्षा देते हैं। निवृत्ति मार्गका अर्थ केवल साधारण जागतिक त्याग ही नहीं है। प्रवृत्ति मार्ग जैसा खराब है, निवृत्ति मार्गमें भी वैसी ही कुछ खराबी है। निवृत्ति मार्गका अर्थ यह होना चाहिए—मैं न्याय, नीति एवं आदर्शोंको पालन करूँगा। यह शिक्षा सर्वोत्तम शिक्षा है। इस शिक्षाको यदि हम पालन कर सकें, तो समस्त शास्त्रोंका तात्पर्य सहजरूपमें ही हम समझ सकते हैं। यह हमारे सनातन आर्य ऋषियोंकी शिक्षा है। महत्त्व इस बातका है कि हम इन ऋषि-मुनियोंकी शिक्षामें शिक्षित हो रहे हैं कि नहीं। संसारमें जो सत्साम्प्रदायिक विचार हैं, उन्हें तो सभीको ग्रहण करना चाहिए। जो असत् सम्प्रदायी हैं, जो नास्तिकवादकी बातें कहते हैं, ऐसे लोगोंकी बातें नहीं सुननी चाहिए। इस प्रकार हमें अच्छी प्रकारसे सनातन धर्ममें प्रतिष्ठित होकर इन सब विचारोंको ग्रहण करना चाहिए। आज यहाँपर जो समस्त वैष्णववृन्दसे, अपने गुरुवर्गोंसे एवं गोस्वामीवर्गोंसे कृपाप्रार्थना करते हुए विदायी लेना चाहता हूँ। गुरु वैष्णवगण मुझपर कृपा करें कि मैं स्वयं इस सनातन धर्मतत्त्वमें प्रतिष्ठित होकर इस जगतमें जितने दिन जीवित रहूँ, उतने दिन गुरु एवं वैष्णवोंके आनुगत्यमें सनातन धर्मका प्रचार करता रहूँ।

वाञ्छाकल्पतरुभ्यश्च कृपासिन्धुभ्य एव च।
पतितानां पावनेभ्यो वैष्णवेभ्यो नमो नमः॥

नमस्तेऽस्तु दाम्ने स्फुरद्दीप्तिधाम्ने, त्वदीयोदरायाथ विश्वस्य धाम्ने।
नमो राधिकायै त्वदीय-प्रियायै, नमोऽनन्तलीलाय देवाय तुभ्यम्॥

हे दामोदर! आपके उदरको बाँधनेवाली महान् रज्जुको प्रणाम है, निखिल ब्रह्मतेजके आश्रय और सम्पूर्ण विश्वके आधारस्वरूप आपके उदरको नमस्कार है। आपकी प्रियतमा श्रीराधारानीके चरणोंमें मेरा बारम्बार प्रणाम है और आपके अलौकिक लीला-विलासको भी मेरा सैकड़ों बार प्रणाम है। (श्रीदामोदराष्टकम्)

श्रीगौराङ्ग-सुधा

(वर्ष ४७, संख्या ६, पृष्ठ १३७ से आगे)

—श्रीपरमेश्वरी दास ब्रह्मचारी

मृतशिशुके मुखसे तत्त्वज्ञानका उपदेश दिलवाना

नित्यप्रति श्रीवासपण्डितके घरमें प्रभु अपने भक्तोंके साथ कीर्तनमें मग्न रहते थे। कीर्तनके पश्चात् कभी तो वे समस्त भक्तोंके साथ गङ्गामें जाकर जलविहार करते थे, तो कभी भक्तलोग उन्हें घरपर ही स्नान कराते थे। जबतक कीर्तन चलता रहता, तबतक श्रीवासजीकी एक नौकरानी, जिसका नाम दुःखी था, वह प्रभुके स्नानके लिए गङ्गासे जल लाकर बर्तनोंको भर देती थी। बीच-बीचमें आकर वह कुछ क्षणोंके लिए प्रभुका नृत्य भी दर्शन कर लेती थीं, जिससे उसके नेत्रोंसे अश्रुधारा प्रवाहित होती रहती थी। उसकी सेवासे प्रभु बहुत ही प्रसन्न रहते थे। एक दिन प्रभुने श्रीवासजीसे पूछा—"मेरे स्नानके लिए नित्यप्रति जल कौन भरता है?"

श्रीवासजी बोले—"प्रभो! आपके स्नानके लिए यह दुःखी ही गङ्गासे जल लाकर भरती है।"

यह सुनकर प्रभु बोले—"आजसे सभी लोग इसे 'सुखी' नामसे ही पुकारना। इसका दुःखी नाम सर्वथा अनुचित है। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि इसका नाम सुखी होना चाहिए, क्योंकि यह सर्वदा ही सुखी रहेगी।"

प्रभुकी ऐसी करुणाका दर्शनकर सभी भक्तवृन्दके नेत्रोंसे आनन्दाश्रु प्रवाहित होने लगे। अब प्रभुकी आज्ञासे सभी लोग उसे 'सुखी' नामसे ही पुकारने लगे। तबसे श्रीवासजीने भी उसे प्रभुकी कृपापात्र समझकर उसके प्रति दासीभावको त्याग दिया। इस प्रकार प्रभुने दिखाया कि प्रेमपूर्वक सेवाके द्वारा ही कृष्णप्राप्ति सम्भव है। सिर मुंडवाकर संन्यास वेष धारण करनेपर भी यदि भगवानके प्रति प्रीति न हो, तो ऐसा वेष भी उसे यमदण्डसे नहीं बचा सकता। उच्चकुल, सुन्दरता, धन एवं विद्याके द्वारा आत्मकल्याण सम्भव नहीं है। केवल प्रेमपूर्वक भगवानकी सेवासे ही आत्मकल्याण सम्भव है। दासी होकर भी दुःखीने जो कृपा प्राप्त की, वह तो बड़े-बड़े ऋषि-मुनियोंके लिए भी दुर्लभ है। उन श्रीवासजीकी महिमाका क्या वर्णन किया जा सकता है कि जिनके घरके दास-दासियोंको भी ऐसा महासौभाग्य प्राप्त हुआ है।

एक दिन प्रभु श्रीवासजीके घरमें आत्मविभोर होकर नृत्य कर रहे थे तथा श्रीवास आदि भक्तवृन्द आनन्दित होकर कीर्तन कर रहे थे। उसी समय दुर्भाग्यसे श्रीवासजीका पुत्र जो बहुत दिनोंसे बीमार था, उसका परलोकगमन हो गया। यह देखकर घरके भीतर सभी स्त्रियोंने रोना आरम्भ कर दिया। रोनेकी आवाज सुनकर श्रीवासजी तुरन्त घरके भीतर गये। उन्होंने देखा कि उनका पुत्र परलोक सिधार चुका है। परन्तु वे तो बहुत गम्भीर एवं तत्त्वज्ञानी भक्त थे। अतः उनलोगोंको

सान्त्वना देते हुए कहने लगे कि तुम सभी लोग भगवान कृष्णकी महिमाको भलीभाँति जानते हो। अतः यह रोना-धोना बिल्कुल बन्द कर दो। अन्त समयमें मरते समय भयङ्करसे भयङ्कर पापीके मुखसे विवशता या भयके कारण जिनका नाम निकलने पर वह पापी भी पवित्र होकर कृष्णधामको प्राप्त करता है, आज ऐसे प्रभु यहाँपर स्वयं साक्षात् रूपसे आनन्दमग्न होकर नृत्य कर रहे हैं तथा ब्रह्मा, शिव आदि देवता कीर्तन कर रहे हैं, ऐसे शुभ अवसरपर इस बालकने शरीर छोड़ा है, अतः यह बहुत ही सौभाग्यवान है। इसके लिए शोक करना उचित नहीं है। यदि कभी मुझे ऐसा सौभाग्य प्राप्त हुआ, तो मैं स्वयंको कृतार्थ समझूँगा। मेरे इतने समझाने पर भी पुत्रमोहके कारण यदि तुम धैर्य धारण नहीं कर सकते, तो कीर्तनके बादमें रोना। इसका ध्यान रखना कि इस घटनाका पता किसीको भी न चल पाए। क्योंकि यदि प्रभु एवं भक्तोंको इसका पता चला तो, प्रभुके नृत्य-सुखमें बाधा पहुँच जाएगी और यदि प्रभुके सुखमें बाधा पहुँची, तो सत्य कह रहा हूँ कि मैं अभी जाकर गङ्गाजीमें कूदकर आत्महत्या कर लूँगा।"

यह सुनकर घरके सभी लोग भयभीत होकर चुप हो गये। श्रीवासजी भी बाहर आकर आनन्दसे कीर्तन करने लगे। धीरे-धीरे कीर्तनका उल्लास बढ़ने लगा तथा प्रभु भी आनन्दपूर्वक नृत्य कर रहे थे। कुछ समय पश्चात् किसी प्रकार वैष्णवोंको पता चल गया कि श्रीवास पण्डितजीका पुत्र मर गया है। परन्तु कोई कुछ भी नहीं बोला, सभी चुपचाप कीर्तन करते रहे, परन्तु उनका हृदय दुःखके कारण विदीर्ण हो रहा था। कुछ क्षण पश्चात् सर्वान्तर्यामी प्रभुने भक्तोंसे पूछा—"आज मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि श्रीवासजीके घरमें कुछ दुःख आ पड़ा है।" यह सुनकर श्रीवासजी तुरन्त बोले—"प्रभो! जिसके घरमें आपके सुप्रसन्न मुखकमलके दर्शन हो रहे हों, वहाँपर दुःख कैसे प्रवेश कर सकता है?" तब सभी वैष्णवोंने प्रभुको उनके पुत्रके मृत्युकी बात बताई। यह सुनकर प्रभु कुछ दुःखी होकर बोले—"यह दुर्घटना कब घटी?" वैष्णववृन्द बोले—"प्रभो! वह तो ढाई प्रहर अर्थात् साढ़े छः घण्टे पहले ही मर गया था, परन्तु आपके नृत्यके आनन्दमें बाधा पहुँचनेके भयसे श्रीवासजीने किसीको भी नहीं बताया। अतः अब आप आज्ञा प्रदान करें तो उसका क्रिया संस्कार किया जाय।"

श्रीवासजीकी अपने प्रति ऐसी प्रगाढ़ प्रीति देखकर प्रभु भावविह्वल हो गये। वे "गोविन्द-गोविन्द" स्मरण करते हुए कहने लगे—"जिसने मेरे लिए अपने पुत्रका मोह भी त्याग दिया है, ऐसे लोगोंको मैं कैसे त्याग पाऊँगा?" ऐसा कहकर वे फूट-फूटकर रोने लगे। प्रभुके श्रीमुखसे त्यागकी बात सुनकर तथा उन्हें इस प्रकार रोता देखकर भक्तलोग विचार करने लगे न जाने कब हमारे सिरपर दुःखका पहाड़ टूट पड़े; अर्थात् उन्हें अब विश्वास हो गया कि एक दिन प्रभु गृहस्थ आश्रमका त्यागकर संन्यास

आश्रम ग्रहण करेंगे। कुछ समय पश्चात् प्रभुके शान्त हो जानेके बाद जब मृत शिशुको क्रिया-संस्कारके लिए ले जाया जाने लगा, उस समय प्रभुने उस मृत बालकसे पूछा—"अरे बालक! तुम श्रीवासजीका घर छोड़कर क्यों जा रहे हो?"

यह सुनकर वह मृत बालक उत्तर देने लगा—"प्रभो! यह सब आपका ही विधान है। किसीका ऐसा सामर्थ्य नहीं है कि जो आपके विधान को बदल दे।" उस मरे हुए शिशुको प्रभुके साथ वार्तालाप करते हुए देखकर सभी लोग आश्चर्यचकित रह गये। शिशु बोला—"हे प्रभो! इस शरीरमें मेरा जितना भोग था, वह मैंने भोग लिया है। भोग समाप्त होनेपर अब मैं इस शरीरमें नहीं रह सकता। अतः आप मुझपर ऐसी कृपा कीजिए कि मैं कभी भी आपको न भूल पाऊँ। प्रभो! कौन किसका पिता है, कौन किसका पुत्र है? कोई किसीका पिता नहीं है तथा कोई किसीका पुत्र नहीं है, सभी केवल अपने-अपने कर्मोंको भोग रहे हैं। अतः जितने दिन मेरे भाग्यमें श्रीवासजीके घरमें निवास था, मैं उतने दिन रहा, अब मैं दूसरी जगह जा रहा हूँ। मैं आपको एवं आपके प्रिय भक्तोंको प्रणाम कर रहा हूँ। आप मेरे अपराधोंको क्षमा करेंगे।" ऐसा कहकर बालकका शरीर पुनः शान्त हो गया।

मृत बालकके मुखसे ऐसी तत्त्वपूर्ण बातोंको सुनकर सभी लोग आनन्द सागरमें डूब गये। अब तो श्रीवासजीके परिवारके सभी लोगोंका मोह दूर हो गया तथा वे कृष्णप्रेममें विभोर होकर प्रभुके श्रीचरणोंमें गिरकर क्रन्दन करते हुए कहने लगे—"प्रभो! आप ही हमारे माता, पिता, पुत्र, भाई एवं बन्धु हैं। आप हमारे ऊपर ऐसी कृपा करें कि हम कभी भी आपको न भूल पावें। आप ऐसी कृपा कीजिए कि जिस किसी भी योनिमें हमारा जन्म क्यों न हो, उसमें ही आपके श्रीचरणकमलोंमें हमारी प्रेमाभक्ति हो।"

इस प्रकार वे चारों भाई प्रभुके चरण-कमलोंको पकड़कर दीनतापूर्वक प्रार्थना कर रहे थे तथा अन्यान्य भक्तवृन्द चारों ओरसे आनन्दसे रो रहे थे। इस प्रकार श्रीवासजीका हृदय कृष्णप्रेममय हो गया था। प्रभु श्रीवासजीसे कहने लगे—"श्रीवासजी! आप तो संसारका नियम अच्छी प्रकारसे जानते ही हैं। यह संसार है ही दुःखपूर्ण, क्योंकि जिसे हम आज देख रहे हैं, वह कल नहीं दिखाई पड़ता। मैं तथा ये नित्यानन्द दोनों ही आपके पुत्र हैं। अतः पुत्रके लिए आप शोक मत करना।" प्रभुके करुणापूर्ण वचनोंको सुनकर उपस्थित सभी भक्तोंका हृदय गद्गद हो गया तथा वे प्रभुकी जय जयकार करने लगे।

तत्पश्चात् सभी भक्तोंको साथ लेकर प्रभु उस मृत बालकको गङ्गाके किनारे ले गये। वहाँ जाकर उस बालकका क्रिया-संस्कार कर सभीने गङ्गामें स्नान किया तथा सभी लोग कृष्ण-कृष्ण कहते हुए अपने घरोंको चले गए। (क्रमशः)

विविध सम्वाद

प्राच्य और पाश्चात्य देशोंमें श्रीमन्महाप्रभुकी वाणीका प्रचार

(पूर्व प्रकाशित संख्या ५, पृष्ठ ११९ से आगे)

ह्यूस्टन और बर्मिंघमकी धर्मसभाकी एक विशेषता है। ह्यूस्टनकी धर्मसभाके विषयमें पहले वर्णन हुआ है। यहाँ ईंलैण्डके बर्मिंघम शहरमें अनुष्ठित धर्मसभाका वर्णन किया जा रहा है। १४-६-२००३ तारीखको Custard Factory (an Art & Media Centre in Central Birmingham) में अनुष्ठित धर्मसभामें निम्नलिखित विशिष्ट व्यक्तिगण उपस्थित थे—

1. The lord Mayor John Alden & the lady Mayoress of Birmingham,
2. Mr. Sapra—The Consular General of India, Birmingham,
3. Mr. Omprakash Sharma—MBE The President of The Hindu Council of Temples, U. K. & Trustee of the National Interfaith Centre,
4. Md. Imtiaz Ahmed, Md. Tahir Selby, Md. Baseer Rehan—Ahmadiya Muslim Association, Walsall,
5. Dr. Chris Hewer—The Church of England, Birmingham Diocese,
6. Elder & Sister Hunter—The Church of Jesus Christ of late day saints (Mormons),
7. Susan Halliday—Interfaith peace worker.

इनके साथ The Asia Voice और Jagatwani Newspaper के सांवादिक भी उपस्थित थे।

श्रीलमहाराजजीने सबसे पहले बर्मिंघमके मेयर Mr. John Alden को कुछ बोलनेके लिए अनुरोध किया। मेयरजीने सर्वप्रथम बर्मिंघम नगरीमें पधारनेके लिए श्रीलमहाराज- जीका अभिनन्दन और धन्यवाद ज्ञापन किया। उन्होंने बताया—बर्मिंघम विभिन्न धर्मोंके समन्वयके कारण एक महान सांस्कृतिक महानगरी है। विशेषतः आप जैसे महान विभूतिकी उपस्थितिसे आज यह महानगरी गर्वित है। हे गुरुदेव! यहाँ पधारने पर आपको धन्यवाद एवं मुझे इस सभामें आमन्त्रित करनेके लिए धन्यवाद।

द्वितीय वक्ता Mr. Sapra ने पहले श्रीलमहाराजजीके श्रीचरणोंको स्पर्शकर उनकी कृपा भिक्षा की। वे बोले—भारत सरकारके द्वारा यहाँ कार्यरत होकर विगत कुछ वर्षोंसे श्रीलमहाराजजीके दर्शन तथा हरिकथा सुननके लिए मैं धर्मसभामें योगदान करता रहता हूँ। श्रीलमहाराजजी वास्तव सुख-शान्तिकी वार्त्ता समग्र विश्वमें प्रचार कर रहे हैं। उनकी हरिकथाको श्रवण करनेके लिए इस विशाल जनसमुद्रको देखकर भारतीय होनेके कारण मैं अत्यन्त गर्वका अनुभव कर रहा हूँ। प्रति वर्ष बर्मिंघम आनेके लिए श्रीलमहाराज- जीको मैं धन्यवाद ज्ञापन कर रहा हूँ।

तृतीय वक्ता Mr. Omprash Sharma ने श्रीलमहाराजजीका चरणस्पर्श कर कहा—श्रीलमहाराजजी वर्तमान विश्वमें वैदिक संस्कृतिके सम्बन्धमें विशेष अनुभवी और अभिज्ञ सन्त महापुरुष हैं। वर्तमान विश्वमें ऐसे महापुरुष बहुत कम ही देखे जाते हैं।

उन्होंने संक्षेपमें सनातन धर्मकी व्याख्या करते हुए बताया कि सिन्धु नदीके तटपर वास करनेवालोंको विदशी लोग हिन्दू नामसे पुकारते थे

तथा उनके आचरित धर्मको हिन्दूधर्मके नामसे लोग जानते थे। वैदिक संस्कृतिके अनुसार धर्म समस्त विश्वके कल्याणके लिए ही भगवान द्वारा प्रणीत हुआ है। उन्होंने और भी बताया कि यह विश्व भगवानके द्वारा सृष्ट है। हम समग्र विश्ववासी एक ही परिवारके अन्तर्भुक्त हैं।

चतुर्थ वक्ता Muslim Community के Md. Imtiaz Ahmed ने श्रीलमहाराजजी को अभिनन्दन और धन्यवाद प्रदानकर कहा—इस विराट सभामें योगदान करना सौभाग्यकी बात है। इस सभामें आकर विभिन्न लोकोंकी रीतिनीतिके विषयमें शिक्षा मिलती है तथा हमारे बीचमें जो बाधा (Barrier) है, वह दूर हो जाती है। बाधा एक दूसरेको घृणा करना सीखाती है। मुस्लिम कम्युनिटीमें सिद्धान्त ग्रहण किया जाता है कि "Love for all, hatred for none."

पञ्चम वक्ता Dr. Chris Hewer ने कहा—मैं इंलैण्डके समस्त चर्चोंकी ओरसे प्रतिनिधि होकर श्रीलमहाराजजीका स्वागत कर रहा हूँ। इंलैण्ड तथा समस्त यूरोप वासियोंको यह जानना आवश्यक है कि किस प्रकार विभिन्न धर्म तथा भाषाओंके लोगोंके साथ वास किया जाता है। हमारे प्राचीन इतिहासको अवलोकन करनेसे समझा जाता है कि हमलोगोंने अतीतमें किस प्रकार विभिन्न धर्म तथा भाषाओंके लोगोंके प्रति विरुद्धाचरण किया है। समस्त प्रकारके लोगोंके साथ किस प्रकार एकसाथ वास किया जा सकता है, उसके विषयमें हम श्रीलमहाराजजीसे शिक्षा लाभ कर सकते हैं।

परवर्ती वक्ता Mr. Elder Hunter बोले—मैं पश्चिम यूरोपके चर्चसे प्रतिनिधि होकर श्रीलमहाराजजीका अभिनन्दन कर रहा हूँ। अनेक दिनोंसे वैष्णवलोगोंका मधुर व्यवहार देखकर हम अति आनन्दित हुए हैं। यद्यपि समस्त वैष्णव-सिद्धान्तोंको मैं समझ नहीं पाया हूँ तथा वैष्णवोंके आचार-आचरण हमारे अधिकारसे परे हैं, फिर भी वैष्णव- सिद्धान्तोंसे मैंने यही समझा है कि "Universal language of love is peace, devotion and respect." श्रीलमहाराजजी इन सब गुणोंके मूर्तिमान् प्रतीक हैं। उनके जैसे अतुलनीय गुणसम्पन्न व्यक्तित्वके चरणोंके पास बैठकर मैं अपनेको अत्यन्त सौभाग्यवान् मानता हूँ।

सर्वशेष वक्ता Mr. Susan Halliday ने कहा—आजकी महती सभामें आकर अपनेको अत्यन्त सौभाग्यवान मान रहा हूँ तथा श्रीलमहाराजजीको अशेष धन्यवाद ज्ञापन कर रहा हूँ। मैं सर्वदा धर्मसभाओंमें उपस्थित होना पसन्द करता हूँ, क्योंकि विभिन्न धर्मावलम्बियोंके कहीं एकत्रित होनेसे शान्ति- वार्त्ताकी सूचना मिलती रहती है।

अतिथियोंके भाषणोंके उपरान्त श्रीलमहाराज जीने सभीको माल्य प्रदान किया तथा श्रीलविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरजीकी टीका- सम्वलित श्रीमद्भगवद्गीता और जैवधर्म देकर उनलोगोंकी अभ्यर्थना की। श्रीलमहाराजजीने कहा—बर्मिघम जैसी महानगरीमें इस प्रकारकी बृहत् धर्मसभाका आयोजन होनेसे मैं आज अत्यन्त आनन्दित हूँ। मेरे आनन्दका और भी कारण है कि इस महानगरीके मेयर स्वयं यहाँ उपस्थित हुए हैं। मेयरजीकी उपस्थितिका अर्थ बर्मिघमके सभी नागरिकोंकी उपस्थिति। भारतके कन्सुलेट जनरलकी उपस्थितिका अर्थ है इस महानगरीके समस्त भारतीयोंकी उपस्थिति एवं ओमप्रकाश शर्माजीकी उपस्थिति समस्त सनातन धर्मावलम्बियोंकी उपस्थितिको सूचित करती है। यहाँ खृष्टान, मुस्लिम और सिख प्रतिनिधियोंकी उपस्थिति अधिक आनन्ददायक है।

'Universal unity in diversity' सुनकर अत्यन्त आनन्दित हुआ हूँ। मैं विशेषरूपसे सप्राजी और शर्माजीकी प्रशंसा करता हूँ। मैं समझता हूँ कि शर्माजीने भारतीय वाङ्मय वेदके सम्बन्धमें कुछ अनुशीलन किया है। यह बात सत्य है कि

वेदमें कहीं भी 'हिन्दु' शब्दका उल्लेख नहीं है। शाश्वतधर्म एक है, दो नहीं है। अनेक सोच सकते हैं या आपलोगोंमेंसे भी कोई यह सोच सकते हैं कि हमलोग सङ्कीर्णमना हैं। किन्तु वास्तवमें यह सत्य नहीं है। हम विश्वास रखते हैं कि हम सभी एक भगवानके परिवारभुक्त हैं। अनेक सोचते हैं कि केवलमात्र मनुष्य ही भगवानकी सन्तान है, अन्यान्य जीव, वृक्ष आदि नहीं। हम केवल मनुष्योंको प्रेम करेंगे, दूसरोंको नहीं—यह विचार सम्पूर्ण भ्रान्त है। पशुपक्षी आदि सभी भगवानकी सन्तान हैं, सभीको प्रेम करना होगा। वेदकी भाँति कुरान तथा बाइबलमें भी अनेक सदुपदेश हैं। हमलोगोंने अन्ध स्वार्थके लिए उन समस्त सदुपदेशोंकी अवहेलना की है। पहले किसी वक्ताने बताया कि God is love and love is God. वेदमें बताया गया है—***''सर्वे सुखिनो भवन्तु''*** अर्थात् सभी सुखी हों। केवलमात्र मनुष्य ही सुखी हो, ऐसा उल्लेख नहीं है। सृष्टिके सभी प्राणियोंके सुखके लिए उल्लेख है।

हम सभी एक भगवानकी सन्तान हैं, तो फिर भी आज आपसमें इतना मतान्तर क्यों? हम वास्तव Love and affection का अर्थ न जानकर परस्पर कलह कर रहे हैं। इसीलिए वेदमें कहा गया है कि ***सर्वे सुखिनो भवन्तु***। भगवान् एक हैं, दो नहीं हैं। ब्रह्म, God, अल्ला एक ही हैं, केवल विभिन्न संस्कृति तथा भाषाके अनुसार भिन्न नाम है। भगवानको विभिन्न नामोंमें अभिहित करनेपर भी सभी धर्मशास्त्रोंकी शिक्षाएँ मूलतः समान हैं, किन्तु भजनके विषयमें आकाश-पाताल पार्थक्य है। एकमात्र वेद ही पूर्ण है। अनेक यह सोच सकते हैं कि मैं वेदका उल्लेखकर सङ्कीर्णताका परिचय दे रहा हूँ। ऐसा जो सोचते हैं, वे नितान्त साम्प्रदायिक हैं, उनकी धारणा सम्पूर्ण भ्रान्त है। विश्वकी सभी भाषाओंकी जननी या उत्पत्तिस्थल है संस्कृत भाषा। संस्कृत भाषाके अनुसार वेदका अर्थ है ज्ञान या knowledge. कौन-सा ज्ञान? मैं कौन हूँ, भगवान् कौन हैं, भगवानके साथ मेरा क्या सम्बन्ध है, इस जगतमें हम किसलिए इतना दुःखकष्ट भोग रहे हैं, इस दुःखसे परित्राणका उपाय क्या है, यह जड़ शरीर क्या है—इनका ज्ञान। हम यह जड़ शरीर नहीं हैं, आत्मा हैं जो कि भगवानका अंश है। जीवजगत और जड़जगत सभी भगवानकी शक्तिकी परिणति है। हम भगवानके अंश होनेपर भी भगवानको भूल जानेके कारण निरन्तर दुःख भोग रहे हैं। भगवानका भजन करनेसे सभी निरन्तर सुखी रह सकते हैं। ये सब ज्ञान वेदमें मिलते हैं। दूसरे किसी भी देशोंके धर्मशास्त्रोंमें इस समस्त ज्ञानके विषयमें उल्लेख न होनेके कारण केवलमात्र भारतीय वाङ्मयको ही वेद कहा जाता है।

हम सब एक ही भगवानकी सन्तान हैं, फिर भी हम पृथ्वीको विभक्तकर बोलते हैं कि यह हमारा देश है, वह तुम्हारा देश है। तुम हमारे देशमें नहीं आ सकते हो। सूर्य एक, चन्द्र एक, वायु एक, इसलिए हम सभी एक ही भगवानकी सन्तान हैं। इसका नाम है—Unity in diversity, diversity in unity. जगतके अधिकांश ही अर्थलोभी और पदलोभी होकर दिन बीता रहे हैं। वे सोचते हैं इस पद (position) या अर्थद्वारा हम सुखी होंगे, किन्तु यह धारणा सम्पूर्ण भ्रान्त है। आज हमलोग जो पद, अर्थ, सौन्दर्य तथा यौवनके मदमें मत्त होकर धराको सरा मानते हैं, पचास-साठ सालके बाद ये समस्त मदगर्व कहाँ रहेंगे? लाठीके सहारे बिना चल नहीं पायेंगे, कुछ दिनोंके बाद मरना होगा। जगतके समस्त वैज्ञानिक, चिकित्सक मिलकर भी बुढ़ापा और मृत्युको हटा नहीं पायेंगे। इस जगतमें सारा जीवन हमने जो वस्तुएँ इकट्ठी की है, वे वस्तुएँ भी हमें बचा नहीं सकतीं। यदि वास्तवमें सही रूपसे हम भजन करें, तो केवल भगवान ही हमारी रक्षा कर

सकते हैं। भगवद्भजन व्यतीत केवल अर्थसंग्रहके द्वारा वास्तव सुखप्राप्ति सम्भव नहीं है। इस प्रसङ्गमें उपनिषदके एक उपाख्यानका वर्णन कर रहा हूँ—

प्राचीनकालमें याज्ञवल्क्य नामक एक ऋषि थे। कात्यायनी और मैत्रेयी नामकी उनकी दो पत्नियाँ थीं। महाराज जनकके सभासद् ऋषि याज्ञवल्क्यजीने अपनी पत्नियोंको बुलाकर कहा—"मैं धर्मपथमें रहकर अनेक गोधन तथा सुवर्ण संग्रह किया है। तुम दोनोंको पुत्र भी प्राप्त हुए हैं। अब मैं तुम दोनोंको समस्त धन बाँट देता हूँ। तुमलोग प्रसन्नचित्त होकर मुझे वनमें जाकर भगवद् उपासना करनेके लिए अनुमति प्रदान करो।" कात्यायनीने प्रसन्न होकर तत्क्षणात् अनुमति दे दी। मैत्रेयी बोली—"आपने अपनी पत्नियोंके सङ्गमें रहकर जो पुत्ररत्न, पदमर्यादा तथा धनसम्पत्ति प्राप्त की है, जिसके लिए समस्त जगत अर्थलोभी तथा पदलोभी होकर दिक्भ्रान्त हुआ है, उससे क्या वास्तव सुख लाभ होगा? यदि वह होता, तो आप क्यों उनका परित्यागकर वनमें जा रहे हैं?" यह सुनकर ऋषिवर बोले—"अहो मैत्रेयी! तुम ही मेरी यथार्थ पत्नी हो। तुमने इस प्रकार प्रश्नकर सचमुच मुझे आनन्द प्रदान किया। एकमात्र भगवान ही आनन्दमय हैं। वे ही आनन्दके मूर्त्तविग्रह तथा आनन्दके आश्रय हैं। उनके भजनके अतिरिक्त कोई भी सुखशान्ति प्राप्त नहीं कर सकता। इसलिए शास्त्रमें बताया गया है—***'रसो वै सः', 'भूमैव सुखम्', 'नाल्पे सुखमस्ति'।***

इन भगवानको अनेक लोग निराकार भी मानते हैं। उनकी इस प्रकारकी धारणा भ्रान्त है। निराकार शब्दका सन्धिविच्छेद करनेसे स्पष्ट हो जाता है। निः + आकार = निराकार। 'आकार' मौलिक शब्द तथा 'निः' उपसर्ग मात्र है। निराकार अर्थात् 'निर्गत प्राकृत आकार यस्य सः' अर्थात् जिसका प्राकृत (जड़) आकार नहीं है, जो अप्राकृत (दिव्य) आकारसे युक्त है। वेदादि शास्त्रोंमें इसके अनेक प्रमाण हैं। मैंने बाइबल पढ़ा है, कुरानका अनुवाद भी पढ़ा है। बाइबलमें लिखा गया है—God created man after his own image. भगवानने अपने रूपके अनुसार मनुष्यकी सृष्टि की है। खृष्टान भैया क्या बाइबलके प्रथम अध्यायसे इस वाक्यको हटा सकते हैं? कभी नहीं। कुरानमें भी देखा जाता है—"हन्नालाहा खालाका मेन सुरत हि।" अल्लाने अपने रूपके अनुसार बन्दा अर्थात् मनुष्यकी सृष्टि की है। मुसलमान भैया क्या कुरानसे इस वाक्यको हटा सकते हैं? असम्भव। भगवानसे विमुख होनेके कारण हम दुःख भोग रहे हैं, हमें सुख नहीं मिल रहा है। वास्तव सुख लाभ करनेके लिए भगवानका भजन करना पड़ेगा, प्राणीमात्रसे प्रेम करना पड़ेगा। अनेक लोग सोचते हैं कि जगतकी समस्त वस्तुएँ मनुष्योंके भोगके लिए हैं। सभी वस्तुओंको खानेके लिए भगवानने हमारी सृष्टि नहीं की है। गायको गोमाता बोला जाता है। गोमाता सभीको दूध प्रदान करती है। गायको मारकर खाना तथा गर्भधारिणी माँको काटकर खाना एक ही बात है। श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—

यदा देवेषु वेदेषु गोषु प्रियेषु साधुषु।
धर्मे मयि च विद्वेषः स वा आशु विनश्यति॥

अर्थात् जो देवता, वेद, गौ, ब्राह्मण, साधु, धर्म तथा मुझमें अर्थात् भगवानमें विद्वेषभाव रखता है, वह अवश्य ही शीघ्र विनष्ट हो जाएगा।

कुरानमें कहीं भी गोवधकर भक्षणकी बातका उल्लेख नहीं है। बाइबलके Old Testament में इस प्रकारका वर्णन नहीं है। परवर्तीकालमें रोमान् क्याथलिक लोगोंने मूल बाइबलमें बहुत कुछ परिवर्तन कर दिया है। जैसे कि Aramic भाषामें Brosimus शब्द बीस बारसे भी अधिक व्यवहृत हुआ है। Brosimus अर्थात् food. किन्तु वर्तमान Brosimus—Food के बदलेमें meat

अर्थ किया गया है। इस प्रकार अनेक उदाहरण है। वर्तमान कुछ आधुनिक मुसलमान भी सोचते हैं कि जो मुसलमान धर्ममें विश्वास नहीं करेंगे, उनको मारकर फेंकना पड़ेगा। मुसलमान ही एकमात्र धार्मिक हैं, दूसरे सब 'काफेर'। इस प्रकारकी धारणा भी सम्पूर्ण भ्रान्त है। इस प्रकारकी धारणाका परित्यागकर सभीको यथायोग्य प्रेम करना पड़ेगा, तभी विश्वशान्ति सम्भव है।

अन्तमें श्रीलमहाराजजीने श्रीपाद कृष्णदास प्रभुको कीर्तन करनेके लिए आदेश दिया। कृष्णदास प्रभुने अपने स्वभावसुलभ कण्ठमें कीर्तनके द्वारा सभीको खूब नचाया। कीर्तनके बाद जयध्वनिके साथ सभाकी समाप्तिकी घोषणा हुई। सभी वक्ताओंने महाप्रसाद सेवनकर श्रीलमहाराजजी तथा सभाका गुणगान करते-करते प्रस्थान किया।

जर्मनी और अष्ट्रियामें 'श्रीगुण्डिचा मन्दिर मार्जन तथा उसका रहस्य, श्रीरथयात्रा एवं श्रीहेरापञ्चमी' के प्रसङ्गमें श्रीलमहाराजजीने आलोचना की। स्पेनमें प्रचारकार्य समाप्तकर उन्होंने पूर्व निर्द्धारित प्रचारसूचीके अनुसार बर्लिन, फ्रान्कफर्ट तथा विएनामें प्रचारकर ९-७-२००३ को भारतमें प्रत्यावर्तन किया। *(निजस्व संवाददाता)*

श्रीजन्माष्टमी महामहोत्सव

श्रीकृष्ण जन्माष्टमीकी पूर्व सन्ध्यामें मथुराके श्रीकेशवजी गोड़ीय मठसे निकाली गई शोभायात्रामें स्थानीय और विदेशी हजारों भक्त प्रेम और भक्तिमें डूबते हुए संकीर्त्तनकी ध्वनिके साथ थिरक रहे थे। इस शोभायात्रामें सबसे आगे हाथीकी सवारी पर आचार्य केशरी नित्यलीलाप्रविष्ट श्रीलभक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीका पट विग्रह विराजित था, उसके पीछे दो घोड़े सुशोभित होकर चल रहे थे, जिनके ऊपर श्रीकृष्ण-बलरामका स्वरूप विराजमान था, इसके पीछे सुन्दर रेगिस्तानका जहाज अर्थात ऊँटपर सुन्दर वाद्य-नगाड़ा बज रहा था, इसके पीछे बहुत ही सुन्दर बैण्ड बाजोंकी मधुर ध्वनि बिखर रही थी। इस ध्वनि पर अनेकों भक्त थिरकनेसे अपने आपको रोक नहीं सके और नृत्य करते चल रहे थे। इसके पीछे माँ यशोदा मटकीमें रई चलाकर दही बिलोकर माखन निकाल रही थी। झांकीमें माखन खाते हुए बालस्वरूप श्रीकृष्णकी मुद्रा भावपूर्ण प्रतीत हो रही थी। इसके पीछे विश्वके सैकड़ों भक्त नृत्य और कीर्त्तन करते हुए चल रहे थे। श्रीराधा-कृष्णके श्रद्धालुओंका मनोरम समागम इतना विराट था कि मार्ग शोभायात्राके कारण बहुत समयके लिए अवरुद्ध हो गया था। पीछे पीछे सेवा कुञ्जकी एक मनोरम झांकी चल रही थी, जिसमें भगवान श्रीकृष्ण श्रीमतिराधिकाजीके चरणोंकी सेवा कर रहे थे, इन झांकियोंके मध्यमें मठके ब्रह्मचारी एवं संन्यासी और अन्य भक्त, एवं महिला-भक्तोंकी टोलियाँ कीर्त्तन करते हुए चल रही थीं, जो श्रद्धालु दर्शकोंका ध्यान आकर्षित कर रही थी। शोभायात्राके बीचमें सुन्दर सुशोभित बग्गी पर विराजमान होकर मठके आचार्य श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज मार्गके दोनों ओर खड़े हुए लोगोंपर कृपाशीर्वादकी वृष्टि कर रहे थे। शोभायात्रामें भगवान श्रीराधा-कृष्ण और चैतन्यमहाप्रभुके विजय विग्रह एक सुन्दर रथमें सुशोभित हो रहे थे।

यह शोभायात्रा नगरमें तिलकद्वार, कोतवाली रोड, भरतपुर दरवाजा, घीयामण्डी डोरीबाजार, स्वामीघाट, छत्ता बाजार, विश्रामघाटसे भ्रमण करती हुई श्रीकेशवजी गोड़ीय मठ पहुँची। देश-देशान्तरसे आये हुए श्रद्धालु इस अवसरपर श्रीकृष्ण जन्माष्टमी महोत्सवमें अपनी उपस्थितिको धन्य मान रहे थे। मठमें लौटनेपर यात्रामें उपस्थित सभी भक्तोंने प्रसाद ग्रहण किया।

२० अगस्त, जन्माष्टमीके दिन मठमें प्रातः कालसे ही श्रीलमहाराजजीके आनुगत्यमें महाजन पदावलियाँ, नन्दनन्दनाष्टक, मङ्गलगीत आदिका सुमधुर कीर्तन किया गया तथा श्रीलमहाराजजीने प्रत्येक कीर्तनकी व्याखा भी की। विभिन्न वैष्णवोंने दिनभर श्रीमद्भागवतका पाठ किया। रात्रि ८ से १२ बजे तक श्रीलमहाराजजीकी उपस्थितिमें आकाशवाणी व दूरदर्शनके बड़े बड़े कलाकारोंने भक्तिमूलक संगीतका गायनकर वातावरणको और भी सुमधुर कर दिया था।

अन्तमें श्रीलमहाराजजीने कृष्णजन्माष्टमीके सम्बन्धमें बताया कि आज यह उत्सव घर-घरमें मनाकर लोग अपने जीवनको सफल कर रहे हैं। हम अपने शरीरको वस्त्रोंके समान समझें। इस शरीरमें बोलनेवाली आत्मा है, बुलवानेवाला परमब्रह्म श्रीकृष्ण हैं। वे ब्रह्माण्ड नायक कौन हैं? जिसका आज जन्म है, जो मक्खनके पीछे दौड़ता है, गोपियोंकी छाछ पर नाचता है और कभी उनके पईयाँ पड़ता है।

अहोभाग्यमहोभाग्यं नन्दगोपव्रजौकसाम्।
यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्मसनातनम्॥

शङ्कर, ब्रह्मा आदि समाधिमें भी इनके चरणोंके दर्शन नहीं कर पाते जो राम, नृसिंह, वामन सभी अवतारोंके अवतारी है। ये वही कृष्ण हैं जो गोपियोंका शृङ्गार करते हैं, जो राधिकाजीके केशोंका शृङ्गार करते हैं। ये वही केशव हैं, जिनकी उपासना शङ्कर, देवी दुर्गा आदि भी करते हैं। जो शङ्करको स्वयं भगवान मानकर रावण और कंसकी भाँति उनकी उपासना करते हैं, रावण और कंसकी भाँति उनका ध्वंस ही होगा। रावणने सीता हरण किया, परिणामस्वरूप उसके घरमें दीया बत्ती देनेके लिए कोई नहीं बचा। कंस रंगेश्वरकी स्थापनाकर उनकी पूजा करता था। जब समय आया तो शंकरजीने उनकी तनिक भी सहायता नहीं की। श्रीकृष्णने बिना कोई अस्त्र-शस्त्रके कंसका वध कर दिया। पूतना रुधिर पीती थी, छोटे बच्चोंको खा लेती थी। उसका भी वधकर उसे धात्रीकी गति दे दी। जो पवित्र नहीं वह पूतना है। आज संसारमें सर्वत्र अपवित्रता फैली हुई है। विश्वके समस्त सभ्य राष्ट्रोंमें जिस नारीने सात पति नहीं किये वह नारी ही क्या, इसी प्रकार जिस पुरुषने सात नारियोंसे शादी नहीं की, वह पुरुष ही क्या? समाजके ऐसे लोगोंको धिक्कार है।

कृष्ण विश्वके नियन्ता हैं, यशोदा माँ उनको ऊखलमें बाँधती हैं और वे विवश होकर रोते हैं। उन्हीं कृष्ण-कन्हैयाका आज जन्म है। जीवात्मा भगवानका अंश है हम भगवानके अंश व दास-दासी हैं। परन्तु उन्हें भूलनेके कारण हम इस जगतमें आकर कभी राजा, कभी रङ्क, कभी पशु-पक्षी इत्यादि योनियोंमें भ्रमण करते हुए कष्ट पा रहे हैं। यदि कोई ब्रह्मा भी हो जाए, तो भी वह सुखी नहीं हो सकता।

आज विश्वका चौधरी अमेरिकाका राष्ट्रपति बुश भी सुखी नहीं है, वह आतङ्कसे भयभीत है। आज बड़े बड़े वैज्ञानिक आत्माको क्या एक क्षणके लिए रोक सकते है? वे एक क्षणके लिए भी मृत्युको नहीं रोक सकते हैं।

श्रीलमहाराजजीने अपने प्रवचनमें आगे बतलाया कि मनुष्य जन्ममें कृष्णका भजन नहीं किया तो कोई सुखी नहीं हो सकता है। माता, पिता तथा देवताओंकी सेवा करनेवाले कभी सुखी नहीं होते। माता-पिताके माता-पिता कृष्ण—यशोदा मैया और नन्दबाबाके लालाका भजन हमने नहीं किया तो काल हमको डस लेगा। यह भली प्रकार समझ लेना चाहिए। इसीलिए हम सबको निमन्त्रित करते हैं—आओ और कृष्णका लीलाचरित्र श्रवण करो। इसलिए कृष्ण अपनी कथाओंको जाते समय छोड़ गए। जो किसी प्रकारसे भागवतका श्रवण, कीर्त्तन और चिन्तन करेंगे, वे संसारसे उठकर भगवानके नित्यधाममें चले जायेंगे और जो ऐसा नहीं करेंगे

वे चाहे कितना ही धर्म कर्म करें, उनका कभी भी उद्धार नहीं हो सकता है। हरिनामके बिना उनकी गति नहीं है। भगवानने जानबूझकर यह जन्म लिया। सब लोग इनके जन्ममें आयें और कीर्त्तन करें। भगवानके इस जन्माष्टमीके उत्सवमें किसीका एक दाना भी पहुँच गया तो लक्ष्मी भले ही भीख माँगे, पर वह भक्त भीख नहीं माँगेगा। महाराजजीने उपस्थित भक्तोंके लिए कृष्णसे प्रार्थना की कि वे जन्म मरणसे मुक्त हो जाएँ, पुनः उन्हें माताका दूध न पीना पड़े, वे अपने स्वरूपमें प्रतिष्ठित होकर भजन करें।

श्रीलमहाराजजीने अन्तमें बतलाया कि भगवानकी लीला-कथाओंको श्रवण करना चाहिए, कृष्णके नाममें शक्ति है। चलते-फिरते, उठते बैठते, सोते जागते यह नाम करें। तन, मन, वचन और बिना स्वार्थके ज्ञान-वैराग्य, योग आदिसे दूर रहकर जो कृष्णकी सेवा करते है और भक्तोंके आनुगत्यमें भजन करते हैं, वे ही श्रेष्ठ व्यक्ति हैं।

मध्यरात्रिको भगवान श्रीकृष्णका महाभिषेक किया गया। उसका दर्शनकर उपस्थित हजारों भक्तोंने अपने जीवनको धन्य किया।

२१ अगस्तको मठके प्राङ्गणमें प्रातःकालसे ही नन्दोत्सव धूमधामसे मनाया गया। विभिन्न भक्तोंने सुन्दर-सुन्दर बधाइयाँ गाकर वातावरणको रसमय बना दिया। तत्पश्चात् लगभग पाँच-सात हजार लोगोंने सुस्वादु महाप्रसाद ग्रहणकर अपनेको धन्य किया।

जन्माष्टमीके उपलक्ष्यमें मठ नाट्यमन्दिरमें तीन दिनतक श्रीकृष्णतत्त्वके विषयमें विभिन्न वैष्णवों द्वारा चर्चा की गयी।

श्रीश्रीराधाष्टमी

४ सितम्बर, गुरुवारको श्रीलमहाराजजीके आनुगत्यमें श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें श्रीराधाष्टमी उत्सव मनाया गया। प्रातःकाल गौड़ीय आचार्यों द्वारा लिखित श्रीराधाजीके रूप, गुण आदि विषयक पदावलियों एवं अष्टकोंका गान किया गया। इस अवसरपर कवि श्रीजयदेव गोस्वामी रचित श्रीगीतगोविन्द काव्यके श्रीलमहाराजजी द्वारा सम्पादित हिन्दी संस्करणका उन्मोचन किया गया। श्रीलमहाराजजीने अपने गुरुदेव नित्यलीलाप्रविष्ट श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीके करकमलोंमें इस महान ग्रन्थको अर्पण किया। श्रीराधाजीके प्राकट्य सम्बन्धी हरिकथाके उपरान्त श्रीराधाकृष्ण युगल विग्रहोंका अभिषेक किया गया। उसके बाद मथुरा नगरके विभिन्न क्षेत्रोंसे श्रद्धालु भक्त संकीर्तनके साथ श्रीराधाजीके लिए उपहार लेकर आये। श्रीलमहाराजजीने उनका स्वागत किया। तत्पश्चात् अत्यधिक उल्लासके साथ बधाई कीर्तन गाये गये। सायंकाल विदेशी भक्तोंने राधाजीके प्राकट्य सम्बन्धी नृत्यनाटिका प्रस्तुत की। ब्रजके बालकलाकारोंने भी श्रीराधाकृष्णकी मधुर लीलाओंका मंचन किया। दिनभर हजारों लोगोंको महाप्रसाद वितरित किया गया।

जम्मुमें श्रीमन्महाप्रभुकी वाणीका प्रचार

नित्यलीलाप्रविष्ट ॐविष्णुपाद अष्टोत्तरशत श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर प्रभुपादके अन्तरङ्ग प्रियपार्षद नित्यलीलाप्रविष्ट ॐविष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीके अन्तरङ्ग श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजी श्रीश्रीराधाष्टमी उत्सवके उपरान्त जम्मुमें श्रीमन्महाप्रभु द्वारा प्रचारित तथा आचरित विशुद्ध भक्तिकी शिक्षाको जनसाधारणके वास्तविक कल्याण हेतु ९-९-२००३ को प्रचार करनेके लिए जम्मु पधारे। श्रीलमहाराजजीके पदार्पणसे दो दिन पहले

श्रीपाद भक्तिवेदान्त तीर्थ महाराजजीने लगभग पचास भक्तों सहित जम्मुमें आकर अपनी मधुर हरिकथा तथा देशी-विदेशी भक्तोंके द्वारा हरिनाम-संकीर्त्तन कराकर जम्मुवासियोंको मुग्ध कर दिया। भक्तोंके ऐसे कीर्त्तन तथा उद्दण्ड नृत्य आदिसे प्रभावित होकर जम्मुके लगभग सभी प्रसिद्ध समाचार पत्र (अमर उजाला, दैनिक जागरण, पंजाब केशरी, Kashmir Times, Daily Excelisor, The Times of India, Views Today) के सम्वाददाता इन सभी भक्तोंको एकत्रितकर भगवान् श्रीहरिके मङ्गलमय नामोंका उच्चारण करनेकी प्रेरणा देनेवाले भगवान्के किसी निजजनसे मिलनेके लिए लालायित हो उठे। जैसे ही श्रीलमहाराजजी जम्मु हवाई अड्डेपर उतरे, लगभग दो सौसे भी अधिक भक्तों सहित जम्मुके सभी प्रमुख सम्वाददाताओंने श्रीलमहाराजजीका स्वागत किया तथा उनसे एक Press Conference रखनेकी प्रार्थना की। श्रीलमहाराजजीने सहर्ष ही उनके निवेदनको स्वीकार कर लिया। १०.९.२००३ को हुई उसी कांफ्रेन्सके कुछ अंश नीचे वर्णन किए जा रहे है।

Press Conference के प्रारम्भमें ही श्रीलमहाराजजीने सभी सम्वाददाताओंको बताया कि सम्पूर्ण विश्वके समस्त राष्ट्रोंसे बड़े-बड़े राजनीतिज्ञ, समाजकर्त्ता, डॉक्टर, इन्जीनियर इत्यादि आकर हमसे श्रीमद्भगवद्गीता, श्रीमद्भागवत, वेद, पुराण, उपनिषद, विज्ञान आदिसे सम्बन्धित अनेक प्रश्न करते हैं, तथा सर्वाङ्गसुन्दर समाधानको सुनकर अत्यधिक प्रसन्न होते हैं। श्रीलमहाराजजीने बताया कि विश्वके अधिकतर धार्मिक व्यक्ति वेदोंकी ***'अंहिसा परमो धर्म'*** उक्तिको स्वीकार तो करते हैं, परन्तु पूर्ण रूपसे नहीं। वे वेदोंके इस वाक्यको केवल मनुष्य जातिके ऊपर लागु करते हैं, दूसरे-दूसरे प्राणी, कीट-पतङ्ग, पशु-पक्षी इत्यादिके लिए नहीं करते। उनकी यह उपलब्धि नहीं हुई कि मनुष्य, पशु, पक्षी इत्यादि सभीमें ही जीवन है तथा उनके प्रति की गई हिंसा भी अनुचित है और उनको अपने इस बुरे कर्मके लिए फल भोगना पड़ेगा।

श्रीलमहाराजजीने एक और बात बताई कि हमारे भारतमें साधारणतः प्रायः सभी छोटे-बड़े ***''अतिथि-देवो भवः। मातृ देवो भवः। पितृ देवो भवः।''*** इत्यादि उक्तियोंको जानते है कि अतिथि, माता, पिता इत्यादि देवताके समान हैं। परन्तु प्रश्न यह उठता है कि इस उक्तिको जाननेपर भी कितने ऐसे व्यक्ति हैं, जो इसका पालन करते हैं। समाजकी परिस्थिति दिन प्रतिदिन बिगड़ती जा रही है। गीता, उपनिषद, भागवत आदिके उपदेशोंको पूरी तरहसे अनदेखा किया जा रहा है। यह जानते हुए, समझते हुए भी कि हम शरीर नहीं हैं, यह शरीर तो हाड़, माँस, मज्जा, पेशाब आदि की थैली है, फिर भी मूर्ख व्यक्तिकी भाँति सभी कार्य अपने शरीरकी प्रसन्नता हेतु कर रहे हैं। ऐसे व्यक्ति जो 'मैं' को ही नहीं जानते, समझनेकी चेष्टा पर्यन्त भी नहीं करते वे लोग वास्तवमें कुछ भी नहीं समझ सकते।

यदि सभी लोग गीता आदि शास्त्रोंके उपदेशोंको स्वीकार करें, सभी प्राणियोंमें आत्माकी उपस्थितिको स्वीकार करें, भगवान्के विभिन्न रूप राम, कृष्ण, अल्लाह, बुद्ध, ख्रीष्ट इत्यादि सभीको एक ही भगवद् तत्त्वके रूपमें देखें, तब तो कश्मीरकी समस्या मिनटोंमें ही सुलझ जायेगी। वास्तवमें धर्मकी तह तक न पहुँच पानेके कारण ही अनभिज्ञ धर्मनेता अपने अपने अनुयायियोंको हिन्दु, मुस्लिम, सिख, ईसाई आदिमें भेद करनेकी शिक्षा देते हैं। जिससे वे स्वयं भी दुःखी होते हैं और दूसरोंको भी दूःखी कर देते हैं।

परन्तु जो व्यक्ति आत्मधर्मको स्वीकार करता है, वह कभी भी भय नहीं करता और उसके सम्पर्कमें आनेवाले सभी व्यक्ति भी अभयको प्राप्त करते हैं। श्रीलमहाराजजीने परीक्षित महाराजजीका

उदाहरण देते हुए कहा कि श्रीलशुकदेव गोस्वामीसे हरिकथा सुननेके उपरान्त श्रील परीक्षित महाराज तक्षकके भयसे मुक्त हो गये, क्योंकि वे यह समझ चुके थे कि आत्मा अमर-अजर है।

इस तरहके दिव्य ज्ञानको यदि हिन्दु- मुसलमान इत्यादि सभी समझें, तो फिर कोई समस्या नहीं रह जायेगी।

श्रीलमहाराजजीने बताया कि सनातन धर्मके अतिरिक्त दूसरे किसी भी धर्मके लोग भगवान्‌के रूप, गुण आदिको स्वीकार नहीं करते। यद्यपि उनके ग्रन्थोंमें भगवान्‌के रूपको स्वीकार किया गया है, परन्तु वे अपने धर्मके ग्रन्थोंको भी गम्भीर रूपसे अध्ययन नहीं करते। नहीं तो क्या बाइबलमें लिखे 'God created man after His own image' से उनको इतनी साधारण-सी बात भी नहीं समझ आती कि भगवान्‌ने अपने रूपके अनुरूप ही मनुष्योंको बनाया है। कुरान शरीफमें भी इसके प्रमाण मिलते हैं। अपने आपको हिन्दु, सनातन धर्मावलम्बी होनेका अभिमान करनेवाले कुछ लोग भी भगवानके रूप तथा गुण इत्यादिको स्वीकार नहीं करते। कितनी लज्जाकी बात है कि वेद, पुराण, बाइबल तथा कुरान शरीफ इत्यादि ग्रन्थोंमें स्पष्ट प्रमाण होनेपर भी वे व्यर्थ ही वितण्डा उपस्थित करते हैं।

सभी धर्मोंका मूल एक ही है कि जीवात्मा अजर-अमर है। जीवात्माएँ भगवान्‌के अंश हैं। श्रीलमहाराजजीने बताया कि यदि आप अपना कर्म ठीकसे नहीं करते हैं, तो आपको फिरसे गधा-घोड़ा इत्यादि बनना होगा।

श्रीलमहाराजजीने बताया कि साधारण लोग अजकल जिस शारीरिक कसरत, व्यायाम इत्यादिको योग कहते हैं वह उचित नहीं है। गणितके अनुसार योग शब्दका अर्थ जोड़ना है, जैसे १ + १ = २। इसी प्रकार शास्त्रोंमें कहे गये योगका वास्तविक अर्थ जीवात्मा तथा परमात्माके योगसे है। यदि सुदुर्लभ मनुष्य जन्म प्राप्त करके भी यदि किसीने स्वाभाविक सेवा वृत्ति द्वारा भगवान्‌के साथ योग नहीं किया तो उसका जीवन व्यर्थ है। इस योगका लक्षण हरि, गुरु, वैष्णवोंके श्रीचरणोंमें आत्म-समर्पण है।

श्रीलमहाराजजीके मुखसे शास्त्रोंकी सारस्वरूप वाणीका श्रवण करनेके उपरान्त कुछ संवाददाताओंने श्रीलमहाराजजीसे कुछ प्रश्न किये, जिसका संक्षिप्त वर्णन यहाँपर प्रदान किया जा रहा है।

संवाददाता—जगतके समस्त प्राणियोंको अपने वास्तविक कल्याणके लिए क्या करना चाहिए?

श्रीलमहाराजजी—हमलोग अपने-अपने कर्मोंका फल इस संसाररूपी कारागारमें भोग रहे हैं। इस कारागारमें आसक्ति, मैं और मेरापन, इन्द्रिय तृप्तिके लिए समस्त कार्य इत्यादि बेड़ियाँ हैं। अपने परम कल्याणके लिए हमें शुद्ध गुरु, वैष्णवोंके आनुगत्यमें भगवान् श्रीहरिके परम पवित्र नाम, रूप, गुण, लीला इत्यादिका श्रवण तथा कीर्त्तन करना चाहिए। यही एकमात्र उपाय है, जिसके द्वारा हमारी तुच्छ आसक्ति तथा भोगोंके प्रति लालसा दूर हो सकती है और हम परमानन्दको प्राप्त कर सकते हैं।

संवाददाता—आजकल भारतमें अनेक प्रकारके साधु, गुरु पाये जाते हैं? ऐसेमें शुद्ध गुरुकी पहचान कैसे की जाए?

श्रीलमहाराजजी—शास्त्रोंमें बताया गया है कि '***सम्प्रदायविहीना ये मन्त्रास्ते विफला मता।***' हम गुरु इसलिए धारण करते हैं कि अज्ञानरूपी अन्धकारसे छूटकर ज्ञानरूपी प्रकाशको प्राप्त कर सकें। उस व्यक्तिका गुरु धारण करना तथा उनसे मन्त्र लेना निष्फल हो जाता है, जो कलियुगमें प्रमाणिक चार सम्प्रदायोंके गुरुओंसे दीक्षा, मन्त्र इत्यादि स्वीकार नहीं करता। इसलिए सर्वप्रथम यह देखना चाहिए कि गुरुजीकी गुरु-परम्परा क्या है। उनका भगवानमें विशेष अनुराग तथा ससांरसे विरक्ति होनी चाहिए।

यद्यपि इस विषयमें अनेक गूढ़ सिद्धान्त हैं, तथापि हम अभी गुरुके कुछ तटस्थ लक्षणोंको ही बता रहे हैं कि वह सम्पूर्ण रूपसे संसारके भोगोंसे विरक्त होना चाहिए, शिष्योंके सब प्रकारके संशयोंका छेदन करनेवाला होना चाहिए, शान्त होना चाहिए, अथाह ज्ञानको जाननेवाला होना चाहिए।

संवाददाता—कृष्ण भगवद्गीतामें कहते हैं कि मैं भगवान् हूँ। क्या कोई और भगवान् नहीं है?

श्रीलमहाराजजी—तुम्हें वैज्ञानिकों पर विश्वास है, गणित पर विश्वास है, परन्तु क्या कृष्ण पर विश्वास नहीं है। सभी शास्त्रों (वेद, पुराण, उपनिषद, भगवद्गीता, भागवतम् इत्यादि) में ही उन्हें स्वयं भगवान्के रूपमें स्वीकार किया गया है।

संवाददाता—यदि कृष्ण स्वयं भगवान् हैं, तो फिर वह कार्य जो कि साधारणतः नीतिशास्त्रोंमें निषेध हैं, उस छल-कपट आदिको क्यों करते हैं?

श्रीलमहाराजजी—मैं इस प्रश्नका उत्तर एक सरल उदाहरण देकर समझा रहा हूँ कि जैसे एक मैयाने साँपको फल खाते हुए देखा, थोड़ी देर बाद सर्पके चले जानेपर उसका बालक उस फलको खानेकी जिद्द करने लगा। जब मैयाके बहुत अधिक समझाने पर भी नहीं समझता, तो यदि मैया कुछ बहाना करके जैसे-तैसे उस बालकको वह फल नहीं खानेके लिए मना लेती है, तो क्या आप कहेंगे कि उस मैयाने छल किया? या फिर अपने बालक पर दया की? इसी प्रकार भगवान् कृष्ण द्वारा किया गया छल भी केवल ऊपरसे दिखाई देता है, परन्तु वास्तवमें इसीका नाम ही दया है। भगवानका ऐसा शासन भी प्रीतिका ही अंश है।

संवाददाता—आपका मठ समाजके लिए क्या कर रहा है?

श्रीलमहाराजजी—हमारा मठ हिन्दु, मुस्लिम, सिख, ईसाई सबको जोड़नेका कार्य कर रहा है। विश्वमें और कोई भी ऐसा नहीं कर रहा है। हम सबको आत्म-तत्त्वकी शिक्षा देकर, गौमांस इत्यादि अपवित्र वस्तुओं तथा नशा, सट्टेबाजी इत्यादिसे छुड़ाकर शुद्ध बना रहे हैं। लोगोंको सच्चरित्र होनेकी शिक्षा दे रहे हैं। हमारे इन उपदेशोंको देश-विदशके अनेक धर्मोंके लोग स्वयं पालन करके अन्यान्य स्थानोंपर प्रचार कर रहे हैं। इसीसे ही वास्तवमें शान्ति तथा खुशहाली होगी।

हम लोगोंको शिक्षा दे रहे हैं कि आगसे आग नहीं बुझती। यदि कोई आपका अपमान भी करता है, तो भी उसको सम्मान दो। कोई यदि तुम्हारी बुराई करता है तो भी तुम उसके कल्याणकी ही चिन्ता करो। महामायाके दुर्गसे यदि किसी एक जीवको भी भगवान्की ओर ले जाया जा सके, तभी वह वास्तविक दया है, और हमारा मठ यही कर रहा है।

संवाददाता—श्रद्धा तथा अन्ध-विश्वासमें क्या अन्तर है?

श्रीलमहाराजजी—अन्धविश्वास अर्थात् अन्धा होकर विश्वास करना, समझना नहीं। जैसे किसी व्यक्तिने आपसे कहा कि तुम्हारा कान कौवा ले जा रहा है, तो आपने बिना अपने कानको हाथ लगाये कौवेके पीछे दौड़ना शुरु कर दिया, इसीका नाम अन्धविश्वास है।

श्रद्धा—दृढ़ विश्वासका नाम ही श्रद्धा है। अनुभव करके आदर तथा प्रीतिपूर्वक जो होता है, उसको श्रद्धा कहते हैं।

संवाददाता—पाश्चात्य देशोंकी नकल भारतको कहाँ ले जायेगी?

श्रीलमहाराजजी—सम्पूर्ण-विनाशकी ओर ले जायेगी।

संवाददाता—आजकलके वैज्ञानिक शास्त्रोंको mythology (मिथलोजी) मानते हैं आप इस विषयमें कुछ कहना चाहेंगे?

श्रीलमहाराजजी—हम वैज्ञानिकोंकी बातोंको ही mythology मानते हैं। आज एक वैज्ञानिक कितना समय, सम्पत्ति इत्यादि लगाकर एक नियम बनाता है और कुछ समयके बाद कोई दूसरा वैज्ञानिक आकर उसके नियमका खण्डन करके नया सिद्धान्त स्थापित करता है। परन्तु सभी शास्त्रोंमें कही गई एक भी बात किसी युगमें मिथ्या नहीं होती। यदि आजकलका विज्ञान बहुत ही उन्नत है तो फिर मनुष्यको मरनेसे क्यों नहीं बचा सकता? अधिकसे अधिक बीमारियाँ क्यों हो रही हैं? यदि वैज्ञानिकोंकी बातपर इतना ही विश्वास है, श्रद्धा है तो फिर लोग आतङ्कवादियोंको खराब क्यों समझते है? क्या वे वैज्ञानिक नहीं हैं? क्या उनको बहुत अधिक घातक बम् इत्यादि बनाने नहीं आते? तो जगतके लोग हमसे क्या चाहते हैं कि हम उनका भी सम्मान करें?

वास्तवमें जो व्यक्ति स्वयं भ्रम, प्रमाद, विप्रलिप्सा, करणापाटव इत्यादि दोषोंसे दूषित है, वह दूसरेके भ्रमको दूरकर उनको सुखी कैसे बना सकता है? आजकलका विज्ञान अधूरा है। इसलिए वैज्ञानिक कहते हैं कि ऐसा है, ऐसा हो सकता है इत्यादि। हमारे शास्त्रोंमें दिया गया ज्ञान पूर्ण है। वह हमें सभी प्राणियोंसे प्रेम करना सिखाता है। विज्ञानका वास्तविक अर्थ अनुभूतिसम्पन्न ज्ञान है। शास्त्रोंमें दिये गये वास्तविक ज्ञान द्वारा ही हृदय निर्मल हो सकता है, और जगतमें न तो अन्य कोई ज्ञान था, न है और न ही होगा।

संवाददाता—इस जगतका कल्याण कैसे होगा?

श्रीलमहाराजजी—यदि जगतके समस्त प्राणी भक्ति करें, श्रीहरिनाम करें, सभीको भगवान्‌के अंश समझकर उनसे सद्‌भावना रखें, भगवान्‌की शिक्षाओंको हृदयङ्गम करें, तभी जगतका कल्याण सम्भव है।

जैसे यदि एक सरोवरमें छोटा-सा पत्थर फेंका जाये, तो उस पत्थरके कारण सरोवरमें तरङ्गें उठती हैं, तथा वे तरङ्गें सरोवरके चारों किनारोंको जाकर छूती हैं। इसी प्रकार विषयी क्रियाएँ जगतको दूषित करती हैं तथा कीर्त्तन आदि क्रियाएँ जगतको शुद्ध करती हैं।

सितम्बर ९ से लेकर १४ तारीख तक जम्मु शहर स्थित रेहड़ीके हरि-मन्दिर प्राङ्गणमें प्रत्यह अपराह्न ३:३० से लेकर ६:३० बजे तक विराट सभा आयोजित होती थी, जिसमें लगभग पाँच सौसे अधिक श्रोता उपस्थित होकर पारमार्थिक लाभ कमाते थे। प्रारम्भमें वैष्णववृन्द सुस्वरसे संकीर्तनके माध्यमसे समस्त भक्तश्रोताओंको विभोर कर देते थे। तत्पश्चात् श्रीलमहाराजजीके आदेशसे श्रीपाद तीर्थ महाराज सुन्दररूपसे हरिकथा परिवेषण करते थे। अन्तमें प्रपूज्यचरण श्रीलमहाराजजी भक्तितत्त्वके विषयमें गम्भीर चर्चाकर सभीको मुग्ध कर देते थे। इसके अतिरिक्त प्रत्यह प्रातःकाल, मध्याह्न एवं सायंकालको विभिन्न भक्तोंके घरोंमें उद्दण्ड कीर्तनके साथ हरिकथा तथा नगरके विभिन्न मार्गोंपर नगर-संकीर्तन किया गया।

पूज्यपाद श्रीलमहाराजजीने अपने सप्तदिन-व्यापी प्रवचनोंमें भक्तिके तारतम्यके अनुसार भक्तोंके तारतम्यपर प्रकाश डाला।

उनके प्रवचनोंका सार प्रत्यह सम्वादपत्रोंमें प्रकाशित होता था। उनकी अमृतमयी हरिकथा दूरदर्शनमें भी स्थानीय चैनलमें पिछले सालसे प्रसारित होता रहा है। *(निजस्व संवाददाता)*

सत्पुरुषोंके समागमसे मेरे (भगवानके) पराक्रमका यथार्थ ज्ञान करानेवाली तथा हृदय और कानोंको प्रिय लगनेवाली वीर्यवती कथाएँ होती हैं। उनका सेवन करनेसे शीघ्र ही अविद्या निवृत्तिके पथस्वरूप मुझमें (भगवानमें) सबसे पहले श्रद्धा, बादमें रति और अन्तमें प्रेमभक्तिका उदय होता है। (श्रीमद्भागवत)

श्रीश्रीगुरु–गौराङ्गौ–जयतः

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे

वैकुण्ठ–वार्त्तावह

बृहत्–मृदङ्ग

श्रीभागवत–पत्रिका

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः।
ज्ञान वैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना॥

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा॥

आराध्यो भगवान् व्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावनं, रम्या काचिदुपासना व्रजवधूवर्गेण या कल्पिता।
श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान्, श्रीचैतन्य महाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो नः परः॥

एक भागवत बड़ भागवत शास्त्र । आर एक भागवत भक्तिरसपात्र॥
दुई भागवत द्वारा दिया भक्तिरस । ताहाँर हृदये तार प्रेमे हय वश॥

वर्ष ४७ } श्रीगौराब्द ५१७
वि. सं. २०६० कार्तिक मास, सन् २००३, ११ अक्टूबर—८ नवम्बर { संख्या ८

श्रीश्रीमन्महाप्रभोरष्टकम्

(श्रीस्वरूप–चरितामृतम्)

(श्रील विश्वनाथ–चक्रवर्त्ति ठाकुर–विरचितम्)

स्वरूप! भवतो भवत्ययमिति स्मित–स्निग्धया गिरैव रघुनाथमुत्पुलकिगात्रमुल्लासयन्।
रहस्युपदिशन्निज–प्रणय–गूढ–मुद्रां स्वय विराजतु चिराय मे हृदि स गौरचन्द्रः प्रभुः॥१॥

स्वरूप! यह रघुनाथ तुम्हारे अधिकारमें (देखरेखमें) रहे—ऐसे सहास्य–मधुर वाणीसे जिन्होंने रघुनाथदासको आह्लादित और पुलकित–गात्र किया था और जिन्होंने स्वयं ही निर्जनमें रघुनाथदासको अपनी प्रणय–महिमाकी निगूढ़ प्रणालीकी शिक्षा दी थी, वे श्रीमहाप्रभु श्रीगौरचन्द्र मेरे हृदयमें सदा–सर्वदा विराजमान हों॥१॥

स्वरूप! मम हृद्व्रणं वत! विवेद रूपः कथं लिलेख यदयं पठ त्वमपि तालपत्रेऽक्षरम्।
इति प्रणय-वेल्लितं विदधदाशु रूपान्तरं विराजतु चिराय मे हृदि स गौरचन्द्रः प्रभुः॥२॥
स्वरूप! परकीय-सत्प्रवर वस्तु-नाशेच्छतां दधज्जन इह त्वया परिचितो नवेतीक्षयन।
सनातनमुदित्य वस्मितमुखं महाविस्मितं विराजतु चिराय मे हृदि स गौरचन्द्रः प्रभुः॥३॥
स्वरूप! हरिनाम यज्जगदघोषयं तेन किं न वाचयितुमप्यथाशकमिमं शिवानन्दजम्।
इति स्वपद-लेहनैः शिशुमचीकरत् यं कविं विराजतु चिराय मे हृदि स गौरचन्द्रः प्रभुः॥४॥
स्वरूप! रसरीतिरम्बुजदृशां व्रजे भन्यतां घन-प्रणय-मानजा श्रुतियुगं ममोत्कण्ठते।
रमा यदिह मानिनी तदपि लोकयेति ब्रुवन् विराजतु चिराय मे हृदि स गौरचन्द्रः प्रभुः॥५॥
स्वरूप! रस-मन्दिरं भवसि मन्मुदामास्पदं त्वमत्र पुरुषोत्तमे व्रजभुवीव मे वर्तसे।
इति स्वपरिरम्भनैः पुलकिनं व्यधात् तञ्च यो विराजतु चिराय मे हृदि स गौरचन्द्रः प्रभुः॥६॥

'स्वरूप! रूपने मेरी मनोव्यथाको कैसे जान लिया? क्योंकि रूपने मेरे मनोगत भावको लिख रखा है, तुम भी (उसके द्वारा) ताल-पत्र पर लिखे हुए इस श्लोकका पाठ तो करो'—इस प्रकार जो कभी-कभी प्रेम-प्रकाश करते हैं अथवा कभी-कभी आत्मगोपन करते हैं, वे महाप्रभु श्रीगौरचन्द्र मेरे हृदयमें सदा-सर्वदा विराजमान हों॥२॥

स्वरूप! यहाँ पर परकीया नित्यसिद्ध सर्वोत्कृष्ट वस्तुको नष्ट करनेकी अभिलाषा रखनेवाला कोई व्यक्ति विद्यमान है, क्या तुमने उसे पहचान लिया है?"—इस प्रकार जो महाविस्मित और आनन्दसे भरकर हास्ययुक्त और लज्जासे अवनत-मुखवाले श्रीसनातनको सब कुछ दिखलाते, वे महाप्रभु श्रीगौरचन्द्र मेरे हृदयमें सदा-सर्वदा विराजमान हों॥३॥

'स्वरूप! मैंने समग्र जगत्वासियोंको हरिनाम उच्चारण करवाया है, परन्तु इससे मुझे क्या फल मिला? क्योंकि अन्तमें शिवानन्दके इस पुत्रको हरिनाम उच्चारण न करवा सका,' ऐसा कहकर जिन्होंने अपने चरणकी अँगुलीको चुसाकर उस शिशुको कविश्रेष्ठ बना दिया था, वे महाप्रभु श्रीगौरचन्द्र मेरे हृदयमें सदा-सर्वदा विराजमान हों॥४॥

'स्वरूप! ब्रजकी कमल-नयनी गोपियोंकी गाढ़ प्रणय-मान-जनित रस-परिपाटीका वर्णन करो, मेरे कर्णयुगल उसे श्रवण करनेके लिए उत्कण्ठित हो रहे हैं। देखो, इसी प्रणय-मर्यादाको प्राप्त न करनेके कारण लक्ष्मीजी मानिनी बन गयी हैं;'—इस प्रकार स्वरूप गोस्वामीके समीप अपने मनकी बात उघाड़ कर कहते हैं, वे महाप्रभु श्रीगौरचन्द्र मेरे हृदयमें सदा-सर्वदा विराजमान हों॥५॥

'स्वरूप! तुम मेरे प्रिय पात्र और रसके मन्दिर स्वरूप हो। पुरुषोत्तम क्षेत्रमें तुम्हारे रहनेसे यह पुरुषोत्तम क्षेत्र भी मुझे वृन्दावन प्रतीत हो रहा है'—ऐसा कहकर अत्यन्त आग्रहपूर्वक स्वरूपका कण्ठालिङ्गन कर उन्हें जिन्होंने पुलकित किया था, वे महाप्रभु श्रीगौरचन्द्र मेरे हृदयमें सदा-सर्वदा विराजमान हों॥६॥

स्वरूप! किमपीक्षितं क्व नु विभो! निशि स्वप्नतः प्रभो! कथय किन्नु तन्नवयुवा वराम्भोधरः।
व्यधात् किमयमीक्ष्यते किमु न हीत्यगात् तां दशां विराजतु चिराय मे हृदि स गौरचन्द्रः प्रभुः॥७॥
स्वरूप! मम नेत्रयोः पुरत एव कृष्णो हसन्नपैति न करग्रहं वत! ददाति हा! किं सखे!
इति स्खलति धावति श्वसिति घूर्णते यः सदा विराजतु चिराय मे हृदि स गौरचन्द्रः प्रभुः॥८॥
स्वरूप–चरितामृतं किल महाप्रभोरष्टकं, रहस्यतममद्भुतं पठति यः कृती प्रत्यहम्।
स्वरूप परिवारतां नयति तं शचीनन्दनो, घन–प्रणय–माधुरीं स्वपदयोः समास्वादयन्॥९॥

'स्वरूप! मैंने क्या देखा?' स्वरूप बोले—प्रभो! आपने कब देखा? प्रभुने कहा—रातमें स्वप्नके समय। स्वरूप बोले—प्रभो! वह कैसा था? प्रभुने कहा—नवीन-मेघके सदृश कान्तिसे युक्त तरुण युवक। स्वरूपने पूछा—वह क्या कर रहा था? क्या पुनः उसका दर्शन हो सकता है? प्रभुने कहा—'नहीं, अब उसका दर्शन नहीं मिल सकता।'—ऐसा कहकर जो शोकाभिभूत होकर अपूर्व दशाको प्राप्त हो जाते हैं, वे श्रीगौरचन्द्र प्रभु मेरे हृदयमें सदैव विराजमान रहें॥७॥

हे स्वरूप! कृष्ण मेरी आँखोंके सामने हँस कर भाग गये, पकड़े नहीं जा सके। हाय! हाय सखे! क्या उपाय करूँ—ऐसा कहकर जो सर्वदा पृथ्वीपर गिर पड़ते हैं, इधर-उधर भागते हैं, दीर्घनिःश्वास छोड़ते हैं और कभी चक्कर खाते हैं, वे महाप्रभु श्रीगौरचन्द्र मेरे हृदयमें सदैव निवास करें॥८॥

जो इस अद्भुत रहस्यतम स्वरूप-चरितामृत नामक श्रीमन्महाप्रभुके अष्टकका पाठ करेंगे, श्रीशचीनन्दन महाप्रभु उनको गाढ़े प्रेमकी माधुरीका आस्वादन कराकर स्वरूपके परिकरके रूपमें ग्रहण करेंगे॥९॥ ❽

प्रश्नोत्तर

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

प्र. १—सम्बन्ध-तत्त्वमें तीन विषयोंकी शिक्षा दी गई है—(क) जड़जगत या मायिक तत्त्व, (ख) जीव या अधीनतत्त्व और (ग) भगवान या प्रभुतत्त्व। भगवान् एक और अद्वितीय हैं। वे सर्वशक्तिसम्पन्न हैं और सर्वाकर्षक हैं। वे ऐश्वर्य और माधुर्यके एकमात्र निलय हैं एवं माया और जीव शक्तिके एकमात्र आश्रय हैं। माया और जीवके आश्रय होते हुए भी वे सर्वदा एक स्वतन्त्र तत्त्व हैं। उनकी अङ्गकान्ति सुदूरवर्त्ती होकर निर्विशेष ब्रह्मके रूपमें प्रतिभात होती है। उनकी ऐसी शक्ति जगतप्रविष्ट ईश्वर तत्त्व है। ऐश्वर्य प्रधान-प्रकाशके रूपमें गोलोक वृन्दावनमें वे गोपीजनवल्लभ श्रीश्रीकृष्णचन्द्र हैं। उनके सभी प्रकाश और विलास नित्य और अनन्त हैं। उनके समान और कोई वस्तु ही नहीं है। उनसे अधिककी तो बात ही क्या है? उनकी पराशक्तिके प्रभावसे सभी प्रकाश और विलासकी उत्पत्ति है। पराशक्तिके विभिन्न विक्रमोंमें जीवोंके निकट तीन विक्रम हैं, जिसके द्वारा उनकी लीला सम्बन्धी सभी कार्योंका समाधान होता है। दूसरा जीव-विक्रम

या तटस्थ-विक्रम है जिसके द्वारा अनन्त जीवोंकी उत्पत्ति और स्थिति है। तीसरा माया विक्रम है, जिसके द्वारा जगतके सभी मायिक वस्तु, काल और कर्मकी सृष्टि हुई है। जीवका भगवानसे जो सम्बन्ध है, भगवानके साथ जीव और जड़का जो सम्बन्ध है, और जड़के साथ भगवान और जीवका जो सम्बन्ध है, उस सम्बन्धका नाम सम्बन्धतत्त्व है। सम्बन्ध तत्त्व भली प्रकार जान लेनेपर सम्बन्धज्ञान होता है। सम्बन्धज्ञानहीन व्यक्ति कदापि शुद्ध वैष्णव नहीं कहे जा सकते।

(जैवधर्म ४था अ.)

प्र. २.—सम्बन्धज्ञानयुक्त 'अहंता' और 'ममता' क्या हेय है?

उ.—

ए भक्तिविनोद कय, अहंता ममतामय,
श्रीकृष्ण सम्बन्ध अभिमाने।
सेवाय सम्बन्ध धरि, अहंता ममता करि,
तदितर प्राकृत विधाने॥

—यामुन भावावली, गी. मा.

अर्थात् श्रीकृष्ण सम्बन्ध अभिमानमें प्राकृत हेय अहंता ममता नहीं है। वहाँ श्रीकृष्ण-सेवा सम्बन्ध होता है।

प्र. ३—आम्नाय किसे कहते हैं?

उ.—विश्वकर्मा ब्रह्मासे गुरु-परम्परा प्राप्त ब्रह्मविद्या नामक सभी श्रुतियोंको 'आम्नाय' कहते हैं।

(श्रीमन्महाप्रभुकी शिक्षा २य प.)

प्र. ४—श्रीचैतन्य महाप्रभुकी मूल शिक्षा क्या है?

उ.—

आम्नायः प्राह तत्त्वं हरिमिह
परमं सर्वशक्तिं रसाब्धिम्
तद्भिन्नांशांश्च जीवान् प्रकृतिकवलितान्
तद्विमुक्तांश्च भावात्।
भेदाभेदप्रकाशं सकलमपि हरेः
साधनं शुद्धभक्तिं
साध्यं तत्प्रीतिमेवेत्युपदिशति जनान्
गौरचन्द्रः स्वयं सः॥

—'दशमूलनिर्यास,' सज्जनतोषणी ६/६

प्र. ५—दशमूल किसे कहते हैं?

उ.—दशमूलके अन्तर्गत एक प्रमाण और नौ प्रमेय हैं। प्रमाण एकमात्र आम्नाय वाक्य है और नौ प्रमेय हैं—(१) श्रीहरि ही परतत्त्व हैं; (२) वे (श्यामसुन्दर) सर्वशक्तिमान हैं; (३) वे ही श्यामसुन्दर परम रसमय या अखिल रसामृतसिन्धु हैं, संव्योम या परव्योम ही उनका धाम है; (४) जीव अनन्त हैं, वे चित्परमाणु और श्रीकृष्णके विभिन्नांश हैं और नित्यबद्ध एवं नित्यमुक्त भेदसे जीव दो प्रकारके हैं, (५) कृष्णबहिर्मुख जीव मायाबद्ध हैं; (६) शुद्धभक्त जीव मायामुक्त हैं; (७) जीव और जड़मय समस्त जगत् श्रीहरिके अचिन्त्यशक्ति-निसृत नित्य भेदाभेद प्रकाश हैं; और (८) कृष्णप्रेम ही प्रयोजन तत्त्व है।

("श्रुतिशास्त्र निन्दा", हरिनाम चिन्तामणि)

प्र. ६—तत्त्ववस्तु एक है अथवा बहुत है?

उ.—"तत्त्वमेकमेवाद्वितीयम्—तत्त्ववस्तु एक ही है, दो नहीं।"

('शक्तिमत्तत्त्व प्रकरण', आम्नायसूत्रम् २)

प्र. ७—श्रीमन्महाप्रभुकी शिक्षाको कहाँ लिपिबद्ध किया गया है?

उ.—श्रीमन्महाप्रभुजीकी शिक्षा दो ग्रन्थोंमें

सुष्ठुरूपसे लिखी हुई है, तत्त्वशिक्षा श्रीब्रह्मसंहितामें एवं भजन शिक्षा श्रीकृष्णकर्णामृत ग्रन्थमें दी गई है।

('विज्ञप्ति', कृष्णकर्णामृत)

प्र.८—एकमात्र प्रमाण क्या है? वेदका प्रतिपाद्य विषय क्या है?

उ.—वेदशास्त्रमें विशुद्ध भक्तिकी ही शिक्षा दी गई है। वेदवादियोंकी प्रकृति-दोषसे नानाप्रकार मतवाद, अनेक प्रकारके कर्म और ज्ञानकी उत्पत्ति हुई। वस्तुतः वेद ही मानवोंका एकमात्र प्रमाण और शिक्षागुरु है। उसमें मतवादोंका प्रवेश कराकर शुद्धभक्ति-शिक्षाको त्यागकर पृथक्-पृथक् मतोंका प्रचार हुआ है।

('प्रमाण निर्देश', भागवतार्क मरीचिमाला १/६)

प्र. ९—सत्शास्त्र किसे कहते हैं?

उ.—एक अन्धा व्यक्ति दूसरे अन्धे व्यक्तिको पथ दिखाने पर दोनों ही कूपमें पतित होते हैं; उसी प्रकार असत्शास्त्रके प्रणेता और उनके अनुगामी सभी अन्ध व्यक्ति कुमार्गगत और शोचनीय हैं। सत्शास्त्र कहनेसे वेद और वेदानुगत शास्त्रोंको समझना चाहिए।

(चैतन्य शिक्षामृत १/२)

प्र. १०—वेद क्या है?

उ.—किसी एक वेद-ग्रन्थको प्राप्त करनेसे ही सभी स्थानोंके आचार्योंने जिसे स्वीकार किया है, वही 'वेद' है और जिन्हें प्रक्षिप्त जानकर परित्याग किया है, वही हमारे लिए वर्जनीय है।

(जैवधर्म १३वाँ अ.)

प्र. ११—गीता, भागवत, सात्वत पञ्चरात्रादि शास्त्र और वेदका श्रीचैतन्यमहाप्रभुकी वाणीसे क्या पार्थक्य है?

उ.—गीता श्रीकृष्णका श्रीमुख-निःसृत वाक्य होनेके कारण उसे 'गीतोपनिषद्' कह सकते हैं। अतएव वह 'वेद' है। श्रीचैतन्यमहाप्रभुकी दशमूल शिक्षा भगवानकी वाणी है, अतएव वह भी 'वेद' है। समस्त वेदार्थ सार-संग्रहस्वरूप श्रीमद्भागवत अगर वेदानुगत हो, तो वे भी प्रमाण हैं। तन्त्रशास्त्र तीन प्रकारके हैं—सात्त्विक, राजसिक और तामसिक। 'पञ्चरात्र' आदि सात्त्विक तन्त्रसमूह गूढ़ वेदार्थ प्रकाश करनेके अनुसार प्रमाण माने गये हैं।

(जैवधर्म १३वाँ अ.)

प्र. १२—सद्गुरुका क्या लक्षण है? क्या कुलगुरु स्वीकार करनेसे सद्गुरु आश्रय नहीं होता?

उ.—काल दोषसे गुरुके सम्बन्धमें मनुष्योंकी धारणा अत्यन्त दूषित हो गयी है। आजकल कुलगुरुके निकट अथवा जिस किसी व्यक्तिके निकट उपदेश ग्रहण करते हैं। इससे परमाराध्य सद्गुरुदेवका आश्रय नहीं हो सकता। शास्त्रोंमें कहा गया है कि शब्द ब्रह्म और परब्रह्ममें निष्ठा और आश्रय-प्राप्त गुरुके निकट आत्माकी सेवा-प्रवृत्तिको जाननेके लिए शरणागत होना चाहिए।

('पञ्च-संस्कार', स. तो. १/१)

प्र. १३—गुरु-पदका कौन वाच्य है?

उ.—परमार्थ-विषयमें जो कुशल हैं, वे ही गुरु होने योग्य हैं।

('गुर्ववज्ञा', ह. वि.)

प्र. १४—उच्चवर्ण होनेसे गुरु करना क्या उचित नहीं है? हरिभक्तिविलासमें ब्राह्मण और गृहस्थको गुरुपदमें वरण करनेकी बात क्यों कही गयी है?

उ.—कृष्णतत्त्वका ज्ञान ही सर्वजीवोंका परमार्थ है। इस तत्त्वज्ञानका गुरु होनेका यही अधिकार-विचार है कि कृष्णतत्त्ववेत्ता ब्राह्मण अथवा शूद्र हो, गृहस्थ या संन्यासी हो, वे गुरु होने योग्य हैं। श्रीहरिभक्तिविलासमें उच्चवर्ण योग्य-पुरुष रहते हुए हीनवर्णके व्यक्तिसे कृष्णमन्त्र लेना उचित नहीं है—ऐसी बात जो कही गयी है, वह लोकापेक्षी वैष्णवपरता है। अर्थात् जो व्यक्ति संसारके प्रचलित विधिके अनुसार थोड़ा बहुत परमार्थका अनुशीलन करना चाहते हैं, यह उनके लिए है। परन्तु जो व्यक्ति वैधी और रागानुगा भक्तिका तात्पर्य जानकर विशुद्ध कृष्णभक्ति प्राप्त करनेकी इच्छा रखते हैं, उनके लिए वही विधि है कि उपयुक्त कृष्णतत्त्ववेत्ता जिस किसी वर्ण या आश्रमके हों, उन्हें गुरु करना चाहिए।

(अमृतप्रवाह भाष्य म. ८/१२७)

(क्रमशः)

श्रीलप्रभुपादजीका उपदेशामृत

प्र. १३९—क्या वर्णाश्रम धर्म नित्य है?

उ.—जीवमात्र ही बाहरके आवरण (जड़ देह) को आत्मा मानते हैं। मैं नित्य भगवानका सेवक हूँ। भगवानकी सेवा ही मेरा नित्य धर्म है। मैं वर्णी (ब्राह्मण, क्षत्रिय इत्यादि) या आश्रमी (ब्रह्मचारी, गृहस्थ इत्यादि) नहीं हूँ। अतः वर्णाश्रम धर्म मेरा नित्य धर्म कैसे हो सकता है? वर्णाश्रम धर्म अच्छी प्रकारसे पालन करनेपर इस लोकमें तथा परलोकमें सुविधा होती है। जबतक यह जड़ शरीर रहता है, तबतक वर्णाश्रम धर्म भी रहता है। यह जागतिक मङ्गलके लिए ही उपयोगी है। चौदह लोकोंमें औपाधिक स्थितिमें ही इसकी उपयोगिता है। किन्तु नित्य जगतमें इसकी कोई उपयोगिता नहीं है। स्वयं श्रीचैतन्यमहाप्रभु कहते हैं—मैं ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अथवा ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यासी भी नहीं हूँ। मेरा सम्बन्ध तो केवल भगवानसे ही है। मैं उनका सेवक हूँ। मैं यदि उन्हें न भूलूँ, तो मेरा मङ्गल ही मङ्गल है।

भगवान चेतन हैं, जीव भी चेतन है। जीव भगवानका अंश है। वह भगवानकी भाँति विभुचेतन नहीं है, अणुचेतन है। जीव भगवानके अधीन है। परन्तु वर्तमान अवस्थामें जीव अपनी चेतनता या स्वतन्त्रताका दुर्व्यवहार कर रहा है, इसीलिए उसकी दुर्गति हो रही है। भगवानकी सेवासे च्युत होनेके कारण ही हमारी दुर्गति होती है और भगवानकी सेवामें नियुक्त होनेपर हमारा कल्याण होता है।

प्र. १४०—चैतन्य महाप्रभु कौन हैं?

उ.—चैतन्यदेव दो या दस हजार वर्षके पूर्व नहीं हैं। बल्कि वे नित्य सनातन वस्तु हैं। वे पुरुषोत्तम हैं। वे अनादि, सर्वादि एवं समस्त कारणोंके भी कारण हैं। वे किसी कालमें उत्पन्न नहीं होते। परन्तु भूत, भविष्यत और वर्तमान—इन तीनों ही काल उनसे उत्पन्न होते हैं। वे विभु वस्तु हैं। वे हड्डी, माँसका कोई लोथड़ा नहीं हैं। वे पुराण पुरुष हैं। वे पुरुष—कर्त्ता हैं। वे ही परब्रह्म, परमात्मा एवं भगवान हैं। वे साक्षात् कृष्ण ही हैं। वे अवतारी

हैं, महा भगवान हैं तथा परमेश्वर हैं। वे स्वयं भगवान हैं।

श्रीचैतन्यदेव कृपाम्बुधि (दयाके सागर) हैं। उनके समान दया और कोई कर नहीं सकता। यहाँतक कि भगवानके अन्यान्य अवतार भी इतनी दया नहीं करते। उनकी ऐसी अपूर्व दया अयोग्य व्यक्तिको योग्यता प्रदान करनेके लिए ही होती है। यही अनन्त कालके लिए पूर्ण दया है—भगवानका स्वयंको स्वयं ही दे देना। ऐसे दानकी बात कभी आजतक सुनी नहीं गयी।

उन्होंने जिस प्रेमको दान किया, उसकी सुन्दरताको दर्शन करनेमें कर्मी, योगी एवं ज्ञानी सर्वथा असमर्थ हैं। केवल भाग्यवान व्यक्ति ही उसे प्राप्त कर सकते हैं। इसीलिए मैं कहता हूँ कि आपलोगोंके जितने प्रकारके विचार हैं, उन सबको छोड़कर चैतन्य महाप्रभुकी कथाओंको श्रवण करनेके लिए समय दो। साधारण मनुष्यसे जिसकी विशेषता है, उसकी कथाओंको श्रवण करनेमें समय देनेपर ही वास्तविक शान्तिका मार्ग अर्थात् भगवद् उपासना प्राप्त होती है। तब भगवानको पुत्र भावसे पालन करनेकी प्रवृत्ति उत्पन्न होती है। पुरुषके साथ स्त्रियोंके विवाह आदिके द्वारा मानव जीवनकी पूर्णता या शान्ति प्राप्त करनेका जो विचार है, उसके स्थानपर भगवानके विराजमान होनेपर अनित्य बुद्धिसे माताका पुत्रके प्रति पुत्रज्ञान इत्यादि दूर हो जाता है। हम यदि अपने समस्त भावोंको भगवानके चरणकमलोंमें नियुक्त कर सके, तभी उन भावोंकी सार्थकता है। शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर—ये पाँचों रस भगवानमें पूर्णमात्रामें विद्यमान हैं। उन भावोंको भगवानमें नियुक्त न कर अनित्य वस्तुओंमें नियुक्त करनेके कारण ही भगवानके विषयमें ज्ञान प्राप्त नहीं कर पा रहे हैं। भगवद् वस्तु पूर्णज्ञानमयी एवं आनन्दमयी है। उन्हें जाननेके लिए हम बहुत चेष्टा करते हैं, परन्तु हमारे घरके निकट ही वे गोलोकपति मनुष्यरूपमें चैतन्यमहाप्रभु रूपमें जिस बातको कहनेके लिए अवतरित हुए, उसे न सुनकर अन्यान्य प्रकारकी चेष्टाएँ करनेपर उन्हें हम कैसे प्राप्त कर सकते हैं?

प्र. १४१—गीताके सर्वधर्मान् परित्यज्य जैसी अत्यन्त महत्वपूर्ण बातको महाप्रभुने 'एहो बाह्य' क्यों कहा?

उ.—महाप्रभुने गीताके इतने बड़े वाक्यको भी 'एहो बाह्य, आगे कह आर' अर्थात् 'यह बाहरी बात है, इससे आगे कुछ हो तो कहो'—ऐसा रामानन्दजीसे कहा। क्योंकि भक्ति आत्माकी सहज वृत्ति है। उसके लिए भगवानको प्रतिज्ञा-पत्र देकर भक्त करनेकी चेष्टा नहीं करनी पड़ती। भक्त तो प्रीतिवशतः स्वाभाविकरूपमें ही भगवानके सुखके लिए ही सर्वदा व्यस्त रहता है।

पिताको यदि कुछ लालच देकर पुत्रसे अपनी सेवा करानी पड़े तो पुत्रकी महिमा ही क्या रही? कहाँ भक्त स्वयं ही अपनेपनके भावसे भगवानकी सेवा करेंगे, ऐसा न होकर यहाँपर विपरीत देखा जाता है अर्थात् भगवानको कहना पड़ रहा है कि तुम मेरी सेवा करो, मैं तुम्हें समस्त पापोंसे मुक्त कर दूँगा। यहाँपर भक्त केवल भगवानको ही भूला है, ऐसी बात नहीं, बल्कि वह स्वयंको भी,

अपने नित्य स्वरूपको, नित्य अस्तित्वकी बातको भी भूलकर अनित्य वस्तुओंका स्वामी होकर अनित्य वस्तुओंकी सेवा कर रहा है। इसीलिए महाप्रभुने इतनी बड़ी बातको भी एहो बाह्य कहकर जगतमें शुद्ध भक्तिकी शिक्षा देनेके लिए ही सर्वोत्तम ब्रजभक्तिके विषयमें जाननके लिए ही 'आगे कह आर' ऐसा कहा है।

प्र. १४२—परीक्षा क्या चीज है?

उ.—छात्रोंको उन्नत श्रेणियोंमें ले जानेके लिए ही अध्यापक लोग कृपापूर्वक परीक्षा लेते हैं। जो मनोयोगी एवं बुद्धिमान छात्र हैं, उनके लिए परीक्षा आनन्दप्रद होती है; परन्तु जो मनोयोगी नहीं है, पढ़नेमें जिसको रुचि नहीं है, वे ही परीक्षाके नामसे भयभीत एवं दुःखी हो जाते हैं। जो सर्वदा ही भोग-विषयोंकी बातोंका ही प्रचार करते हैं, लोगोंकी रुचिके अनुसार ही बातें कहते हैं, उनके मार्गमें किसी प्रकारकी विपत्ति या बाधाएँ नहीं आतीं। किन्तु जो भगवानकी सेवाके विषयमें, आत्माकी नित्यवृत्तिके विषयमें तथा जीवोंको जीवनसर्वस्व भक्तिकी बातें सुनाते हैं, उनके लिए पद-पदपर विपत्तियाँ ही विपत्तियाँ आती हैं। वे विपत्तियाँ उनको निरुत्साह करनेकी चेष्टा करती हैं। किन्तु जो भक्तिपथके पथिक हैं, उन्हें अच्छी तरहसे जानना चाहिए कि वे विपत्तियाँ और बाधाएँ हमारी भक्तिकी परीक्षा करनेके लिए ही आयी हैं। हमें क्रमशः भक्तिमार्गमें आगे बढ़ानके लिए ही आयी हैं। ऐसे विकट समयपर नामाचार्य श्रील हरिदास ठाकुर, भक्तराज श्रीप्रह्लाद महाराजकी सेवा एवं सहनशीलताके आदर्शको देखकर स्वयंको स्थिर रखना चाहिए। मनुष्य अनित्य वस्तु प्राप्त करनेके लिए चेष्टा करनेके कारण ही आत्मकल्याणसे सैकड़ों जन्मोंके लिए वञ्चित हो जाता है। हजारों उदाहरण देखनेपर भी मनुष्य यदि तुच्छ विषयोंके लिए बाधा-विपत्तियोंकी परवाह न कर अपने प्राणोंतकका परित्याग कर सकता है, तो क्या बुद्धिमान व्यक्ति अथवा भाग्यवान भक्त त्रिकालसत्य वस्तु भगवानके लिए इस नश्वर जीवनको नियुक्त नहीं कर सकता है?

ॐविष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजजीकी हरिकथा

(श्यामसुन्दर गौड़ीय मठ, शिलिगुड़ि, दार्जिलिङ्ग, २९-४-९७)

सर्वप्रथम मैं अपने श्रीगुरुपादपद्म जगद्गुरु नित्यलीलाप्रविष्ट ॐविष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीके श्रीचरणकमलोंमें अनन्त कोटि साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम ज्ञापन करता हूँ। तत्पश्चात् पूजनीय वैष्णववृन्द, सुधी सज्जनमण्डली, मातृमण्डलीके चरणोंमें असंख्य दण्डवत् प्रणाम। आज हम श्रीलगुरुमहाराजकी आविर्भाव शतवार्षिकी सभामें उनके सम्बन्धमें कुछ आलोचना करनेके लिए यहाँपर उपस्थित हुए हैं।

गुरुतत्त्व अखण्ड एवं नित्य है। अभीतक मैंने यह सुना है कि जो गुरु हैं, वे शिष्य

भी अवश्य हैं। गुरुतत्त्व एवं शिष्यतत्त्व दोनों ही पास-पासमें हैं। जो समस्त जीवात्माओंके कल्याणके विषयमें चिन्ता कर रहे हैं, करते हैं, वे ही जगद्गुरु तत्त्व हैं। शिष्यतत्त्व भी नित्य है। वहाँपर कहा जाता है—*''आज्ञा गुरूणां ह्यविचारणीया''*। अर्थात् गुरुओंकी आज्ञा पालन करनेमें विचार नहीं करना चाहिए। इस पंक्तिमें गुरूणां इस बहुवचन शब्दका प्रयोग हुआ है। यदि ऐसा कहा जाय कि बहुवचनका प्रयोग सम्मानके लिए किया गया है, ऐसा बोला जा सकता है, यह ठीक ही है। परन्तु यदि ऐसा कहा जाय कि इस शब्दके अनुसार केवल दीक्षागुरु ही नहीं, शिक्षागुरु एवं अन्यान्य गुरुवर्गोंको भी लक्ष्य किया गया है। यह भी सत्य ही है। जो गुरुकी आज्ञाको बिना विचार किये पालन करते हैं, वे शिष्य हैं। इसके अतिरिक्त हम और भी देखते हैं कि जो बिना विचार किये गुरुकी आज्ञा पालन करते हैं, उनके उपदेश, निर्देश एवं शासनको मानते हैं, वे ही शिष्य हैं। जो सद्गुरुकी समस्त प्रकारकी शासन-वाणियोंको स्वीकार करते हैं, वे ही वास्तविक रूपमें शिष्य पदवाच्य हैं, शास्त्रोंमें ऐसा कहा गया है। जो जड़जगतके लोगोंकी भाँति सङ्कोचवश नहीं, बल्कि आन्तरिक भावसे अमानी एवं मानद धर्ममें दीक्षित होकर सभीको सम्मान देते हैं, वे शिष्य पदवाच्य हैं। यहाँपर सभी शब्दसे अपने सतीर्थों (गुरुभ्राताओं) को, उनके सम्बन्धित सारे विश्वको यथायोग्य सम्मान दे सकते हैं। अधिक न कहकर एक ही वाक्यके द्वारा इसको स्पष्ट किया जा सकता है कि जो अमानी, मानद (अमानी अर्थात् अपना सम्मान नहीं चाहनेवाला, मानद अर्थात् दूसरोंको सम्मान देनेवाला) धर्ममें दीक्षित हैं, वे ही सत् शिष्य हैं तथा वे ही वास्तविक रूपमें साधु अथवा वैष्णव हैं।

गुरुतत्त्वके विषयमें हम आलोचना कर रहे हैं। साधारणरूपमें मनुष्य इस संसारमें एक साधारण कवि या एक साहित्यकारके विषयमें जैसी आलोचना करते हैं, गुरुतत्त्व वैसा नहीं है। मेरे गुरुभ्राता कुछ क्षण पहले ही बोले हैं कि मैं देख रहा हूँ कि यहाँपर अधिकांश स्त्रियाँ ही हैं। वास्तवमें यह विषय विचारणीय है। वर्तमान जिस युगमें जिस समाजमें हम निवास कर रहे हैं, इसमें बहुत गड़बड़ियाँ हैं। ऐसा कहा जाता है कि यह समाज पुरुषप्रधान है। किन्तु देखनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि यह समाज पुरुषप्रधान नहीं, अपितु नारीप्रधान है। इस पुरुष और नारीको लेकर समाजमें जो धक्कामुक्की चल रही है, इसमें साधनभजनकी बात कुछ है कि नहीं—यह विचारणीय विषय है। जड़जगत जिन सब व्यर्थकी चिन्ताओंको लेकर चल रहा है, सनातन धर्मी (वैष्णवगण) उससे सम्पूर्णरूपसे पृथक् हैं।

पृथिवीते जत कथा धर्म नामे चले।
भागवत कहे ताहा परिपूर्ण छले॥

सांसारिक लोग धर्मके नामपर जो प्रचार कर रहे हैं, वास्तवमें वह धर्म नहीं है। वहाँपर छलधर्म, अधर्म, विधर्म जातीय व्याख्याएँ की जाती हैं। आत्मधर्मका अनुशीलन भगवानसे प्रीति करना, उनसे सम्पर्क स्थापित करनेका माध्यम एकमात्र गुरु हैं। गुरु ही श्रेष्ठ वैष्णव हैं, शास्त्रोंमें स्पष्टरूपसे वर्णन मिलता है। ऐसा होनेपर भी वैष्णवतत्त्व है। हरि, गुरु,

वैष्णव—ऐसा क्रम शास्त्रोंमें देखा जाता है। परन्तु यदि कहा जाय, वैष्णव-गुरु-हरि होना चाहिए, यह भी ठीक है। व्याख्याएँ अनेक प्रकारकी हो सकती हैं, किन्तु सिद्धान्त तो यही है कि वैष्णवकी कृपासे ही गुरुकृपा प्राप्त होती है तथा गुरुकृपा होनेपर ही वैष्णवकृपा होती है। वैष्णवोंके उपदेश निर्देशोंका भी पालन करता हूँ। तत्त्वतः विषयवस्तु आश्रय एवं निखिल जीव आश्रित हैं। विषयवस्तु जो तत्त्ववस्तु हैं, उनकी सेवाके लिए गुरुतत्त्वकी आवश्यकता होती है। वैष्णवोंका भी यही विचार है। गुरु श्रेष्ठ वैष्णव हैं, वैष्णव भी श्रेष्ठ गुरु हैं। यह बात शास्त्रोंमें पायी जाती है। परन्तु इसकी व्याख्या अपने शास्त्रानुसार ही करनी होगी। क्योंकि सबका अधिकार समान नहीं है। किन्तु जो तत्त्वदर्शी हैं, वे सब समय ठीक-ठीक वास्तव तत्त्वके विषयमें ही जगतको शिक्षा देंगे। इसीलिए कुकर्मी, कुज्ञानी, कुयोगी इत्यादिकी समालोचना भी हमारे शास्त्रोंमें पायी जाती है। वास्तवमें जो कर्मी है, वही भक्त है; जो वास्तविक रूपमें ज्ञानी है, वही भक्त है; जो वास्तविक रूपमें योगी है, वही भक्त है। परन्तु शास्त्रोंमें तथाकथित कर्मियों, ज्ञानियों एवं योगियोंकी समालोचना की गयी है, इसे हमें अच्छी प्रकारसे समझना होगा। किन्तु वर्तमान समयमें हम इसे समझ नहीं पा रहे हैं। हमें ऐसे शास्त्रविरुद्ध क्रियाओं, कर्मों एवं अनुष्ठानोंने घेर रखा है कि हम यथार्थ सत्य क्या है, इसे समझ नहीं पा रहे हैं। यदि समझानेवाले लोग हैं भी, तो हम समझना नहीं चाहते हैं। हम सर्वदा ही अपनी सुविधा चाहते हैं। हम सर्वदा ही चेष्टा करते हैं कि किस प्रकार सस्तेमें एवं अल्प समयमें ही हमारा कार्य सिद्ध हो जाये।

शास्त्रोंकी आलोचना करनेपर देखा जाता है कि अनेक समय संक्षेपमें किसी कार्यको करनेपर उसका फल उल्टा हो जाता है। Short-cut करनेके चक्करमें wrong-cut हो जाता है। Shortcut is often a wrongcut. ऐसा क्यों होता है? यदि process या procedure (विधि) ठीक नहीं हो, तो वहाँपर shortcut करनेसे कुछ लाभ नहीं होगा, बल्कि वहाँपर प्रायः बाधा-विपत्तियाँ ही आती हैं। उन बाधा एवं विपत्तियोंको पारकर वास्तव मार्ग, भक्तिमार्ग, भजनमार्गमें अग्रसर होना बहुत मुश्किल है। किन्तु यदि हम उसे छोड़ देते हैं, तो भी ठीक नहीं है। शिष्य, छात्र, शासन स्वीकार करनेवाला व्यक्ति यदि वास्तविक मार्ग खोजना चाहते हैं, तो उस मार्गकी बात तो शास्त्रमें है ही। केवल उसे समझानेवाले व्यक्तिकी आवश्यकता होती है। तत्त्वदर्शन हमारे लिए बहुत आवश्यक है। हम कुकर्मी, कुज्ञानी, कुयोगी न होकर भक्तिपथाश्रयी बनें। तभी हम ठीक लाइन पा सकते हैं। तत्पश्चात् process, procedure (विधि) के अनुसार ही चलना होगा। परन्तु उस मार्गका प्रथम सोपान श्रद्धा है। तत्पश्चात् साधुसङ्ग, भजनक्रिया इत्यादि। (क्रमशः)

(अनुवादित)

उदारता और सङ्कीर्णता

—त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त बोधायन महाराज

"उदारता" का सम्पूर्ण विपरीतार्थक शब्द है—'सङ्कीर्णता' जो उदारचित्त हैं, वे कभी भी सङ्कीर्णचित्त नहीं हो सकते; और जो सङ्कीर्णताके तनेमें आबद्ध हैं, उनमें उदारता कभी नहीं रह सकती। अतत्त्वज्ञ व्यक्तिगण ही मुड़ि-मिश्रीको एकसाथ खानेके समान 'उदारता' और सङ्कीर्णताको समपर्याय बतानेकी चेष्टा करते हैं। जिस प्रकार बर्फका धर्म कभी शीतल और कभी उष्ण नहीं हो सकता, उसी प्रकार एक ही व्यक्तिमें एक साथ उदारता और सङ्कीर्णताका होना असम्भव है। जिस प्रकार एरण्डके वनमें सियार बाघ समझा जाता है, उसी प्रकार जड़बुद्धिसम्पन्न व्यक्तियोंके निकट सङ्कीर्णचित्त व्यक्ति उदार हृदयका परिचय प्राप्त करते हैं। इस जगतमें अच्छे-बुरे विचार करनेपर बहुतसे लोगोंमें शिशु सुलभ भ्रान्ति अनेकों बार दृष्टिगत होती है। प्राकृत बुद्धिके द्वारा किसी विषयका ठीक-ठीक मूल्याङ्कन करना असम्भव है। बहिर्दर्शनसे मुक्त होकर अन्तर्दर्शनमें प्रवेश करनेपर प्राकृत तत्त्वका चिन्तन किया जा सकता है।

'उदारता' कहनेसे साधारणतः वदान्यता, महत्व, महानुभवता, भद्रता, साधुता आदि समझा जाता है; और क्षुद्रता, नीचता, लघुता आदि अर्थमें 'सङ्कीर्णता' शब्दका व्यवहार किया जाता है। जिस नीतिके द्वारा जगतका समस्त कल्याण साधित होता है, वह उदार नीति है। उदार नीतिका ही अन्य नाम सार्वजनीन, अर्थात् सबके लिए उपयुक्त नीति है। जो नीति सीमित संख्याके लोगोंमें सीमाबद्ध है वह सङ्कीर्ण नीति अथवा अप्रशस्त नीति है। सङ्कीर्णनीति कभी भी सार्वजनीन नहीं है। आत्मधर्मके ऊपर प्रतिष्ठित उदार नीति है; और देह एवं मनोधर्म होता है सङ्कीर्ण नीतिकी मूल भित्ति। शराबीको मद पिलाना अथवा खूनीको खिला-पहनाकर बचाना उदारताका लक्षण नहीं है। भोगीके भोगमें ईंधन देना अर्थात् अन्यायको प्रश्रय देनेकी गणना अपराधमें होती है। मांसके टुकड़े देकर जञ्जीरसे बँधे कुत्तोंका पालन अथवा चने देकर पिंजड़ेमें मैना, तोता आदिका पोषण कभी भी जीवपर दयाका आदर्श स्वरूप नहीं हो सकता। कुत्ता पालन अथवा पिंजड़ेमें पक्षीपोषण दोनों ही पालनकारीका शौक अर्थात् आत्मेन्द्रियतृप्ति है। इसके साथ क्या उदारताका सम्बन्ध रह सकता है? जो आत्मेन्द्रिय प्रीतिवाञ्छाको सार करके उदारताकी उपाधि प्राप्त करना चाहते हैं, वे सब कपटी और सङ्कीर्णचित्तवाले हैं। छिद्रयुक्तपात्रमें तरल पदार्थ रखना दुर्बुद्धि द्वारा केवल काम-क्रोधादि षड्रिपुओंको प्रश्रय देना मात्र है। इससे उदार चरित्र प्राप्त नहीं किया जा सकता। जगतके लोग चाहते हैं—लाभ, पूजा और प्रतिष्ठा। इस जगतमें किसी व्यक्तिको अति 'उदार' कहकर प्रशंसा करनेपर उसका अन्तःकरण आनन्दसे प्रफुल्लित हो उठता है। जहाँ पर लाभ, पूजा, प्रतिष्ठा नहीं है, वहाँ तथाकथित उदारताका मुखौटा खुलकर गिरनेमें अधिक समयकी आवश्यकता नहीं होती। भगवद्सेवक मात्र ही रागद्वेष आदिसे शून्य हैं, अतएव वे 'महानुभव' इस नामके प्रकृत (यथार्थ) योग्य व्यक्ति हैं। महानुभवगण सर्वदा ही स्वरूप भ्रान्त लोगोंकी निन्दा अथवा प्रशंसाके प्रति सम्पूर्णरूपसे उदासीन हैं, वे अपना गुणगान सङ्कीर्णचित्त व्यक्तिके समान दूसरोंके निकट गान करनेमें थकते नहीं हैं।

महानुभवेर एइ सहज 'स्वभाव' हय।
आपनार गुण नाहि आपने कहय॥

(चै. च. अ. ५/७८)

महानुभवोंका चित्त वज्रसे भी कठोर तथा पुष्पसे भी कोमल होता है, दूसरे लोग उनके उदार चरित्रको समझनेके योग्य नहीं होते।

महानुभवेर चित्तेर स्वभाव एइ हय।
पुष्प-सम कोमल, कठिन बज्रमय॥
(चै. च. म. ७/७२)

वज्रादापि कठोराणि मृदुणि कुसुमादपि।
लोकोत्तराणां चेतांसि को नु विज्ञातुमीश्वरः॥
(उत्तर रामचरितमानस २/७)

उदारचित्त व्यक्तियोंके लिए कोई वस्तु अदेय नहीं है। "किं न देयं वदान्यानाम्" (भा. १०/७२/१८) यहाँ तक कि वे दूसरोंके मङ्गलके लिए अपने प्राण पर्यन्त परित्याग करनेमें निराशा या ग्लानिका अनुभव नहीं करते।

संसारमें जीवोंके दुःखोंका यथार्थ कारण होता है—भगवानके साथ जीवोंके नित्य सम्पर्ककी चरम विस्मृति। मुंडेर रहित छत पर पतंग उड़ानेपर जैसे किसी भी मुहूर्तमें छतसे गिरकर मृत्युकी संभावना रहती है, उसी प्रकार कृष्णसेवा विमुख मायाके संसारमें प्रतिक्षण विपदकी आशङ्का रहती है। कृष्णविमुख जीवको कृष्णके प्रति उन्मुख कराना ही वास्तव दया या उदारता है। कृष्णको भूलना ही अर्थात् कृष्णसेवा-विस्मृत होकर ही जीव संसारमें दुःख-कष्ट पा रहा है, इसलिए भक्तोंके साथ कृष्णोन्मुखता जागृत होनेपर वह समस्त दुःखसे मुक्ति पाकर सुखी हो सकेगा। कृष्ण भक्तिमें ही एकमात्र सुख है, अन्य सभी वस्तुओंमें सुखोंका अभाव है—यह बुद्धि ही सर्वोत्तम है।

उदार महती जार सर्वोत्तमा बुद्धि।
नाना कामे भजे, तबु पाय भक्तिसिद्धि॥
(चै. च. म. २४/१९६)

केवलमात्र हमारा ही सुख हो, बाकी सभी लोगोंको असुविधा हो—यह सङ्कीर्ण अर्थात् नीच अन्तःकरणका परिचय है। दूसरोंको वञ्चित करके अपनी सुविधाको प्राप्त करनेकी चेष्टा ही अन्याभिलाष है। कर्म-ज्ञान आदिके द्वारा प्राप्त देह और मनकी सामाजिक सुखानुभूति कभी भी शान्ति प्रदान नहीं कर सकती।

प्राकृत (जड़) गुणमय राज्यमें अवस्थित व्यक्ति जब अपनी चेष्टा द्वारा अप्राकृत (चिन्मय) जगतके लोगोंके आचार व्यवहारके सम्बन्धमें जाननेके लिए प्रस्तुत होते हैं, तब अधिकांश क्षेत्रोंमें वे भ्रान्तिमें पड़कर प्रलाप करनेके लिए बाध्य होते हैं। आध्यक्षिकोंकी दृष्टिसे शुद्धभक्ति-प्रतिष्ठानसमूह मन्दोदय दया वितरणकारी प्रतिष्ठानोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं। आध्यक्षिकोंकी मायिक युक्तियोंका प्रयोग कभी भी अप्राकृत जगतकी वस्तुओंमें नहीं हो सकता। शुद्धभक्त अर्थात् निरपेक्षोंकी रुचि, भाषा आध्यक्षिक सङ्कीर्णताकी कभी भी पुष्टि नहीं करती। 'गोलेमाले हरिबोल' बोलने वाले पक्षपाती समन्वयवादियोंका संग और उपदेश सभीके लिए सर्वतोभावसे परित्याग करना उचित है। शुद्धभक्तगण कपट उदारताके नाम पर नास्तिकताको प्रश्रय नहीं देते; वे नित्य सत्त्वाविशिष्ट अविचिन्त्य शक्तिसमन्वित श्रीभगवानके नित्य उपासक हैं; इसलिए वे ही एकमात्र परम उदार हैं। जगतमें भगवत्सेवकोंकी अपेक्षा उदार और कोई नहीं हो सकता। जड़की उदारता नहीं है; वह इन्द्रिय-तर्पणके मूलमें उदारताका रूपक अथवा कपटता मात्र है। समन्वयवादीगण उदारताका छल करके विष्णु, शिव, शक्ति, गणेश, सूर्य आदि जिस किसी एककी उपासना करते हैं। किन्तु जिसकी एक बार उपासना कर ली, बादमें उसी उपास्यके ऊपर ही तलवारका वार करके वे उसको खण्डित करके निष्ठुरताका कार्य करते हैं।

समन्वयवादी कहते हैं,—"वैष्णवधर्ममें केवल सङ्कीर्णता है, जहाँ उदारताके लिए कोई स्थान नहीं है; इसलिए यह धर्म सभी धर्मोंको समान कहकर स्वीकार करनेमें निराशाका अनुभव करते हैं। कृष्ण, काली, शिव, दुर्गा, गणेश, शनि आदि

देवताओंको समान कहनेमें भी वैष्णवोंकी सङ्कीर्ण चित्तवृत्तिका परिचय प्राप्त होता है।" वास्तवमें वैष्णवधर्मके समान उदारधर्म जगतमें अन्य कोई नहीं है। वैष्णवगण इन सबकी खिचड़ी न करके देहधर्म, मनोधर्म और आत्मधर्म आदिमें एक जो विशेष अन्तर है, उसको जगतके लोगोंको बतलाकर जगतका अशेष मङ्गल साधन करते हैं। देहधर्म और मनोधर्म अनित्य और जड़जगतमें सीमाबद्ध हैं और आत्मधर्म नित्य एवं काल और मायातीत है। समन्वयवादियोंका नित्य और अनित्य धर्मको एकाकार करनेकी चेष्टामें उदारताका कोई भी चिह्न नहीं होता; वरन् जगज्जञ्जालकी सृष्टि करनेके लिए युक्तिहीन कुछ विषय रहता है। सूर्यके आलोकको अन्धकार कहनेसे पागलोंका प्रलाप कहकर लोग जिस प्रकार अनसुनी कर देते हैं, उसी प्रकार दूध और आटा मिश्रित जल एक करनेके समान अनित्य धर्मको नित्यधर्मके समपर्यायभुक्त करनेकी चेष्टा करनेसे पारमार्थिकगण उसे कभी भी स्वीकार नहीं करेंगे। अनित्य धर्मको नित्य धर्म कहना ऋणराशिको धनराशि कहनेके समान हास्यास्पद व्यापार है। समन्वयवादियोंका कृष्ण, शिव, काली आदिको एक करनेकी प्रचेष्टा शास्त्रविरोधी, कल्पनाप्रसूत और घोरतम अपराध है। काली, शिव आदि देव-देवी होनेपर भी कृष्ण हैं परमदेवता। कृष्ण ही केवल सेव्य, शिव-काली आदि देव-देवीगण ही उनके सेवक सेविका हैं। *''एकला ईश्वर कृष्ण आर सब भृत्य।''* प्रभुको भृत्य (दास) के आसनपर अथवा भृत्यको प्रभुके आसनपर बिठानेसे प्रभु और भृत्य दोनों क्या सन्तुष्ट होंगे? माताको स्त्री या स्त्रीको माता, सती-साध्वी स्त्रीको वेश्या या वेश्याको सती-साध्वी स्त्री, आलोकको अन्धकार या अन्धकारको आलोक एक कहना तो उदारता नहीं है, वरन् घोरतम अन्याय है। कोई विवाहिता स्त्रियाँ यदि उदारताके कारण सभी पुरुषोंको स्वामी समझकर उनकी सेवा करें, तो नीति विरुद्ध होगा या नहीं? जो वस्तु जैसी है, उसको उस वस्तुके अनुरूप सम्मान देना वास्तव उदारता है, वह सङ्कीर्णता नहीं है।

प्रतिष्ठा प्राप्तिकी आकांक्षाको छोड़कर आपद-विपदके प्रति उदासीन होकर निरपेक्ष भावसे प्रकृत तत्वका अनुसन्धान करनेपर ही आत्मकल्याण साधित होता है। प्रकृत सत्यका सेवक होना सङ्कीर्णता नहीं है, वरन् किसीको न मानें और सबको ही अच्छा मानकर चलनेयोग्य तथाकथित उदारता प्रकृत उदारता नहीं है—वह आत्मवञ्चनाकी इच्छाके अनुरूप कपटता है। इस आत्मवञ्चनाकी इच्छाके अनुरूप कपटताके हाथसे मानवजातिका उद्धार न करने पर उसका वास्तविक मङ्गल आघातप्रद या खण्डित है।

(अनुवादक—ओमप्रकाश ब्रजवासी)

श्रीगौराङ्ग-सुधा

(वर्ष ४७, संख्या ७, पृष्ठ १४७ से आगे)

—श्रीपरमेश्वरी दास ब्रह्मचारी

गदाधरको पूजाका भार सौंपना

अब धीरे-धीरे प्रभुका प्रेमोन्माद बढ़ने लगा। जिसके फलस्वरूप उनकी संसारकी सुध-बुध भी लुप्त होने लगी। यहाँ तक कि वे भावमें विभोर रहनेके कारण भगवानकी पूजा भी नहीं कर पा रहे थे। स्नानकर जैसे ही पूजाके लिए आसनपर बैठते तो प्रेममें आविष्ट हो जाते तथा उनके नेत्रोंसे गङ्गा-यमुनाकी भाँति अश्रुधारा प्रवाहित होने लगती, जिससे उनके सारे कपड़े भीग जाते थे। जब वे बाहर आकर स्नानकरके उन वस्त्रोंको

बदलकर दूसरे वस्त्रोंको धारणकर मन्दिरमें जाकर पुनः पूजा करने बैठते, तो प्रेमाश्रुओंसे वे वस्त्र भी भीग जाते थे। जब वे पुनः बाहर आकर स्नान करते तथा दूसरे वस्त्रोंको धारणकर पूजा करने बैठते, तो वे भी आनन्दाश्रुओंसे भीग जाते थे। इस प्रकार उनका सारा समय वस्त्र बदलनेमें ही चला जाता था, परन्तु भगवानकी पूजा नहीं कर पाते थे। यह देखकर उन्होंने गदाधरजीसे कहा—"गदाधर! मेरा ऐसा सैभाग्य नहीं है कि मैं भगवानकी पूजा कर पाऊँ। इसलिए अब तुम भगवानकी पूजा करो।"

शुक्लाम्बरपर कृपा

एक दिन प्रभु शुक्लाम्बर ब्रह्मचारीके पास पहुँच गये तथा कृपापूर्वक उससे कहने लगे—"शुक्लाम्बर! मेरी बहुत इच्छा है कि मैं तुम्हारे हाथका पकाया हुआ भोजन करूँ। अतः तुम किसी प्रकारका संकोच या भय न कर मुझे रसोई बनाकर खिलाओ।"

यह सुनकर पहले तो शुक्लाम्बरने सोचा कि प्रभु परिहास कर रहे हैं, परन्तु जब प्रभु बार-बार कहने लगे तो वह हाथ जोड़कर दीन-हीन भावसे कहने लगा—"हे प्रभो! मैं एक अधम भिक्षुक हूँ तथा बहुत बड़ा पापी हूँ। आप साक्षात् सनातनधर्मस्वरूप हैं। कहाँ आप मुझे अपने श्रीचरणोंकी छाया प्रदान करेंगे, परन्तु ऐसा न कर मेरे जैसे कीड़ेकी उपेक्षा कर रहे हैं। यह सुनकर प्रभु स्नेहसे कहने लगे—"शुक्लाम्बर! ऐसी बात नहीं है। मैं तुम्हारी उपेक्षा नहीं कर रहा हूँ। मैं सत्य कह रहा हूँ कि तुम्हारे हाथसे भोजन करनेकी मेरी बहुत इच्छा है। अतः तुम अति शीघ्र जाकर रसोई बनाओ। मैं आज दोपहर तुम्हारे पास आकर भोजन करूँगा।"

यह सुनकर शुक्लाम्बरको बहुत आनन्द हुआ, परन्तु उन्हें कुछ भय लग रहा था कि मैं एक भिक्षुक हूँ। यदि मैं प्रभुके लिए रसोई बनाऊँगा, तो कहीं मेरा अपराध न हो जाय। अतः इसका समाधान करनेके लिए वे श्रीवासजी एवं अद्वैताचार्य आदि वैष्णवोंसे मिले तथा उनसे इस विषयमें पूछा। उन सभीने उन्हें समझाया कि तुम किसी प्रकारका भय मत करो। भगवान कभी भी भेदभाव नहीं करते। विशेषरूपसे जो उनका भजन करते हैं, उसके हाथसे खानेके लिए तो वे सर्वदा ही लालायित रहते हैं। विदुरजीकी भक्तिके वशीभूत होकर ही उन्होंने दासीपुत्र होनेपर भी उनसे स्वयं माँगकर खाया। प्रभुका यही नित्य स्वभाव है कि वे अपने भक्तोंसे माँगकर खाते हैं। तुम भी तन-मनसे प्रभुकी सेवामें नियुक्त हो, इसीलिए वे तुम्हारी भक्तिके वशीभूत होनेके कारण ही तुमसे माँग रहे हैं। अतः निःसंकोच भावसे तुम प्रीतिपूर्वक प्रभुके लिए रसोई बनाओ। फिर भी यदि तुम्हें भय हो रहा है, तो तुम अन्न इत्यादिका स्पर्श किये बिना ही अर्थात् अन्न-सब्जी इत्यादिको चम्मच इत्यादिके द्वारा चलाये बिना ही रसोई बनाओ।

यह सुनकर ब्रह्मचारी अति प्रसन्न होकर घर वापस आ गये। स्नान इत्यादि कर सावधानीपूर्वक जल गरम किया तथा उसमें चावलके साथ ही गर्भ थोड़ (केलेके पेड़के अन्दरका कोमल भाग) डाल दिया। उसमें डालनेके पश्चात् वह विप्र भावविह्वल हो हाथ जोड़कर कीर्तन करने लगे—"जय कृष्ण गोविन्द गोपाल वनमाली।" उसी समय महापतिव्रता जगन्माता लक्ष्मीजीने अपने प्रिय भक्तके चूल्हेपर रखे हुए अन्नके प्रति दृष्टिपात किया। उनके शुभ दृष्टिपात करते ही वह अन्न (भात) अमृतसे अधिक सुस्वादु एवं सुगन्धित हो गया। कुछ समय पश्चात् प्रभु स्नान आदिसे निवृत्त होकर वहाँपर उपस्थित हो गये। वे अकेले नहीं आये थे। उनके साथ नित्यानन्द तथा कुछ भक्त भी थे। प्रभुने अपने भीगे वस्त्र बदले तथा स्वयं अपने हाथोंसे ही उस दिव्य अन्नको

आनन्दित होकर कृष्णको अर्पण किया। तत्पश्चात् भगवानको आचमन देकर स्वयं ही भोजन करनेके लिए बैठ गये। वहाँपर उपस्थित भक्तवृन्द प्रभुकी इस लीलाका दर्शनकर आनन्दसमुद्रमें डूब गये। सभी लोग शुक्लाम्बरके भाग्यकी प्रशंसा करने लगे— "अहो! धन्य है शुक्लाम्बर। जो प्रभु श्रीगौरसुन्दर ब्रह्मा आदिके द्वारा किये हुए यज्ञोंके भोक्ता हैं, वे प्रभु आज इस भिक्षुकका अन्न कैसे आनन्दित होकर ग्रहण कर रहे हैं।"

प्रभु खाते-खाते कहने लगे—"आजतक अपने जीवनमें मैंने ऐसा स्वादिष्ट भोजन नहीं खाया। मैं समझ नहीं पा रहा हूँ कि बिना स्पर्श किये शुक्लाम्बरने ऐसा स्वादिष्ट भोजन कैसे बनाया।"

शुक्लाम्बरपर प्रभुकी अपार कृपाका दर्शनकर भक्तलोग आनन्दसे क्रन्दन करने लगे और प्रभुने पुनः-पुनः आस्वादन लेते-लेते आनन्दसे भोजन किया। जो कृपा भिक्षुक शुक्लाम्बरको प्राप्त हुई, अभक्त और पापी देखें कि धन, जन एवं पाण्डित्यके द्वारा चैतन्यमहाप्रभुकी कृपा प्राप्त नहीं हो सकती। वे तो एकमात्र भक्तिके वशमें हैं, सभी शास्त्र ऐसी घोषणा करते हैं। इस प्रकार भोजन करनेके पश्चात् प्रभु बैठ गये तथा हँसते-हँसते ताम्बुल चर्वण करने लगे। प्रभुजीका अवशिष्ट प्रसाद प्राप्तकर भक्तलोग आनन्दसे नृत्य करने लगे। भिक्षुक शुक्लाम्बरके घरमें आनन्दकी लहरें उठने लगीं, इसका वर्णन करना बहुत कठिन है। कुछ समयतक कृष्णकथाओंकी चर्चा करके प्रभुने शयनलीला की। भक्तलोग भी वहींपर सो गये। उन भक्तोंमें प्रभुका एक परमप्रिय भक्त विजय दास था। नवद्वीपमें उनके समान लेखक और कोई नहीं था। उन्होंने प्रभुको अनेक ग्रन्थ लिखकर प्रदान किये थे। वे 'आँखरिया-विजय' के नामसे प्रसिद्ध थे। जब वह गभीर निद्रामें था, तो उसने स्वप्नमें देखा कि प्रभुने उसके शरीरपर अपना दिव्य हस्तकमल रखा। उसने उस दिव्य हस्तकमलके अपूर्व सौन्दर्यका दर्शन किया। वह हस्तकमल स्वर्णस्तम्भके समान अत्यन्त सुन्दर एवं बहुत लम्बा था। उसपर रत्नजड़ित आभूषण झलमल-झलमल कर रहे थे। उस हस्तकमलकी समस्त अंगुलियोंमें रत्नजड़ित अंगुठियाँ तो सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र एवं मणियोंके समान चमक रही थी। उस दिव्य हस्तकमलका दर्शनकर विजय परमानन्दित होकर चिल्लाने ही वाला था कि प्रभुने उसके मुखपर अपना हाथ रख दिया तथा कहने लगे—"मैं जितने दिन इस नवद्वीपमें हूँ, उतने दिनतक तुम किसीको भी इस विषयमें कुछ भी मत बताना। जब मैं नवद्वीपका त्यागकर चला जाऊँगा, तब सबसे कहना।" ऐसा कहकर प्रभु विजयकी ओर देखकर हँसते हुए अन्तर्धान हो गये। विजय हुँकार करते हुए उठ बैठा। उसकी हुँकार सुनकर अन्य भक्तलोग भी जग गये। सभी लोग विजयको पकड़कर शान्त करनेकी चेष्टा करने लगे। परन्तु विजय निरन्तर गर्जन करते जा रहा था। फिर कुछ समय पश्चात् आनन्दसे मूर्च्छित हो गया। विजयकी ऐसी अद्भुत स्थितिको देखकर भक्तोंको यह समझते देर नहीं लगी कि उसने प्रभुका कुछ वैभव दर्शन किया है। अतः उसके सौभाग्यका दर्शनकर वे क्रन्दन करने लगे।

उसी समय प्रभु भी उठकर वहाँपर आ गये तथा सबसे पूछने लगे—"क्या आपलोग कुछ अनुमान लगा सकते हैं कि विजयको क्या हुआ? अकस्मात् इसने सोते-सोते चीखना-चिल्लाना क्यों आरम्भ किया? ऐसा प्रतीत होता है कि इसपर गङ्गाजीका प्रभाव हो गया, क्योंकि यह गङ्गाजीका परमभक्त था, अन्यथा शुक्लाम्बरके घरमें कोई भूत इत्यादिका निवास है। विजयने क्या देखा, यह तो केवल कृष्ण ही जानते हैं।" ऐसा कहकर प्रभुने मुस्कराते हुए विजयके शरीरपर अपना हाथ रख दिया। प्रभुके हाथका स्पर्श पाते ही विजयकी मूच्छा भङ्ग हो गयी। यह देखकर वैष्णववृन्द हँसने

लगे। परन्तु यह देखकर भक्तलोग विस्मित हो गये कि उठकर बैठनेपर भी विजय जड़ जैसा ही हो गया। सात दिनतक वह इसी स्थितिमें ही रहा। न किसीसे कुछ बोलता, न कुछ खाता, न सोता। यहाँतक कि उसकी शौच आदि शारीरिक क्रियाएँ भी बन्द हो गयीं। बस, सब समय वह पागलोंकी तरह यहाँ-वहाँ घूमता रहता था। सात दिनके बाद उसकी स्थिति सामान्य हुई।

बलरामजीके भावमें आविष्ट

प्रभु प्रायः सभी अवतारोंके भावमें आविष्ट हो जाते थे। परन्तु कुछ समय पश्चात् उनका आवेश शान्त हो जाता था। परन्तु जब वे बलदेवजीके भावमें आविष्ट होते थे, तो उनका आवेश बहुत समय तक रहता था। एक दिन प्रभु अपने घरमें ही भक्तोंके मध्य विराजमान थे। अकस्मात् वे "मद लाओ, मद लाओ" कहते हुए हुँकार करने लगे। यह देखकर नित्यानन्दजी प्रभुके भावको समझ गये। उन्होंने अति शीघ्र एक घड़ा गङ्गाजल लाकर प्रभुके हाथोंमें पकड़ा दिया। उस समय प्रभु भयङ्कर गर्जन कर रहे थे। उनके गर्जनकी ध्वनिसे नवद्वीप ही नहीं, त्रिभुवन काँपने लगा। हुँकार करते हुए जब उन्होंने ताण्डव नृत्य आरम्भ किया, तो ऐसा लगने लगा कि पृथ्वीके टुकड़े-टुकड़े हो जायेंगे। सारा ब्रह्माण्ड टलमल-टलमल करने लगा। बलरामजीके भावमें प्रभुके ऐसे उदण्ड नृत्यका दर्शनकर भक्तलोग भयसे थरथर काँपने लगे। वे लोग बलरामजीसे सम्बन्धित कीर्तन करने लगे। उस कीर्तनको श्रवणकर प्रभु आनन्दसे मूर्च्छित हो गये। कुछ क्षण पश्चात् जब उनकी मूर्च्छा भङ्ग हो गयी, तो वे आङ्गनमें चारों ओर दौड़ने लगे। उस समय बलरामजीके आवेशमें प्रभुजीके सौन्दर्यका दर्शनकर भक्तोंका मन ही नहीं भर रहा था। एक तो प्रभुका मुखचन्द्र है ही अपूर्व सुन्दर, परन्तु आज तो उनके मुखचन्द्रकी शोभा और भी अधिक अनिर्वचनीय हो रही थी। उनके मुखसे बार-बार "नित्यानन्द, नित्यानन्द" निकल रहा था। वे रोते-रोते कहने लगे—"मेरे प्राण निकल रहे हैं।" उसी समय वे प्रद्युम्नजीके भावमें आविष्ट होकर बलरामको ताऊजी (पिताके बड़े भाई) के रूपमें मानकर कहने लगे—"ताऊ बलरामजी मुझे मारते हैं तथा मेरे पिता कृष्ण मेरी रक्षा करते हैं।" ऐसा कहकर प्रभु पुनः मूर्च्छित हो गये। यह सुनकर एवं देखकर भक्तलोग आनन्दसे क्रन्दन करने लगे।

गोपीभावमें आविष्ट

कभी-कभी प्रभु गोपियोंके विरहभावमें आविष्ट हो जाते थे। उस समय वे जैसे चीत्कार करते हुए रोते थे, उसे श्रवणकर तो अनन्त ब्रह्माण्ड विदीर्ण हो जाते थे। कृष्णके मथुरा चले जानेपर आकाशमें चन्द्रका दर्शनकर श्रीकृष्णचन्द्रके विरहमें गोपियोंकी जैसी अवस्था होती थी, ठीक वैसी ही अवस्था प्रभुकी भी हो जाती थी। वे भक्तोंके गलेसे लिपटकर फूट-फूटकर रोने लगते। प्रभुको इस प्रकार भावविह्वल होकर रोते देख, घरके भीतर शचीमाता क्रन्दन करने लगतीं। (क्रमशः)

सावनकी आई बहार

(वर्ष ४७, संख्या ५, पृष्ठ ११६ से आगे)

—डा. मधु खण्डेलवाल

इधर वृषभानुपुरमें राधाजीके हृदयमें श्रीकृष्णका अनुरागरूप महान अनल प्रज्वलित होकर उत्कर्षकी पराकाष्ठापर मूर्च्छा परम्पराको प्रकट करने लगा। ऐसी ज्वालाका अनुभव किसी गोपीने नहीं किया था। तत्कालीन वर्षाकी धाराओंको भी तिरस्कृत करनेवाले अश्रुरूप झरनोंने उनके वस्त्रोंको पूरी

तरह भिगो दिया था। प्रेमरूप कामबाणोंके आघातसे राधा धूमधुमेर पर पहुँच गईं, तीव्र 'लय' (विनाश) को प्राप्त होती राधाको कोई भी सहचरी छोड़ न सकी। अतः कृष्ण तक संदेश ही नहीं पहुँचा।

इधर गोकुलमें श्रीकृष्ण अपने मनमन्दिरमें विराजमान श्रीराधिकाके साथ अन्तःकरणमें ही विहार करते रहे, बाह्यवृत्तिसे अनुभावित होकर वात्सल्य रससे श्रीनन्दादिको, सख्य रससे श्रीदामादिको और दास्य रससे रक्तक-पत्रकको सेवाका अवसर देते रहे।

दूसरे दिन श्रीकृष्ण इसी वर्षा ऋतुमें अपने सखाओंसे सेवित होकर विहार करने लगे। गिरिराज श्रीगोवर्धनकी परम रसमयी तलहटियोंमें सुगन्धमय तृणको सुगन्धयुक्त गायें चर रही थीं, कृष्ण धाराधरों (बादल) को धारण करनेवाले गिरिराजकी शिलाजीत स्फटिकमणिके गण्डशैल पर आसीन थे— सखागण कृष्णको विविध अद्भुत चेष्टाओंसे हँसाने लगे। शिखरोंपर छाये मेघसमूहको अपने हाथोंकी लकुटियोंसे आकर्षित करने लगे। उधर लठियासे छिड़े हुए मेघोंने ग्वाल-बालोंपर कुपित होकर चमकती हुई बिजली रूप आँखें दिखाकर उनको भयभीत कर दिया। भयके कारण वे थोड़ी दूर भाग गए और जोरसे कहने लगे—अरे भइया सखाओं! आओ, तुम्हें भी तमाशा दिखाऊँ और फिरसे मेघोंको पकड़नेके लिए तत्पर हो गए। यह सब तो अपने सखाओंको सुखी करनेके लिए श्रीकृष्णकी मेघोंके लिए प्रेरणा थी। अब आनन्दके 'कन्द' (मूल) स्वरूप श्रीकृष्ण दर्पणके समान स्वच्छ कन्दराके उदरको देखते हुए श्रेष्ठ गजेन्द्र शावकके समान बैठ गए। सखा कौतुकी होकर गुफाके पास हुँकार करने लगें। गुफामें ध्वनि प्रतिध्वनि होने लगी। ग्वाल-सखा विस्तारपूर्वक ऊँचे स्वरसे कहने लगे—तू कौन है? क्या बोल रहा है? नहीं मानोगे क्या? नहीं मानूँगा! सखा श्रीकृष्णको प्रसन्न करनेमें सफल हुए।

वर्षारूप लक्ष्मी अपने हास्यके समान जब ओलोंकी वृष्टि करने लगी, तब ओलोंका समूह गुफासे बाहर गिरने लगा। अब ग्वाल ओलोंको चुन-चुनकर अपने-अपने हाथोंमें भरकर श्रीकृष्णके चरणोंके निकट भेंटकी तरह रखने लगे।

वर्षाके थमने पर पीताम्बरधारी, प्रियकमाला (कदम्बोंकी श्रेणी) धारा श्रीकृष्ण गौओंको बुलाने लगे—हे शबलि! हे कालि! हे धवले....इत्यादि। सभी श्रीगोवर्धनकी निकटवर्त्ती भूमिमें आ गईं। जब दौड़ दौड़कर आने लगीं तब आपने कहा—अरी गैयाओ, दौड़ो मत! दौड़ो मत। श्रीकृष्णकी इस सुमधुर कोमल ध्वनिको सुनकर समस्त गौएँ धीरे-धीरे श्रीगोवर्धनकी उपत्यकाके निकट चली आईं।

इस प्रकार वर्षाऋतुमें श्रीकृष्ण प्रातः काल माता-पिता आदि गुरुजनों द्वारा दिये गये लालन-पालनसे स्वयं भी उन्हें सम्मान देते हुए उनके निकट रहते थे। सायंकाल गोधूलि बेलामें लौट आते थे, परन्तु मध्याह्न एवं आधी रात्रिके समय तो गोपियोंके साथ विहार करते रहते थे।

इस वर्षा ऋतुमें राधा एवं अन्य गोपियोंके अन्तःकरणमें किसी अनिर्वचनीय भाव 'कामधुरा' उदित हो गया। यह अति आकर्षक, अति सुगन्धित 'कामधुरा' पूर्वानुराग भावको त्यागकर सौभाग्यसे परिपाककी अवस्था तक पहुँच गई थी। श्रीकृष्ण भी स्वयं उसकी सुरक्षा कर रहे थे।

मध्य रात्रिमें राधा नीलनिचोल (नीली ओढ़नी) एवं नीली अँगिया धारण किये हुए थे कोई अनुराग-रूपिणी दूती उन्हें ले जा रही थी, जिसका रास्ता स्वयं योगमाया दिखा रही थीं। प्रथम अभिसार था, अतः प्रेममयी विवशतासे "मैं कहाँ जा रही हूँ" इस बातको स्वयं भी नहीं जान रही थीं, जब कि कन्दर्पकी प्रेमात्मक चेतनाने ही संकेतस्थानका परिचय करा दिया था। कृष्ण ध्यानावस्थामें राधासे कह रहे थे—हे प्रिये! आज

तुम उस निकुञ्जमें अभिसार करना और राधा भी ध्यानावस्थामें बोल उठीं—हाँ, मैं संकेतानुसार वहीं आ जाऊँगी। संकेत स्थल पहुँचनेपर अति घबड़ाकर सखीसे कहने लगी—मैं यहाँ आकर भी क्या करूँगी, कितनी विकल अवस्था है मेरी। बरसातके आवागमनके समान ही राधा कुछ दूर चलती है और पुनः लौट आती है, नवाङ्गना है, उत्कण्ठा है, प्रेमकी कुटिलता भी।

प्रेममयी सहचरियोंने प्रोत्साहित किया—"हे राधे! केवल आज एकबार अपने करकमलका स्पर्श प्रियतमको दे दीजिए, कल नहीं भेजेंगी। इनकी व्याकुलताको तो थोड़ा देखिए, अपने प्रेमीपर दया कीजिए।" ऐसा कहकर जब सहचरियाँ जाने लगीं, तब राधा कातर होकर बोलीं—"अरी सखियो! इनके हाथमें पटककर बाहर मत जाओ।" अतः वे केलिभवनके द्वारपर स्थित रहीं।

कृष्ण केलिभवनमें जब राधाको देखते तो वह आँखें मूँद लेतीं, स्वागत प्रश्न करते तो चुपचाप सुनती रहतीं, स्पर्श करते तो दूर हट जातीं, उच्चकोटिकी नायिका ऐसी ही होती हैं। राधाकी प्रतिकूलता श्रीकृष्णके लिए तो कौतुक बन जाती थी। पदार्थकी दुर्लभता रस बन जाती है।

जो मिलन कार्य सखियोंके हाथोंसे नहीं हुआ, कृष्णके अनुनय मन्त्रोंसे नहीं हुआ, कामदेवके विश्वविजयी बाणोंसे नहीं हुआ, वह वर्षा ऋतुसे अनायास ही सम्पन्न हुआ। उस समय भारी वर्षा होने लगी, बिजली चमकने लगी, गर्जन भी होने लगा और राधिका डरकर श्रीकृष्णके कण्ठसे लग गईं। इस प्रकार कादम्बिनी अर्थात् मेघमालाने प्रौढ़ा सखीके समान गर्जन-तर्जन कर राधा-कृष्णका मिलन करा दिया। इस अवस्थामें राधा सुधा-रस-धारा प्रतीयमान हो रही थीं।

सखियाँ मेघोंको गौरव प्रदान करते हुये कहने लगी—हे घनरसद! तुम सचमुच ही 'रसद' (रस देनेवाले या जल देनेवाले) हो, वर्णसे तुम घनश्यामके मित्र हो, मित्रतारूप 'करण' से 'चित्त' ही हो, क्योंकि तुमने हमारी दुराराधा सखी राधाको श्रीकृष्णके कण्ठ तक पहुँचा ही दिया। आप सार्थक नामवाले हैं।

इस प्रकार सकल सौभाग्य-सौन्दर्य-समृद्धि एवं आनन्दसे परिपूर्ण भगवान् श्रीकृष्ण जब इस रसमय वर्षाके समय सभी सखियोंके साथ विलास कर रहे थे, तब अपनी सेवाके समाप्त हो जानेपर मेघ दुःखी होते हुए आकाशमें चारों ओरसे सिमटने लगे। वर्षा ऋतु समाप्त हुई, मेघ आकाशसे छिटक कर दूर भाग गये। ⑧

मेंढ़कका फटना

एक गड्ढेमें एक मेंढ़क वास करता था। एक दिन उसका पुत्र किसी जलाशयके पास गया। उसने राजाके हाथीको देखा। देखनेके तुरन्त बाद मेंढ़कका बच्चा अपनी माताके पास आया और आश्चर्यपूर्वक कहने लगा—मैंने आज बहुत बड़ा एक जन्तु देखा।

उसकी माँने पूछा—वह कितना बड़ा जन्तु था।

शिशु मेंढ़कने कहा—तुम्हारी अपेक्षा वह बहुत बड़ा था।

माँ मेंढ़क शरीर फुलाकर बोली—क्या इतना बड़ा?

शिशु मेंढ़क बोला—और बड़ा, इससे और बड़ा।

शरीर फुलाकर पूछा उससे—इतना बड़ा?

मेंढ़कके बच्चेने कहा उससे और बड़ा।

पुनः और शरीर फुलाकर माँ मेंढ़क कहती है—इससे बड़ा? मेंढ़ककका बच्चा कहता है—और भी बड़ा। इस प्रकार मेंढ़क क्रमशः अपने शरीरको फुलाती गयी, बच्चा क्रमशः और बड़ा और बड़ा कहता गया। सीमासे बाहर जब उसने शरीर फुलाया तो बहुत जोरसे आवाज हुई और उसका पेट फट गया।

जो क्षुद्र जीव हैं, अपनेको परब्रह्म (पर–श्रेष्ठ, ब्रह्म! बृहत् अर्थात् जिनके समान अथवा जिनकी अपेक्षा वृहत् और कुछ भी नहीं है, वृहत् कुछ भी नहीं) की कल्पना करते हैं अथवा अनर्थयुक्त क्षुद्र साधक जीव होकर सिद्धिके समान अपनेको समझते हैं। उनकी गति भी मेंढ़कके समान होती है और अन्तमें विनाशको प्राप्त होते हैं। श्रीमन्महाप्रभु कहते हैं—

ज्ञानी जीवन मुक्त दशा पाइनु कीट माने।
वस्तुतः बुद्धि शुद्ध नहे कृष्ण भक्ति बिने॥
मायाधीश मायावश ईश्वर जीवे भेद।
हेन जीवे ईश्वर–सह कह त अभेद॥
प्रभु कहे विष्णु–विष्णु इहा न कहिबा।
जीवाधमे कृष्ण ज्ञान कभु न करिबा॥
संन्यासी चित्कण जीव किरण कण सम।
षडैश्वर्य पूर्ण कृष्ण हय सूर्य सम॥
जीव ईश्वर तत्व कभु नहे सम।
जलदाग्नि राशि जैछे स्फूलिङ्गेर कन।
जेई मूढ़ कहे—जीव ईश्वर हय सम।
सेइ त पाषण्डी हय दण्डे तारे यम॥

ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपादजीने मेंढ़क फटनेकी कथासे शिक्षा देते हैं कि मैं ब्रह्म हूँ, मैं सिद्ध हूँ, मैं वैष्णव हूँ, मैं पण्डित हूँ, मैं समझदार हूँ—ऐसा अहङ्कार जीवके पतनका कारण होता है। जिनके हृदयमें शुद्ध भक्तिका उदय होता है, जो अपने हृदयमें गुरु–वैष्णवोंकी पदधूलिकी महिमाकी उपलब्धि करते हैं, उनके हृदयमें सदा अकपट दैन्य भरा रहता है। जीव कभी भी परब्रह्म या ब्रह्म नहीं हो सकता।

(श्रील प्रभुपादके उपख्यान उपदेशोंसे, अनुवादक–सविता देवी दासी)

जयपुर प्रचार प्रसङ्ग

विश्वव्यापी श्रीमन्महाप्रभुजीकी वाणीके प्रचारक एवं श्रीगौड़ीय मठोंके प्रतिष्ठाता नित्यलीलाप्रविष्ट ॐविष्णुपाद श्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर प्रभुपादके अन्तरङ्ग परिकर नित्यलीलाप्रविष्ट ॐविष्णुपाद श्रीलभक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीके अनगृहीत श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीने सितम्बर १८ को दिल्लीसे शताब्दी एक्सप्रेससे यात्रा कर गुलाबी नगरी जयपुरमें प्रातः १०–४० बजे पदार्पण किया। रेलवे प्लेटफार्म पर पहुँचते ही सम्पूर्ण प्लेटफार्म हरिनाम संकीर्तनसे गूँज उठा। शताब्दी एक्सप्रेसके अवतरण द्वारसे लेकर प्लेटफार्मके निकासी द्वार और आगे टैक्सी स्टैण्ड तक जयपुरके भक्तोंने सम्पूर्ण मार्गको गुलाबकी पंखुड़ियोंसे ढक दिया। शंख, करताल और मृदङ्गकी ध्वनिके साथ सङ्कीर्त्तनके द्वारा भक्तवृन्द अत्यधिक आनन्द

एवं उत्साहके साथ श्रील महाराजजीका स्वागत कर रहे थे। स्टेशन पर उपस्थित जनता, शताब्दी एक्सप्रेसके यात्री, सभी श्रीलमहाराजजीके स्वागतको विस्फारित नेत्रोंसे देख रहे थे। भक्तोंने श्रील महाराजजीको फूल मालाओंसे ढक दिया। स्टेशनमें इतने सुन्दर स्वागत समारोहको देखकर आसानीसे प्रतीत हो रहा था कि जयपुरके प्रभु श्रीराधागोविन्ददेवजी अपने निजजनका अभिनन्दन करनेके लिए सभीके अन्दर ऐसी प्रेरणा प्रदान कर रहे हैं। जयपुरमें यह अभिनन्दन अभूतपूर्व था। जयपुरके विभिन्न उपनगरोंसे अनेक गणमान्य नागरिक श्रीलमहाराजजीका स्वागत करनेके लिए वहाँ उपस्थित थे।

रेलवे स्टेशनसे महाराजजी मालवीय नगर स्थित डा. चोपड़ाके वासस्थानपर पहुँचे, जहाँ उपनगरके शिक्षित और सम्भ्रान्त लोगोंकी उपस्थितिमें दो दिनतक धर्मकी आवश्यकता, जीवका धर्म और सनातन धर्म आदि विषयोंपर प्रवचन कर सभीके मनको आकृष्ट किया।

प्रमुख रूपसे सप्तदिवसीय कार्यक्रम १९ से २५ अक्टूबर तक हनुमान नगर स्थित हनुमान वाटिकामें हुआ, जहाँ जयपुरके विशिष्ट व्यवसायी और अधिकारी लोग रहते हैं। देश-विदेशके सैकड़ों कृष्णभक्तोंके द्वारा प्रतिदिन प्रातः ६ बजेसे नगर संकीर्तन होता था, जिसमें स्थानीय भक्तोंका भी योगदान था। प्रतिदिन सायंकाल हनुमान वाटिकामें हनुमानजीके आराध्य भगवान श्रीरामकी मनोहारी कथाओंको पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रील भक्तिवेदान्त नारायण महाराजके मुखकमलसे श्रवणकर स्थानीय सभी लोग अपने भाग्यकी भूरि-भूरि प्रशंसा कर रहे थे।

प्रातःकाल पाठ-कीर्तन श्रीगोविन्ददेव मन्दिरके निकट कँवर नगरमें श्रीपाद तीर्थ महाराजके द्वारा होता था। दिनांक २१-९-०३ को प्रातः १० बजे नाहरगढ़ रोड स्थित कपड़ेके बड़े व्यापारीके वासस्थान पिलानी हाउसमें श्रीलमहाराजजी एवं सभी भक्तोंका हार्दिक स्वागत किया गया। तत्पश्चात् मधुर स्वरसे श्रीकृष्णदास ब्रह्मचारी, तमालकृष्ण ब्रह्मचारी आदिने कीर्तन किया।

श्रीलमहाराजजीने यहाँ अपने प्रवचनमें कहा कि संपत्ति, पुत्र आदिसे कोई सुखी नहीं हो सकता। वही सुखी होगा, जो भगवानका भजन करेंगे। शंकर और हनुमान आदि भगवानका भजन करते हैं, किन्तु भगवान किसीका भजन नहीं करते। महाराजजीने आगे कहा कि यदि सुखी होना चाहते हो, तो भगवानका भजन आजसे ही प्रारम्भ कर देना चाहिए। भजनमें एक पैसा भी खर्च नहीं होता है। चलते-फिरते, उठते-बैठते और दुकान आदिपर सब समय महामन्त्रका जप किया जा सकता है। इससे हर प्रकारकी विपत्तिसे छुटकारा प्राप्त होता है।

हनुमान वाटिकामें महाराजजीने अपने प्रवचनमें कहा कि सभी मतावलम्बी अपनी रीतिसे भजन करें, पर प्रेमसे रहें। कृष्ण ही नन्हेंसे बालक, माखन चुरानेवाले सुप्रीम हैं। मर्यादाकी शिक्षा देनेके लिए वे ही त्रेतायुगमें रामरूपमें आये। वही अल्लाह और खुदाके रूपमें हैं। वे प्रेममूर्ति हैं—रसो वै सः। मर्यादा एक बन्धन है। इसमें दयाका विस्तार पूर्णरूपसे नहीं हो सकता। राम व उनके भक्त मर्यादामें

बँधे हैं। राम हनुमानके कन्धेपर बैठ सकते हैं, परन्तु हनुमान रामके कन्धेपर नहीं बैठ सकते। हनुमान अपना जूठन रामको नहीं दे सकते। पर कृष्ण सखाओंका जूठन खा लेते हैं, क्योंकि यहाँपर मर्यादा नहीं है, बल्कि मधुर प्रेम है। भगवान गोलोक धामसे पधारते हैं, अपने परिजनोंको भेजकर जगतका कल्याण करते हैं। शरणागतिसे भगवानको जाना जा सकता है।

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो
न मेधया न बहूना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्य–
स्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्॥

ज्ञान, कर्मसे भगवानको नहीं जाना जा सकता। भगवत् कृपासे ही उनको जाना जा सकता है।

जयपुरके इस प्रचारमें श्रीकुलदीप सिंह कंग और श्रीमती निर्मलाजी धन्यवादके पात्र हैं।

(संवाद प्रस्तुति—श्रीओमप्रकाश ब्रजवासी)

विरह तिथि

दिनांक १० अक्टूबर, २००३ को शारदीय पूर्णिमाके दिन श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके संस्थापक एवं आचार्यकेशरी नित्यलीलाप्रविष्ट ॐविष्णुपाद १०८श्री श्रीलभक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीका विरह तिथि उत्सव श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें सम्पन्न हुआ, जिसमें ब्रजमण्डलके सभी वैष्णवोंको आमन्त्रित किया गया था। उनकी सेवा, अर्चन और पुष्पाञ्जलिके पश्चात् उनके शिष्यवर एवं श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके उपसभापति पूज्यपाद श्रीलभक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीने उनके अतिमर्त्य जीवनचरित्र पर प्रकाश डालते हुए कहा कि वे श्रीलप्रभुपादके मनोभीष्ट सेवक थे। गुरुनिष्ठाका महान आदर्श उन्होंने प्रस्तुत किया। उन्होंने सहजिया, मायावाद आदि भक्तिविरोधी मतवादोंका खण्डनकर शुद्ध भक्तिकी प्रतिष्ठामें अग्रणी भूमिका निभायी, जिसके कारण उनको गौड़ीय सारस्वत समाजने 'आचार्यकेशरी' एवं 'पाषण्डगजैकसिंह' उपाधिसे विभूषित किया।

श्रीमद्भक्तिवेदान्त यति महाराजका स्वधामगमन

अत्यन्त खेदके साथ सूचित किया जा रहा है कि श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके अन्यतम प्रचारक त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त यति महाराज विगत १०–९–२००३, बुधवार, विश्वरूप पूर्णिमा तिथिके दिन मध्याह्न कालमें श्रीहरिसंकीर्तनके मध्य अपने भजनोचित धाममें गमन कर चुके हैं। उनके इस आकस्मिक तिरोधानसे समितिके समस्त वैष्णव समितिके प्रति उनके अवदानको स्मरणकर विरह–व्याकुल हुए हैं।

पूर्वबंग (अभी बंगलादेश) स्थित मयमनसिंह जिलेके फूलबाड़ीयामें १९४६ खृष्टाब्दमें वे पिता श्रीरासविहारी देवनाथ तथा माता बिन्दुवासिनी देवीको आश्रयकर आविर्भूत हुए। पितामाताने उनके साधु–लक्षणोंको देखकर उनका नाम जितेन्द्र रखा। श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रतिष्ठाता–आचार्य नित्यलीलाप्रविष्ट ॐविष्णुपाद अष्टोत्तरशत श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीके श्रीचरणाश्रित श्रीविश्वरूप दास ब्रह्मचारी (परवर्ती

कालमें श्रीमद्भक्तिवेदान्त विष्णु महाराज) का सङ्ग व सान्निध्य लाभकर १९६९ खृष्टाब्दमें श्रीनवद्वीप धाममें उपस्थित हुए। सन् १९६८ में श्रीसमितिके प्रतिष्ठाता आचार्य नित्यलीलामें प्रवेश करनेसे उनके शिष्य त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज समितिके सभापति-आचार्य पदमें अभिषिक्त हुए थे। उन्हींसे जितेन्द्र दीक्षा ग्रहणकर श्रीजयदेव ब्रह्मचारीके रूपमें एवं परवर्ती कालमें उन्हींसे ही संन्यास ग्रहणकर त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त यति महाराजके नामसे परिचित हुए।

उन्होंने भारतवर्षके आसाम, त्रिपुरा, मेघालय, मणिपुर, नागालैंड तथा पश्चिमबंग आदि राज्योंमें श्रीचैतन्यवाणीका प्रचार किया है। वे वास्तविक तृणादपि सुनीच, तरोरपि सहिष्णु एवं अमानी मानद थे। संख्यापूर्वक नामग्रहण, हरिकथा कीर्तन एवं प्रचार आदि सेवामें वे इतने व्यस्त थे कि अपने आहार-विश्राम आदि विषयमें प्रायः उदासीन रहते थे।

अन्तमें देखा गया कि वे एक मारात्मक कैन्सर रोगसे पीड़ित हैं। चिकित्सकोंके द्वारा उनकी व्याधिको चिकित्सातीत बतानेपर तमिलनाडुके भेलोरसे प्रत्यावर्तनकर वे अपने गुरुपादपद्म एवं वैष्णवोंके निकट कृष्णनामरूपी औषधिकी प्रार्थना करने लगे। नवद्वीप स्थित समितिके मूल मठ श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठमें वैष्णवलोग उनके पास प्रत्यह हरिनामकीर्तन तथा श्रीमद्भागवतादि भक्तिग्रन्थ पाठ करते थे। कुछ ही दिनोंके बाद श्रीविश्वरूप पूर्णिमाके दिन मध्याह्न ११:५० बजे हरिनाम करते हुए स्वधाममें सिधार गये। मात्र ५७ सालकी उम्रमें उनके अप्रकटका संवाद पाकर सभी वैष्णव अत्यन्त दुःखित हुए। नवद्वीपस्थित समितिके श्रीत्रिगुणातीत समाधि आश्रम परिसरमें सत्क्रियासार-दीपिकाके अनुसार नामसंकीर्तनके मध्य उनको समाधि दी गयी। (निजस्व संवाददाता)

श्रीब्रजमण्डल परिक्रमा

दिनांक १० अक्टूबर, २००३ से गौड़ीय वेदान्त समितिकी शाखा श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा द्वारा एक मासव्यापी चौरासी कोश ब्रजमण्डल परिक्रमाका आरम्भ मथुरामें यमुनाजीके विश्राम घाटपर संकल्पके साथ हुआ। मथुराके श्वेतवराह, श्यामवराह, मथुरादेवी, दीर्घविष्णु, आदिकेशव, श्रीकृष्ण जन्मस्थान, पोतरा कुण्ड, भूतेश्वर, रंगेश्वर, गोकर्णेश्वर और पिपलेश्वर आदिका दर्शन करके ब्रजमण्डल परिक्रमा पार्टी दिनांक ११ अक्टूबरको वृन्दावन पहुँची। इस बार विश्वके सभी देशोंके लगभग एक हजार भक्त सम्मिलित हुए हैं। नित्यप्रति प्रातः एवं सायंकाल मंगलारती, तुलसी परिक्रमाके पश्चात् सुमधुर कण्ठसे हिन्दी, बंगला एवं संस्कृतमें कीर्तन हो रहे हैं। इसके बाद श्रीगौड़यी वेदान्त समितिके उपसभापति श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजके द्वारा प्रवचन हो रहा है, जिसमें हजारोंकी संख्यामें भक्तलोग उपस्थित रहते हैं। महाराजजीने अपने प्रवचनमें कहा कि कार्तिक व्रतको दामोदर व्रत, ऊर्जा व्रत, नियम सेवा भी कहते हैं। कार्तिक मासकी अधिष्ठात्री देवी श्रीमती राधिकाजी हैं। इसी महीनेमें माँ यशोदाने जगतके नियन्ता श्रीकृष्णकी कमरको रस्सीसे बाँधा था तथा सखियोंने नटखट श्रीकृष्णको श्रीराधाजीके साथ बाँध दिया था, इसलिए उनको दामोदर कहते हैं। उनकी स्तव-स्तुति, कीर्तन आदि करनेसे उनके प्रति लोभ उत्पन्न होता है। इसी कार्तिक माहमें दामबन्धन, शारदीय लीला और ब्रज कुमारियों द्वारा कात्यायनी व्रत किया गया था। जो इस माहमें यमुना-पूजन और स्नान श्रद्धापूर्वक

करते हैं, उन्हें यम महाराज स्पर्श नहीं करते। कार्तिक मासमें ही एकादशीको गोविन्ददेवका अभिषेक हुआ था। इसी माहमें इन्द्रने वृष्टि की और उस वृष्टिसे कृष्णने ब्रजवासियोंकी रक्षा की। इस माहमें गौओंकी विशेष पूजा होती है। अन्नकूटके दिन भगवान कृष्णने स्वयं गोवर्धन रूपसे भोग ग्रहण किया था।

कार्तिक मासमें विविध असुर—अघासुर, बकासुर, मुष्टिक, दन्तवक्र और कंसका वध हुआ। कार्तिकके तृतीयाके दिनसे सात दिनतक गोवर्धनको धारण किया। इसी महीनेमें इन्द्रने कृष्णका अभिषेक किया। इसी माहमें केशी और व्योमासुरका वध किया गया। अक्रूर भी इसी माहमें कृष्णको लेने ब्रजमें आये। भावुक व्यक्ति रूपानुग वैष्णवोंके आनुगत्यमें स्तव-स्तुति करते हुए राधाकृष्णका कीर्तन करते हैं।

प्रातःकाल महाराजजी दामोदराष्टकका पाठके अन्तर्गत कृष्णकी विभिन्न बाललीलाओंका वर्णन तथा सायंकाल बृहद्भागवतामृतका पाठ बहुत सुन्दररूपसे कर रहे हैं।

कृष्ण बड़े नटखट हैं। उनका गोपी एवं सखाओंके साथ नटखट भाव है। चोरी करके माखन खाना उनको अच्छा लगता है। गोपियाँ उलाहना देनेके लिए माँ यशोदाके पास आती हैं। माँने कृष्णका बाहर जाना बन्द कर दिया। किन्तु दधिमन्थनके समय कृष्णका ध्यान कर रही हैं, आँखोंसे आँसू गिर रहे हैं और गा रही हैं—'गोविन्द दामोदर माधवेति'। कृष्ण जोरसे रोने लगे। माँ कृष्णको गोदीमें उठाकर स्तनपान कराने लगीं।

भगवान कृष्ण गोपियोंसे कहते हैं कि तुम अपने पतियोंके पास लौट जाओ, तो उत्तरमें गोपियाँ कहती हैं कि आप हमारा मन लौटा दीजिए। आपने जब त्रिभङ्ग रूपसे वेणुवादन किया, तब हम यहाँ आईं। गोवत्स, पक्षी, मयूर, कोकिल, मृग आदि अपने-अपने धर्मोंको छोड़कर परधर्मको ग्रहण कर लेते हैं। यमुनाजी भी अपना धर्म छोड़कर स्थिर हो गयीं। पत्थर भी पिघल जाता है।

जिनके भयसे मृत्यु भी भाग जाती है, ऐसे प्रभु जगतके नियन्ता श्रीकृष्ण माँ यशोदाके डरसे भाग रहे हैं। पकड़े जानेपर कृष्ण रोने लगे। माँ डंडेसे मारती हैं और रोते समय कृष्णकी आँखोंसे गङ्गा-यमुना बहने लगी और कज्जल कपोलोंपर फैल गया, ग्रीवाकी माला कम्पन करने लगी। कृष्ण ढीठ है, चञ्चल है, लम्पट है, कहीं यमुनामें कूद न जाये, इसलिए माँ यशोदा रस्सीसे बाँधनेका प्रयत्न करती है। हर बार रस्सी मँगवानेपर भी वह दो अंगुल कम पड़ जाती है। तब भी वे बँध नहीं पा रहे हैं। यह दो अंगुल है—पहला साधकोंकी चेष्टा और दूसरा भगवत् कृपा। भगवान यशोदा मैयाके वात्सल्य प्रेममें वशीभूत होकर स्वयं बँध गये। भगवानकी इन लीलाओंका जो आस्वादन करता है, उसे कृष्णप्रेम अवश्य प्राप्त होगा।

श्रीलमहाराजजी सायंकालके प्रवचनमें बतला रहे हैं कि जगतमें ऐसा कोई नहीं है कि जो गोपियोंकी महिमाका वर्णन कर सके। कृष्ण कह रहे हैं—मैं यदि ब्रजमें जाऊँ, तब भी गोपियोंको सन्तोष नहीं होगा। मुझे देखकर वे मूर्च्छित हो जायेंगी। गोपियोंको तृप्ति इसलिए नहीं होती, क्योंकि उन्हें भावी विरहकी चिन्ता है। गोपियाँ सोचती हैं कि कृष्ण मथुरा चले जायेंगे तो उन्हें यह विरह सहन नहीं होगा। लम्बी अवधिके विरहकी पूर्ति एक दिनमें नहीं हो सकती। जैसे एक माहतक उपवास करके स्वास्थ्यकी प्राप्ति

एक दिनके भोजनसे नहीं हो सकती। जिसने कृष्णका दर्शन ही नहीं किया, उसे क्या विरह होगा? श्रीकृष्णके सब प्रकारके भक्तोंमें श्रीमती राधिकाजीको ही सबसे अधिक विरहका अनुभव होता है। भजन करते–करते व्यक्ति भगवानके दर्शन करनेके योग्य बन जाता है। जैसे बिल्वमङ्गल वृन्दावन आये, भजनके प्रभावसे वेश्याके प्रति उनकी आसक्ति दूर हो गयी। नारदजी भी कीर्तन करते–करते साक्षात्कारके योग्य हुए। किन्तु मायिक आँखोंसे चिन्मय श्रीकृष्णका दर्शन नहीं किया जा सकता। आँखमें प्रेमभक्तिका अञ्जन लगानेसे उनका दर्शन सम्भव है। तन, मन, वचनसे हरि, गुरु, वैष्णवोंकी प्रीतिपूर्वक सेवा करनेसे हम प्रेमभक्तिको प्राप्त कर सकते हैं।

दिनांक १३ अक्टूबरको चौरासी कोस ब्रजमण्डल परिक्रमा पार्टी पहला पड़ाव वृन्दावनसे ११ बसों तथा निजी वाहनोंमें मधुवनका दर्शन करने गयी। यहाँ महाराजश्रीने अपने प्रवचनोंमें बताया कि सत्ययुगमें भगवानने मधु नामक दैत्यका यहींपर ही वध किया था। अतः उनका नाम मधुसूदन हुआ। इस गाँवमें ध्रुवटीला है, जिसपर बालक ध्रुव एवं उनके आराध्य चतुर्भुज नारायणका श्रीविग्रह विराजमान है। यह ध्रुवकी तपस्या स्थली है। इसके बाद सभी भक्त तालवन पहुँचे, जहाँ कृष्ण–बलरामने काम और अज्ञानताके प्रतीक धेनुकासुर और उसके साथी असुरोंका वध किया था। बलदेव प्रभु अखण्ड गुरुतत्त्व हैं। गुरुदेवकी कृपासे ही साधक अज्ञानतासे अपनी रक्षा कर सकता है। बहुलावनमें भक्तोंने सत्यनिष्ठ बहुला गायकी कथाका श्रवण किया।

दिनांक १४ अक्टूबरको परिक्रमा दल माँटवनके अन्तर्गत मानसरोवर, भाण्डीरवन, राया, तथा लौहवन दर्शन करने गया। मानसरोवरके निकट श्रीकृष्णने श्रीराधाजीके मानका भञ्जन किया था। सरोवरके तटस्थित कुञ्जसमूह आज भी पाँच हजार साल पहलेकी श्रीश्रीराधाकृष्ण युगलकी दिव्य केलिविलास लीलाओंका स्मरण कराता है। भाण्डीर वनमें श्रीराधाजी तथा अन्य गोपियोंके साथ श्रीकृष्णने मल्लयुद्ध आदि विविध लीलाएँ की थीं। यहींपर बलदेवजीने प्रलम्बासुरका वध किया था। यहाँ भी एक वंशीवट है। पासमें ही दो मीलकी दूरी पर भद्रवनमें श्रीकृष्णने दावानल पान कर सखा तथा गौओंकी रक्षा की थी। रायामें नन्दरायजी कभी–कभी आते थे, इसलिए उस स्थानका नाम 'राया' पड़ा। यहाँके चैयरमैन श्रीसुभाषबाबू अग्रवालने भक्तमण्डलीका स्वागतकर सबको प्रसाद वितरण किया। लौहवनमें भक्तोंने लौहजंघा असुरकी वधस्थली तथा कृष्णकुण्डका दर्शनकर श्रीराधाकृष्णके नौकाविहार आदि लीलाओंका श्रवण किया।

तत्पश्चात् भक्तोंने तीन दिन तक वृन्दावनमें ही केशीघाट, वंशीवट, गोपेश्वर महादेव, धीरसमीर, गोविन्ददेव, राधादामोदर, श्रीरूप गोस्वामीकी समाधि व भजनकुटी, श्रीराधाश्यामसुन्दर, श्रीराधारमण, श्रीराधागोकुलानन्द, श्रीराधामदनमोहन, श्रीसनातन गोस्वामीकी समाधि व भजनकुटी, शृङ्गार वट, कालीय दह, श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती पादकी भजनकुटी आदिका दर्शन किया। परिक्रमाके आठवें दिन १७ अक्टूबरको सभी भक्तोंने बसों द्वारा गोकुल, महावन, रावल, ब्रह्माण्ड घाट और दाऊजी जाकर दर्शन किया। परिक्रमा अभी चल रही है। इसका अगला पड़ाव गोवर्धन एवं बरसानामें होगा। आगेका विवरण अगले अङ्कमें दिया जायेगा। ***(निजस्व संवाददाता)***

श्रीश्रीगुरु–गौराङ्गौ–जयतः

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे

वैकुण्ठ–वार्त्तावह

बृहत्–मृदङ्ग

श्रीभागवत–पत्रिका

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः।
ज्ञान वैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना॥

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा॥

आराध्यो भगवान् व्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावनं, रम्या काचिदुपासना व्रजवधूवर्गेण या कल्पिता।
श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान्, श्रीचैतन्य महाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो नः परः॥

एक भागवत बड़ भागवत शास्त्र । आर एक भागवत भक्तिरसपात्र॥
दुई भागवत द्वारा दिया भक्तिरस । ताहाँर हृदये तार प्रेमे हय वश॥

वर्ष ४७ } श्रीगौराब्द ५१७
वि. सं. २०६० मार्गशीर्ष मास, सन् २००३, ९ नवम्बर—८ दिसम्बर
{ संख्या ९

श्रीश्रीकुञ्जविहारी द्वितीयाष्टकम्

(श्रीश्रीमद् रूप–गोस्वामि–विरचितम्)

नमः श्रीकुञ्जविहारिणे

अविरतरतिबन्धुस्मेरताबन्धुरश्रीः कवलित इव राधापाङ्गभङ्गीतरङ्गैः।
मुदितवदनचन्द्रश्चन्द्रकापीडधारी मुदिरमधुरकान्तिर्भाति कुञ्जेविहारी॥१॥

कन्दर्प–विलासहेतु जिनके मुखमण्डलपर सर्वदा हास्य खेलता रहता है, जो श्रीमतीराधिकाकी कटाक्ष–भङ्गी रूप तरङ्गोंद्वारा कवलित हो रहे हैं, जिनका मुखचन्द्र सदैव प्रसन्न रहता है, जिन्होंने सिरपर मोरपंख धारण कर रखा है, जिन्होंने नवीन मेघकी भाँति मधुरकान्ति धारण कर रखी है, वे श्रीकुञ्जविहारी कुञ्जमें विराजमान हैं॥१॥

तत सुषिरघनानां नादमानद्धभाजां जनयति तरुणीनां मण्डले मण्डितानाम्।
तटभुवि नटराजक्रीडया भानुपुत्र्या विदधदतुलचारीर्भाति कुञ्जेविहारी॥२॥
शिखिनि कलितषड्जे कोकिले पञ्चमाढ्ये स्वयमपि नव वंश्योद्गामयन्ग्राममुख्यं।
धृतमृगमदगन्धः सुष्ठु गान्धारसंज्ञं त्रिभुवनधृतिहारिर्भाति कुञ्जेविहारी॥३॥
अनुपमकरशाखोपात्तराधाङ्गुलीको लघु लघु कुसुमानां पर्यटन्वाटिकायाम्।
सरभसमनुगीतश्चित्रकण्ठीभिरुच्चैर्व्रजनवयुवतीभिर्भाति कुञ्जेविहारी॥४॥
अहिरिपुकृतलास्ये कीचकारब्धवाद्ये व्रजगिरितटरङ्गे भृङ्गसङ्गीतभाजि।
विरचितपरिचर्यश्चित्रतौर्यत्रिकेण स्तिमितकरणवृत्तिर्भाति कुञ्जेविहारी॥५॥
दिशि दिशि शुकशारीमण्डलैर्गूढलीलाः प्रकटमनुपठद्भिर्निर्मिताश्चर्यपूरः।
तदतिरहसि वृत्तं प्रेयसीकर्णमूले स्मितमुखमभिजल्पन्भाति कुञ्जेविहारी॥६॥

यमुनाके तटपर जब नाना प्रकारके अलंकारोंसे अलंकृत होकर गोपाङ्गनाएँ मृदङ्ग, वीणा, वेणु और कांस्य आदि वाद्ययंत्रोंको बजाना प्रारम्भ करती हैं, तब जो उत्तम नटकी भाँति सुन्दर नृत्य करने लगते हैं, वे श्रीकुञ्जविहारी कुञ्जमें विराजमान हो रहे हैं॥२॥

जिस समय मयूरगण षड़ज स्वर आरम्भ कर देते हैं और जिस समय कोयलें पञ्चम स्वरसे आलापने लगती हैं, उस समय जो अपने सब अङ्गोंमें मृगमदगन्ध धारण कर अभिनव बंशीमें गन्धार नामक उत्कृष्ट स्वरकी मूर्च्छना आदिसे युक्त तान छेड़कर त्रिभुमवनका धैर्य हरण कर लेते हैं, वे श्रीकुञ्जविहारी कुञ्जमें विराजमान हो रहे हैं॥३॥

जो अपने बाँये हाथकी अत्यन्त सुकोमल अँगुलियोंसे श्रीमती राधिकाके दाहिने हाथको पकड़कर पुष्पवाटिकामें मन्द-मन्द गतिसे परिभ्रमण कर रहे हैं और साथ ही साथ मधुर कण्ठोंवाली सुन्दर-सुन्दर व्रजरमणियाँ आनन्दपूर्वक जिनका गुणगान कर रही हैं, वे कुञ्जविहारी श्रीकृष्ण कुञ्जमें विराजमान हो रहे हैं॥४॥

श्रीगोवर्द्धन पर्वतके अधित्यकारूप रङ्गस्थलमें मयूरोंका नृत्य, छिद्रयुक्त बाँसोंका वाद्य और भ्रमरोंका संगीत प्रारम्भ होनेपर ऐसा प्रतीत होता है, मानो गोवर्द्धन पर्वत स्वंय नृत्य, गीत और वाद्य द्वारा श्रीकृष्णकी परिचर्या कर रहे हों। ऐसी परिचर्यासे जिनका अन्तःकरण या इन्द्रियाँ द्रवित हो जाती हैं, वे श्रीकुञ्जविहारी श्रीकृष्ण कुञ्जमें विराजमान हो रहे हैं॥५॥

जिस समय कुञ्जके चारों और शुक-शारिकाएँ श्रीकृष्णकी निर्जनमें की गयी गूढ़ लीलाओंको सुस्पष्टरूपसे पढ़ने लगती हैं, उस समय उसे श्रवणकर जो अतिशय विस्मित होकर उन शुक-शारिकाओंकी उक्तियोंको प्रेयसी श्रीमती राधिकाजीके कानोंमें हँसते-हँसते व्यक्त करते हैं, वे कुञ्जविहारी श्रीकृष्ण कुञ्जमें विराजमान हो रहे हैं॥६॥

तव चिकुरकदम्बं स्तम्भते प्रेक्ष्य केकी नयनकमललक्ष्मीर्वन्दते कृष्णसारः।
अलिरलमलकान्तं नौति पश्यति राधां सुमधुरमनुशंसन्भाति कुञ्जेविहारी॥७॥
मदनतरलबालाचक्रवालेन विष्वग्विविधवरकलानां शिक्षया सेव्यमानः।
स्खलितचिकुरवेशे स्कन्धदेशे प्रियायाः प्रथितपृथुलबाहुर्भाति कुञ्जेविहारी॥८॥
इदमनुपमलीलाहारि कुञ्जेविहारीस्मरणपदमधीते तुष्टधीरष्टकं यः।
निजगुणवृतया श्रीराधयाराधितस्तं नयति निजपदाब्जं कुञ्जसद्माधिराजः॥९॥

'हे राधिके! देखो, तुम्हारे विविध प्रकारके पुष्पोंसे सुशोभित केशपाशको देखकर मयूरोंका समूह स्तम्भित हो रहा है (मानों वे मनमें ऐसा सोच रहे हैं कि श्रीमतीजीका केशपाश हमारे पंखोंसे भी अधिक सुन्दर है), कृष्णसार नामक मृग भी तुम्हारे नेत्रकमलोंकी प्रशंसा कर रहे हैं तथा भ्रमरवृन्द तुम्हारी अलकावलीकी स्तुति कर रहे हैं'—जो इस प्रकारकी बातें श्रीराधिकाजीसे कहते हैं, वे श्रीकृष्ण कुञ्जमें विराजमान हो रहे हैं॥७॥

जो पुष्प-माला-रचनादि शिल्पकार्य सीखनेके बहाने स्मरविलास-चतुरा ललिता आदि सखियोंके द्वारा सेवित होते हैं तथा मुक्तकेशोंवाली परम प्रेयसी श्रीराधिकाके कन्धोंपर जो अपने हस्तकमल रखे हुए हैं, वे कुञ्जविहारी श्रीकृष्ण कुञ्जमें विराजमान हो रहे हैं॥८॥

श्रीकृष्णके स्मरण-पद्धति स्वरूप इस पद्याष्टकके प्रत्येक पदमें कृष्णलीलाका प्रकाश रहनेके कारण यह अत्यन्त मनोहर है। जो इस पद्याष्टकका सन्तुष्ट चित्तसे पाठ करते हैं, उनको श्रीराधिका और श्रीराधिकाकी सखियों द्वारा आराधित वे निकुञ्जपति श्रीकृष्ण अपने श्रीचरणकमलोंमें स्थान प्रदान करते हैं॥९॥⑧

प्रश्नोत्तर

(श्रीकृष्णनाम-तत्त्व)

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

प्र. १—कृष्णनाम क्या वस्तु हैं?

उ.—शुद्धसत्त्वतत्त्वगत अखण्डरस कृष्णादि नामके रूपमें पुष्पकलिकाकी तरह कृष्णकी कृपासे विश्वमें प्रचारित हुए हैं।

('भजन-प्रणाली', ह. चि.)

प्र. २—वेदके उपदेशोंमें कौनसा उपदेश सर्वश्रेष्ठ है?

उ.—वेदशास्त्रमें जो सभी उपदेश दिये गये हैं, उनमें हरिनाम-उपदेश ही सबसे श्रेष्ठ है। (जै. ध. २४ वाँ अ.)

प्र.३—नाम-भजन एक ही साथ साध्य और साधन कैसे है?

उ.—परमेश्वरका प्रसाद ही सर्वजीवोंका चरम उपेय या साध्य है। कर्म अथवा ज्ञान उस उपेय या साध्यके मुख्य साधन नहीं हैं। क्योंकि उपेयके निकट पहुँचने पर वे स्वरूपतः लुप्त हो जाते हैं। नाम-साधन वैसा नहीं है। श्रीनाम भगवान्‌से अभिन्न हैं;

इसलिए साध्य या उपेय रूपसे और साधन या उपाय रूपसे नाम स्वयं ही वर्त्तमान हैं।

('नाम माहात्म्य-सूचना', ह. चि.)

प्र.४—भगवानके नाम कितने प्रकारके हैं? नामके सम्बन्धमें मुख्य और गौण विचार क्या उचित है?

उ.—'भगवानके नाम दो प्रकारके हैं—मुख्य और गौण। जगत सृष्टिके द्वारा मायागुण अवलम्बन पूर्वक जो सब नाम प्रचलित हैं, वे सभी गौण या गुण-सम्बधी नाम हैं। जैसे—'सृष्टिकर्त्ता', 'जगत्पाता', 'विश्वनियन्ता', 'विश्वपालक', 'परमात्मा' आदि बहुतसे गौण-नाम हैं। मायागुणके व्यतिरेक सम्बन्धमें 'ब्रह्म' आदि कुछ नाम भी गोण-नामोंके अन्तर्गत हैं। इन सभी गौण-नामोंमें बहुतसे फल रहनेपर भी साक्षात् चित्फलका सहसा उदय नहीं होता। भगवानके चिद्धाममें मायिक काल और देशसे अतीत जो नाम समूह नित्य वर्त्तमान हैं, वे ही मुख्य और चिन्मय नाम हैं। जैसे—'नारायण', 'वासुदेव', 'जनार्दन', 'ऋषिकेश', 'हरि', 'अच्युत', 'गोविन्द', 'गोपाल' आदि सभी मुख्य नाम हैं। ये सभी नाम चिद्धाममें भगवत्स्वरूपके साथ ऐक्य भावसे नित्य वर्त्तमान हैं। (जै. ध. २३ वाँ. अ.)

प्र.५—'कृष्ण' नामका वैशिष्ट्य क्यों है?

उ.—'कृष्ण'—यह नाम ही उनका प्रेमाकर्षण लक्षण परम सत्ता-वाचक नित्य नाम है।

(ब्र. सं. ५/१)

प्र. ६—कृष्णका प्रथम परिचय क्या है?

उ.—कृष्णनाम ही कृष्णका प्रथम परिचय है। कृष्ण-प्राप्तिके संकल्पसे जीवोंको कृष्णनाम करना चाहिए। (चै. शि. ६/४)

प्र. ७—नाम क्या आभिधानिक शब्द नहीं है? क्या जड़ जिह्वासे नामका उच्चारण नहीं होता?

उ.—"जड़जगतमें हरिनामका जन्म नहीं है। चित्कणस्वरूप जीव शुद्धस्वरूपमें अवस्थित होकर अपने चिन्मय शरीरसे हरिनाम उच्चारणके अधिकारी हैं। जगत्में मायाबद्ध होकर जड़ेन्द्रिय द्वारा जीव शुद्ध नामका उच्चारण नहीं कर सकते, किन्तु ह्लादिनी शक्तिकी कृपासे जब स्व-स्वरूप की क्रिया आरम्भ हाती है, उसी समय उनका नामोदय होता है। उस नामोदयमें शुद्धनाम कृपापूर्वक मनोवृत्तिमें अवतीर्ण होकर भक्तकी भक्तिपूत जिह्वापर नृत्य करते हैं। नाम अक्षराकार नहीं हैं, केवल जड़जिह्वा पर नृत्य करनेके समय वर्णाकारमें प्रकाशित होते हैं—यही नामका रहस्य है।

(जै. ध. २३ वाँ अ.)

प्र. ८—युग-युगमें तारकब्रह्मनामका वैचित्र्य क्यों देखा जाता है?

उ.—"पूर्व पूर्व शास्त्रकारोंने भगवद्भावके उदयकालसे लेकर अब तक जिस क्रमोन्नतिका वर्णन किया है, उससे ऐसा प्रतीत होता है कि भिन्न-भिन्न युगोंके तारक ब्रह्मनाम भी भिन्न-भिन्न हैं।

प्र. ९—सत्ययुगका तारकब्रह्मनाम क्या है और उसका क्या अर्थ है?

उ. सत्ययुगका तारक ब्रह्मनाम—

नारायणपरा वेदा नारायणपराक्षरा।
नारायणपरा मुक्तिर्नारायण परा गति॥

अर्थात् विज्ञान, भाषा, मुक्ति और चरमगति—इन सभी विषयोंके एकमात्र प्रतिष्ठा श्रीनारायण हैं। ऐश्वर्यगत परब्रह्मका नाम ही

श्रीनारायण है। वैकुण्ठ और वहाँ स्थित पार्षदोंमें नारायणरूप भगवद्भाव सम्पूर्ण रूपसे दखा जाता है। इस अवस्थामें शुद्ध शान्तरस और कुछ अंशोंमें दास्यरसका उदय देखा जाता है। ('उपक्रमणिका', कृ. सं.)

प्र. १०—त्रेतायुगका तारकब्रह्मनाम क्या है और उसका क्या तात्पर्य है?

उ.—त्रेतायुगका तारकब्रह्मनाम है—

राम नारायणानन्त मुकुन्द मधुसूदन।
कृष्ण केशव कंसारे हरे वैकुण्ठ वामन॥

इस तारकब्रह्मनाममें जिन सभी नामोंका उल्लेख है, उनमें ऐश्वर्यगत नारायणके विविध विक्रमोंको सूचित किया गया है। यह सम्पूर्ण दास्यरसपर है और इसके कुछ अंशोंमें सख्यका आभास भी पाया जाता है।

('उप्रक्रमणिका', कृ. सं.)

प्र. ११—द्वापरयुगका तारकब्रह्मनाम क्या है और उसका क्या अर्थ है?

उ.—

हरे मुरारे मधुकैटभारे गोपाल गोविन्द मुकुन्द शौरे।
यज्ञेश नारायण कृष्ण विष्णो निराश्रयं मां जगदीश रक्ष॥

यही द्वापरयुगका तारकब्रह्मनाम है। इसमें जिन नामोंका उल्लेख है, उनमें निराश्रित जनोंके आश्रयरूप कृष्णको लक्ष्य किया गया है। इसमें शान्त, दास्य, सख्य और वात्सल्य—इन चार रसोंका प्राबल्य देखा जाता है। ('उपक्रमणिका', कृ. सं.)

प्र. १२—कलियुगका तारकब्रह्मनाम क्या है और उसका क्या तात्पर्य है?

उ.—कलियुगका तारकब्रह्म नाम है—

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥

यही सर्वापेक्षा माधुर्यपर तारकब्रह्मनाम है। इसमें प्रार्थना नहीं है, परन्तु ममतायुक्त समस्त रसोंकी उद्दीपकता इसमें है। इसमें भगवानके किसी प्रकारके विक्रम या मुक्तिदातृत्वका परिचय नहीं है। आत्मा परमात्माके द्वारा किसी एक अनिवर्चनीय प्रेम-सूत्रमें आकृष्ट हैं—यही इसमें व्यक्त है। अतएव माधुर्यपर भक्तोंके लिये यही नाम एकमात्र मन्त्रस्वरूप है। इसका सर्वदा अनुशीलन करना ही एकमात्र उपासना है। सारग्राही व्यक्तियोंकी इज्या (पूजा) व्रत, अध्ययन इत्यादि समस्त पारमार्थिक अनुशीलन ही इस नामके अनुगत हैं। इसमें गुरूपदेश, पुरश्चरण इत्यादि किसी भी अनुष्ठानकी अपेक्षा नहीं है। पूर्वोक्त बारह मूलतत्त्वोंपर अवलम्बन करते हुए इस नाममन्त्रका आश्रय ग्रहण करना सारग्राही व्यक्तियोंका परम कर्त्तव्य है।

('उपक्रमणिका', कृ. सं.)

(क्रमशः)

मधुर-मधुरमेतन्मङ्गलं मङ्गलानां सकलनिगमवल्ली-सत्फलं चित्स्वरूपम्।
सकृदपि परिगीतं श्रद्धया हेलया वा भृगुवर नरमात्रं तारयेत् कृष्णनाम॥

हरिनाम सब प्रकारके मङ्गलोंमें श्रेष्ठ मङ्गल-स्वरूप है, मधुरसे भी सुमधुर है। वह निखिल श्रुति-लताओंका चिन्मय सुपक्वफल है। हे भार्गवश्रेष्ठ! श्रद्धासे हो अथवा अवहेलनासे, मनुष्य यदि स्पष्ट रूपसे एकबार भी निरपराध होकर "कृष्ण" नामका उच्चारण करे, तो वह नाम उसी समय मनुष्यको तार देता है।

श्रीलप्रभुपादजीका उपदेशामृत

प्र. १४३—लोग तीर्थोंमें क्यों जाते हैं?

उ.—भक्त एवं भगवानकी विहार स्थली ही तीर्थ कहलाती है। सुकृतिवान लोग भक्तसंग, भक्तसेवा, तथा उसके फलसे भगवानकी सेवा प्राप्त करनेके लिए तीर्थोंमें जाते हैं। पापी लोग अपने पाप करनेकी प्रवृतिको प्रबल रखकर केवल पापके फलको नष्ट करनेके लिए तथा प्रतिष्ठा प्राप्त करनेके लिए तीर्थोंमें जाते हैं। किन्तु कृष्णके प्रिय वैष्णववृन्द अतीर्थोंको तीर्थ तथा मलिन तीर्थोंको पवित्र करनेके लिए ही तीर्थ भ्रमणकी लीला करते हैं। वे अपने प्रभुकी सेवामें प्रमत्त होकर विप्रलम्भ रूपसे अपने प्रभुका अनुसन्धान करते रहते हैं।

प्र. १४४—क्या भोग और त्याग दोनोंका ही त्याग करना चाहिये?

उ.—महाप्रभुने भोग और त्याग दोनोंको ही त्याग करनेके लिए कहा है। चक्षु, कर्ण, नासिका, जिह्वा, त्वचा आदि इन्द्रियोंके द्वारा रूप, रस, गन्ध आदि विषयोंको ग्रहण करना ही भोग है। यद्यपि यह भोग कुछ समयके लिए आनन्ददायक होता है, परन्तु इसका परिणाम बहुत ही भयानक होता है। इसीलिए भोगकी अपेक्षा त्यागकी महिमा अधिक है। त्याग अथवा वैराग्य बहुत ही अच्छा है, परन्तु जिस वैराग्य या त्यागमें 'नेति नेति' कहते हुए विषयोंका त्याग करते करते अन्तमें भगवान एवं भक्तोंको भी त्याग देते हैं, यह त्याग भी एक प्रकारसे भोग ही है। अर्थात् मयावादी लोग संसारको मिथ्या जानकर संसारकी प्रत्येक वस्तुको अनित्य एवं मिथ्या जानकर यह भी सत्य नहीं है, यह भी सत्य नहीं है, कहकर उनका परित्याग कर देते हैं। परन्तु दुर्भाग्यवशतः भगवान एवं भक्तिको भी जागतिक (मायिक) वस्तु मानकर उसका भी त्यागकर देते हैं। वे इस जगतको कष्टमय जानकर इससे मुक्त होना चाहते हैं। इस प्रकार कष्ट न चाहकर मुक्तिसुख प्राप्तिकी आशा तो सबसे बड़ा भोग है। जो इस जगतको मिथ्या मानते हैं, कौएकी बिष्ठाकी भाँति अपवित्र मानते हैं, उनका ऐसा विचार सर्वथा भ्रमपूर्ण है। क्योंकि वास्तवमें जगतकी सृष्टि सर्वशक्तिमान श्रीभगवानने की है। यदि हम उनकी सृष्टिको अनित्य या मिथ्या मानें, तो इसका अर्थ यह हुआ कि हम भगवानकी शक्ति को स्वीकार नहीं करते। जब कि शास्त्रोंका वास्तविक अर्थ यह है कि जगतकी समस्त वस्तुएँ सत्य हैं, किन्तु नाशवान हैं।

भोग जिस प्रकार किसी व्यक्तिको सांसारिक वस्तुओंको भगवानकी सेवाकी वस्तु समझने नहीं देता, बल्कि उसके अन्दर यह भाव ले आता है कि मैं ही भोक्ता हूँ। अर्थात् जैसे विषयभोगमें फंसा हुआ व्यक्ति स्वयंको ही जगतका भोक्ता अथवा मालिक मानने लगता है, उसी प्रकार त्याग भी किसीको भक्तिसे दूर कर देता है। त्याग भी उसे यह समझने नहीं देता कि संसारकी सभी वस्तुएं भगवानकी सेवाकी वस्तुएँ हैं। वह उसके हृदयमें यह भाव उत्पन्न कर देता है कि संसारकी प्रत्येक वस्तुएँ दुःखदायी तथा बन्धनका कारण

हैं, अतः उनका परित्याग करनेसे ही कल्याण हो सकता है। इस प्रकार वह भगवान, भक्ति एवं भक्तोंके श्रीचरणोंमें अपराध कर देता है।

जगतकी सभी वस्तुएँ विश्वका वैभव हैं। रूप, रस आदि सभी इन्द्रियोंके विषय हैं। अतः इन्द्रियाँ अपने इन रूप, रस आदि विषयोंसे कभी भी विमुख नहीं हो सकतीं। यद्यपि कोई-कोई बाह्य इन्द्रियोंको जैसे चक्षु, कर्ण, नासिका, जिह्वा, त्वचा आदिको रोक भी लेते हैं, परन्तु अन्तः-इन्द्रिय मनसे उन विषयोंको भोग करते रहते हैं। यदि कोई विषयोंको त्यागनेके उद्देश्यसे विषयोंको ग्रहण करने वाले बाह्य इन्द्रियोंको ही नष्ट करनेकी चेष्टा करता है, तो वैराग्य प्राप्तिसे पहले ही उसे इन्द्रियोंके नाश होनेपर शारीरिक पीड़ा उठानी पड़ती है।

भक्त विषयोंको न भोग करता है, न उसका त्याग करता है। वह तो उन समस्त विषय-भोगोंको भगवानकी सेवाकी वस्तु मानकर उन्हें भगवानकी सेवामें लगाता है। वह विषयोंके प्रति आसक्ति त्यागकर शरीर धारणके लिए जितनी आवश्यकता है, उतना ही ग्रहण करते हैं तथा स्वयंको भगवानका सेवक जानकर निरन्तर भगवानकी सेवामें लगे रहते हैं। त्याग एवं भोग आत्माकी वृत्ति नहीं है, सेवा ही आत्माकी नित्य वृत्ति है। मुक्त आत्माएँ (जीव) वैकुण्ठमें अपने प्रभुकी सेवामें विभोर रहते हैं। भाग्यवान बद्धजीव बद्ध अवस्थासे मुक्त या शुद्ध होनेके लिए भगवानके द्वारा दिए हुए इन्द्रियों एवं विषयोंको अपने भोगमें नहीं लगाते, तथा न ही उन्हें दुःखमय जानकर उनका त्याग करते हैं। वे तो केवल भगवानकी सेवाके अनुकूल विषयोंको ग्रहण करते हैं तथा प्रतिकूल विषयोंका त्याग करते हैं।

प्र. १४५—श्रीरूपगोस्वामी प्रभु कौन हैं?

उ.—श्रीरूपगोस्वामी प्रभु भगवानके नित्यसिद्ध परिकर हैं। वे जगद्गुरु एवं भक्तसम्राट हैं। वे कृष्णलीलाकी श्रीरूपमञ्जरी गोपी हैं। वे श्रीगौरसुन्दरके अन्तरङ्ग भक्त हैं। वे जीव तत्त्व नहीं है, अपितु जीवोंके प्रभु स्वरूपशक्ति तत्त्व हैं। वे श्रीमती राधिकाजीकी प्रिय किङ्करी हैं।

श्रीगौरसुन्दरके अन्यान्य भक्तोंकी अपेक्षा श्रीरूपगोस्वामीका विशेष वैशिष्ट्य है। वे प्रभु श्रीगौरसुन्दरके अत्यन्त ही प्रिय हैं। वे प्रभुके हृदयके भावोंको जिस प्रकार स्पष्ट रूपसे जान लेते थे, वैसा अन्य कोई नहीं जान पाता था। क्योंकि श्रीस्वरूप रूपके अनुगत जनोंके हृदयमें ही श्रीगौरसुन्दरके हृदयका निगूढ़भाव प्रकाशित हो सकता है। श्रीरूपगोस्वामीजीके पास सभी लोग ऋणी हैं। जब तक श्रीगौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय रहेगा, तबतक श्रीरूपगोस्वामीजीके अपूर्व दानको भुला न सकेगा।

जो श्रीकृष्णकी गोदमें, वक्षस्थलमें एवं मस्तकपर रहते हैं, अर्थात् कृष्ण जिन्हें सर्वदा अपने कन्धे एवं मस्तक पर धारण करते हैं अर्थात् जो कृष्णके अत्यन्त ही प्रिय हैं, वे ही हमारे नित्य उपास्य श्रीरूप गोस्वामी प्रभु हैं। हम उनकी चरणधूलिकी ही कामना करते हैं। हमारा आशा-भरोसा एकमात्र श्रीरूपगोस्वामीके चरणोंमें ही है।

कृष्णकी सेवा कैसे प्राप्त की जा सकती हैं? इसके उत्तरमें श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी प्रभु कह रहे हैं—श्रीरघुनाथदास गोस्वामीजीकी कृपासे ही कृष्णकी सेवा प्राप्त होती है।

हम श्रीरूपगोस्वामीके चरणकमलोंसे जितनी दूर होंगे, प्रभु श्रीगौरसुन्दरके श्रीचरणकमलोंसे भी उतनी दूर होंगे। श्रीरूपगोस्वामीजीके अनुगत जन ही कृष्णभक्तिरूप सम्पत्तिके अधिकारी हैं। श्रीरूपगोस्वामी कृष्णभक्तिके जीवन्त आदर्श हैं। साधारण ऐतिहासिक लोगोंकी दृष्टिमें वे अपने बड़े भाई श्रीसनातन गोस्वामीके शिष्य हैं। परन्तु श्रीसनातन गोस्वामी भी रूपगोस्वामीजीकी कृपाकी वाञ्छा करते हैं। श्रीसनातन गोस्वामीजी कहते हैं—जिसपर रूपगोस्वामीजीकी कृपा नहीं होगी, वे कदापि श्रीराधागोविन्दकी सेवा प्राप्त नहीं कर सकते।

कर्मकाण्डी तथा ब्रह्मज्ञानी जब भक्तिको लोप करनेकी चेष्टा कर रहे थे, उनके बलका नाश करनेके लिए भक्तिका प्रचार करनेवाले श्रीगोरसुन्दरके सेनापतियोंकी आवश्यकता थी। ऐसी स्थितियोंमें श्रीरूपगोस्वामी ही प्रभुके दो प्रधान सेनापति हुए। श्रीरूपगोस्वामी सेनापति तथा उनके अनुगत जन उनकी सेना हैं। श्रीस्वरूप दामोदर गौड़ीय वैष्णवोंके ईश्वर हैं। वे ही सेनाका गठन करते हैं, भक्तिके विरुद्ध अन्याभिलाषी, कर्मी, ज्ञानी एवं योगी सम्प्रदायको पराजित करनेके लिए।

उस रूपानुग सेनाके हाथमें किसी प्रकारके अस्त्र-शस्त्र नहीं हैं। उनका तो एकमात्र अस्त्र है—कीर्तन। उन भक्तिविरोधी सम्प्रदायोंसे तथा दुःखसे कैसे अपनी रक्षा करनी चाहिए, प्रभु श्रीगौरसुन्दरने प्रयागमें इसकी शिक्षा श्रीरूप गोस्वामीको अपनी शक्ति संचरितकर प्रदान की। उन सेनापतियोंने अपनी सेनाके द्वारा जैसा युद्ध किया, उसकी आलोचना करनेपर हम भी भक्तिविरोधी सम्प्रदायोंके विचारोंके विरुद्ध गोली चलाकर असद्वृत्ति, कर्माग्रह, फलकामना, अन्याभिलाषिता, पाषण्डता, नास्तिकता, बिद्धभाव इत्यादिको नष्टकर सकते हैं।

श्रीजीवगोस्वामी रूपानुग-सैन्यसिंह हैं। उन्होंने अपने अमोघ विचारबाणके द्वारा समस्त प्रकारके असत् मतोंका खण्डन किया। श्रीरूप-सेनापतिके अनुगत हैं—श्रीजीवगोस्वामी एवं श्रीरघुनाथदास गोस्वामी। श्रीरूपगोस्वामी उनके दासोंके निकट जिस दुर्लभ सम्पत्तिको रखे गये हैं, उसे हम श्रीनरोत्तम ठाकुर और श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरके निकट प्राप्त कर सकते हैं। यदि हम वास्तवमें ही निष्कपटरूपसे उस अमूल्य सम्पत्ति चाहते हैं, तभी हम श्रीरूपगोस्वामीकी सम्पत्ति—उस सेवा सम्पत्ति पा सकते हैं। श्रीरूपगोस्वामीजीका सौन्दर्य, माधुर्य, अलौकिकी असामान्या अहैतुकी अमन्दोदय दया—कृपा-पराकाष्ठाकी प्राप्ति होनेपर कुरूप एवं विरूपानुगत्य नहीं रहता तथा सर्वत्र ही सुरूप एवं सुदर्शन होता है। तब विश्वभरके लोग जिस जड़ रूपके लिए पागल रहते हैं, उसे कुरूप जानकर उसपर थूकेंगे।

जिस रूपके द्वारा कृष्णकी सेवा की जाती है, इस समय वह उपाधि द्वारा ढका हुआ है। उपाधियाँ दा प्रकार की होती हैं। मानसिक उपाधि एवं शारीरिक उपाधि। उस

रूपका विरोधी होकर कोई कर्मी, अन्याभिलाषी, ज्ञानी एवं कोई योगीके रूपमें सजा हुआ है। कभी-कभी मनसे सोचता है कि मैं मनुष्य हूँ, देवता हूँ, पण्डित हूँ, मूर्ख हूँ, धनी हूँ, गरीब हूँ, पिता हूँ, पुत्र हूँ, ब्राह्मण हूँ, संन्यासी हूँ। धन-सम्पत्तिका रूप, स्त्रीका रूप, प्रतिष्ठाका रूप हमें आकर्षित कर लेता है तथा उन्हें प्राप्त करनेके लिए हम क्या कुछ नहीं करते? श्रीरूपगोस्वामीने श्रीगौरसुन्दरके जिस परमाकर्षक रूपके विषयमें बताया है, उस रूपको प्राप्त करनेके लिए क्या हमारे हृदयमें एक बार भी लोभ नहीं जागेगा?

सेवोन्मुख, निष्कपट एवं दैन्यमय प्रीति-चक्षुओंके द्वारा ही श्रीरूपगोस्वामीजीके चरणकमलोंका दर्शन हो सकता है। हमारा भजन, पूजन, सर्वस्व, यह एवं परकाल जब सब श्रीरूपगोस्वामीके चरणकमल ही बन जाएँगे, तभी श्रीचैतन्यमहाप्रभुको पूर्णरूपसे प्राप्त किया जा सकता है। अतः श्रीरूप गोस्वामीके चरणकमल ही हमारे एकमात्र आशा-भरोसा हैं। उनकी कृपा ही हमारी एकमात्र अवलम्बन है। यही प्रार्थना है—

आददानस्तृणं दन्तैरिदं याचे पुनः पुनः।
श्रीमद्रूपपदाम्भोजधूलिः स्याज्जन्मजन्मनि॥

अर्थात् मैं दान्तोंमें तिनका धारणकर (अति दीनहीन भावसे) यही प्रार्थना करता हूँ कि जन्म-जन्मोंतक श्रीरूपगोस्वामीजीके चरणकमलोंकी धूलि बन जाऊँ।

ॐ विष्णुपाद १०८श्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजजीकी हरिकथा

(गताङ्कसे आगे)

गुरुतत्त्वकी आलोचना करते समय शिष्य-तत्त्वकी आलोचना करना भी आवश्यक है। हमारे गुरुदेवने जो शिक्षा प्रदान की है, वह शिक्षा शास्त्रोंकी ही है। शास्त्रोंका जो तत्त्वदर्शन है, वह श्रीगुरुदेवमें है, परन्तु वैशिष्ट्यपूर्ण भावसे है—हमें यह समझना होगा। शिष्य गुरुविश्वासी एवं उच्छिष्टभोजी होता है। वह सर्वदा ही गुरु-वैष्णवोंका गुणगान करेगा, यही उसके जीवनका एकमात्र व्रत होता है। यही उसका शिष्यत्व है। क्योंकि वह सद्गुरुके अतिरिक्त किसीको नहीं जानता। वह गुरुगतप्राण होता है अर्थात् गुरु ही उसके प्राण स्वरूप होते हैं। *'भक्तैकयेशं गुरुदेवतात्मा'* जो शिष्य गुरुदेवतात्मा है, वह सर्वदा ही अपने श्रीगुरुदेवका जयगान करेगा। यही उसका व्रत होता है। वह इस व्रतको छोड़ नहीं सकता। यदि वह इस व्रतको छोड़ देगा तो उसका शिष्यत्व समाप्त हो जायेगा। *'छाड़िया वैष्णव सेवा, निस्तार पेयेछे केवा'* अर्थात् वैष्णवोंकी सेवा परित्यागकर क्या कभी किसीका उद्धार हुआ है? नहीं। यद्यपि यहाँपर वैष्णवसेवाकी बात कही गयी है, तथापि यदि यहाँपर वैष्णवके स्थानपर गुरु शब्द जोड़ दिया जाय तो एक ही बात है।

'हरि गुरु वैष्णव, तीनेर स्मरण, तीनेर स्मरणे हय विघ्न विनाशन' अर्थात् हरि, गुरु

एवं वैष्णव इन तीनोंका स्मरण करने पर समस्त प्रकार विघ्न नष्ट हो जाते हैं। शास्त्रोंमें स्पष्ट रूपसे ऐसा उल्लेख मिलता है। हम गुरु वैष्णवोंकी सहायताके बिना एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकते। गुरु वैष्णवोंकी कृपा न होनेपर कदम–कदमपर अनेक प्रकारकी बाधाएँ आकर हमें भक्ति मार्गमें आगे बढ़नेसे रोक देती हैं। यदि हम उन बाधाओंको पार कर लें तो सहज ही अपने उद्देश्य भक्तिको प्राप्त कर सकते हैं। जो कि गुरु वैष्णवोंकी कृपाके बिना असम्भव है। विषय विग्रह भगवान हमारे उपास्य हैं, तो क्या आश्रय विग्रह गुरु–वैष्णव हमारे उपास्य नहीं हैं? अवश्य ही हैं। शास्त्र स्पष्ट रूपसे कह रहे हैं कि गुरु वैष्णव media (माध्यम) हैं।

वैष्णवेर आवेदने कृष्ण दयामय।
ए हेन पामर प्रति हबेन सदय॥

अर्थात् वैष्णव यदि किसीके लिए कृष्णसे प्रार्थना करते हैं, तो कृष्ण उसपर अवश्य ही कृपा करते हैं। अतः इससे स्पष्ट हो जाता है कि गुरु–वैष्णवोंका त्यागकर हम भजन मार्गमें लेशमात्र भी अग्रसर नहीं हो सकते। कृष्ण भजन ही हमारे जीवनका मूल उद्देश्य है। किन्तु यदि श्रीचैतन्य महाप्रभु एवं श्रीनित्यानन्द प्रभुकी कृपा हमपर न हो तो हम किसी भी प्रकारसे अपने लक्ष्यको प्राप्त नहीं कर सकते। शास्त्रोंमें इस विषयको अच्छी प्रकारसे समझाया गया है। वास्तवमें गुरुतत्त्व असीम और अनन्त है। जिस प्रकार भगवान असीम अनन्त नित्यशुद्ध एवं सनातन वस्तु हैं उसी प्रकार गुरु भी असीम अनन्त एवं सनातन वस्तु हैं। यही तत्त्व वस्तु है। मेरे श्रीगुरुदेवने जो शिक्षाएँ प्रदान की हैं, उनका सार संकलन (collection) करना बहुत आवश्यक है। उन्होंने जब अपने श्रीगुरुपादपद्मका आश्रय ग्रहण किया, उस समय अनेक प्रकारकी घटनाएँ घटीं। वे सब पत्र–पत्रिकाओंमें उल्लिखित हैं। किन्तु हम क्या कर रहे हैं, हमें सर्वप्रथम इसपर विचार करना चाहिये। ***'जे जत पतित हय, तब दया तत ताय'*** अर्थात् जो जितना अधिक पतित होता है, उसपर आपकी उतनी अधिक दया होती है। यह भाव तो ठीक है, गुरुदेव जिसपर शासन करते हैं और जो शासन स्वीकार करता है निश्चय ही गुरुकी कृपा उसपर अधिक होती है इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है। किन्तु यदि हम उनका शासन स्वीकार नहीं कर सकते तथा उनके उपदेश, निर्देश इत्यादिका अनुसरण न कर उनका अनुकरण (नकल) करने जाएँ तो सर्वनाश निश्चित है। अनुसरण तथा अनुकरण दोनों समान वस्तु नहीं हैं। दोनोंमें आकाश पातालका अन्तर है। हमें अनुसरण करना चाहिए, अनुकरण नहीं। अनुकरण कौन करते हैं? बन्दर अनुकरण करते हैं। किन्तु हमें तो अनुसरण करना चाहिए। यदि हम अनुसरण करते हैं, तो भजनमें आगे बढ़नेकी आशा रहती है, श्रीगुरुदेवने इस विषयको अच्छी प्रकारसे बतलाया है। साधन भजन करनेके लिए प्रतिकूल विषयोंका त्याग एवं अनुकूल वस्तुओंको ग्रहण करना अति आवश्यक है—

आनुकूल्यस्य संकल्प प्रातिकूल्यस्य विवर्जनम्।

रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्वे वरणं तथा।
आत्मनिक्षेप कार्पण्ये षड्विधा शरणागतिः॥

अर्थात् भक्तिके अनुकूल विषयोंका ग्रहण, प्रतिकूल विषयोंका त्याग, कृष्ण ही रक्षा करनेवाले हैं तथा पालन करनेवाले हैं—ऐसा दृढ़ विश्वास, आत्मनिवेदन एवं दैन्य—यह छः प्रकारकी शरणागति होती है।

सर्वप्रथम प्रतिकूल विषयोंका त्याग, तत्पश्चात् अनुकूल विषयोंका पालन करना चाहिए।

ततो दुःसङ्गमुत्सृज्य सत्सु सज्जेत बुद्धिमान्।
सन्त एवास्य छिन्दन्ति मनोव्यासङ्गमुक्तिभिः॥

अर्थात् बुद्धिमान पुरुषको चाहिए कि वह दुःसङ्ग छोड़कर सत् पुरुषोंका सङ्ग करे। सन्त पुरुष अपने सदुपदेशोंसे उसके मनकी आसक्तिको नष्ट कर देते हैं।

पहले खराब वस्तुको छोड़ना पड़ता है तब अच्छी वस्तुको ग्रहण किया जा सकता है। यदि कोई सोचे कि मैं पहले अच्छी वस्तुको ग्रहण करूँगा, तत्पश्चात् खराब वस्तुका परित्याग करूँगा; तो यह विचार सर्वथा गलत है। गुरुवर्गकी कथाओंमें अनेक प्रकारके वैशिष्ट्य होते हैं। सभीकी कथाओंमें शास्त्रीय तत्त्व-सिद्धान्त रहनेपर भी उनमें वैशिष्ट्य होता है। उस वैशिष्ट्यको हमें समझना चाहिए। हम स्वयं अपनी विद्या एवं बुद्धिके बलसे सबकुछ नहीं जान सकते। यदि गुरु-वैष्णव कृपापूर्वक हमें समझा दें तो सहज रूपमें ही हम उस विषयको समझ सकते हैं। क्या प्रेरणा सभीके हृदयमें उत्पन्न होती है? नहीं। जिसपर भगवानकी विशेष कृपा होती है, उसे ही प्रेरणा मिलती है। यह सब अनुभवका विषय है। जबतक हमें वास्तव विषयका अनुभव न हो, तबतक हम उस वस्तुको कैसे प्राप्त कर सकते हैं? केवल मुखसे बोलनेसे नहीं होगा। यदि हृदयसे ही मैं उस वस्तुकी तरफ बढ़ रहा हूँ, यदि मेरे हृदयमें वह भाव उत्पन्न हुआ है, तो उस वस्तुके लिए मैं रोऊँगा। जिस प्रकार जागतिक लोग खाने, पीने एवं पहननेकी वस्तु प्राप्त न होनेपर रोते हैं, उसी प्रकार भक्त भी भगवान एवं गुरुकी कृपा प्राप्त करनेके लिए उनका नाम ले-लेकर रोता है। क्या ये दोनों स्थितियाँ एक जैसी हैं? कभी नहीं। यह सब अनुभवका विषय है।

(क्रमशः)

गिलहरीका सेतुबन्ध

श्रीरामचन्द्र जब सीतादेवीका उद्धार करनेके लिए सागरके ऊपर बन्दरोंकी सहायतासे सेतुबन्धन कर रहे थे, उस समय एक छोटी-सी गिलहरी अपनी सामान्य शक्ति-अनुसार उसमें सहायता कर रही थी। गिलहरीकी यह सेवा अति नगण्य (छोटी) होनेपर भी श्रीरामचन्द्रके लिए वह अनुकूल एवं सन्तोषजनक थी।

श्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद कहते हैं—जीव सद्गुरु और शुद्ध वैष्णवोंके अनुगत होकर अकपटभावसे श्रीचैतन्यदेवका नाम और प्रेम प्रचार कार्य आत्म-नियोगसे करते हैं, स्व-स्व शक्ति-अनुसार आचरणकर प्रचार करते हैं। वह बाह्यदृष्टिसे अति

सामान्य होनेपर भी श्रीमन्महाप्रभु एवं उनके भक्त उसपर प्रसन्न होते हैं। छोटी सेवा होनेपर भी वह लोकहितकारी, महत् रूपोंमें सम्पादित होती है।

सेतुबन्धन कार्यके मध्यमें पाषण्ड दलन और शुद्ध भक्तिका उद्धार, ये दो कार्य देखे जाते हैं। रावणके समान ही आदर्श भोगी, त्यागी सम्प्रदाय और निर्विशेषवादी-सम्प्रदाय आदि शुद्धभक्तिको हरण करनेकी चेष्टा करते हैं। वस्तुतः शुद्ध भक्तिको हरण करनेकी शक्ति उनमें नहीं होती है। पाषण्डताको दलनकर शुद्ध भक्तिका वास्तव स्वरूप जगतमें प्रकाश करना ही श्रीरामभक्तका कार्य है। हनुमानजी रामभक्तोंमें अग्रणी हैं। उनके आदर्शका अनुसरणकर गिलहरी अपनी अति सामान्य शक्ति द्वारा अकपट रूपसे सेतुबन्धनमें सहायता कर रही थी। उसको भी श्रीरामजीने सन्तोषके साथ स्वीकार किया। जिस प्रकार रामभक्तोंमें अग्रणी श्रेष्ठ और प्रियतम सेवक हनुमानजी हैं। उसी प्रकार श्रीकृष्णचैतन्यदेवके भक्तोंमें अग्रणी, श्रेष्ठ और प्रियतम सेवक श्रीगुरुदेव हैं। श्रीगुरुदेवके सेवा-कार्यमें स्वशक्ति अनुसार निष्कपट भावसे जितनी भी सेवा हो सके, चाहे वह सेवा सामान्य क्यों न हो, फिर भी उस सेवाके द्वारा उस व्यक्तिका मङ्गल, जगतका मङ्गल और भगवानका सन्तोष विधान होगा।⑧

श्रीगौराङ्ग-सुधा

(गताङ्कसे आगे)

—श्रीपरमेश्वरी दास ब्रह्मचारी

एक दिन प्रभु गोपीभावमें आविष्ट होकर "वृन्दावन-वृन्दावन" एवं "गोपी-गोपी" उच्चारण कर रहे थे। उसी समय एक छात्र वहाँपर आ पहुँचा। प्रभुके मर्मको न जानकर वह कहने लगा—"निमाई पण्डितजी, आप गोपी-गोपी क्यों कह रहे हैं? आप गोपी-गोपी छोड़कर कृष्ण-कृष्ण कहिए। क्योंकि गोपी-गोपी कहनेसे क्या पुण्य होगा? शास्त्रोंमें सर्वत्र ही कृष्णनामकी महिमा है, राधानामकी नहीं।" वह मूर्ख प्रभुके भावोंको न समझ सका।

प्रभु कहने लगे—"कृष्ण तो ठग हैं, लम्पट हैं, उनका भजन कौन करता है? जिन्होंने कृतघ्नकी भाँति निर्दोष बालीको मार डाला। स्वयंको स्त्रीजीत कहलानेपर भी एक स्त्रीके नाक-कान काट डाले। बलिने उनके चरणोंमें अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया, बदलेमें उन्होंने उसे पातालमें भेज दिया। अब तुम्हीं बताओ, ऐसे कृष्णका नाम लेनेसे मेरा क्या कल्याण होगा?" ऐसा कहकर प्रभु हाथमें एक लठिया लेकर उस छात्रको मारनेके लिए दौड़े। यह देखकर वह छात्र भयभीत होकर जैसे-तैसे भागा। परन्तु प्रभु "पकड़ो-पकड़ो" कहकर उसके पीछे-पीछे दौड़ पड़े। वह छात्र भयभीत होकर तीव्र गतिसे दौड़ते-दौड़ते अपने दलमें जाकर मिल गया। उसी समय प्रभुके भक्तगण प्रभुको पकड़कर वापस ले आये तथा उन्हें शान्त किया। उधर उस छात्रका शरीर पसीनेसे लतपथ हो रहा था तथा वह लम्बी-लम्बी साँसे ले रहा था। उसकी ऐसी

अवस्था देखकर अन्यान्य छात्रोंने उससे इसका कारण पूछा, तो वह कहने लगा—"क्या पूछते हो? आज तो मेरे प्राण ही चले जाते, भगवानकी विशेष कृपा थी कि बच गया। सभीलोग उस निमाई पण्डितका गुणगान करते हैं, जिसे श्रवणकर मेरी भी उसके दर्शनकी इच्छा हुई। अतः मैं उसके घर गया था। मैंने देखा कि वह निरन्तर "गोपी-गोपी-गोपी" इस नामका जप कर रहा था। यह सुनकर मैंने उससे कहा—'पण्डित! आप यह गोपी-गोपी क्यों कह रहे हैं? आप तो "कृष्ण-कृष्ण" कहिए। क्योंकि शास्त्रोंमें कृष्णनामजपकी विधि बतायी गयी है।' इतना सुनते ही वह क्रोधके कारण जलने लगा तथा हाथमें लठिया लेकर मुझे मारनेके लिए दौड़ा। इतना ही होता, तो भी कोई विशेष बात नहीं थी, परन्तु उसने तो कृष्णके विषयमें भी अनेक अपशब्द कहे, जिन्हें मुखमें लाते हुए भी मुझे लज्जा आ रही है। भगवानकी विशेष कृपा है कि आज मैं बच गया और आपलोगोंके बीचमें उपस्थित हूँ, अन्यथा आज उस निमाईने तो मुझे मार ही डाला होता।"

उसकी बात सुनकर वे सभी महामूर्ख छात्र जिसके मनमें जो आया, कहने लगे। एक बोला—"वाह! यह तो अच्छा वैष्णव है, जो क्रोधित होकर ब्राह्मणोंको भी मारने दौड़ता है।" दूसरा बोला—"अरे! उसे वैष्णव कौन कहता है, जो कृष्णनाम ही नहीं लेता?" तीसरा बोला—"यह तो आज विचित्र बात सुननेको मिली कि वैष्णवलोग कृष्णको छोड़कर गोपी-गोपी जपते हैं।" चतुर्थ छात्र कुछ क्रोधित होकर बोला—"हमें उससे डरनेकी क्या आवश्यकता है? यदि वह ब्राह्मण है तो क्या हम ब्राह्मण नहीं हैं? अतः यदि वह पुनः हमें मारने आयेगा, तो हम क्यों सहेंगे? वह यहाँका कोई राजा तो नहीं है, जो हमपर शासन चलायेगा? हमें ध्यान रखना चाहिए कि यदि अब वह पुनः हममेंसे किसीपर आक्रमण करता है, तो हम सहन नहीं करेंगे। यदि वह नवद्वीपके जगन्नाथ मिश्रका पुत्र है, तो हम भी किसी साधारण व्यक्तिके पुत्र नहीं हैं। कैसी आश्चर्यकी बात है? जो कलतक हमारे साथ पढ़ा, आज वह महापुरुष कैसे बन गया?"

इस प्रकार वे पापी लोग प्रभुके विरुद्ध अनेक प्रकारकी कुयुक्तियाँ करने लगे। अन्तर्यामी प्रभु श्रीशचीनन्दन गौरहरि उन दुष्टोंके मनोभावको समझ गये। एकदिन प्रभु अपने पार्षदोंसे घिरे हुए विराजमान थे। उस समय प्रभुने अकस्मात् एक अद्भुत बात कही, जिसका अर्थ कोई समझ नहीं पाया और सभी असमञ्जसमें पड़ गये। प्रभु बोले—

करिल पिप्पलिखण्ड कफ निवारिते।
उलटिया आर कफ बाड़िल देहेते॥

अर्थात् खांसी दूर करनेके लिए मैंने औषधी तैयार की, परन्तु औषधी खाकर रोगीकी खांसी और भी बढ़ गयी।

ऐसा कहकर प्रभु जोर-जोरसे हँसने लगे। प्रभुके इस वाक्यका अर्थ न समझकर सभलोग भयभीत हो गये। नित्यानन्दप्रभु श्रीगौरसुन्दरके हृदयकी बात समझ गये थे कि प्रभु अब अतिशीघ्र ही गृह परित्याग

करेंगे। ऐसा विचारकर नित्यानन्दजी शोकसागरमें डूब गये कि प्रभु संन्यासी हो जायेंगे। वे विचार करने लगे कि इनके इतने सुन्दर-सुन्दर घुँघराले केश अन्तर्धान हो जायेंगे। इस दुःखसे नित्यानन्दजीके प्राण विकल हो गये।

कुछ समय पश्चात् प्रभुने श्रीनित्यानन्दका हाथ पकड़ लिया तथा एक निर्जन स्थानपर बैठ गये। प्रभु कहने लगे—"श्रीपाद नित्यानन्दजी! मैं आज आपको अपने हृदयकी बात बता रहा हूँ। मैं जगतमें अवतरित हुआ था जगतका उद्धार करनेके लिए। परन्तु सब विपरीत हो गया। मेरा दर्शनकर उनका उद्धार तो नहीं हुआ, परन्तु सर्वनाश अवश्य हो रहा है। मेरा दर्शनकर कहाँ तो इन पापियोंका उद्धार होना चाहिए, परन्तु हो रहा है इसके विपरीत। अभीतक तो इनका एक ही दोष था कि भगवानको भूलना, परन्तु जबसे इन्होंने मुझे मारनेकी इच्छा की, तबसे इनके कोटि-कोटि पाप हो गये हैं, जिनके फलस्वरूप ये अन्धकारमय नरकमें गमन करेंगे। कितने दुःखकी बात है? आया तो था मैं इनका उद्धार करनेके लिए, परन्तु मुझसे समस्त जीवोंका संहार हो गया। अतः मैं अवश्य ही कल शिखा एवं उपवीत मुण्डवाकर संन्यासी बनकर भिक्षा करता हुआ डोलूँगा तथा जो लोग मुझे मारना चाहते हैं, मैं उनके ही द्वारपर भिक्षुक बनकर जाऊँगा। मुझे अपने द्वारपर संन्यासी वेशमें देखकर वे मेरे चरण पकड़ेंगे। इस प्रकार मैं सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका उद्धार करूँगा। संन्यासीका दर्शनकर प्रायः सभी लोग स्वाभाविकरूपसे नमस्कार करते हैं। संन्यासीके दोष दीखनेपर भी कोई उसपर प्रहार नहीं करता है। नित्यानन्दजी, मैंने अपने हृदयकी बात आपको बता दी कि मैंने दृढ़ निश्चय कर लिया है कि मैं गृहस्थ आश्रमका परित्याग करूँगा। यदि मैं ऐसा करूँ, तो आप दुःखी नहीं होंगे, बल्कि आप मुझे संन्यासग्रहणकी विधि बताइये। आप मुझसे जैसा करवायेंगे, मैं वैसा ही करूँगा। यदि आप मुझसे जगतका उद्धार करवाना चाहते हैं, तो इस विषयमें आप मेरे मार्गमें बाधा नहीं पहुँचायेंगे। मुझे संन्यास वेश ग्रहण करते देखकर आप दुःखी नहीं होंगे, क्योंकि आप तो मेरे अवतारका कारण जानते ही हैं।"

मस्तक-मुण्डनकी बात श्रवण करते ही नित्यानन्दजीका हृदय विदीर्ण हो गया। वे विचार करने लगे—"मैं इन्हें कौनसी विधि बताऊँ? यह भी निश्चित है कि जब इनकी इच्छा हो चुकी है, तो ये संन्यास अवश्य ग्रहण करेंगे।" अतः वे कुछ चिन्ता करनेके पश्चात् बोले—"प्रभो! आप तो स्वतन्त्र इच्छामय हैं, अतः आप जो कुछ भी चिन्ता करते हैं, उसके विरुद्ध कोई कैसे जा सकता है? किसका सामर्थ्य है कि वह आपको विधि-निषेधके विषयमें उपदेश प्रदान कर सके। आप समस्त लोकोंके नाथ हैं। जैसा करनेसे अच्छा हो, उसे आप अच्छी प्रकार जानते हैं। आप जिस प्रकार जगतका उद्धार करेंगे, उसे आप ही जान सकते हैं, अन्य कोई नहीं। आपकी लीलाएँ तो स्वतन्त्र एवं परमानन्दमय होती हैं। आप जो इच्छा करते हैं, वह अवश्य ही पूर्ण होती है।

तथापि आप इस विषयको समस्त भक्तोंके समक्ष प्रकट कीजिए, जिससे कि कौन क्या कह रहा है, इसे आप सुन सकें। उन सब बातोंको सुननेके बाद जैसे आपकी इच्छा होगी, आप वैसा करें। जगतमें ऐसा कौन है, जो आपकी इच्छाके विरुद्ध आचरण कर सके?"

नित्यानन्दजीकी इन बातोंको सुनकर प्रभु सन्तुष्ट हो गये तथा उन्हें पुनः पुनः आलिङ्गन करने लगे। इस प्रकार नित्यानन्दजीके साथ युक्ति करके प्रभु वैष्णवमण्डलीमें उपस्थित हुए। श्रीगौरसुन्दर गृहत्याग करेंगे, यह जानकर नित्यानन्दजीकी अवस्था बहुत-ही दयनीय हो गयी। उनके मुखसे एक शब्द नहीं निकल रहा था तथा उनका शरीर निश्चेष्ट-सा हो गया था। कुछ समय पश्चात् धैर्य धारणकर नित्यानन्दप्रभु मन ही मन विचार करने लगे—"यदि प्रभु चले गये तो शची माँ कैसे अपने प्राण धारण करेंगी? वे किस प्रकार दिन-रात बितायेंगी?" इन सब बातोंकी चिन्ता करते-करते तथा शचीमाताके दुःखकी कल्पना करते हुए वे एकान्त स्थानपर बैठकर रोने लगे।

दूसरे दिन प्रभु मुकुन्दके घरमें उपस्थित हुए। अकस्मात् प्रभुको अपने घरपर आया हुआ देखकर मुकुन्दको बहुत आनन्द हुआ। प्रभु बहुत ही स्नेहपूर्वक बोले—"मुकुन्द! आज तुम मुझे कुछ लीला सम्बन्धित कीर्तन सुनाओ।"

यह सुनकर मुकुन्द मधुर स्वरसे कृष्णका गुणगान करने लगे, जिससे प्रभु भावविह्वल हो गये। वे भाग्यवान् मुकुन्दकी दिव्य कीर्तन-ध्वनि सुनकर "बोल-बोल" कहने लगे। कुछ क्षण पश्चात् प्रभुने अपने भावको संगोपन कर लिया तथा मुकुन्दसे कहने लगे—"मुकुन्द! मैं तुमसे कुछ कहने आया हूँ, मैं अब यहाँ नहीं रहूँगा। यहाँसे बाहर चला जाऊँगा। मैंने निश्चय किया है कि मैं गृहस्थ आश्रमका परित्यागकर शिखा एवं सूत्र परित्यागकर संन्यास ग्रहणकर सर्वत्र भ्रमण करता रहूँगा।"

प्रभुके मुखसे संन्यासकी बात सुनकर मुकुन्दके सिरपर मानो बज्रपात हो गया। उन्होंने रोते-रोते प्रभुके चरणोंको पकड़ लिया और विनती करते हुए कहने लगे—"प्रभो! आप स्वयं स्वतन्त्र इच्छामय हैं। अतः आपकी इच्छाके विरुद्ध कोई कैसे जा सकता है? फिर भी मेरी एक विनती है कि आप और कुछ दिन यहाँ रहकर इसी प्रकार कीर्तन करें। तत्पश्चात् आपकी जैसी इच्छा हो, वैसा ही करेंगे।"

मुकुन्दकी बात सुनकर प्रभु गौरसुन्दर गदाधरके पास पहुँचे। प्रभुको अपने पास आया देखकर उन्होंने सम्भ्रमपूर्वक उनकी चरणवन्दना की। प्रभु बोले—"गदाधर! मैं अब घरमें नहीं रहूँगा। कृष्णकी खोजमें मैं यहाँ-वहाँ घूमता रहूँगा तथा शिखा-सूत्रका परित्यागकर मस्तक मुण्डन कराकर कहीं भी चला जाऊँगा।"

यह सुनकर गदाधर जड़वत् स्तब्ध हो गये। कुछ क्षण पश्चात् जब उन्हें होश आया तो वे दुःखसे कातर होकर रोते-रोते कहने लगे—"प्रभु आप कैसी अद्भुत बात कर रहे हैं? क्या शिखा-सूत्र परित्याग

करनेसे तथा संन्यास लेनेसे ही कृष्णप्राप्ति होती है? क्या गृहस्थ वैष्णव बनकर कृष्णको प्राप्त नहीं किया जा सकता? आपको संन्यास लेनेकी क्या आवश्यकता है? आप जो कुछ करने जा रहे हैं, वह वेदके अनुसार नहीं हो रहा है। अपनी अनाथिनी माँको आप किस प्रकार असहाय छोड़ सकते हैं? आपके विरहमें आपकी माँ प्राण धारण नहीं कर पायेंगी और इस प्रकार सर्वप्रथम ही आपको मातृवधका पाप लगेगा। क्योंकि उसके प्राण तो आपमें हैं। क्या घरमें रहकर ईश्वरको सन्तुष्ट नहीं किया जा सकता? फिर भी यदि आप अपना मस्तक मुण्डवानेसे ही प्रसन्न हैं तथा संन्यास लेनेसे ही प्रसन्न हैं, तो जैसी आपकी इच्छा हो, वैसा करके चले जाइए।"

इस प्रकार प्रभु अपने प्राणसम प्रिय वैष्णवोंके घर-घर गये तथा उन्हें अपने संन्यास-ग्रहणके विषयमें बताया। सुनकर प्रायः सभी वैष्णवलोग मूर्च्छित होकर गिर पड़े। कोई कहने लगा—"इतने सुन्दर घुँघराले केशोंपर क्या मैं अब कभी माला गूँथकर दे पाऊँगा?" कोई रोते-रोते कहने लगा—"इतने सुन्दर केशोंको नहीं देखनेसे पहले ही मैं अपने इस पापी जीवनको नष्ट कर डालूँगा। इन केशोंकी दिव्य सुगन्ध यदि न मिले तो जीवनकी सार्थकता ही क्या है?" ऐसा कहकर दोनों हाथोंसे अपना सिर पीटने लगा। कोई रोते-रोते कहने लगा—"क्या मेरा अब कभी पुनः ऐसा सौभाग्य होगा कि मैं आँवलेके द्वारा इन केशोंका संस्कार करूँगा?" और कोई "हरि-हरि" कहते हुए उच्च स्वरसे क्रन्दन करने लगा। इस प्रकार भक्तसमूह शोक सागरमें डूब गया। (क्रमशः)

श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज 'युगाचार्य' की उपाधिसे विभूषित

सम्पूर्ण विश्वमें श्रीकृष्णभक्तिका प्रचार-प्रसार, ब्रज भक्ति और संस्कृतिके संरक्षण एवं विकासके लिए संकल्पित तथा विश्वशान्तिके लिए समर्पित भगीरथी प्रयास एवं योगदानके लिए ब्रजाचार्य पीठ, श्रीधाम बरसाना एवं विश्व धर्म संसद (World Religious Parliamnet), नई दिल्लीके संयुक्त तत्त्वावधानमें ऊँचागाँव (बरसाना) स्थित ब्रजाचार्य पीठ पर दिनांक ३१ अक्टूबर, २००३ को आयोजित अलंकरण समारोहमें, ॐविष्णुपाद श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजको विभिन्न वेदज्ञ पण्डितोंके द्वारा स्वस्तिवाचन और पुष्पाभिषेकके उपरान्त ब्रजाचार्य पीठके पीठाधीश श्रीनारायण भट्टके वंशज श्रीयुत् दीपकराज भट्टने 'युगाचार्य' (Acharya of Millenium) की उपाधिसे विभूषित किया। विश्व धर्म संसदके प्रतिनिधि स्वामी श्रीश्यामने अङ्गवस्त्र भेंट किये। पूज्यपाद महाराजश्री ऐसे प्रथम व्यक्ति हैं, जिनको विश्व धर्म संसदने यह उपाधि प्रदान की है। इस अवसर पर देशविदेशके हजारों भक्त उपस्थित थे। अलंकरण समारोहका आरम्भ नन्दगाँव और बरसानाके गोस्वामियोंके द्वारा किये गये समाज गायनके साथ हुआ, जो श्रीनन्दकुल और श्रीवृषभानुकुलका प्रतिनिधित्व करते हैं।

उपाधि-पत्रमें इस प्रकार उल्लिखित है—"आध्यात्मिक सम्पदा विभूषित, वेद, वेदांग, आयुर्वेद, ज्योतिषादिशास्त्र, परम्परा सुरक्षा व्रती, अखिल संस्कृत वाङ्मय संरक्षण, प्रचार प्रसार पक्षधर, मानवकल्याण निरत, महाप्रभु चैतन्य-मत-भास्कर-स्वगुरु परम्परा प्रतिष्ठा पथ संचालक, अहैतुकी भक्ति परायण, आर्य सनातन मर्यादा जीवन पद्धति सदाचार पालक, सर्वधर्म सद्भावना भावित, सर्वभूत हितरत, वसुधैव- कुटुम्बकम् ब्रज संस्कृतिके सद्भावना पर्यावरणसे ओत-प्रोत, ब्रज विकास अभिलाषी, ब्रज सांस्कृतिक सम्पदा संरक्षणके प्रति संकल्पित एवं श्रीकृष्णभक्ति पताकाके यशस्वी संवाहक श्रीमद् भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज, श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा, (उ. प्र.) को ब्रजाचार्य पीठ पर आयोजित ब्रज महोत्सवमें 'युग-आचार्य' के पदपर ब्रजाचार्य-पीठ एवं विश्वधर्म संसदके द्वारा संयुक्त रूपसे विभूषित किया जाता है।"

श्रीयुत् दीपकराज भट्टने कहा कि ब्रजभूमिमें बहुत समयके उपरान्त किसी सन्त या आचार्यको ब्रजवासियोंने अपने शाश्वत प्रेमका परिचय देते हुए युगाचार्यकी उपाधिसे विभूषित किया है।

सभाके अन्तमें महाराजश्रीने दीपकराज भट्ट और नन्दगाँव, बरसानाके भक्तोंके चरणोंमें प्रणाम करते हुए कहा—"मुझे जो सम्मान दिया गया है, उसके लिए मैं एक प्रतिशत भी योग्य नहीं हूँ। मैं ब्रजवासियोंका सम्मान करता हूँ और उनके द्वारा प्रदत्त सम्मानको लेते हुए मुझे

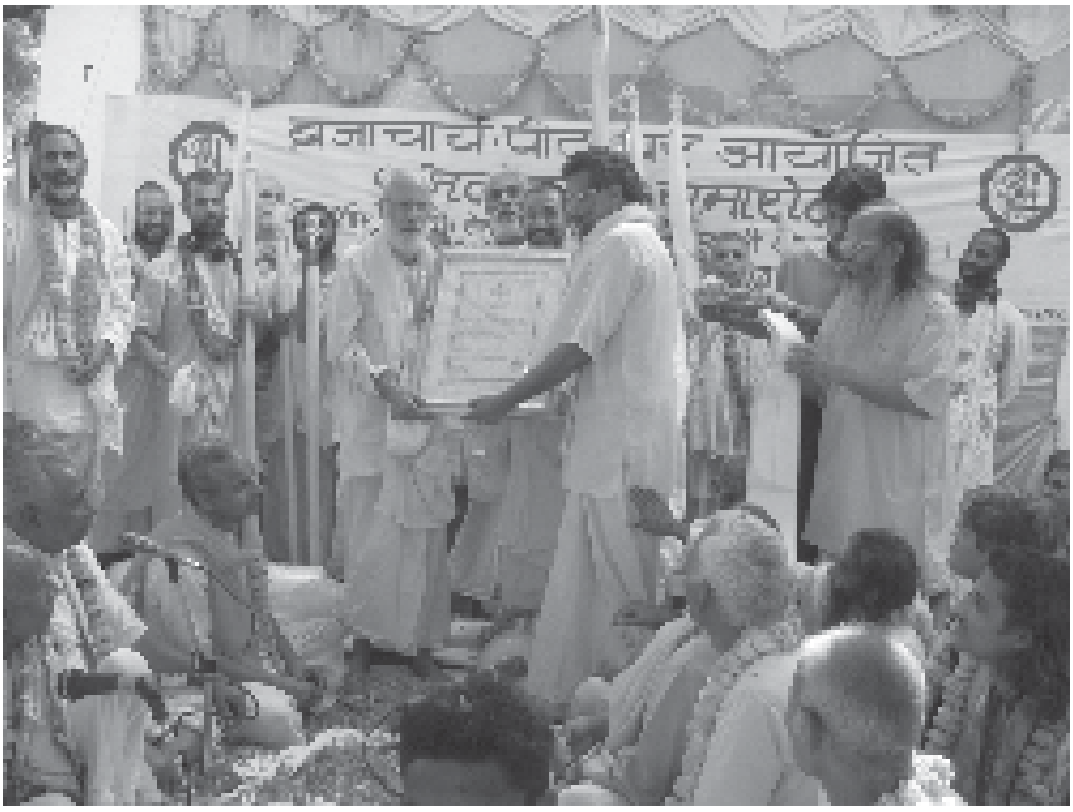

लज्जा और संकोच हो रहा है। मैं ब्रजभक्तिके पूर्व आचार्यों और सन्तोंके चरणोंके धूलकणके बराबर भी नहीं हूँ। ब्रजसे विलुप्त होते जा रहे स्थानोंको स्थापित करने और उनके विकासके लिए प्रतिबद्ध हूँ। यथार्थमें श्रील रूप-सनातन आदि षड़ गोस्वामी तथा उस रूपानुग धारामें श्रील भक्तिविनोद ठाकुर, श्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर प्रभुपाद, मदीय गुरुपादपद्म श्रीलभक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज तथा श्रीलप्रभुपादके समस्त परिकर ही युगाचार्य हैं। मुझमें जिन गुणोंको देखकर यह उपाधि प्रदान की गयी है, वास्तवमें ये समस्त गुण मेरे अपने नहीं हैं। मैंने तो केवल निष्कपटरूपसे रूपानुग गुरुवर्गकी सेवा करनेकी चेष्टामात्र की है। मैं जानता हूँ कि श्रीमन्महाप्रभुके प्रेमधर्ममें स्नात होनेके लिए व्यक्तिगत सम्मान-प्रतिष्ठा ग्रहण करना विषतुल्य है, तथापि केवल अपने श्रीगौड़ीय सम्प्रदायके गौरवके लिए इस उपाधिको स्वीकारकर अपने गुरुवर्गके चरणोंमें समर्पित करता हूँ।"

अगले दिन ब्रजके प्रमुख समाचार पत्रोंमें इस आयोजनके सम्बन्धमें सचित्र विस्तृत जानकारी प्रकाशित हुई।

६ नवम्बरको वृन्दावनस्थित आनन्द धाममें आयोजित धर्मसभामें ब्रज एवं अन्यान्य स्थानोंसे समागत विख्यात विद्वान, वक्ता तथा सन्तोंके मध्य भारतवर्षके मूर्द्धन्य विद्वान तथा सप्ताचार्य डा. वासुदेवकृष्ण चतुर्वेदीने कहा कि विश्वधर्म संसद एवं ब्रजाचार्य पीठ द्वारा श्रीलमहाराजजीको 'युगाचार्य' की उपाधिसे विभूषित करना उचित ही है। इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है। अपने वक्तव्यके समर्थनमें उन्होंने तीन कारण बताये।

(१) जिस प्रकार श्रीनारायण भट्टजीने ब्रज संस्कृतिको पुनर्जीवित और स्थापित किया, उसी प्रकार श्रीलमहाराजजी भी ब्रजरसभक्ति एवं ब्रजके संरक्षण एवं प्रचार-प्रसारमें सदैव चेष्टारत हैं। वर्ष-प्रतिवर्ष देश-विदेशसे अधिकाधिक भक्तोंके साथ ब्रजमण्डल परिक्रमाकर अनेक जीवोंका यथार्थ आध्यात्मिक मङ्गल कर रहे हैं। ब्रजलीलास्थलियोंका दानादि द्वारा संरक्षण करना अतिशुभ है, किन्तु इससे भी श्रेष्ठ है श्रीकृष्णकी लीलास्थलियोंकी महिमाको ब्रजमण्डल परिक्रमा एवं ग्रन्थोंके माध्यमसे जगतमें प्रसारितकर जीवोंको इस ब्रजके प्रति आकर्षित करना। ऐसा कर श्रीलमहाराज ब्रजधाम (कृष्णधाम) की यथार्थ सेवा कर रहे हैं।

(२) जिस प्रकार श्रीलरूप गोस्वामी एवं श्रील सनातन गोस्वामीने श्रीमन्महाप्रभुकी कृपा प्राप्तकर भक्तिरससम्बन्धी ग्रन्थोंकी रचना की, उसी प्रकार श्रीलमहाराज भी श्रीश्रीगुरुगौराङ्गकी कृपासे उन्हीं गोस्वामी ग्रन्थों श्रीउज्ज्वलनीलमणि, श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु, श्रीबृहद्भागवतामृत, जैवधर्म आदिको हिन्दी एवं अन्य भाषाओंमें प्रकाशितकर जगज्जीवोंका उपकार करते हुए कृष्णकाम (कृष्णसेवा) सम्पादित कर रहे हैं।

(३) श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु एवं श्रीहरिदास ठाकुरकी भाँति जगतमें श्रीहरिनाम संकीर्तन एवं शुद्ध रूपमें श्रीहरिनामभजनकी प्रणालीका आचार और प्रचारकर श्रीलमहाराज कृष्णनाम सेवा सम्पादित कर रहे हैं।

इस प्रकार युगपत् कृष्ण धाम, कृष्णकाम एवं कृष्णनामके प्रति सेवापरायण श्रीलमहाराजको इस 'युगाचार्य' की उपाधिसे विभूषित करना यथार्थ है। मैं उनके चरणोंमें नमन करता हूँ।

(संवाद प्रस्तुति—त्रिदण्डिभिक्षु श्रीभक्तिवेदान्त माधव)

श्रीब्रजमण्डल परिक्रमा

(गताङ्कसे आगे)

ब्रज चौरासी कोस परिक्रमा १८ अक्टूबरको वृन्दावनसे पैंठा और चन्द्र सरोवरके दर्शन कर शामको गोवर्धन पहुँची। हजारों देश-विदेशके कृष्णभक्त नृत्य और कीर्त्तन करते हुए चल रहे थे। पैंठाकी महिमा बताते हुए महाराजश्रीने कहा कि वासन्ती रासके समय जब श्रीकृष्ण रासस्थलीसे अन्तर्धान हो गये, उस समय विरहातुर गोपियाँ इधर-उधर सर्वत्र उन्हें ढूंढने लगीं। इस स्थानपर आकर उन्होंने चतुर्भुज रूपमें कृष्णको देखा। गोपियाँ प्रणामकर आगे बढ़ गईं। उनके पीछे-पीछे श्रीमती राधिका विरहातुर होकर ढूंढते हुए वहाँ पहुँची, तब इन्हें देखकर श्रीकृष्ण अपने चतुर्भुज रूपमें नहीं रह सके। दो हाथ उनके स्वरूपमें ही घुस गये (पैठ गये)। इस प्रकार दोनोंका मिलन हुआ। चन्द्रसरोवरमें शारदीय पूर्णिमाका रास देखकर चन्द्रमा भी स्थिर हो गया।

सायंकाल महाराजजीने गोवर्धनमें श्रीबृहद्-भागवतामृतका पाठ करते हुए बताया कि नारदजीने भगवानसे दो वर प्राप्त किए। प्रथम साधक या सिद्ध भक्त आपकी भक्तिसे कभी तृप्त न हो। इसीलिए भक्तिसे आजतक कोई तृप्त नहीं हुआ। दूसरा वर माँगा कि मैं सर्वत्र आपके नामका गुणगान करता रहूँ।

१९ अक्टूबरको मानसी गङ्गापर महाराजश्री पूजन-अर्चन कर उपस्थित जनसमूहको अपने सम्बोधनमें कहा कि जर्मनीसे प्राप्त जलशोधन यन्त्र मानसीगङ्गाके जलको गंदगीसे मुक्तकर शुद्ध करेगा। उन्होंने स्थानीय जनतासे अपील की कि इसमें शहरका गंदा पानी, मूत्रादिके पाइप नहीं आने चाहिए और इस सरोवरमें साबुनसे कपड़ोंको धोना व स्नानादि भी नहीं करना चाहिए। श्रीराधाकुण्ड और श्रीश्यामकुण्डमें हमारा प्रयोग सफल रहा है। इसमें जनताके सहयोग आवश्यक है।

दोपहरको पूज्यपाद श्रील भक्तिरक्षक श्रीधर गोस्वामी महाराजजीका आविर्भाव महोत्सव मनाया गया। उपस्थित सभी भक्तोंने उनके चरणोंमें पुष्पाञ्जलि अर्पितकर उनका गुणगान किया।

सायंकालीन पाठमें महाराजजीने बताया कि गोपियाँ श्रीकृष्णकी सर्वश्रेष्ठ कृपापात्र हैं। उनमें श्रीराधाजी प्रधान हैं। श्रीकृष्ण कामदेवको भी मोहित कर लेते हैं, परन्तु श्रीमती राधिकाजी श्रीकृष्णके मनको भी मथ देती हैं। श्रीकृष्णकी लीलाओंका जो गायन, श्रवण और स्मरण करते हैं तथा श्रीकृष्णकी लीलास्थलियोंका स्पर्श हाथसे, आँखोंसे, मनसे भी करते हैं, उनके चित्तमें क्रमशः प्रेमाभक्तिका उदय होता है।

२० अक्टूबरको हजारों भक्तोंके साथ नृत्यकीर्तन करते हुए दानघाटीसे श्रीगोवर्धन परिक्रमा आरम्भकर गोविन्दकुण्ड, नवलकुण्ड, सुरभि कुण्ड आदि स्थानोंका माहात्म्य वर्णन करते हुए बड़ी परिक्रमा पूर्ण की गयी।

२१ अक्टुबरको श्रीहरिदेव, ब्रह्मकुण्ड, चकलेश्वर, मुखारविन्द, सनातन गोस्वामीजीकी

भजनकुटी आदिका दर्शन किया गया। इन स्थानोंपर महाराजजीने बताया कि कलियुगमें नाम संकीर्तन करनेसे सभी भक्ति अङ्गोंका पालन हो जाता है। भक्ति व्यक्तिको दीन हीन बना देती है। भक्ति नहीं है तो प्रेम भी नहीं है। संसारका दुःख असीम है, मेरा कर्म ही मेरे दुःखका प्रदाता है।

अगले दिन बसद्वारा परिक्रमा पार्टी गुलालकुण्ड पहुँची, जो गाँठोलीके अन्तर्गत है। यहाँपर श्रीकृष्ण गोपियोंके साथ होली खेलते थे। गुलाल अनुरागका प्रतीक है। श्याम, किशोरीजीके अनुरागमें डुबे हैं। होलीके वस्त्र इस कुण्डमें धोते थे, इसलिए इस कुण्डका नाम गुलाल कुण्ड है। निकटमें ही कोनाई गाँव है। राधाजीको जटिला कुटिलाने रोक रखा था। श्रीकृष्ण प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्होंने सखियोंको पूछा कि किशोरीजी क्यों नहीं आई। इसलिए इस गाँवका नाम क्यों–न–आई या कोनाई पड़ा।

तत्पश्चात् हजारों भक्त नृत्यकीर्तन करते हुए आदिबद्रीनाथ पहुँचे। यह स्थान काम्यवनके अन्तर्गत है। यहींपर व्यासदेवजीने पुराण, वेद, उपनिषद्, वेदान्तसूत्र तथा श्रीमद्भागवतकी रचना की। गोपियोंने यहींपर प्रेमरसका आस्वादन किया है। गोपियाँ धन्य हैं जो श्यामसुन्दरके हृदयमें बैठी हुई हैं। एकबार ब्रजवासियोंने इच्छा की थी कि हम बद्रीनाथ जायेंगे हिमालयमें, तो श्रीकृष्ण उनको आदिबद्रीमें ले गये तथा बद्रीनाथको प्रकट किया। सत्ययुगमें नर–नारायण ऋषिने इस स्थानपर तप किया था।

२३ अक्टूबरको काम्यवन, वृन्दादेवी, गोविन्दजी, कामेश्वर, पंचपाण्डव, विमलाकुण्ड, पिछल पहाड़ी, व्योमासुरकी गुफा और भोजनथाली आदि स्थानोंका दर्शनकर माहात्म्य वर्णन किया गया। भोजनथाली पर श्रीकृष्ण गोचारणके समय सखाओंके साथ थालीमें भोजन करते थे। यहाँ आज भी बड़े–बड़े पत्थरोंपर थालियाँ व कटोरियाँ दृश्यमान हैं। मुगलराजा औरंगजेबके अत्याचारसे वृन्दावनके सभी विग्रहों (ठाकुरों) को जयपुरके राजा मानसिंह जयपुर ले जाते समय कामवनमें उनका पड़ाव हुआ। वृन्दावनकी अधिष्ठात्री देवी वृन्दादेवी यहींपर रह गयीं। दूसरे सभी विग्रह जयपुर चले गये। वनवासके समय पंचपाण्डवोंने काम्यवनमें कुछ दिन वास किया था। यहींपर दुर्वाषा ऋषि अपने साठ हजार शिष्योंके साथ पाण्डवोंके पास भोजन करने आये थे।

२५ अक्टूबरको भक्तोंने किल्लोलकुण्ड, ग्वालपोखरा, श्यामतलैया, रत्नवेदी, मुक्तापेड़, चरणचिह्न, नारदकुण्ड आदिका दर्शन किया। किल्लोलकुण्ड श्रीश्रीराधाकृष्ण और गोपियोंकी जलक्रीड़ास्थली है। नारदकुण्डमें श्रीनारदजीकी तपःस्थली है। सायंकाल मानसीगङ्गाके तटपर श्रीलमहाराजजीके आनुगत्यमें हजारों भक्तोंने श्रीराधाकृष्णयुगलको दीपदानकर दीपावलीका उत्सव मनाया।

२६ अक्टूबरको गिरिराजकी तलहटीमें अन्नकूट पूजा महोत्सव सम्पन्न हुआ, जिसमें श्रीगिरिराजजीको १००० से अधिक प्रकारके भोग लगाये गये। २७ अक्टूबरको श्रीगिरिराजकी छोटी परिक्रमा की गयी। परिक्रमाके समय उद्धव कुण्ड, राधाकुण्ड, श्यामकुण्ड आदिमें

भक्तोंने आचमन किया तथा उनकी महिमाओंका श्रवण–कीर्तन किया।

२८ अक्टूबरको भक्तोंने बसोंमें जाकर कोकिलावन जहाँ श्रीकृष्ण कोयलकी भाँति ध्वनिकर श्रीराधाजीको आकर्षित करते थे, श्रीराधाजीका ससुराल जावट, नन्दबाबा आदि गोपोंके बैठकका स्थान बैठान तथा श्रीकृष्णके वंशीवादनसे आकर्षित ब्रजदेवी, हिरण और हाथियोंके चरणचिह्नोंको अपने अङ्कमें आजतक भी धारण की हुई चरण पहाड़ी आदिका दर्शन किया। उसी दिन श्रील भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराजजीका तिरोभाव महोत्सव मनाया गया तथा श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रति उनकी सेवानिष्ठा, भजन–आदर्श व वैराग्य आदि अप्राकृत गुणावलियोंका कीर्तन किया गया।

२९ अक्टूबरको विश्वव्यापी इस्कॉन मठोंके प्रतिष्ठाता श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी महाराजजीका तिरोभाव उत्सव मनाया गया। उनके अनेक शिष्योंने उनके दिव्य चरित्र व श्रीमन्महाप्रभुकी वाणीके प्रचार–आदर्शपर प्रकाश डाला। श्रीलमहाराजजीने बताया कि "वे मेरे शिक्षागुरु एवं प्रिय बन्धु हैं। उनका मेरे प्रति निर्देश था कि मैं उनके शिष्योंको भजनपथ प्रदर्शन करूँ। इसलिए आज मैं वही कर रहा हूँ।"

३० अक्टूबरको प्रभुपादके आश्रित निर्भीक प्रचारक श्रीलभक्तिश्रीरूप सिद्धान्ती महाराजका तिरोभाव उत्सव मनाया गया।

३१ अक्टूबरको परिक्रमार्थी बसोंसे ऊँचागाँव, सखीगिरि आदिका दर्शनकर बरसानामें पहुँचे। ऊँचागाँवमें श्रीलमहाराजजीको 'युगाचार्य' उपाधिसे विभूषित किया गया, जो पृथक् शीर्षकमें वर्णित है।

१ नवम्बरको भक्तलोग बरसानासे नन्दगाँव दर्शनके लिए गये। मार्गमें प्रेमसरोवर, संकेत, उद्धवक्यारी, विशाखाकुण्ड, ललिताकुण्ड, पावन सरोवर, टेर कदम्ब, आशीषेश्वर महादेव, श्रीलरूप–सनातन गोस्वामीकी भजनकुटी, नन्दभवन आदिके दर्शन किये।

२ नवम्बरको भक्तोंने बरसानाके गह्वरवनकी परिक्रमा लगायी। परिक्रमाके समय वृषभानु कुण्ड, सांकरीखोर, चित्रासखीका गाँव चिकसौली, मोरकुटी, कृष्णकुण्ड, विलागढ़, मानगढ़, दानगढ़ तथा भानगढ़ स्थित श्रीकुञ्ज या श्रीजी (श्रीराधाजी) के मन्दिरके दर्शन किये।

३ नवम्बरको पार्टी बरसानासे आजनौक जहाँ श्रीकृष्णने श्रीराधाजीकी आँखोंमें अञ्जन लगाया था, खदीरवन जहाँ श्रीकृष्णने बकासुरको खदेड़ा था, श्रीलोकनाथ गोस्वामीकी भजनकुटी, किशोरी कुण्ड जहाँ श्रीलोकनाथ गोस्वामीको राधाविनोद प्राप्त हुए थे, बलदेवजीकी रासक्रीड़ा स्थली रामघाट, विहारवन, चीरघाट जहाँ श्रीकृष्णने गोपियोंके चीर चुराये थे, वत्सवन जहाँ ब्रह्माजीने अपने द्वारा चुराये गये श्रीकृष्णके सखाओं और गौओंको लौटाकर श्रीकृष्णसे क्षमा प्रार्थना की थी, गरुड़गोविन्द जहाँ श्रीकृष्णने गरुड़रूपधारी सखा श्रीदामके ऊपर आरोहण किया था आदिका दर्शनकर वृन्दावनस्थित आनन्दधाममें पहुँची।

आनन्दधाम पहुँचते ही आनन्दधामके प्रमुख श्रीआनन्दस्वरूप केला सहित बड़ी संख्यामें भक्तोंने श्रीलमहाराजजीके साथ परिक्रमा पार्टीका स्वागत किया। यात्रियोंका पड़ाव आनन्दधाममें तीन दिन तक रहा।

४ नवम्बरको भक्तोंने वृन्दावनकी पंचकोसी परिक्रमा की। नवम्बर ५ को सायंकाल अनेक झांकियोंके साथ कलश शोभायात्रा वृन्दावनके प्रमुख मार्गोंसे निकाली गयी।

नवम्बर ६ तारीखको आनन्द धाम मन्दिर संकुलमें गुरुवारको राधा श्यामसुन्दर, वेद भगवान, आगम ग्रन्थों एवं गोपीश्वर महादेवके विग्रहोंकी प्राण-प्रतिष्ठा महोत्सवका शुभारम्भ श्रीलभक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज 'युगाचार्य' द्वारा किया गया।

इससे पूर्व प्रातःकालीन संगोष्ठीको संबोधित करते हुए श्रीलमहाराजजीने श्रीभजनरहस्य ग्रन्थकी व्याख्या की। उन्होंने कहा कि अष्टकालीन लीला भजनमें स्मरण प्रधान है, परन्तु वे भी नाम संकीर्तनके साथ होना चाहिए। प्रत्येक युगमें नाम संकीर्तन किया जाता है। परन्तु कलियुगमें नाम संकीर्तनका विशेष महत्व है। इसलिए श्रीचैतन्य महाप्रभु इस कलियुगमें आये। उन्होंने कहा कि भारतकी संस्कृति विश्वमें महान थी, महान है और महान रहेगी।

अपराह्न कालीन कार्यक्रमकी अध्यक्षता करते हुए योगीराज लालजी भाई महाराजने कहा कि इन महापुरुषोंने आपको जो परोसा है, उसको ग्रहण करें। मुख्य अतिथि श्रीलभक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीने कहा कि भगवानका अप्राकृत आकार है जो जड़ इन्द्रियोंके द्वारा देखा नहीं जा सकता है। उन्होंने बाइबल, कुरान तथा वेदोंके आधार पर इसको प्रमाणित किया। विद्वान वासुदेवकृष्ण चतुर्वेदीने कहा कि आनन्द धामपर भगवान विष्णु एवं सभी देवी-देवताओंका आशीर्वाद बरसता रहे। सन्त देवदास महाराजने कहा कि गुरुके साथ-साथ शिष्यकी महिमा भी बढ़ी है। गुरुकृपाको पचानेकी पात्रता बहुत कम शिष्योंमें होती है। आनन्दधाम वृन्दावनमें मानसरोवर बन गया है। सन्त ज्ञानानन्द महाराजने कहा कि कृष्ण आनन्द हैं और आनन्द ही कृष्ण है। आनन्द पानेका एक ही मार्ग है कि भगवानकी शरणमें आ जाए। सन्त विजय कौशल महाराजने आशीष वचन देते हुए प्राण प्रतिष्ठा समारोहको मङ्गलपूर्वक सम्पन्न होनेकी शुभकामना दी। आनन्दधामके प्रमुख न्यासी श्रीआनन्दस्वरूप केलाजीने कहा कि भारतीय संस्कृति और सभ्यताका जन्म ऋषियोंके पवित्र आश्रमोंसे हुआ है। संस्कृति व सभ्यताकी रक्षाके लिए आनन्दधाम संकुल सेवायज्ञके रूपमें छोटा-सा प्रयास है।

अन्तमें बांकेबिहारी माहेश्वरीने आभार व्यक्त किया। संचालन डा. एम. के. मिश्रा व डा. राकेश सक्सेनाने किया।

इस अवसरपर अलीगढ़ विकास प्राधिकरणके उपाध्यक्ष डा. नन्दकिशोर, मथुराके कार्यवाहक जिलाधिकारी राजीव रौतेला आदि उपस्थित थे।

इस बीच रासाचार्य स्वामी श्रीराम शर्माकी मंडलीने श्रीगौरलीलाके अन्तर्गत श्रीनिमाई संन्यास लीलाकी प्रस्तुति की तथा दो दिनों तक श्रीकृष्णलीलाओंका मंचन भी किया। प्रातः १० बजे श्रीमन्दिरमें विग्रह प्रतिष्ठा कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। वैदिक मन्त्रोंके उच्चारणके बीच सबसे पहले श्रीविग्रहोंका पंचामृत द्वारा अभिषेक हुआ। इसके बाद

महाआरती हुई। इस दौरान महायज्ञ भी हुआ। सायंकल मुम्बईसे आये हुए भजन सम्राट विनोद अग्रवाल तथा उनके साथियों द्वारा भजनसन्ध्याका आयोजन हुआ।

७ तारीखको पार्टीका अन्तिम पड़ाव वृन्दावनमें ही श्रीरूपसनातन गौड़ीय मठ तथा गोपीनाथ भवनमें रहा। भक्तलोगोंने यमुना पारकर बेलवनका दर्शन किया। ८ तारीखको पूर्णिमाके दिन प्रातःकाल शताधिक श्रद्धालुओंने श्रीलमहाराजजीसे हरिनाम व दीक्षा ग्रहण की। हवनके साथ ऊर्जा व्रतका समापन हुआ तथा हजारों भक्तोंने प्रसाद सेवा की। श्रीलमहाराजजीने बताया कि ऐसा व्रत यदि सालभर चलता रहे तो बहुत आनन्दकी बात है। ऊर्जाव्रतके समय हमने जो शिक्षाएँ ग्रहण की, उनका आचरण करनेका प्रयास करें। इस परिक्रमाका आयोजन हमें प्रचुर साधुसङ्ग, हरिकथा श्रवण-कीर्तन व धामदर्शनका सुअवसर प्रदान करता है, जिससे हमारे भजन-साधनमें उत्साह वर्द्धित होता है।

(संवाद प्रस्तुति—श्रीओमप्रकाश ब्रजवासी)

श्रीआनन्दधाम प्रतिष्ठाके अवसरपर आयोजित विद्वत् व सन्त-सभामें श्रीलभक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज (प्रवचन करते हुए), उनकी दायीं ओर योगीराज लालजी भाई महाराज तथा बायीं ओर सन्त देवदास महाराज

(१)

(२)

(३)

श्रीब्रजमण्डल परिक्रमाके समय (१) भाण्डीरवन, (२) गोकुल, (३) गोवर्धनमें श्रीलमहाराजजीके साथ देश–विदेशके भक्त

भ्रम–संशोधन

गतांक संख्या ८ में (१) प्रत्येक पृष्ठ पर संख्या ७ के स्थानपर संख्या ८ तथा पृष्ठ १६९ से आरम्भ होकर १९२ तक होगा।

(२) पृष्ठ १४७, संशोधित पृष्ठ १७१ पर "प्रश्नोत्तर" लेखमें प्रश्न १ है—सम्बन्ध–तत्त्वमें क्या शिक्षा दी गयी है?

प्रश्न १ के उत्तरमें १२ वीं पंक्तिका संशोधित रूप होगा—

ऐश्वर्य–प्रधान प्रकाशके रूपमें वे परव्योममें नारायण हैं। माधुर्य–प्रकाशके रूपमें गोलोक वृन्दावनमें वे गोपीजनवल्लभ श्रीकृष्णचन्द्र हैं।

श्रीश्रीगुरु–गौराङ्गौ–जयतः

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे

वैकुण्ठ–वार्त्तावह

बृहत्–मृदङ्ग

श्रीभागवत–पत्रिका

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः।
ज्ञान वैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना॥

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा॥

आराध्यो भगवान् व्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावनं, रम्या काचिदुपासना व्रजवधूवर्गेण या कल्पिता।
श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान्, श्रीचैतन्य महाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो नः परः॥

एक भागवत बड़ भागवत शास्त्र । आर एक भागवत भक्तिरसपात्र॥
दुई भागवत द्वारा दिया भक्तिरस । ताहाँर हृदये तार प्रेमे हय वश॥

वर्ष ४७ } श्रीगौराब्द ५१७
वि. सं. २०६० पौष मास, सन् २००३, ९ दिसम्बर—७ जनवरी {संख्या १०

श्रीदान–निर्वर्त्तन–कुण्डाष्टकम्

श्रीदाननिर्वर्त्तन–कुण्डाय नमः

(श्रील–रघुनाथदास–गोस्वामि–विरचित)

स्व–दयित–गिरिकच्छे गव्य–दानार्थमुच्चैः कपट–कलह–केलिं कुर्वतोर्नव्ययूनोः।
निजजनकृत–दर्पैः फुल्लतोरीक्षकेऽस्मिन् सरसि भवतु वासो दाननिर्वर्तने नः॥१॥

अपने प्रिय गोवर्द्धन गिरिके समीपस्थ प्रदेशमें दूध–दही आदिके दानको लेकर जो परस्पर प्रचुर कपट–केलिमें कलह कर रहे हैं और जो अपने प्रिय जनोंके दर्प हेतु अतिशय आनन्दित हैं, ऐसे ब्रज–नव–युवद्वन्द्व अर्थात् श्रीराधाकृष्ण जिनके दर्शनीय हो रहे हैं, उन्हीं दान निर्वर्तन कुण्डके तीरपर मेरा निवास हो॥१॥

निभृतमजनि यस्माद्दान–निर्वृत्तिरस्मि–न्नत इदमभिधानं प्राप यत्तत् सभायाम्।
रसविमुख–निगूढ़े तत्र तज्ज्ञैकवेद्ये सरसि भवतु वासो दाननिर्वर्तने नः॥२॥
अभिनव–मधुगन्धोन्मत्त–रोलम्बसंघ–ध्वनि–ललित–सरोजव्रात–सौरभ्य–शीते ।
नव–मधुर–खगाली–क्ष्वेलि–सञ्चार–कम्रे सरसि भवतु वासो दाननिर्वर्तने नः॥३॥
हिम–कुसुम–सुवास–स्फार–पानीयपूरे रस–परिलसदाली–शालिनोर्नव्ययूनोः।
अतुल–सलिलखेला–लब्ध–सौभाग्यफुल्ले सरसि भवतु वासो दाननिर्वर्तने नः॥४॥
दरविकसित–पुष्पैर्वासितान्तर्दिगन्ताः खग–मधुप–निनादैर्मोदित–प्राणिजाताः।
परित उपरि यस्य क्ष्मारुहा भान्ति तस्मिन् सरसि भवतु वासो दाननिर्वर्तने नः॥५॥
निज–निज–नवकुञ्जे गुञ्जि–रोलम्ब–पुञ्जे प्रणयि–नव–सखीभिः संप्रवेश्य प्रियौ तौ।
निरुपम–नवरङ्गस्तन्यते यत्र तस्मिन् सरसि भवतु वासो दाननिर्वर्तने नः॥६॥
स्फटिक–सममतुच्छं यस्य पानीयमच्छं खग–नर–पशु–गोभिः संपिबन्तीभिरुच्चैः।
निज–निज–गुणवृद्धिर्लभ्यते द्रागमुष्मिन् सरसि भवतु वसो दाननिर्वर्तने नः॥७॥

निर्जन स्थानमें (इस कुण्डके तटपर) दानकार्य सम्पन्न हुआ था, इसलिए दान–सभामें जो कुण्ड "दाननिर्वर्त्तन कुण्ड" इस नामको प्राप्त हुआ है, और जो अरसिक व्यक्तिके निकट अप्रकाशित हैं तथा वृन्दावनवासी रसिकोंके ही एकमात्र वेद्य हैं, उन्हीं दान निर्वर्त्तन सरोवरके तीरपर मेरा निवास हो॥२॥

अभिनव मधु–गन्धसे उन्मत्त भ्रमर समूहकी गुञ्जन–ध्वनिसे, जिसमें मनोहर पद्मसमूह अतिशय सुन्दर एवं सुशीतल हो रहे हैं और जो नूतन मनोज्ञ पक्षि–समूहकी क्रीड़ा एवं सुमधुर कलरव–ध्वनिसे अतिशय रूपसे चित्तको हरण कर रहे हैं, उन्हीं दान निर्वर्त्तन कुण्डके तीरपर हमारा निवास हो॥३॥

जिनका जल हिमवत् शीतल है और विविध पुष्पोंके सुगन्धसे सुवासित है, तथा शृङ्गार–रस द्वारा सुशोभित, सखियोंसे घिरे हुए नव्य युवद्वन्द्व श्रीराधाकृष्णाकी अतुलनीय जल–क्रीड़ाको लाभ करनेके सौभाग्यसे जो अतिशय प्रफुल्लित हो रहे हैं, उन्हीं दान–निवर्त्तन कुण्डके तीरपर हमारा निवास हो॥४॥

ईषत् विकसित पुष्पसमूहोंसे लदे हुए वृक्षराजि दिग्दिगन्तको आमोदित कर रहे हैं और जिनकी शाखाओंपर बैठे हुए पक्षियों एवं भ्रमरोंके कलरवसे समस्त प्राणी प्रसन्न हो रहे हैं, ऐसी वृक्ष–श्रेणियों जिस सरोवरके चतुर्दिक शोभायामान हो रही हैं, उन्हीं दान निर्वर्त्तन कुण्डके तीरपर हमारा निवास हो॥५॥

जिस कुण्डके तटपर प्रणयी–नव–सखीगण अपने–अपने भ्रमर–गुञ्जित नव–कुञ्जमें श्रीराधाकृष्णाको प्रविष्ट करा कर अतुलनीय नवरङ्गका विस्तार कर रहीं हैं, उन्हीं दान निर्वर्त्तन सरोवरके तीरपर हमारा निवास हो॥६॥

मनुष्य, पशु, पक्षी और गौवें जिनके स्फटिक तुल्य निर्मल और स्वच्छ जलको खूब पेटभर पीकर शीघ्र ही अपने–अपने गुणोंकी अतिशय वृद्धि अनुभव कर रहे हैं, उन्हीं दान निर्वर्त्तन सरोवरके तीरपर हमारा वास हो॥७॥

सुरभि–मधुर–शीतं यत् पयः प्रत्यहं ताः सखिगण–परिवीतो व्याहरन् पाययन् गाः।
स्वयमथ पिबति श्रीगोपचन्द्रोऽपि तस्मिन् सरसि भवतु वासो दाननिर्वर्तने नः॥८॥
पठति सुमतिरेतद्दाननिर्वर्तनाख्यं प्रथितमहिम–कुण्डस्याष्टकं यो यतात्मा।
स च नियत–निवासं सुष्ठु संलभ्य काले कलयति किलं राधाकृष्णयोर्दानलीलाम्॥९॥
इति श्रीमद्रघुनाथदासगोस्वामिविरचित–स्तवावल्यां श्रीदाननिर्वर्तनकुण्डाष्टकं संपूर्णम्।

गोपचन्द्र श्रीकृष्ण अपने सखाओंसे परिवेष्टित होकर उनसे वार्त्तालाप करते-करते जिनका सुगन्धित सुमधुर और सुशीतल जल गायोंको पिलाकर सखाओंके साथ स्वयं भी पान करते हैं, उन्हीं दान निर्वर्त्तन सरोवरके तीरपर हमारा निवास हो॥८॥

जो बुद्धिमान व्यक्ति जितेन्द्रिय होकर सुविख्यात् माहात्म्यशाली कुण्डके इस दान निर्वर्त्तन नामक अष्टकका पाठ करते हैं, वे उक्त कुण्डके तीरपर सुष्ठुरूपसे स्थिर निवास लाभ करके उपयुक्त समयमें श्रीराधाकृष्णकी दानलीला-दर्शनके आधिकारी होते हैं॥९॥⑧

प्रश्नोत्तर

(श्रीकृष्णनाम तत्त्व)

(गताङ्कसे आगे)

—जगद्गुरु श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

प्र. १३—मुक्तावस्थामें हरिनामकी क्या आवश्यकता है? ऐकान्तिकी नामाश्रया भक्ति कैसे होती है?

उ.—कृष्णनामको छोड़कर जीवका अन्य कोई धन अथवा गति नहीं है। शुद्ध जीव मुक्तावस्थामें श्रीवैकुण्ठमें सदा-सर्वदा हरिनामका गान करते हैं। अपराधशून्य न होनेसे कदापि नामका एकान्त आश्रय प्राप्त नहीं होता है।

(नामके बलपर पाप-प्रवृत्ति एक नामापराध है, स. तो. ८/६)

प्र. १४—महाप्रभुजीका क्या उपदेश है?

उ.—श्रीमन्महाप्रभुजीने जीवनको कृष्ण-नाममय करनेका उपदेश दिया है। कृष्णनामको छोड़कर इस संसारमें और कोई सत्यवस्तु नहीं है।

प्र. १५—श्रीचैतन्य महाप्रभुने किस प्रकार जीवोंका उद्धार किया?

उ.—केवलमात्र कृष्णनाम देकर और कृष्णनामका उच्चारण करवाकर श्रीमन् महाप्रभुजीने जीवोंका उद्धार किया।

(श्रीकृष्णनाम, स. तो ११/५)

प्र. १६—सर्वसिद्धि कैसे होती है?

उ.—प्रभुके वचनोंमें दृढ़ विश्वास कर श्रीगुरुकृपाबलसे यदि शुद्ध कृष्णनाम किया जाय, तो सर्वसिद्धि हो सकती है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

(श्रीकृष्णनाम, स. तो. ११/५)

प्र. १७—श्रीमूर्त्तिके प्रति अपराध कैसे नष्ट होता है?

उ.—

कृष्णेर श्रीमुर्त्ति-प्रति अपराध करि।
नामाश्रये सेइ अपराध जाय तरि॥

अर्थात् हरिनाम कीर्त्तन करनेसे श्रीमूर्त्तिके प्रति किया हुआ अपराध नष्ट हो जाता है।
(भ. र. द्वितीय याम-साधन)

प्र. १८—श्रीकृष्णके नाम-रूप-गुण-लीला आदि क्या जीवोंके प्राकृत देह इन्द्रियों द्वारा ग्रहण किये जा सकते हैं?

उ.—जीवोंके प्राकृत देह और इन्द्रियोंके द्वारा शुद्धसत्त्वमय कृष्णके नाम-रूप-गुण-लीला आदिको ग्रहण नहीं किया जा सकता। कृष्णने कृपाकर उन-उन तत्त्वोंको जीवोंके मङ्गलके लिए प्रत्यक्षरूपसे इस जगतमें प्रकटित किया है। प्रत्यग् भाव ही चित्-तत्त्वका स्वप्रकाश भाव है।
(नाम-माहात्म्य-सूचना, ह. चि.)

प्र. १९—नाम कैसे रूपको प्रकाश करते हैं?

उ.—नामरूप कलिका किंचित् प्रस्फुटित होनेपर कृष्णादि मनोहर चिन्मय रूप उदित होते हैं। (भजन-प्रणाली, ह. चि.)

प्र. २०—नाम किस प्रकार गुणोंको प्रकाश करते हैं?

उ.—पुष्पोंकी सौरभकी तरह खिले हुए नामरूपी कलिकामें चौसठ प्रकारके गुण-सौरभका अनुभव प्राप्त होता है।
(भजन-प्रणाली, ह. चि.)

प्र. २१—नाम किस प्रकार लीला-प्रकाश करते हैं?

उ.—नामकुसुमके पूर्ण प्रस्फुटित होनेपर कृष्णकी अष्टकालीय चिन्मय नित्य-लीला प्रकृतिसे अतीत होनेपर भी जगतमें उदित होती हैं? (भजन-प्रणाली, ह. चि.)

प्र. २२—क्या विरह और सम्भोग-दोनों समय ही हरिनाम आस्वादनीय हैं?

उ.—विरह और संभोग-दोनों ही अवस्थाओंमें नाम भावनाके भेदसे नित्य आस्वाद्य हैं।
(प्रमाद, ह. चि.)

प्र. २३—गोलोकस्थ और भूलोकस्थ काम बीजमें पार्थक्य क्या है?

उ.—गोलोकमें अवस्थित कामबीज विशुद्ध चिन्मय है और प्रपञ्चमें स्थित कामबीज छायाशक्तिगत काल आदि शक्तिका कामबीज है। (ब्र. सं. ५/८)

प्र. २४—कृष्णकी वंशीध्वनि क्या वस्तु है?

उ.—कृष्णकी वंशीध्वनि सच्चिदानन्द शब्दविशेष है। वेदोंका समस्त आदर्श उसमें वर्त्तमान होता है। (ब्र. सं. ५/२७)

प्र. २५—सोलह नामके अष्टयुगल किस प्रकार अष्टकालीय लीलामें शिक्षाष्टकके साथ अनुशीलनीय हैं?

उ.—

हरे कृष्ण सोलह नाम अष्टयुगल हय।
अष्टयुगल अर्थे अष्ट श्लोक प्रभु कय॥
आदि हरेकृष्ण अर्थ-अविद्या-दमन।
श्रद्धार सहित कृष्णनाम-संकीर्त्तन॥
आर हरे कृष्ण नाम-कृष्ण सर्वशक्ति।
साधुसङ्गे नामाश्रये भजनानुरक्ति॥
सेइ त भजनक्रमे सर्वानर्थ नाश।
अनर्थापगमे नामे निष्ठार विकाश॥
तृतीये विशुद्ध भक्त चरित्रेर सह।
कृष्ण कृष्ण-नामे निष्ठा करे अहरह॥
चतुर्थेते अहैतुकी भक्ति उद्दीपन।
रुचि सह हरे हरे नाम-सङ्कीर्तन॥

पञ्चमेते शुद्धदास्य आसक्ति सहित।
हरेराम संकीर्त्तन स्मरण विहित॥
षष्ठे भावाङ्कुरे हरेरामेति कीर्त्तन।
संसारे अरुचि, कृष्णे रुचि समर्पण॥
सप्तमे मधुरासक्ति राधापदाश्रय।
विप्रलम्भे राम राम–नामेर उदय॥
अष्टमे व्रजेते अष्टकाल गोपीभाव।
राधाकृष्ण–प्रेमसेवा प्रयोजन लाभ॥

(भ. र. प्रथम यामसाधन)

अर्थात् हरेकृष्ण सोलह नामके अष्टयुगल हैं। अष्टयुगलके तात्पर्यमें आठ श्लोक हैं। पहले 'हरे कृष्ण' नामका तात्पर्य है—श्रद्धाके सहित कृष्णनाम सङ्कीर्त्तन करनेसे अविद्याका दमन होता है। दूसरे 'हरे कृष्ण' नामका तात्पर्य है—कृष्णमें सभी शक्तियाँ हैं और साधुसङ्गमें नामाश्रय ग्रहण करनेपर भजनमें अनुरक्ति होती है। उस भजनके द्वारा सब प्रकारके अनर्थोंका नाश हो जाता है, और अनर्थोंके दूर होनेपर नाममें निष्ठा पैदा होती है। तीसरे 'कृष्ण कृष्ण' नामका तात्पर्य है—विशुद्ध भक्तोंके साथ सदा–सर्वदा नाम ग्रहण करनेपर नामके प्रति निष्ठा प्रगाढ़ हो जाती है। चतुर्थ 'हरे हरे' नामका तात्पर्य यह है कि रुचिके साथ नाम–सङ्कीर्त्तन करनेपर अहैतुकी भक्तिका उदय होता है। पाँचवें 'हरे राम' नामका तात्पर्य यह है कि आसक्तिपूर्वक नाम सङ्कीर्त्तन और नाम स्मरण करनेसे शुद्धदास्य भावका उदय होता है। छठवें 'हरे राम' नामका तात्पर्य है—आसक्ति सहित नाम करनेसे भावाङ्कुरका उदय होता है। भावाङ्कुरके उदय होनेपर संसारके प्रति अरुचि पैदा हो जाती है, और कृष्णके चरणोंमें सम्पुर्ण रुचि पैदा जाती है। सातवें "राम राम" नामका तात्पर्य यह है कि विप्रलम्भ भावसे युक्त नामका उदय होनेपर मधुरासक्ति होती है, और राधापदाश्रयकी प्राप्ति होती है। आठवें 'हरे हरे' नामका तात्पर्य यह है कि शुद्ध नामके प्रभावसे गोपीभावकी प्राप्त होती है और व्रजमें अष्टकालीय राधाकृष्ण–प्रेमसेवारूप परम प्रयोजनकी प्राप्ति होती है।

प्र. २६—आकर्षक—वाचक श्रीकृष्णनाम ही परम मुख्यतम क्यों हैं?

उ.—किसी एक बृहत् गुणको लक्ष्यकर सभी भक्तोंने भगवानका नामकरण किया है। ब्रह्मा, परमात्मा, नारायण आदि नाम ही वृहत्गुण वाचक हैं। इन गुणोंद्वारा जीव और ईश्वरका सम्पूर्ण सम्बन्ध निरूपित नहीं होता। भक्ति रागरूपा है और जीव एवं ईश्वर—इन दोनोंकी मध्यवर्त्तिनी सम्बन्ध स्थापित करनेवाली अप्राकृत रज्जुविशेष है। इनके द्वारा ही ईश्वरके प्रति जीव अनन्त प्रकारसे आकर्षित होते हैं। अतएव सम्बन्ध सूत्रमें आकर्षण ही ईश्वरका एकमात्र उत्कृष्ट प्रकाश है। कृष्ण आकर्षण–शब्द वाचक हैं। अतएव उपासना–तत्वमें जीवोंका कृष्णके साथ ही शुद्ध नित्य सम्बन्ध है।　　(त. सू. ४०वाँ सूत्र)

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥

श्रीलप्रभुपादजीका उपदेशामृत

प्र. १४६—कर्म और लीलामें क्या भेद है?

उ.—कर्म और लीलामें आकाश-पातालका भेद है। कर्म बहिर्मुख जड़ इन्द्रियोंके द्वारा किये जाते हैं, परन्तु लीला सेवोन्मुख चिद् इन्द्रियोंके द्वारा होती है। कर्मकी भूमिका जगत है, अर्थात् कर्म जगतमें ही होता है। कर्मका आधार स्थूल या सूक्ष्म देह है अर्थात् स्थूल या सूक्ष्म देहसे ही कर्म किये जाते हैं। कर्म अनित्य हैं। क्योंकि वे अनित्य शरीरसे किये जाते हैं। लीलाएँ नित्य हैं, क्योंकि वे चिन्मय इन्द्रियोंके द्वारा होती हैं। कर्म मायाबद्ध जीवके लिए त्रितापभोग या दण्डस्वरूप है। परन्तु लीला सर्वतन्त्र स्वतन्त्र स्वराट् पुरुषोत्तमकी निरंकुश इच्छासे उत्पन्न आनन्दमय क्रीड़ामात्र है। लीलाकी भूमिका चौदह लोकों (भूलोक, भुवर्लोक इत्यादि) से अतीत बिरजा नदी तथा ब्रह्मलोक (मुक्तिलोक) से भी ऊपर वैकुण्ठ और गोलोक है। लीलाएँ लीलामय भगवानकी लीलाशक्तिकी इच्छासे ही जगतमें प्रकाशित होती हैं। ऐसा होनेपर भी इन्द्रियातीत अचिन्त्य स्वभावके कारण वह जागतिक गुणोंसे लिप्त नहीं होती हैं। यही गौड़ीय दर्शनका विचार है।

प्र. १४७—क्या प्रकृति या माया जगत-सृष्टिका मूल कारण है?

उ.—गुणमयी माया कभी भी जगतका मुख्य कारण नहीं हो सकती। महाविष्णुके द्वारा ईक्षणके माध्यमसे शक्तिके सञ्चरित होनेपर ही गुणमयी माया जगत-सृष्टिका गौण कारण होती है। जिस प्रकार लोहेमें अग्नि प्रवेश करनेपर लोहेमें जलानेकी शक्ति आ जाती है, ठीक उसी प्रकार प्रकृति या मायाका द्रव्यरूप कारणत्व अजागलस्तन (बकरीके गलेके स्तन) की भाँति ही है। गुणरूप अंशमें जिस मायाको निमित्त-कारण बताया गया है, उसमें भी कृष्ण ही मूल निमित्त-कारण हैं। नारायण कुम्हार स्थानीय मुख्य निमित्त-कारण हैं, माया चक्रदण्ड (घड़े बनानेमें प्रयुक्त किये जानेवाले चक्र एवं दण्ड) स्थानीय गौण निमित्तकारण है। जिस प्रकार कुम्हारके बिना घड़ा नहीं बन सकता, उसी प्रकार कृष्णके बिना भी जगत नहीं हो सकता। अतः जगत-सृष्टिके मूलकारण भगवान हैं। माया गौणकारण है। कारणार्णवशायी पुरुष दूरसे मायाके प्रति ईक्षण करते हैं। उससे दो कार्य होते हैं। प्रथम उनके (कारणोदकशायीके) किरण-कण स्वरूप अनन्त जीव मायामें प्रविष्ट होते हैं। द्वितीय वे अपने अङ्गके आभाससे मायाका स्पर्शकर अनन्त ब्रह्माण्डोंकी सृष्टि करते हैं। अङ्गका आभास अङ्गमिलनका आभासमात्र है, वास्तविक अङ्गमिलन नहीं है, 'वे भगवान मायासे युक्त होकर आते हैं'—इस चिन्ताधाराकी भाँति नहीं है। कृष्ण ही प्रत्येक ब्रह्माण्डमें एक-एक स्वरूप धारणकर प्रविष्ट होते हैं। अतः कृष्ण ही मूल जगतकारण हैं। शास्त्र कहते हैं—

कृष्णशक्त्ये प्रकृति हय गौणकारण।
अग्निशक्त्ये लौह जैछे करये जारण॥

(चै. च.)

परव्योम (वैकुण्ठ) के बाहर ज्योतिर्मय ब्रह्मधाम है, उसके बाहर कारणसमुद्र है। चिन्मयधाम कारणशून्य है, परन्तु कारणमयी है। इन दोनोंके मध्यवर्ती स्थानको चिन्मयजलनिधि कारणसमुद्र कहा जाता है। उन जलशायी भगवानका ईक्षण ही उससे बाहर विद्यमान मायाको लक्ष्यकरके सृष्टि आदि कार्य करते हैं। माया उस कारणसमुद्रको स्पर्श नहीं कर सकती। अतः भगवानका ईक्षण मायामें प्रविष्ट होकर मायाको क्रियावती बनाता है।

प्र. १४८—किसकी सेवा सर्वश्रेष्ठ है?

उ.—पद्मपुराणमें शिवजी पार्वतीजीसे कह रहे हैं—

आराधनानां सर्वेषां विष्णोराराधना परम्।
तस्मात् परतरं देवि तदीयानां समर्चनम्॥

जगतमें जितनी प्रकारकी पूजाएँ प्रचलित हैं, उन पूजाओंमें भगवान श्रीहरिकी पूजा ही सर्वोत्तम है। जो उन सर्वोत्तम पूज्य भगवान श्रीहरिकी पूजा करते हैं, उन भगवद् भक्तोंकी पूजा तो और भी अधिक श्रेष्ठ है। ऐसे भक्तोंकी पूजा तो स्वयं भगवान भी करते हैं। भगवान सर्वाधिक पूज्य हैं। ऐसे भगवानकी पूजाके पात्र या प्रेमके पात्र प्रेमी भगवद्भक्त होते हैं। श्रीगुरुदेव उन भगवद् भक्तोंमें अग्रणी हैं। अतः इससे स्पष्ट हो जाता है कि भगवान भी जिसकी पूजा करते हैं, उसकी सेवा-पूजा ही सबसे श्रेष्ठ है।

मद्गुरुः जगद्गुरुः, मन्नाथः जगन्नाथः। मेरे गुरु जगद्गुरु हैं। मेरे गुरुके विद्वेषी व्यक्ति भगवानके भी विद्वेषी हैं। इतना ही नहीं, वे सारे जगतके विद्वेषी हैं, मनुष्यमात्रके विद्वेषी हैं। जबतक शिष्यके हृदयमें ऐसे विचार नहीं आ जाते, तबतक वह गुरुसेवक नहीं है। तबतक श्रीगुरुदेवके चरणकमलोंमें स्वयंको आत्मसमर्पित नहीं कर सकता। तबतक वह तृणादपिसुनीच एवं अमानी-मानद होकर हरिकीर्तन नहीं कर सकता। गुरुसेवाके समान अन्य कोई मङ्गलप्रद कार्य नहीं है। समस्त आराधनाओंमें भगवानकी आराधना सर्वश्रेष्ठ है। भगवानकी आराधनासे भी श्रीगुरुदेवकी सेवा श्रेष्ठ है, जबतक साधकके हृदयमें ऐसा दृढ़विश्वास नहीं आ जाता, तबतक उसका गुरुपदाश्रय करना नहीं हुआ। मैं आश्रित हूँ, गुरुदेव मेरे एकमात्र आश्रय, पालक एवं रक्षक हैं—ऐसे विचार उसके हृदयमें कदापि उत्पन्न नहीं हो सकते। ***सर्वस्वं गुरवे दद्यात्***—इस शास्त्रवाणीके अनुसार जबतक श्रीगुरुदेवके चरणोंमें अपना सर्वस्व समर्पित न किया जाय तथा प्राण, अर्थ, बुद्धि, वाक्य, मन, विद्या, शरीर इत्यादिके द्वारा प्रीतिपूर्वक उनकी सेवा न की जाय, तबतक विषयोंके प्रति आसक्ति नष्ट नहीं हो सकती। तबतक निष्काम नहीं हुआ जा सकता। स्वसुखकामनारूप भवरोग दूर नहीं हो सकता। भय, चिन्ता, दुःख, मोह नहीं कट सकते। सम्पूर्णरूपसे श्रीगुरुदेवके चरणोंमें आश्रय लेनेसे ही निर्मोह (मोहरहित), निर्भय एवं अशोक (शोकरहित) हुआ जा सकता है। यदि हम निष्कपटरूपसे कृपा प्राप्त करना चाहते हैं, तो श्रीगुरुपादपद्म निष्कपटरूपसे हमें समस्त प्रकारके मङ्गल प्रदान करते हैं।

श्रीगुरुदेव मर्त्य जगतके नहीं हैं। वे अमर एवं नित्य वस्तु हैं। श्रीगुरुदेव नित्य हैं, उनकी सेवा नित्य हैं तथा उनके सेवक

भी नित्य हैं। अतः हमें कितना आशा-भरोसा रखना चाहिए कि कोई भी नाशवान् वस्तु हमारी नहीं है? अर्थात् एकमात्र नित्यवस्तु श्रीगुरुपादपद्म एवं उनके सेवकोंके प्रति ही हमें आशा एवं भरोसा रखना चाहिए।

हम वश्य तत्त्व (अधीन तत्त्व) हैं, श्रीगुरुदेव ईश्वर वस्तु (सेवक भगवान) हैं। श्रीकृष्ण विषय-विग्रह तथा श्रीगुरुदेव आश्रय-विग्रह हैं, जिनका आश्रय ग्रहण करनेसे हम भगवानको प्राप्त कर सकते हैं। स्वयं भगवान कृष्ण विषय-विग्रह होनेपर भी आश्रय-विग्रह गुरुतत्त्वके रूपमें विराजमान हैं। श्रीगुरुदेव ईश्वर एवं भगवान होनेपर भी स्वयं भगवानकी सेवाका आचरण करके हमें शिक्षा देते हैं। वर्तमानमें हमारी संसारके प्रति आसक्ति एवं कर्त्ता अभिमान है। इसलिए हमें इतना दुःख एवं उद्वेव प्राप्त हो रहा है। इस भयङ्कर कर्त्ताभिमानसे गुरुदेव ही हमारी रक्षा कर सकते हैं। किन्तु क्या हम रक्षा चाहते हैं? हम तो इसी संसारमें ही अटके रहना चाहते हैं। यदि हमारी संसारसे मुक्त होनेकी इच्छा होती, तो साक्षात् भगवत्स्वरूप गुरुदेव—भगवद् अवतार श्रीगुरुदेव, भगवानके प्रतिनिधि श्रीगुरुदेवकी जी-जानसे सेवा करनेपर भी हमारा मन नहीं भरता। क्या हमारी चित्तवृत्ति ऐसी हो रही है? गुरुदेवको सोलह आना (शत प्रतिशत) देनेकी बात तो दूर रहे, हमारे हृदयमें एक आना देनेकी भी प्रवृत्ति नहीं है। यदि हम सारवस्तुको सार न करें, तो सारवस्तु कैसे प्राप्त की जा सकती है? अर्थात् गुरुदेव ही सारवस्तु हैं, यदि हम उनका आश्रय ग्रहण न करें, तो सारवस्तु भगवानको कैसे प्राप्त कर सकते हैं? श्रीगुरुदेवके प्रति भगवत् बुद्धि न रहनेके कारण ही हमारी ऐसी दुर्गति हो रही है, संसारके प्रति आसक्ति क्षण-प्रतिक्षण बढ़ रही है। इसलिए मैं कह रहा हूँ—श्रीगुरुदेवके प्रति मर्त्यबुद्धि या साधारण मनुष्यबुद्धि मत करो। वे तुम्हारे अनन्तजीवनदाता हैं, तुम्हारे भवरोगके वैद्य हैं। सब प्रकारसे तुम्हारे रक्षक, पालक, उपकारक तथा तुम्हारे निःस्वार्थ बन्धु हैं।

हम यदि पूर्णरूपसे श्रीगुरुदेवके श्रीचरण-कमलोंका आश्रय ग्रहण करनेके लिए तैयार न हों, तो जितने परिमाणमें हम कपटता करेंगे, उतने परिमाणमें स्वयं ही ठगे जायेंगे। हमें यह बात सर्वदा स्मरण रखनी चाहिए। अन्यथा सद्गुरु चरणाश्रय करनेपर भी हमारा कुछ विशेष उपकार नहीं हो सकता। समस्त मङ्गलोंके भी मङ्गलस्वरूप भगवान श्रीकृष्णचन्द्रने कृपापूर्वक हमारे कल्याणके लिए हमें जिनके हाथोंमें अर्पण किया है, यदि मैं सम्पूर्णरूपसे उन श्रीगुरुदेवके श्रीचरणकमलोंका आश्रय ग्रहण न करूँ, समर्पण न करूँ, अपना सर्वस्व उन्हें न देकर कपटता करूँ, तो वे सम्पूर्णरूपसे हमारा मङ्गल कैसे करेंगे? यदि हम हृदयसे संसारके प्रति आसक्त होकर बाहरसे लोगोंको दिखानेके लिए भक्तिका ढोंग करें, तो सर्वज्ञ श्रीगुरुदेव हमारे इस ढोंगको जानकर हमारी वञ्चना कर देंगे—***'यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी।'*** हम गुरु-वैष्णवोंकी सेवा न कर माया अर्थात् आत्मीय बन्धु-बान्धवोंकी सेवामें ही व्यस्त रहकर जब गुरु और वैष्णवोंकी वञ्चना करते हैं, तब अन्तर्यामी श्रील गुरुदेव

कृपापूर्वक हमसे कहते हैं—"तुम मेरे शिष्य नहीं बने, तुम मेरा शासन स्वीकार नहीं करते हो, मेरी बात तुम नहीं सुनते हो, तुम्हारे हृदयमें पाप है। विश्वासघातक मनकी बात एवं सांसारिक लोगोंके आदर्श एवं विचारोंकी बात सुननेके कारण तुम्हारे कान मेरी बात सुननेके योग्य नहीं रह गये। अतः तुम वञ्चित हो गये हो।"

इसलिए मैं पुनः कह रहा हूँ कि श्रीगुरुदेव निष्कपटरूपसे हमारे लिए जो आदेश निर्देश प्रदान करते हैं, उन्हें आदरपूर्वक सिर झुकाकर ग्रहण करना चाहिए। अन्यथा अकल्याण निश्चित है। हे मेरे बन्धुवर्ग! तुमलोग भोगी मत बनो। इन्द्रियोंके द्वारा विषयभोग मत करो। क्योंकि यह सारा जगत श्रीगुरुसेवाका उपकरण है तथा कृष्णसेवाकी वस्तु है। गुरुसेवाकी वस्तुओंमें भोगबुद्धि होनेसे मङ्गल नहीं हो सकता। प्रत्येक वस्तुमें गुरुसम्बन्ध दर्शन नहीं करनेसे अमङ्गल अनिवार्य है।

ॐविष्णुपाद १०८श्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजजीकी हरिकथा

(गताङ्कसे आगे)

जहाँपर संयोग है, वहाँपर वियोग अवश्य ही होता है। जहाँपर मिलन है, वहाँपर विरह अवश्य ही होता है। किन्तु जहाँपर प्रीति नहीं, केवल कपटतामात्र है, वहाँपर रोना-धोना नहीं होता। पाश्चात्य देशोंमें किसीके मरनेपर रोनेके लिए किरायेके लोग लाने पड़ते हैं और उन्हें रोनेके लिए कुछ पैसे देने पड़ते हैं। क्या हमें ऐसा ही कपट अर्थात् लोगोंको दिखानेके लिए ही रोना चाहिए? जिसे चार आनेकी भक्ति कहा गया। यदि कोई हृदयसे रोये, तो उसपर भगवानकी कृपा अवश्य होती है। भगवान आन्तरिक सरलता देखना चाहते हैं। इसे लेकर ही सारा विचार होता है।

मैं वास्तवमें ही भगवानसे प्रेम करता हूँ कि नहीं, वास्तवमें उनके आदेश-उपदेशोंको मानता हूँ कि नहीं, मुझे पहले यह देखना होगा। *'जीवे सम्मान दिबे जानि कृष्ण अधिष्ठान'* अर्थात् जीवमात्रमें कृष्णका अधिष्ठान जानकर उचित सम्मान देना चाहिए। यह जैसे सत्य है, वैसे ही सभीके प्रति हमें यथायथ व्यवहार करना चाहिए। उल्टा-पुल्टा करनेसे नहीं होगा। जैसे ही हम कुछ उल्टा-पुल्टा करते हैं, तो समझ लेना चाहिए कि हम ठीक तत्त्वमें प्रतिष्ठित नहीं हैं। श्रीचैतन्य महाप्रभुकी अन्तर्दशा, बाह्यदशा, अर्द्धबाह्यदशा एक प्रकारकी हैं तथा बद्धजीवकी नकल की हुई ये दशाएँ एक प्रकारकी हैं। ये दोनों दशाएँ तो एक समान नहीं हो सकतीं। श्रीचैतन्यमहाप्रभुने कहा है—

आनेर हृदय मन, मोर मन वृन्दावन
मने वने एक करि मानि।

यह बात तो उन्होंने अहङ्कारपूर्वक नहीं कही है। उन्होंने तो वास्तव तत्त्वदर्शनकी

बात ही कही है। अवशीभूत मन अर्थात् जो मन वशीभूत नहीं है, कलूषित है, उस मनके द्वारा कुछ होनेवाला नहीं। जो मन अप्राकृत है, वहाँपर तत्त्वदर्शन दूसरे प्रकारका होता है। आरोप करना एक बात है, परन्तु सब समय तो वह ठीक नहीं होता है। जो स्वतः ही उस गुणके गुणी है, उसके लिए ठीक होता है। अनेक समय हम कितने ही गुणोंका आरोप करते हैं, किन्तु उनके द्वारा कुछ काम नहीं होगा। इसीलिए शास्त्रोंमें 'नित्यसिद्ध' शब्दका उल्लेख है। तत्त्ववस्तु (हरि–गुरु–वैष्णव) के प्रति श्रद्धाकी बात कही गयी है, अतत्त्ववस्तुके प्रति नहीं। यदि तत्त्ववस्तु ठीक है, तो सबकुछ ठीक है। परन्तु जहाँपर तत्त्ववस्तु ठीक नहीं है, वहाँपर सब गड़बड़ है। हमें भगवानसे एवं गुरु–वैष्णवोंसे प्रेम करना चाहिए, परन्तु तत्त्वदर्शनको जानकर। जितना हमारा अधिकार है, उतना ही हमें करना चाहिए, अधिकारसे ऊपर हमें नहीं जाना चाहिए। सिद्ध महात्मागण. दिखावा नहीं करते हैं। जो असिद्ध हैं, जिनकी मायबद्धता दूर नहीं हुई है, वे प्रायः प्रत्येक विषयमें दिखावा ही करते हैं। अन्तर्यामी भगवान सब समझते हैं। यहाँतक कि तत्त्वदर्शी गुरु एवं वैष्णवगण भी सब समझ लेते हैं। हमें गुरु एवं वैष्णवोंके पास परीक्षा देनी पड़ती है एवं भगवानके पास भी परीक्षा देनी पड़ती है। किन्तु गुरु–वैष्णव निष्ठुर नहीं हैं, भगवान भी निष्ठुर नहीं हैं। वे परम दयालु एवं परम कृपालु हैं। इसे जानकर साधन–भजन मार्गमें अग्रसर होना चाहिए।

मनुष्य जन्म बहुत ही दुर्लभ है। हमारे पास समय बहुत कम है। समय कहाँ है? समय नहीं है। ***'उठो रे उठो रे भाई, आर त समय नाइ'***—यही तो बात है। बहुत समय जानकर हम अपना समय नष्ट क्यों कर रहे हैं? धर्मसभा एवं भागवत आलोचना सभाओंमें पुरुषोंकी संख्या क्यों कम होती जा रही है? क्या उनकी सिद्धि हो गयी? इसलिए क्या वे धर्मसभाओंमें योगदान नहीं कर रहे हैं? अथवा समाजमें स्त्रियाँ अधिक हैं, इसलिए धर्मसभाओंमें स्त्रियाँ अधिक आ रही हैं? इन सब विषयोंकी आलोचनाकी आवश्यकता है। जो समझते हैं कि हमारा सब हो गया है, हम सब समझ गये हैं, अब हमें कुछ आवश्यकता नहीं है, वे अवश्य ही धर्मतत्त्वके सम्बन्धमें भ्रमित हो चुके हैं। इसीलिए वे उस धर्म विषयको अप्रयोजनीय मान रहे हैं। जिसकी विशेष आवश्यकता है, आज समाज उसीका परित्याग कर रहा है। जो अप्रयोजनीय वस्तु है, उसे प्राप्त करनेके लिए खूब चेष्टा कर रहा है। यह अच्छी बात नहीं है। हमें इन सब विषयों पर विचार करना चाहिए।

हमें इस जगतमें जीवित रहना है हरिभजनके लिए, तत्त्वज्ञान प्राप्त करनेके लिए। तत्त्ववस्तुको प्राप्त करनेके लिए ही इस जगतमें हम जीवित रहेंगे, खायेंगे, पहनेंगे और रहेंगे। यदि ऐसा नहीं हुआ तो समझना चाहिए कि जीवित रहनेका कोई महत्त्व नहीं हुआ। इस जगतमें जो जितने अधिक दिन जीवित रह सकता है, इसका कोई महत्त्व नहीं है। यदि हरिभजन करता है, आत्मानुशीलन

करता है, तभी जीवित रहनेका महत्त्व है। अन्यथा नहीं।

जीवितं विष्णुभक्तस्य वरं पञ्च दिनानि च।
न तु कल्प सहस्राणि भक्तिहीनस्य केशवे॥

अर्थात् भक्तिहीन व्यक्तिका हजारों कल्पोंतक जवित रहनेकी अपेक्षा भक्तोंका पाँच दिन जीवित रहना ही श्रेष्ठ है।

जिसकी भगवानके प्रति भक्ति नहीं है, उसका जीवित रहना व्यर्थ है। यहाँपर केशव शब्दका अर्थ दो प्रकारसे किया जा सकता है, आश्रय केशव एवं विषय केशव। भगवानकी भक्ति करनी चाहिए, यह तो ठीक है, किन्तु आश्रय केशवके आनुगत्यमें। यदि सद्गुरुपदाश्रयकर उनके उपदेश-निर्देशोंको मानकर साधन-भजन पथपर अग्रसर हुआ जाय, तभी वास्तविक फल प्राप्त होता है। ऐसा न करनेपर समय नष्ट हो जाता है। गुरुतत्त्वका वैशिष्ट्य असीम है। भगवानका वैशिष्ट्य जिस प्रकार अनन्त है, उसी प्रकार गुरुतत्त्वका वैशिष्ट्य भी अनन्त है।

यह जगत नास्तिक्यवादसे परिपूर्ण है। गीतामें स्वयं भगवान श्रीकृष्ण अपने प्रिय सखा अर्जुनको लक्ष्यकर कह रहे हैं—

द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन् दैव आसुर एव च।
दैव विस्तरशः प्रोक्त आसुरं पार्थ मे शृणु॥

पहले कृष्णने अर्जुनको दैवी सम्पदके विषयमें बताया। बादमें कह रहे हैं कि अब तुम आसुरी सम्पदके विषयमें सुनो। इस जगतमें नित्यकाल दो प्रकारके लोग हैं। राजनैतिक क्षेत्रमें हम एक बात सुनते हैं—श्रेणीहीन समाज। किन्तु श्रेणीहीन समाज कहनेपर भी श्रेणी रहती है। समाजमें श्रेणी शब्दका वैशिष्ट्य भी संरक्षित है। राजनैतिक क्षेत्रमें वे कहना चाहते हैं कि इस समाजमें दो श्रेणियाँ हैं—धनी और दरिद्र। किन्तु भगवानने यहाँपर धनी एवं दरिद्रकी बात नहीं कही है। जो सर्वोपरि मालिक—Supreme Authourity, Supreme Gaurdian हैं, उन्होंने कहा है कि इस जगतमें दो प्रकारके लोग हैं। *''विष्णुभक्त भवेद्दैव आसुरस्तद्विपर्ययः।''* जो भगवानके भक्त हैं, वे दैवी भावयुक्त आस्तिक और जो दैवविरोधी हैं, वे नास्तिक हैं। वे भगवान नामक कोई वस्तुको ही नहीं मानते हैं। उनका कहना है कि भगवान नामकी कोई वस्तु ही नहीं है। यदि ऐसा ही है, यदि भगवान नामक कोई चीज नहीं है, तो है कौन? क्या केवल वे नास्तिक लोग ही हैं।

भगवान श्रीकृष्णचन्द्रने बहुत दुःखी होकर यह बात कही है। संक्षेपमें कहने जाएँ, तो हमारे पूर्व-पूर्व आचार्योंने कहा है कि जीवब्रह्मैकवादी (जो जीव और ब्रह्मको एक मानते हैं) एक दल तथा चित्जड़समन्वयवादी (जो चित् एवं जड़ वस्तुओंको एक समान मानते हैं) एक दल। (क्रमशः)

सत्पुरुषोंके समागमसे मेरे पराक्रमका यथार्थ ज्ञान करानेवाली तथा हृदय और कानोंको प्रिय लगनेवाली वीर्यवती कथाएँ होती हैं। उनका सेवन करनेसे शीघ्र ही अविद्या निवृत्तिके पथस्वरूप मुझमें सबसे पहले श्रद्धा, पीछे रति और अन्तमें प्रेमभक्तिका उदय होता है। (श्रीमद्भागवत ३/२५/२५)

श्रीगोविन्द कविराज

इनका जन्म सन् १५३८ में बंगालमें कुमारहट्ट नामक नगरमें इनके नाना श्रीदामोदर कविराजके घरमें हुआ। दामोदर कविराज बहुत बड़े कालीभक्त थे। जब गोविन्द कविराज अपनी माँके गर्भमें थे, तो उस समय नौ महीनेसे अधिक समय हो गया था, परन्तु इनका जन्म नहीं हुआ। इससे इनकी माताजीको बहुत कष्ट हो रहा था। जब नौ महीनेसे भी अधिक समयमें बच्चेका जन्म नहीं हो रहा था, उस समय दामोदर कविराजने देवीकवचका जल इनकी माताजीको पान कराया, जिसके फलस्वरूप कुछ समयमें इनका जन्म हुआ। चूँकि इनके नाना देवीभक्त थे, अतः बचपनसे ही इनकी भी देवीके प्रति अगाध निष्ठा उत्पन्न हो गयी। इनके जन्मके कुछ समय उपरान्त ही इनके पिताजीका देहान्त हो गया था। अतः ये और इनके भाई रामचन्द्र कविराज दोनों ही अपने नाना (दामोदर कविराज) के घरमें ही पले।

कुछ समय पश्चात् इनके बड़े भाई रामचन्द्र कविराजके ऊपर श्रीनिवास आचार्य जो कि परम वैष्णव थे, उनकी कृपा हुई और ये कृष्णमन्त्रमें दीक्षित हुए। गोविन्द कविराज देवीकी उपासनामें पूरी तरहसे डूबे हुए थे। वे सभीको देवीकी उपासनाका उपदेश दिया करते थे। जब रामचन्द्र कविराज वैष्णवधर्ममें दीक्षित हो गये, तो गोविन्द कविराजका भी वैष्णवधर्मके प्रति कुछ झुकाव हो गया। एक दिन वे इस सम्बन्धमें चिन्ता करने लगे—क्या देवीकी उपासना करनेसे भव-बन्धनसे मुक्ति हो सकती है या नहीं? उसी समय एक आकाशवाणी हुई। उन्होंने सुना कि देवी स्वयं अदृश्यरूपमें कह रही हैं कि कृष्णका भजन छोड़कर और किसी भी प्रकारसे संसार-बन्धनसे मुक्ति प्राप्त नहीं की जा सकती। इस आकाशवाणीको सुनकर उन्हें पूर्ण विश्वास हो गया कि कृष्णभजनके अतिरिक्त किसी भी उपायसे जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्त नहीं हुआ जा सकता। अतः उन्होंने कृष्णभजन करनेका दृढ़ संकल्प कर लिया। अब वे कृष्णभजन करनेके लिए व्याकुल हो गये। उन्होंने विचार किया कि जिनके चरणोंका आश्रय लेकर मेरे भाईका कल्याण हुआ है, मैं भी उनके चरणोंका आश्रय लूँगा। ऐसा विचार कर वे श्रीनिवास आचार्यजीके गाँव याजीपुरकी ओर चल पड़े। परन्तु मार्गमें उन्होंने सुना कि वे वृन्दावन चले गये हैं। इससे वे बहुत दुःखी हो गये। वे चिन्ता करने लगे कि मेरा कैसा दुर्भाग्य है कि जब सभी वैष्णवलोग मुझे कृष्णभजन करनेका उपदेश प्रदान करते थे, उस समय मैंने उनकी उपेक्षा की। आज मेरी भजन करनेकी इच्छा है तो ऐसे वैष्णवका मुझे दर्शन नहीं हो रहा है।

मेरा परम सौभाग्य भी है कि देवीकी अहैतुकी कृपासे कृष्णका भजन करनेके लिए मेरी इच्छा हुई। परन्तु मैं सद्गुरु कैसे प्राप्त कर पाऊँगा? मैंने जिन्हें गुरुरूपमें वरण करनेकी इच्छा की, वे तो वृन्दावन चले गये। इस प्रकार वे खेद कर ही रहे

थे कि उन्हें आकाशवाणी सुनायी पड़ी कि तुम चिन्ता मत करो। अति शीघ्र ही तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी। इससे वे कुछ आश्वस्त हुए। रामचन्द्र कविराज अपने छोटे भाईके विषयमें श्रवणकर बहुत आनन्दित हुए।

इधर श्रीनिवास आचार्यजीका दर्शन न पाकर गौड़देशके सभी भक्त व्याकुल हो उठे थे। अतः सभीने उन्हें वृन्दावनसे लानेके लिए रामचन्द्र कविराजको भेजा। वैष्णवोंका आदेश पाकर रामचन्द्र कविराज बहुत प्रसन्न हो गये तथा अपने छोटे भाई गोविन्दसे बोले कि तुम तेलियाबुधरि गाँवमें जाकर रहो। वहींपर मेरे गुरुदेव श्रीनिवास आचार्य आयेंगे। ऐसा कहकर वे वृन्दावनको चल पड़े। गोविन्द कविराज बुधरि गाँवमें आकर रहने लगे। भक्तोंकी इच्छा जानकर श्रीनिवास आचार्य वापस गौड़देश आ गये। उनके आगमनकी खबर सुनकर हजारों भक्त आनन्दित होकर उनके दर्शनके लिए आ पहुँचे। उन समस्त भक्तोंके साथ श्रीनिवास आचार्य बुधरि गाँवमें आये। गोविन्द कविराज अतिशय दीनतापूर्वक उन्हें निमन्त्रितकर अपने घरमें ले आये, उनकी बहुत सेवा-सुश्रूषा की तथा उनसे कृपाकी याचना की। उनकी उत्कण्ठा एवं दैन्य देखकर श्रीनिवास आचार्यजीका हृदय द्रवित हो गया और उन्होंने उन्हें मन्त्र प्रदान किया। गोविन्द कविराजने भी स्वयंको उनके चरणोंमें समर्पित कर दिया।

वे पहलेसे बहुत ही प्रसिद्ध कवि थे। जैसा उनका कवित्व था, वैसा ही उनका अत्यन्त सुमधुर कण्ठ भी था। श्रीजीव गोस्वामी, श्रीनिवास आचार्य, श्रीजाह्नवा माता गोस्वामिनी आदिने उनके भक्तिमय संगीतका श्रवणकर आनन्दित होकर उन्हें कविराजकी उपाधिसे विभूषित किया। उन्होंने अनेक पदावलियोंकी रचना की। उनमेंसे शरणागति मूलक एक पदावली है—

भजहुँरे मन श्रीनन्दनन्दन
अभय चरणारविन्द रे।
दुर्लभ मानव जनम सत्सङ्गे
तरहु ए भव सिन्धु रे॥

श्रीगौराङ्ग-सुधा

(गताङ्कसे आगे)

—श्रीपरमेश्वरी दास ब्रह्मचारी

प्रभुके संन्यासकी बात सुनकर भक्तों एवं शचीमाताका विलाप एवं प्रभुका उन्हें सान्त्वना देना

स्वयं प्रभुके श्रीमुखसे ही उनके संन्यासग्रहणकी बात सुनकर भक्तलोग विरह-सागरसे डूब गये। प्रभु संन्यास लेकर कहाँ जायेंगे, यह ठीक नहीं है, संन्यास लेनेके बाद तो वे नवद्वीपमें भी नहीं आयेंगे। ऐसी स्थितिमें हम उनके मुखकमलका दर्शन कैसे करेंगे, यह विचारकर उनका खाना-पीना तथा सोना सब कुछ छूट गया। रात-दिन उन्हें बस एक ही चिन्ता रहती थी कि न जाने कब हमारे सिरपर वज्रपात हो, कब प्रभु हमें अनाथ बनाकर चले जायेंगे। इस

प्रकार अपने भक्तोंको दुःखसे तड़फता हुआ देखकर प्रभुका हृदय द्रवित हो गया। तथापि वे मुस्कराते हुए उन्हें सान्त्वना देते हुए कहने लगे—"तुमलोग दुःखी क्यों होते हो? तुमलोग ऐसा मत सोचो कि मैं तुम लोगोंको छोड़कर जा रहा हूँ। तुम सब लोग तो मुझे मेरे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हो। तुमलोगोंको छोड़कर तो मैं एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकता। तुम लोगोंका तथा मेरा सङ्ग केवल एक जन्मका ही नहीं है, अनन्त जन्मोंतकका है। इस जन्ममें जिस प्रकार आप सभी लोग मेरे साथ मिलकर कीर्तन कर रहे हैं, उसी प्रकार प्रत्येक युगमें ही मेरा अवतार होता है। उस समय भी आपलोग किसी न किसी रूपमें मेरी लीलाओंमें सहायता करते हैं। इसी प्रकार इसी युगमें मेरे दो अन्य अवतार और होंगे, नाम अवतार (नाम) तथा अर्चावतार (विग्रह)। उस समय भी आपलोग मेरा सङ्ग प्राप्त कर पायेंगे तथा मेरी सेवा कर पायेंगे। वास्तवमें मेरी यह संन्यास-लीला जगतको शिक्षा देनेके लिए ही है। अतः आपलोग दुःखी न होवें।" ऐसा कहकर प्रभु बहुत ही स्नेहसे सभीको आलिङ्गन करने लगे। प्रभुकी मधुर वाणी श्रवणकर कुछ समयके लिए उनका दुःख दूर हो गया। उन्हें शान्तकर प्रभु अपने घर चले गये।

धीरे-धीरे प्रभुके संन्यासकी बात श्रीशची-माताके कानोंमें पहुँच गयी। यह सुनते ही शचीमाताकी क्या अवस्था हो गयी, इसका वर्णन करना भी असम्भव है। वे बार-बार मूर्च्छित हो रही थी, बार-बार होशमें आ रही थी। उनकी आँखोंसे निरन्तर अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी। प्रभु उनके सामने जाकर बैठ गये। अपने लाड़ले गौरसुन्दरको अपने सामने देखकर शचीमाता फूट-फूटकर रोते-रोते कहने लगीं—"बेटा! तू अपनी इस अभागिनी माँको छोड़कर कहीं मत जाना। तू यदि मुझे छोड़कर चला गया, तो कुन्दपुष्पके समान तथा मोतियोंके समान तेरी दन्तपंक्ति एवं अमृतसे भी मधुर तेरी वाणीको न सुनकर मैं जीवित कैसे रहूँगी? देख! यहाँ अद्वैताचार्य, श्रीवास, गदाधर आदि तेरे बहुतसे दास हैं, अतः तू उनके साथ घरपर ही रहकर आनन्दपूर्वक संकीर्तन कर। तुझे अन्यत्र जानेकी क्या आवश्यकता है? बेटा! तेरा अवतार तो लोगोंको धर्मकी शिक्षा देनेके लिए ही हुआ है। परन्तु तू स्वयं अपनी बेसहारा वृद्धा, अभागिनी माँको छोड़कर संन्यास ले रहा है। यह तेरा कैसा धर्म है? तू स्वयं धर्मस्वरूप होकर भी यदि अपनी माँका त्याग करेगा, तो इससे जगतके जीवोंको क्या शिक्षा मिलेगी?"

इस प्रकार कहते-कहते शचीमाताका गला अवरुद्ध हो गया। कुछ क्षण पश्चात् वे पुनः कहने लगी—"बेटा! तेरा बड़ा भाई पहले ही मुझे छोड़कर संन्यासी हो गया। तेरे पिताजी भी परलोक सिधार गये। इन भयङ्कर दुःखोंको केवल तेरा मुख देखकर ही मैं सहन कर पायी। अब यदि तू भी संन्यास लेकर मुझे छोड़कर चला जायेगा, तो मैं किसके सहारे जीवित रहूँगी? मैं मर जाऊँगी।" इस प्रकार शचीमाता प्रेमशोकसे अभिभूत होकर प्रभुको समझा रही थी तथा प्रभु चुपचाप सुन रहे थे,

जैसे वनवास जाते समय मैया कौशल्या रोते-रोते प्रेमपूर्वक श्रीरामचन्द्रजीको समझा रही थीं। माताका अथाह शोक देखकर प्रभु समझ गये कि मेरे बिना मैया जीवित नहीं रह पायेंगी। अतः वे मैयासे एकान्तमें कहने लगे—"मैया! आप शान्त हो जाइए। मैं आपको एक रहस्यमय बात बता रहा हूँ। इस जन्ममें ही नहीं, प्रत्येक जन्ममें ही आप मेरी माता एवं मैं आपका पुत्र होता हूँ। किसी जन्ममें आपका नाम पृश्नि था, उस समय भी आप मेरी माता तथा मैं आपका पुत्र बना। कभी आप स्वर्गमें अदितिके रूपमें प्रकट हुई, उस समय वामनके रूपमें मैंने आपके गर्भसे जन्म ग्रहण किया। एकबार आप देवहुतिके रूपमें प्रकट हुईं, उस समय भी कपिलके रूपमें मैं आपका पुत्र बना। त्रेतायुगमें आप माता कौशल्याके रूपमें प्रकट हुईं, उस समय भी मैं रामके रूपमें आपका पुत्र बना। तत्पश्चात् द्वापरयुगमें आप माता देवकीके रूपमें प्रकटित हुईं, उस समय भी मैं वासुदेवकृष्णके रूपमें आपका पुत्र बना। इसके अतिरिक्त इस कलियुगमें ही मेरे दो अवतार और होंगे। उन दोनों अवतरोंमें भी आप ही मेरी माता बनेंगी। जब मेरा अर्चावतार (विग्रह) होगा, उस समय पृथ्वीके रूपमें आप मेरी माता बनेंगी तथा जब नामरूपमें मेरा अवतार होगा, उस समय जिह्वाके रूपमें आप मेरी माता बनेंगी। इस प्रकार मैया! हम दोनों जन्म-जन्मोंके माता-पुत्र हैं। मैं कदापि चाहकर भी आपका त्याग नहीं कर सकता। अतः आप व्यर्थमें ही शोक न करें।"

प्रभुकी इन बातोंको श्रवणकर शचीमाताका मन कुछ शान्त हो गया। स्वेच्छामय भगवानकी लीला भी अद्भुत है। वे कब क्या करेंगे, यह ठीक नहीं। अब प्रभु सदा-सर्वदा अपने भक्तोंके साथ आनन्दमग्न होकर नृत्यकीर्तन करते रहते थे। जिससे उस परमानन्दमें डूबनेके कारण भक्तवृन्द भी प्रभुके संन्यासकी बात कुछ भूल-से गये थे। जिस दिन प्रभु संन्यास ग्रहण करनेके लिए गृहत्याग करनेवाले थे, उस दिन वे एकान्तमें श्रीनित्यानन्दजीसे कहने लगे—"मैं आपसे जो कुछ कह रहा हूँ, उसे केवल पाँच लोगों (मेरी माताजी, गदाधर, ब्रह्मानन्द, श्रीचन्द्रशेखर आचार्य एवं मुकुन्द) के निकट ही प्रकट करना। मैं संक्रान्तिके दिन अवश्य ही काटोया जाकर श्रीकेशवभारतीसे संन्यास ग्रहण करूँगा।" प्रभुका आदेश सुनकर नित्यानन्दजीने केवल इन पाँचोंको ही प्रभुके संन्यासके विषयमें बताया।

उस दिन प्रभु सारा दिन वैष्णवोंके साथ ही आनन्दसे नृत्य एवं कीर्तन करते रहे तथा उन्होंने आनन्दपूर्वक भोजन भी किया। सन्ध्याके समय वे गङ्गाजीके दर्शनके लिए गये। गङ्गाजीको प्रणामकर प्रभु कुछ समयतक गङ्गाजीके किनारेपर ही बैठे रहे। तत्पश्चात् वहाँसे उठकर वापस घरमें आ गये। घरमें आकर प्रभु बैठ गये तथा उनके सभी भक्तवृन्द उन्हें घेरकर बैठ गये। आज रातको ही प्रभु हमें छोड़कर चले जायेंगे, किसीको भी इसका पता नहीं था। वे सभी आनन्दमग्न होकर प्रभुके समीप ही बैठे हुए थे। कमलनेत्र प्रभु श्रीगौरसुन्दर बैठे हुए थे। उनके गलेमें फूलोंकी माला सुशोभित हो रही थी। जो भी वैष्णव प्रभुके दर्शनोंके लिए आ रहे थे, वे

सभी अपने दोनों हाथोंमें माला एवं चन्दन लेकर आ रहे थे। आज प्रभुने ऐसा आकर्षण किया कि कहाँसे इतने लोग आ रहे हैं, कुछ पता नहीं। कितने लोग प्रभुका दर्शन करनेके लिए आ रहे थे, उनकी गिनती करना तो ब्रह्मा, शिव आदिके लिए भी असम्भव है। सभी लोग आकर प्रभुको प्रभुको साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम कर रहे थे। प्रभु भी अपने गलेकी माला उन्हें पहना रहे थे तथा स्नेहपूर्वक कह रहे थे—"आप सभी लोग घर जाकर कृष्णका कीर्तन करें। अपने मुखसे केवल 'कृष्ण-कृष्ण' ही बोलें तथा कृष्णका ही भजन करें। कृष्णके अतिरिक्त अन्य किसी भी वस्तुकी चिन्ता न करें। यदि आपलोग वास्तवमें ही मुझे स्नेह करते हैं, तो कृष्णके अतिरिक्त मुखसे कुछ भी न कहना। सोते-जागते एवं खाते—सब समय कृष्णका स्मरण करें तथा कृष्णका ही कीर्तन करें।" इस प्रकार भक्तोंपर शुभदृष्टिकर (कृपाकर) प्रभु उन्हें वापस भेज रहे थे। उसी समय परम सुकृतिवान श्रीधर हाथमें एक लौकी लेकर प्रभुके पास आया तथा उसे प्रभुको भेंट दे दिया। लौकीको देखकर प्रभुने पूछा—"यह लौकी कहाँसे लाये।" परन्तु मन ही मन विचार करने लगे कि मैं तो आज रातको ही चला जाऊँगा, अतः इस लौकीकी सब्जी मैं नहीं खा पाऊँगा; तो क्या मेरे प्रिय श्रीधरकी यह भेंट व्यर्थ ही चली जायेगी? नहीं! नहीं! मैं अवश्य ही आज ही इस उपहारको ग्रहणकर ही जाऊँगा। ऐसा विचारकर भक्तवत्सल प्रभुने शचीमातासे उस लौकीको पकानेके लिए कहा। उसी समय एक अन्य सौभाग्यवान भक्त दूध लेकर प्रभुके दर्शनके लिए आया। दूध देखकर प्रभु बहुत प्रसन्न हो गये तथा शचीमातासे बोले—"माँ! आप आज इस दूध एवं लौकीको पकाओ।" शचीमाता भी बहुत प्रसन्न होकर रसोई बनाने चली गयीं।

इस प्रकार भक्तवत्सल प्रभु रातको बहुत देरतकर भक्तोंपर कृपा करते रहे। तत्पश्चात् सभीको विदाकर प्रभु भोजन करनेके लिए बैठ गये। भोजन करनेके पश्चात् वे शयनघरमें सोनेके लिए चले गये। उनके निकट ही हरिदास एवं गदाधर भी सो गये। शचीमाताको मालुम था कि प्रभु आज रात गृहत्याग करेंगे। अतः आज उनकी आँखोंमें नींद नहीं थी, वे बैठकर रोते जा रही थीं। ब्रह्ममुहूर्तके समय प्रभु उठकर जानेके लिए तैयार हो गये। उन्हें जानेके लिए तैयार देखकर गदाधर एवं हरिदास भी उठ गये। गदाधरजी कहने लगे—"प्रभो! हम भी आपके साथ जायेंगे।" प्रभु बोले—"नहीं! मेरे साथ कोई नहीं जाएगा।" जैसे ही शचीमाताको पता चला कि गौरसुन्दर जानेके लिए तैयार हैं, तो वे दरवाजेपर आकर बैठ गयीं। शचीमाताको दरवाजेपर बैठा हुआ देखकर प्रभु उनके पास बैठ गये तथा उनका हाथ पकड़कर कहने लगे—"माँ! आपने बहुत ही कष्टसे मेरा पालन-पोषण किया। आपकी कृपासे ही मैं पढ़-लिख सका। आपने जीवनभर स्वयं कष्ट सहकर भी मुझे सुखी रखा। क्षण-क्षणमें आपने मुझे जो अथाह स्नेह किया, करोड़ों-करोड़ों कल्पोंमें भी मैं उसका ऋण नहीं चुका सकता। माँ! सारा संसार

भगवानके अधीन है। उनकी इच्छाके विरुद्ध यहाँ कुछ भी नहीं हो सकता। जीवोंको वे प्रभु ही मिलाते हैं तथा वे ही अलग करते हैं। मैं दस दिन बाद जाऊँ या आज ही, इस विषयमें आप दुःखी न होवेंगी।" प्रभु अपनी छातीपर हाथ रखकर बोले—"माँ! मैं सत्य कहता हूँ कि आपका सारा दायित्व मेरे हाथमें है, मैं उसे अच्छी प्रकारसे निभाऊँगा।" प्रभु सान्त्वना देते जा रहे थे, परन्तु शचीमाता चुपचाप पत्थरकी मूर्तिकी भाँति बैठी हुई थीं। उनकी आँखोंसे अविरल अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी। उस समय, जब कि उनका एकमात्र सहारा, उनके हृदयका टुकड़ा उन्हें हमेशाके लिए छोड़कर जा रहा था, उस समय वे पृथ्वीके समान सहिष्णु बन गईं।

प्रभुने उनकी चरणधूलि अपने सिरपर धारण की तथा उनकी परिक्रमाकर तीव्रगतिसे घरसे निकल पड़े। (क्रमशः)

हाथी चले बाजार, कुत्ते भौंके हजार

जब राजाका हाथी बाजारमें चलता है, कुत्ते उसके पीछे भौं-भौं करते हैं। हाथी कुत्तेका कुछ भी अनिष्ट नहीं करता, फिर भी कुत्ता पीछे-पीछे चिल्लाता है। यह कुत्तेका स्वभाव है। साधु जब हिमालयकी गुफामें और निर्जन स्थानमें रहकर भजन करते हैं तो उनके विरुद्ध कोई भी नहीं बोलता। किन्तु जब लोगोंके मङ्गलके लिए इस जगतमें सत्य कथाका प्रचार करते हैं, तब वास्तविक मङ्गलको न चाहनेवाले कुछ लोग दल बनाकर साधुकी निन्दा करना प्रारम्भ कर देते हैं। जब राजाका हाथी कुत्तोंके समूहके पाससे गुजरता है, तो वे सोचते हैं कि यह हमारे स्थानपर अधिकार जमाने आ रहा है। राजाके हाथीका सम्मान एवं उसके विशाल शरीरको देखकर कुत्तोंको ईर्ष्या होती है, इसीलिए वे भौं-भौं करते हैं। राजाका हाथी जिस प्रकार कुत्तेके भौंकनेसे विचलित नहीं होता, उसी प्रकार साधु भी दुष्ट लोगोंकी हिंसा एवं निन्दाको देखकर परवाह नहीं करते और भगवानकी कथा कीर्तन करते हुए जगतके हितके लिए लगे रहते हैं। जो अपना नित्य मङ्गल चाहते हैं, वे राजाके हाथीकी भाँति जगतके दुष्ट लोगोंकी प्रशंसा या निन्दासे विचलित न होकर सदा सर्वदा ही हरि-गुरु-वैष्णवोंकी सेवामें लगे रहते हैं। ❽

विविध संवाद

भारतीय (वैदिक) सभ्यता एवं संस्कृतिका गौरव

वर्तमान समग्र विश्वमें भारतीय संस्कृतिको कुचलनेके लिए तथा वैदिक शास्त्रोंको Mythology के रूपमें प्रतिपादित करनेके लिए आसुरिक प्रवृत्तिके लोगोंमें एक प्रतिस्पर्द्धा लगी हुई है। पाश्चात्य देशोंके लोगोंके ऐसे अनेक प्रकारकी विफल चेष्टाएँ करनेपर भी वास्तव सत्य प्रकाशित हो ही जाता है, केवल कुछ अधिक समय लगता है। पश्चिमके

लोग अपनी अर्वाचीन शिक्षानुसार मानव सभ्यताको ५००० वर्षसे अधिक पुरानी माननेको प्रस्तुत नहीं हैं, क्योंकि उनके परीक्षागार तथा अनुसन्धान (Research and investigation) की क्षमता ४५००-५००० वर्षोंकी सीमाको अतिक्रम कर नहीं सकती। परन्तु वास्तव सत्य इसके विरुद्ध साक्ष्य प्रदान करता है। सत्यको कोई छिपा नहीं सकता, जिस प्रकार अग्निको भस्मके द्वारा आच्छादित करनेपर भी ताप प्रकाशित हो जाता है।

मदीय शिक्षागुरुपादपद्म ॐविष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज गत २० नवम्बरसे Phillipines और Hawaii island में ग्रन्थ-लेखन सेवामें व्यस्त हैं। इसी बीच उनके दर्शन एवं उपदेश निमित्त विभिन्न देशोंसे भक्त एवं प्रचारकण Hawaii में उपस्थित हो रहे हैं। भक्तों द्वारा उपरोक्त सन्दर्भमें हुए प्रश्नोंका समाधान श्रीलमहाराजजीने सुष्ठुरूपमें किया। उस वार्तालापका कुछ विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है—

ब्रजनाथ दासाधिकारी—श्रीलगुरुदेव! इस विषयमें वास्तव तथ्य क्या है?

श्रीलमहाराजजी—क्यों, समग्र जगत तो अमेरिकाकी NASA कॅम्पनी द्वारा उपलब्ध कराये गये वास्तव तथ्यको कुछ मात्रामें जान चुका है। भगवान श्रीरामचन्द्रके निर्देशसे लङ्का-विजयके लिए जो पुल बाँधा गया था, उसको 'नासा' ने आविष्कार (discover) किया है।

श्रीपाद माधव महाराज—क्या वर्तमान वैदिक सभ्यताके सम्बन्धमें और कोई तथ्य प्राप्त हुआ है?

श्रीलमहाराजजी—एक दो नहीं, अनेक तथ्य क्रमशः प्राप्त हो रहे हैं तथा होते रहेंगे। कोलकातासे प्रकाशित 'The Telegraph' की एक रिपोर्टमें इस प्रकार प्रमाणित हुआ है कि स्वर्णरेखा नदीके तटपर २० लाख साल पहले मनुष्य वास कर रहे थे।

एक श्रोता—स्वामीजी! 'द टेलिग्राफ' में क्या रिपोर्ट प्रकाशित हुआ है?

श्रीलमहाराजजी—माधव महाराज! वहाँ 'अमर उजाला' पत्रिकासे कुछ अंश रखा गया है, उसे लाकर संक्षेपमें उसका सार सभीको सुना दो।

श्रीपाद माधव महाराज—'अमर उजाला' नामक दैनिक संवादपत्रमें भारतवर्षके उड़ीसाके जलेश्वर नामक स्थानसे आविष्कृत कुछ तथ्योंको कोलकाताके 'द टेलिग्राफ' में प्रकाशित संवादके आधारपर प्रकाशित किया गया है। इस रिपोर्टके अनुसार केन्द्रीय संस्कृति मन्त्रालयके विस्मृत आदिवासी कला व शिल्प परियोजनाके वरिष्ठ नृविज्ञानी तथा भोपाल (म. प्र.) स्थित संग्रहालयके उपदेष्टा, एस. चक्रवर्तीने कहा है—"वर्तमान झाड़खण्ड प्रदेशके घाटशिलासे उड़ीसा प्रदेशके मयूरभञ्ज तक स्वर्णरेखा नदीके तटपर २० लाख वर्ष पूर्व मानव सभ्यताका सन्धान प्राप्त हुआ है। पूर्व अफ्रीकाकी अलडोबाइ घाटी, फ्रान्सकी मोमघाटी, इंग्लैण्डके स्टोन हेनकेम, मध्यप्रदेशकी नर्मदा घाटी एवं तामिलनाडुके बेलामदुरै पल्लवरम् आदि स्थानोंसे सूचनाप्राप्त उपरोक्त सभ्यता सम्पूर्ण पृथक् तथा प्राचीन है।" विगत अगस्त महीनेमें एस. चक्रवर्तीने अपनी पाँच लोगोंकी टीमके साथ उक्त स्वर्णरेखा

नदीतटमें २० किलोमीटरकी खोज करके धातुयुगके कुछ अस्त्रशस्त्र प्राप्त किये हैं। एक स्थानसे लगभग तीन हजार कोदाल, चाकू आदि भी प्राप्त हुए हैं।

श्रीलमहाराजजी—पुरातत्त्वविद् जितनी खोज करेंगे, उतने ही नये-नये तथ्योंका आविष्कार होगा। ऐसे तथ्योंका आविष्कार होगा कि Carbon dating theorey के द्वारा भी काल-निर्णय करनेमें आधुनिक जड़ विज्ञान असमर्थ हो जाएगा। कुछ ही दिनोंमें और अधिक तथ्य सर्वसमक्षमें आयेंगे तथा भारतीय संस्कृतिकी श्रेष्ठता प्रतिपादित होगी।

सुन्दरगोपाल ब्रह्मचारी (हाथ उठाकर)—श्रील गुरुदेव! आपकी वाणी अभ्रान्त है। Internet पर द्वारकाधीश श्रीकृष्णकी द्वारकापुरीके सम्बन्धमें इस प्रकारका एक तथ्य प्रकाशित हुआ है।

श्रीलमहाराजजी—तुम कुछ पढ़कर सुनाओ तो!

सुन्दरगोपाल—इन्टरनेट पर प्रकाशित प्रबन्धका नाम है—

"The Golden City in the Sea"
(A report on the marine excavation of Dvaraka)

tasmād adya vidhāsyāmo
durgaṁ dvipada-durgamam
tatra jñātīn samādhāya
yavanaṁ ghātayāmahe

(Srimad Bhagavatm 10-50-48)

(Sri Krishna said to Lord Sankarshana) "Therefore we will immediately construct a fortress that no human force can penetrate. After settling our family members there, we will slay Kalayavana, the barbarian king."

श्रीलमहाराजजी (सभाको सम्बोधनकर)—आपलोग भागवत पढ़ते हैं? किस प्रसङ्गमें श्रीकृष्णने बलदेव प्रभुको इस प्रकार कहा था?

श्रोताओंमेंसे किसीके उत्तर न देनेपर श्रीलमहाराजजीने श्रीपाद माधव महाराजको इसका उत्तर देनेके लिए बताया।

श्रीपाद माधव महाराज—भगवान श्रीकृष्ण भूभार हरण, साधुओंकी रक्षा तथा असाधुओंके विनाशके लिए युग-युगमें अवतीर्ण होते हैं। कंसके वधके पश्चात् कंसकी दोनों पत्नियों अस्ति और प्राप्तिने पिता जरासन्धके पास जाकर श्रीकृष्णके विरुद्ध अभियोग किया। राजा जरासन्धने क्रोधित होकर पृथ्वीको यादवोंसे शून्य करनेके लिए असंख्य सैनिकोंको लेकर मथुरा नगरीको चारों ओरसे घेर लिया। श्रीबलदेव प्रभु द्वारा जरासन्धको बाँधकर उसका वध करनेके लिए उद्यत होनेपर श्रीकृष्णने उसे मुक्त कर दिया। इस प्रकार जरासन्धने सत्रह बार यादवोंके ऊपर आक्रमण किया था। दूसरी ओर कालयवन नामक एक वीर अपने जैसे एक योद्धाकी खोज कर रहा था। उस समय देवर्षि नारदजीने उसे यादवोंकी बात बतायी। कालयवनने तीन करोड़ सैन्यबल सहित मथुरापुरीको दूसरी ओरसे अवरोध किया। श्रीकृष्णने इन स्थितियोंसे अवगत होकर यादवोंके ऊपर भावी आक्रमणकी आशंकासे श्रीबलदेव प्रभुको यह बात कही थी।

श्रीलमहाराजजी—सुन्दरगोपाल! इस संवादको तुमने कहाँसे संग्रह किया है?

सुन्दरगोपाल—अनेक source रहनेपर भी

Report on offshore exploration and excavation of Dwaraka headed by Dr. S. R. Rao, Scientist at Marine Archaeology, Unit of the National Institute of Oceanology तथा Housden, T., "Lost ctiy could Rewrite History" (BBC news Online, 19-1-2002, 06:33 GMT) के तथ्योंको मैंने संग्रह किया।

श्रीलमहाराजजी—ब्रजनाथ! क्या तुम इस विषयमें कुछ जानते हो?

ब्रजनाथ दासाधिकारी—श्रीलगुरुदेव! मैंने भी इस विषयमें कुछ सुना है। लेकिन मुद्राके बारेमें जो लिखा गया है, उसे मैंने ठीक समझ नहीं पाया।

श्रीलमहाराजजी—सज्जन महाराज! मुद्रा या coin सम्बन्धमें क्या तुम्हारा कुछ वक्तव्य है?

श्रीपाद सज्जन महाराज—हाँ श्रीलगुरुदेव! मुद्राके विषयमें जो लिखा गया है, उसको पढ़नेसे संशय होना स्वाभाविक है।

श्रीलमहाराजजी— जो reconcile (सामञ्जस्य) करनेमें असमर्थ हैं, उनको संशय होता है। सुन्दरगोपाल! मुद्राके सम्बन्धमें जो लिखा गया है, उसे पढ़कर सुनाओ।

श्रीसुन्दरगोपाल ब्रह्मचारी—

Title is "Ancient Mudras"

Seal (Mudras) found in the Indus Valley, some of which dating back 5,000 years, prove that Sri Krishna and the Yadavas actually existed and are not merely a figment of imagination. On one seal the archaeologist Rajaram and Jha deciphered the name Devapi, the elder brother of Bhisma's father Shantanu. Among other names related to Krishna deciphered are Krishna's friend Akrura, Maharaj Yadu and Sri Tirtha (an old name for Dvaraka). One seal carried the words "Murari Vrishni Anga" i.e. "Murari of the Vrishnis", and another the words "Vrishni Varpa" implying that Murari or Krishna had a beautiful body.

श्रीलमहाराजजी—इसमें संशयका तो कोई कारण नहीं है।

श्रीपाद अरण्य महाराज—श्रीलगुरुदेव! मुद्राके विषयमें और अधिक वर्णन है, जिससे सन्देह होना स्वाभाविक है।

श्रीलमहाराजजी—ब्रजनाथ प्रभो! मुद्राके सम्बन्धमें जो अधिक विषयका वर्णन है, उसे पाठ करो।

श्रीपाद ब्रजनाथ दास—

"The Dwaraka Mudra"

But perhaps the most significant find, corroborating a statement of the 'Harivamsa', is a seal (just 18mm x 20 mm) bearing the motif of a three-headed-animal representing the bull, unicorn and goat. The Harivamsa says that every citizen of Dwaraka had to carry a seal (mudra) as a mark of identification and that none without a seal could enter the city.

श्रीपाद अरण्य महाराज—श्रील गुरुदेव! हरिवंशमें उल्लिखित है कि मुद्राके बिना कोई नगरमें प्रवेश नहीं कर सकता था। देवर्षि नारद तो प्राय द्वारका जाते रहते थे, वे मुद्राके बिना किस प्रकार प्रवेश करते थे?

श्रीलमहाराजजी—श्रीमान् माधव महाराज इसका उत्तर देंगे।

श्रीपाद माधव म.—श्रीपाद अरण्य महाराज!

आपने ठीक कहा है कि श्रीनारद ऋषि द्वारकामें कभी-कभी आते थे। उनके आनेका मुख्य कारण था—

गोविन्दभुजगुप्तायां द्वारवत्यां कुरूद्वह।
अवात्सीन्नारदोऽभीक्ष्णं कृष्णोपासन लालसः॥

श्रीशुकदेव गोस्वामी श्रीपरीक्षित महाराजको बोले—हे कुरुसत्तम! श्रीनारद ऋषि कहीं भी वास न करनेपर भी श्रीगोविन्दके भुजाओं द्वारा रक्षित द्वारकामें बारम्बार आकर निवास करते थे। श्रीकृष्णके द्वारा रक्षित होनेके कारण वहाँ राजा दक्षके शाप (कहीं भी नारदजी स्थायी रूपसे वास नहीं कर सकते) का प्रभाव नारदजीके ऊपर नहीं पड़ता था। वे वहाँपर भगवान श्रीकृष्णकी उपासनाकी लालसामें निवास करते थे। भगवानके आदेशसे कभी-कभी अन्यत्र गमन करते थे। उनके मुद्रा-धारणकी बात कहीं भी उल्लेख नहीं है। सुदामा विप्र द्वारा भी मुद्रा लेकर जानेका प्रमाण शास्त्रोंमें नहीं है। हरिवंशमें जो मुद्राधारणका प्रसङ्ग है, वह द्वारकाके नागरिकोंके लिए है। कोई साधुसन्तोंके लिए मुद्राधारणकी विधि नहीं थी, क्योंकि श्रीकृष्णके समय वहाँ ब्राह्मण, साधु-सन्त तथा मुनि-ऋषियोंका विशेष सम्मान था।

श्रीलमहाराजजी—क्या आपलोग श्रीमान् माधव महाराजके उत्तरसे सन्तुष्ट हैं या और अधिक व्याख्याकी आवश्यकता है?

श्रीनिर्गुण दासाधिकारी—आपकी सेवामें दीर्घकाल रहनेके कारण आपने माधव महाराजजीके हृदयमें इस उत्तरको स्फूर्त्ति कराया है।

सभी भक्त श्रीलगुरुदेवकी जयध्वनि करने लगे।

श्रीलमहाराजजी—क्या इस विषयमें और कुछ तथ्य प्रकाशित हुए हैं?

तमोपहा दास—हाँ, श्रीलगुरुदेव।

"A Second lost City"

Recently came an even greater surprise. While conducting a regular survey of pollution, oceanographers from India's National Institute of Ocean Technology discovered the remains of a second huge lost city 120 feet underwater in the Gulf of Cambay, not far from the Dwarka site. When debris form the site was carbon dated, it was found to be over 9,000 years old. Current academic opinion insists that no civilisations existed until roughly 4,500 years ago when the first big cities begin to appear in Mesopotamia.

In a report on BBC news Online, author and film-maker Graham Hancock, who has written extensively on the uncovering of ancient civilisations, said the evidence forced historians and archaeologists to radically reconsider their view of ancient human history. He said "There is a huge chronological problem in this discovery. It means that the whole model of the origins of civilisation with which archaeologists have been working will have to be remade from scratch."

श्रीलमहाराजजी—आपलोग सभी बुद्धिमान, विचारवान हैं। आपलोग विचारकर देखिए कि वैदिक संस्कृतिको आधुनिक बतानेके लिए षड़यन्त्रकारीगण जितने भी षड़यन्त्र करें, फिर भी वास्तव सत्य प्रकाशित होता जा रहा है। Mesopotamia सभ्यता वैदिक सभ्यतासे किसी प्रकार तुलनीय नहीं है। मैं सोचता हूँ कि मि. ग्राहम हंककने अभी तक

NASA का रिपोर्ट नहीं पढ़ा है। नहीं तो वे निश्चितरूपसे कुछ अलग मन्तव्य देते। इस discovery में मुद्राके अतिरिक्त क्या और कुछ उल्लेख है?

सुन्दरगोपाल—हाँ श्रीलगुरुदेव! मैं इसे बोलनेके लिए ही उत्कण्ठित होकर प्रतीक्षा कर रहा था।

Dr. Rao and his team found part of a paved road as well as several beautiful deities of Shri Vishnu, who would have been worshipped by yadavas. The reference to Dwaraka as nagar (city) is borne out by the engineering skills, advanced technology and high literacy of its people. Like the Bhagavata Purana, the Mahabharata also notes the innumerable flags flying in the city of Dwaraka. Unsurprisingly, the team of divers discoverd the stone bases of flag posts in their seabed excavation.

Other finds include a lunate-shaped moonstone (chandan-sila), a copper lota and bell, a stone mound for casting spearheads, and a large iron stake. The Mahabharata states that when Dwaraka was besieged, its citizens inserted large iron stakes into the ground.

श्रीलमहाराजजी—उस सभ्यताके साथ क्या अन्यान्य देशोंके सम्बन्धके बारेमें जानकारी प्राप्त हुई है?

श्रीवृन्दावनदास—हाँ गुरुदेव! मैंने भी इन्टरनेटमें Heliodorus नामसे एक ग्रीक राष्ट्रदूतके द्वारा निर्मित गरुड़स्तम्भके सम्बन्धमें पढ़ा है। उस स्तम्भ (खम्भे) में हेलिओडोरसने श्रीवासुदेव या श्रीकृष्णको God of Gods लिखा है। ग्रीक और ब्राह्मी भाषामें जो लिखा गया है, उसके अनुवादको पढ़नेसे समझा जाता है कि हेलिओडोरस वैष्णव अर्थात् श्रीविष्णुके उपासक थे।

श्रीसुन्दरगोपाल ब्रह्मचारी—श्रीलगुरुदेव! यदि आप आदेश देंगे, तो उस रिपोर्टका कुछ अंश पढ़कर सुनाऊँगा।

श्रीलमहाराजजी— O.K.

सुन्दरगोपाल—

The Agathocles Coins

The Greek King Agathocles (2nd century BC) was also a devoted vaisnava. Excavations at Al-Khanuram in Afghanistan, conducted by P. Bernard and a French archaeological expedition, unearthed six rectangular bronze coins issued by the Indo-Greek ruler. The coins had script written in both Greek and Brahmi and most interestingly, show an image of Vasudeva, carrying a chakra and conchshell, and of Lord Sankarhana.

श्रीलमहाराजजी—कलियुगमें नास्तिकता अधिक मात्रामें होनेके कारण प्रशासन कहीं भी मुद्राओंमें विष्णु या वैष्णवकी प्रतिमूर्ति नहीं देते हैं। केवल अमेरिका प्रशासनने उनकी currency में 'In God we trust' लिखनेका साहस किया है। पूर्वकालमें विष्णु और वैष्णवोंका सम्मान करनेके कारण देश समृद्ध था तथा सर्वत्र शान्ति थी। वर्तमानमें सभी लोग भयभीत हैं। यदि सभी लोग हरिनाम करेंगे, तभी भयसे मुक्त होंगे। हरेकृष्ण।

वाञ्छाकल्पतरुभ्यश्च कृपासिन्धुभ्य एव च।
पतितानां पावनेभ्यो वैष्णवेभ्यो नमोनमः॥
(प्रस्तुति—त्रिदण्डिभिक्षु श्रीभक्तिवेदान्त माधव)

डा. वासुदेवकृष्ण चतुर्वेदी ''यू.पी. रत्न'' से सम्मानित

श्रीभागवत पत्रिकाके संपादक संघपति, ब्रजके मूर्धन्य विद्वान सप्ताचार्य डा. वासुदेवकृष्ण चतुर्वेदीको उत्तर प्रदेशके प्रमुख सम्मान 'यू. पी. रत्न' से सम्मानित किया गया है। १२ अक्टूबर २००३, रविवारको लखनऊमें आयोजित भव्य कार्यक्रममें कर्नाटकके राज्यपाल श्री टी. एन. चतुर्वेदी तथा उत्तर प्रदेशके राज्यपाल श्रीविष्णुकान्त शास्त्रीने डा. चतुर्वेदीके अतिरिक्त प्रदेशकी १२ अन्य प्रतिभाओंको भी सम्मानित किया। कार्यक्रममें प्रदेशके पुलिस महानिर्देशक श्रीनैयर, पूर्व पुलिस महानिर्देशक आर. सी. दीक्षित सहित बड़ी संख्यामें आई. ए. एस. एवं आई. पी. एस. अधिकारी उपस्थित थे। उल्लेखनीय है कि डा. चतुर्वेदी ब्रजके संस्कृत क्षेत्रमें सबसे अधिक शिक्षा प्राप्त होनेके साथ विद्वत् जगतमें अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं तथा उनकी रचनाएँ अनेक विश्वविद्यालयोंमें छात्रोंको पढ़ायी जाती हैं। कुछ दिन पूर्व चित्रकूटके विश्वविद्यालय द्वारा उनको मानद डी. लिट. उपाधिसे भी सम्मानित किया गया था, जिसका विवरण श्रीभागवत पत्रिकाके वर्ष ४७, संख्या ६ में प्रकाशित हो चुका है। आगरा मण्डलकी अनेक संस्थाओं एवं साहित्यकारोंने डा. चतुर्वेदीके सम्मान पर हर्ष व्यक्त करते हुए इस सम्मानको ब्रज क्षेत्रका सम्मान होना बताया है। श्रीभागवत पत्रिकाकी संपादक मण्डली एवं कार्यकारी मण्डली उनके इस सम्मानसे गर्वित है। ⑧

परलोकमें श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिदण्डी महाराज

अत्यन्त विरहका विषय है कि त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिदण्डी महाराज शिलिगुड़ि (प. बं.) में ३ दिसम्बर बुधवारको रात्रि ९:१५ बजे परलोक पधार गये हैं। वे पिछले कुछ समयसे अस्वस्थ थे। वे श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके वरिष्ठ वैष्णवोंमेंसे एक थे। श्रीसमितिके सभी वैष्णव-सदस्यवृन्द उनके विरह संवादको सुनकर अत्यन्त दुःखित हुए हैं।

उनका जन्म पश्चिम बंगालके २४ परगणा जिलेमें हुआ था। उन्होंने श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रतिष्ठाता आचार्य नित्यलीलाप्रविष्ट ॐविष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीसे हरिनाम, दीक्षा व संन्यास ग्रहण किया था। समितिके वर्तमान उपसभापति श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज श्रीपाद त्रिदण्डी महाराजको उनके जन्मस्थानसे लाये थे तथा श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा में रखकर उनको भक्तिके सभी प्रकारके सिद्धान्तोंकी शिक्षा दी थी। इसीलिए श्रीपाद त्रिदण्डी महाराज उनको शिक्षागुरु रूपसे सम्मान करते थे।

श्रीपाद त्रिदण्डी महाराज प्रायशः २४ परगणा जिलेमें श्रीचैतन्य महाप्रभुकी वाणीका प्रचार करते थे। परवर्ती अवस्थामें वे शिलिगुड़िको स्थानान्तरित हुए तथा श्रीकेशव गोस्वामी गौड़ीय मठकी सेवाका दायित्व सम्भालते थे। उनके सम्बन्धमें सविशेष वर्णन परवर्ती अङ्कोंमें दिया जाएगा। ***(जनैक विरही)***

श्रीश्रीगौर-राधा-रमणबिहारीजीका प्रतिष्ठा उत्सव

भारतकी राजधानी नई दिल्लीके जनकपुरीमें श्रीरमणबिहारी गौड़ीय मठमें १६ नवम्बर रविवारको श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रतिष्ठाता-नियामक जगद्गुरु नित्यलीलाप्रविष्ट ॐविष्णुपाद १०८श्री श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीके अन्तरङ्ग प्रिय-पार्षदवर परिव्राजकाचार्य ॐविष्णुपाद १०८श्री श्रीमद् भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीके आनुगत्य व उपस्थितिमें देश-विदेशके हजारों भक्तोंके मध्य श्रीश्रीगौर-राधा-रमणबिहारीजीके अति सुन्दर विजय-विग्रहोंकी प्रतिष्ठा हुई। इस उपलक्ष्यमें इस महानगरीमें बैंड बाजा, हाथी, आतशबाजी तथा झाँकियोंके साथ नगर संकीर्तन निकाला गया। ⑧

श्रीश्रीगौर–राधा–रमणबिहारीजी

व्यासपूजाके लिए निमन्त्रण

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ
जवाहर हाट, मथुरा (उ. प्र.)
✆ ०५६५–२५०२३३४

श्रीवैष्णवचरणे दण्डवन्नतिपूर्विकेयम् सादर सम्भाषण,

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके अन्यतम प्रचार–केन्द्र श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें श्रीहरि–गुरु–वैष्णवोंके आनुगत्यमें आगामी माघ कृ. ३०, मौनी अमावस्या, २१ जनवरी २००४ बुधवारको समितिके प्रतिष्ठाता–नियामक जगद्गुरु नित्यलीलाप्रविष्ट ॐविष्णुपाद १०८श्री श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीके अन्तरङ्ग प्रिय–पार्षदवर परिव्राजकाचार्य ॐविष्णुपाद १०८श्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीकी ८३ वीं आविर्भाव तिथि उपलक्ष्यमें श्रीव्यासपूजा एवं तदन्तर्गत पूजापञ्चक और हवन आदिका अनुष्ठान होगा। प्रातःकालसे क्रमानुसार मङ्गलारती, महाजन पदावलियोंका कीर्तन, उनके अप्राकृत चरित्रका गुणगान तथा श्रीहरि–गुरु–वैष्णव तत्त्वसम्बन्धी हरिकथा, पुष्पाञ्जलि प्रदान, भोगारती एवं महाप्रसाद सेवन आदि इस उत्सवके विशेष अङ्ग रहेंगे।

इस पवित्र महोत्सवमें आप सबान्धव योगदानपूर्वक हमलोगोंको वैष्णव–सेवाके लिए सुयोग प्रदान करें—यही प्रार्थना है।

शुद्धभक्तकृपालेशप्रार्थी सेवकवृन्द
श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति

श्रीश्रीगुरु–गौराङ्गौ–जयतः

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे

वैकुण्ठ–वार्त्तावह

बृहत्–मृदङ्ग

श्रीभागवत–पत्रिका

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः।
ज्ञान वैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना॥

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा॥

आराध्यो भगवान् व्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावनं, रम्या काचिदुपासना व्रजवधूवर्गेण या कल्पिता।
श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान्, श्रीचैतन्य महाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो नः परः॥

एक भागवत बड़ भागवत शास्त्र । आर एक भागवत भक्तिरसपात्र॥
दुई भागवत द्वारा दिया भक्तिरस । ताहाँर हृदये तार प्रेमे हय वश॥

वर्ष ४७ } श्रीगौराब्द ५१७
वि. सं. २०६० माघ मास, सन् २००४, ८ जनवरी—६ फरवरी { संख्या ११

श्रीप्रार्थनापद्धतिः

श्रीराधिकायै नमः

(श्रीमद्रूपगोस्वामिविरचितम्)

शुद्धगाङ्गेयगौराङ्गी कुरङ्गीलाङ्गिमेक्षणाम्।
जितकोटीन्दुबिम्बास्यामम्बुदाम्बरसंवृताम् ॥१॥
नवीनबल्लवीवृन्दधम्मिल्लोत्फुल्लमल्लिकाम्।
दिव्यरत्नाद्यलङ्कारसेव्यमाननतनुश्रियम् ॥२॥
विदग्धमण्डलगुरुं गुणगौरवमण्डिताम्।
अतिप्रेष्ठवयस्याभिरष्टाभिरभिवेष्टिताम् ॥३॥

चञ्चलापाङ्गभङ्गेन व्याकुलीकृतकेशवाम्।
गोष्ठेन्द्रसुतजीवातुरम्यबिम्बाधरामृताम् ॥४॥
त्वामसौ याचते नत्वा विलुठन्यमुनातटे।
काकुभिर्व्याकुलस्वान्तो जनो वृन्दावनेश्वरि॥५॥
कृतागस्केऽप्ययोग्येऽपि जनेऽस्मिन्कुमतावपि।
दास्यदानप्रदानस्य लवमप्युपपादय॥६॥
युक्तस्त्वया जनो नैव दुःखितोऽयमुपेक्षितुम्।
कृपाद्योतद्रवच्चित्तनवनीतासि यत्सदा॥७॥

इति श्रीमद्रूपगोस्वामिविरचित-स्तवमालायां श्रीप्रार्थनापद्धतिः सम्पूर्णा।

अनुवाद—

हे वृन्दावनेश्वरि! जिनके श्रीअङ्ग तपाये हुए सोनेके समान गौरवर्ण हैं, हिरणीके जैसे सुन्दर जिनके नेत्रयुगल हैं, जिनके श्रीमुखने करोड़ों चन्द्रबिम्बोंपर विजय प्राप्त कर ली है; जो मेघके समान नीलवर्णकी ओढ़नी ओढ़ी हुई हैं, जो नवीन वयःकी गोपरमणियोंके केशबन्धकी फूली हुई मल्लिकाके समान हैं, जिनकी अङ्गकान्ति दिव्य रत्नादि अलङ्कारोंसे सेवित एवं पुष्ट हो रही है, जो विदग्धा नायिकाओंकी गुरु हैं, जो गुण-गरिमासे सुशोभित हैं, आठ प्रियतमा सखियोंसे घिरी रहती हैं, अपने चञ्चल कटाक्षोंसे श्रीकृष्णको व्याकुल कर देती हैं, जिनके बिम्बसदृश रमणीक अधरोंका अमृत उन श्रीव्रजेन्द्रकुमारका जीवन है, ऐसी (गुण-महिमायुक्त) आपसे यह दास व्याकुलचित्त होकर यमुना-तटपर लोटता हुआ प्रणामपूर्वक गिड़गिड़ाकर प्रार्थना करता है कि आप इस अपराधी, अयोग्य एवं खोटी बुद्धिवाले जीवको भी अपनी सेवाका तनिक-सा अधिकार प्रदान करें। इस दुःखिताकी उपेक्षा करना आपके लिए उचित नहीं है, क्योंकि आपका चित्तरूपी नवनीत कृपाकी ज्योतिसे सदा पिघला रहता है। ❽

प्रश्नोत्तर

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

श्रीकृष्णपार्षद

प्र. १—वैकुण्ठमें कितने प्रकारके भक्त हैं?

उ.—वैकुण्ठमें पाँच प्रकारके भक्तोंका नित्य अवस्थान है—(१) ज्ञानीभक्त (२) शुद्धभक्त (३) प्रेमीभक्त (४) प्रेमपर भक्त और (५) प्रेमातुर भक्त। मुक्तिके प्रति तुच्छ बुद्धिके साथ भगवानके श्रीचरणकमलोंमें भक्तिमहिमायुक्त ज्ञानमिश्र नौ प्रकारकी सेवाभक्तिका पालन करनेवाले भरत आदि ज्ञानी भक्त हैं। कर्म-ज्ञान-वैराग्यसे रहित शुद्धा भक्तिकी कामना करनेवाले राजा अम्बरीष आदि ही शुद्ध भक्त हैं। प्रीतिपूर्वक सेवाकी वासनासे

युक्त हनुमान आदि प्रेमी भक्त हैं। भगवानकी कृपाजनित विशुद्ध प्रेमके कारण उनके दर्शनके लिए उत्कण्ठित नर्म सखा सौहृद आदि शृंखलवद्ध अर्जुन आदि ही प्रेमपर भक्त हैं। सर्वदा प्रेमसम्पत्तिविह्वल विचित्र प्रेम-सम्बन्धाकृष्टाशय श्रीउद्धवादि प्रेमातुर भक्त हैं।

(वृ. भा. तात्पर्यानुवाद)

प्र. २—क्या वैकुण्ठमें नारायणके माता-पिता हैं?

उ.—वैकुण्ठमें नारायणके माता-पिताकी सम्भावना नहीं है; क्योंकि ऐसा होना वैकुण्ठके ऐश्वर्यके विरुद्ध है। इतना होनेपर भी नन्द-यशोदा आदिकी प्रेमातुर गतिकी चिन्ता करनेपर भक्तगण प्रेमसे पुलकित हो जाते हैं।

(वृ. भा. तात्पर्यानुवाद)

प्र. ३—शुद्धव्रजानुगत और नवद्वीपानुगत भक्तोंका कहाँ वास होता है?

उ.—रसभेदसे गोलोकमें भक्तोंकी पृथक् स्थिति कृष्णकी अविचिन्त्य शक्ति द्वारा सम्पन्न हुई है। शुद्धव्रजानुगत भक्त कृष्णलोकमें और शुद्धनवद्वीपानुगत भक्त गौरलोकमें अवस्थान करते हैं। व्रज और नवद्वीपके ऐक्य सेवागत भक्त कृष्णलोक और गौरलोकमें युगपत् सेवा-सुख लाभ करते हैं। (ब्र. सं. ५/५)

प्र. ४—क्या चिद्विलासगत भक्त ऐश्वर्यमुग्ध हो जाते हैं?

उ.—चिद्विलासगत भक्त भगवन्माधुर्यमें सर्वदा इतने अधिक मुग्ध रहते हैं कि ऐश्वर्यके रहनेपर भी वह उनके निकट प्रतीत नहीं होता। यह भाव अविद्यारूपी माया-भावके अन्तर्गत नहीं है। (कृ. सं. ४/१६)

शक्ति-तत्त्व

प्र. १—शक्ति और शक्तिमान् क्या पृथक् हैं?

उ.—पृथक् होकर भी वस्तु और वस्तुशक्ति एक है; पार्थक्य और ऐक्य-युगपत् सिद्ध हैं। इसलिए वस्तु और वस्तुशक्तिका स्वभाव अचिन्त्यभेदाभेदात्मक है।

(श्री म. शि. ४र्थ प.)

प्र. २—शक्तिका अद्वयत्व और अनन्तत्व कैसे युक्तिसङ्गत है?

उ.—नौका बनाते समय निर्माताका जो भाव होता है, गृह-निर्माण करते समय वह भाव न रहकर दूसरे भावका उदय होता है, यह स्वीकार करना ही होगा। बनानेका सामर्थ्य एक ही शक्ति है, केवल भावोंका ही विभिन्न रूप देखा जाता है। अतएव शक्तिके अद्वयत्व और आनन्त्यके सम्बन्धमें कोई विरोध नहीं है। (त. सू. ६ वाँ सूत्र)

प्र. ३—शक्ति स्त्रीरूपा क्यों हैं?

उ.—शक्ति पराधीना हैं, इसलिए स्त्रीरूपा होकर शक्तिमान् चैतन्य पुरुषके साथ आलिङ्गनके योग्य हुई हैं। तत्त्वको यथासम्भव सहज और मनोगम्य बनानेके लिए ब्रह्मर्षियोंने आलङ्कारिक भाषाका प्रयोग किया है। वस्तुतः राधाकृष्ण एक ही परम तत्त्व हैं।

(त. सू. ७ वाँ सूत्र)

प्र. ४—अन्तरङ्गा, बहिरङ्गा और तटस्था शक्तिका स्वरूप और कार्य क्या है?

उ.—भगवानकी अन्तरङ्गा या स्वरूप-

शक्तिकी अणुप्रकाश स्थानीय शक्ति ही तटस्था या जीव शक्ति है एवं छायाप्रकाश स्थानीय शक्ति ही बहिरङ्गा या माया शक्ति है। जीवशक्तिके अन्वय या अनुवृत्तिके द्वारा जैवजगत् उत्पन्न हुआ है। मायाशक्तिके अन्वय द्वारा जड़जगत हुआ है। जीवके व्यतिरेक या व्यावृत्तिबुद्धि अथवा मिथ्याभिमानरूप विवर्त्तके द्वारा जड़ जगत्से सम्बन्ध हुआ है।

('सूचना' श्रीभा. मा. १/१)

प्र. ५—शक्तिके कौन-कौनसे विशेष विक्रम हैं?

उ.—शक्तिके विशेषरूप विक्रम तीन प्रकारके हैं—सन्धिनी विक्रम, सम्विद् विक्रम और ह्लादिनी विक्रम। सन्धिनी विक्रमसे समस्त सत्ता प्रकट हुई है। शरीर सत्ता, शेषसत्ता, कालसत्ता, सङ्गसत्ता, उपकरणसत्ता आदि सभी सत्तामात्र ही सन्धिनी द्वारा निर्मित (प्रकटित) हैं। सम्वित्-विक्रमसे समस्त सम्बन्ध जातीय भाव प्रकट हुए हैं। ह्लादिनी विक्रमसे समस्त रसोंका प्राकट्य हुआ है। सत्ता और समस्त सम्बन्ध भावोंका शेष प्रयोजन ही 'रस' है। जो व्यक्ति विशेष नहीं मानते, अर्थात् निर्विशेषवादी हैं, वे अरसिक हैं। विशेष ही रसका जीवन है। (प्रे. प्र. ९म प्र.)

प्र. ६—स्वरूप शक्तिको वेदमें किस नामसे अभिहित किया गया है?

उ.—श्रीकृष्णकी विचित्रा स्वरूप-शक्तिको वेदमें 'शबल' नामसे पुकारा गया है।

(श्रीम. शि. ३ रा प.)

प्र. ७—सन्धिनी शक्तिका क्या कार्य है?

उ.—

सा शक्तिः सन्धिनी भूत्वा सत्ताजातं वितन्यते।
पीठसत्तास्वरूपा सा वैकुण्ठरूपिणी सती॥
कृष्णाद्याख्याभिधा सत्ता रूपसत्ता कलेवरम्।
राधाद्या सङ्गिनी–सत्ता सर्वसत्ता तु सन्धिनी॥
सन्धिनीशक्तिसम्भूताः सम्बन्धा विविधा मताः।
सर्वाधारस्वरूपेयं सर्वाकारा सदंशका॥

अर्थात् सन्धिनीके द्वारा समस्त सत्ताका उदय हुआ है। पीठसत्ता, अभिधासत्ता रूपसत्ता, सङ्गिनीसत्ता, सम्बन्धसत्ता, आधारसत्ता और आकार इत्यादि समस्त सत्ता ही सन्धिनीसे उत्पन्न हुई हैं। उन पराशक्तिके तीन प्रभाव हैं—चित्प्रभाव, जीवप्रभाव और अचित्प्रभाव। चित्प्रभाव स्वगत है और जीव तथा अचित्प्रभाव विभिन्न-तत्त्वगत हैं। शक्तिके प्रभावानुसार सभी भावोंका पृथक्-पृथक् विचार किया गया है। चित्प्रभावगत परा शक्तिकी सन्धिनी-भावगत पीठसत्ता ही वैकुण्ठ है। उनकी अभिधा सत्तासे कृष्णादि नाम प्रकट हुए हैं। रूपसत्तासे कृष्ण-कलेवर, सङ्गिनी और रूप सत्ताके मिश्रभावसे श्रीराधादि प्रेयसियाँ प्रकट हुई हैं, सन्धिनी शक्तिसे समस्त सम्बन्धोंका उदय होता है; सदंश-स्वरूप सन्धिनी ही सर्वाधार सर्वाकार स्वरूप हैं। (कृ. सं. २/३-५)

प्र. ८—सम्वित् शक्तिका क्या कार्य है?

उ.—

सम्विद्भूता परा शक्तिर्ज्ञान–विज्ञानरूपिणी।
सन्धिनी निर्मिते सत्त्वे भावसंयोजिनी सती॥
भावाभावे च सत्तायां न किञ्चिदपि लक्ष्यते।
तस्मातु सर्वभावानां सम्विदेव प्रकाशिनी॥
सन्धिनीकृतसत्त्वेषु सम्बन्ध–भावयोजिका।
सम्विद्रूपा महादेवी कार्याकार्यविधायिनी॥
विशेषाभावतः सम्वित् कार्याकार्यविधायिनी।
विशेषसंयुता सा तु भगवद्भक्तिदायिनी॥

अर्थात् सम्विद्भावगता पराशक्ति ही ज्ञान और विज्ञान-रूपिणी हैं। उनके द्वारा सन्धिनी निर्मित सब सत्त्वोंमें समस्त भावोंका प्रकाश होता है। सब भाव नहीं रहनेसे सत्ताका अवस्थान जाना नहीं जाता। अतएव सम्वित् द्वारा समस्त तत्त्व ही प्रकाशित होते हैं। चित्प्रभावगत सम्वित् द्वारा वैकुण्ठस्थ सभी भावोंका उदय हुआ है। कार्याकार्य विधानकर्त्री सम्विद्देवीने ही वैकुण्ठस्थ समस्त सम्बन्धभावोंकी योजना की है। शान्त, दास्य आदि रस और इन सब रसगत सात्त्विक कार्य सभी सम्वित् द्वारा व्यवस्थापित हुए हैं। विशेष-धर्मको आश्रय न करनेसे सम्विद्देवी निर्विशेषभावको उत्पन्न करती हैं एवं उस समय जीव सम्वित् ब्रह्म-ज्ञानको आश्रय करते हैं। अतएव ब्रह्मज्ञान केवल वैकुण्ठकी निर्विशेष आलोचना मात्र है। विशेष धर्मके आश्रयमें सम्विद्देवी भगवद्भावको प्रकाश करती हैं। उस समय जीवगत सम्वित् द्वारा भगवद्भक्तिकी व्याप्ति ग्रहीत होती है। (कृ. सं. २/६-९)

प्र.९—ह्लादिनी शक्तिका क्या कार्य है?

उ.—

ह्लादिनीनाम-संप्राप्ता सैव शक्तिः पराख्यिका।
महाभावादिषु स्थित्वा परमानन्ददायिनी॥
सर्वोद्ध्र्व-भावसम्पन्ना कृष्णार्द्धरूपधारिणी।
राधिकासत्त्वरूपेण कृष्णानन्दमयी किल॥
महाभावस्वरूपेयं राधा कृष्णविनोदिनी।
सख्यः अष्टविधा भावा ह्लादिन्या रसपोषिका॥
तत्तद्भावगता जीव नित्यानन्दपरायणाः।
सर्वदा जीवसत्तायां भावानां विमला स्थितिः॥

अर्थात् चित् प्रभावगत पराशक्ति जब ह्लादिनी भावको प्राप्त होती है, उस समय वे महाभाव तकके रस-वैचित्र्यको उत्पन्नकर स्वयं परमानन्ददायिनी होती हैं। वे ही ह्लादिनी सर्वोद्ध्र्व भावसम्पन्न होकर शक्तिमानकी शक्तिस्वरूपा तदर्द्धरूपिणी राधिका-सत्तागत अचिन्त्य कृष्णानन्दरूप एक अनिर्वचनीय तत्त्वका विस्तार करती हैं। वे ही कृष्णविनोदिनी राधा महाभावस्वरूप हैं; उन ह्लादिनीकी रस पोषिकारूप आठ प्रकारके भाव हैं, जो जीवगत ह्लादिनीकी शक्ति जीव सत्ताके ऊपर कार्य करती हैं, तब साधुसङ्ग या कृष्ण-कृपाबलसे यदि चित्गत-ह्लादिनीका कार्य थोड़ा भी अनुभुत हो, तो तत्तद्भावगत होकर सभी जीव नित्यानन्दपरायण हो उठते हैं और जीवसत्तामें ही विमल-भावकी नित्यस्थिति हो जाती है। (कृ. सं. २/१०-१३)

श्रीलप्रभुपादजीका उपदेशामृत

प्र. १४९—प्रभुपाद! आप कृपापूर्वक गीताके *'सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज'* श्लोकका अर्थ बता दीजिए?

उ.—गीतामें श्रीभगवानने समस्त प्रकारके धर्मोंको छोड़कर उनके चरणोंमें शरण लेनेकी बात कही है। जिन भगवानने गीतामें ही उपदेश प्रदान किया है कि स्वधर्म छोड़कर परधर्म ग्रहण करनेसे अमङ्गल होता है। अपने धर्ममें स्थित रहते हुए मरना भी अच्छा है, परन्तु किसी भी अवस्थामें भयावह परधर्मका अनुष्ठान करना अनुचित है, वे भगवान ही यहाँपर समस्त धर्मोंको परित्याग करनेकी बात कह रहे हैं। इस प्रकार भगवानकी इन परस्पर विरोधी जैसी प्रतीत होनेवाली बातोंका

क्या सामञ्जस्य है? देखिए, मनुष्य अपनी विद्या, बुद्धि एवं पारदर्शिताके माध्यमसे पुरुषोत्तम भगवानको नहीं जान सकता। भगवानकी कृपासे ही भगवानको जाना जा सकता है। यदि हम उन कृष्णचन्द्रके औदार्यमयलीला प्रकटकारी श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुकी आलोचना करें—जो स्वयं कृष्ण होकर भी कृष्णकी कथाओंका प्रचार करनेके लिए जगतमें अवतीर्ण हुए, उनकी कथाओंको एकाग्रचित्त होकर श्रवण करें, तभी इस प्रश्नका उत्तर सम्पूर्णरूपसे हम प्राप्त कर सकते हैं।

महाप्रभु जब संन्यास ग्रहण करनेके पश्चात् काशीमें चन्द्रशेखरके घर निवास कर रहे थे। उस समय बंगालके बादशाह हुसैनशाहके प्रधानमन्त्री शाकरमल्लिक (श्रीसनातन प्रभु) वहाँपर उपस्थित हुए। उन्होंने महाप्रभुसे पूछा—

के आमि, केन आमाय जारे तापत्रय।
इहा नाहि जानि—केमने हित हय॥

अर्थात् हे प्रभु! आप कृपाकरके बतलाइए कि मैं कौन हूँ तथा मुझे आधिदैविक, आधिभौतिक, आध्यात्मिक ये तीनों ताप किसलिए कष्ट दे रहे हैं? मैं यह भी नहीं जानता कि मेरा कल्याण कैसे होगा? इसके उत्तरमें महाप्रभुने जो कहा, उसे सुनें—

जीवेर स्वरूप हय कृष्णेर नित्य दास।
कृष्णेर तटस्था शक्ति भेदाभेद प्रकाश॥
कृष्ण भुलि सेइ जीव अनादि बहिर्मुख।
अतएव माया तारे देय संसारादि दुःख॥
साधु शास्त्र कृपाय यदि कृष्णोन्मुख हय।
सेइ जीव निस्तरे माया ताहारे छाड़य॥
ताते कृष्ण भजे करे गुरुर सेवन।
माया जाल छुटे पाय कृष्णेर चरण॥

अर्थात् जीव स्वरूपतः कृष्णका नित्यदास है तथा कृष्णकी तटस्था शक्तिसे प्रकट होता है। तटस्थाशक्तिका कृष्णसे भेद एवं अभेद दोनों ही हैं। कृष्णको भूलनेके कारण ही वे जीव अनादि कालसे बहिर्मुख हो गये हैं। इसीलिए माया उन्हें नाना प्रकारके सांसारिक दुःख प्रदान करती है। यदि सौभाग्यवश वह कभी साधु एवं शास्त्रकी कृपासे कृष्णोन्मुख होता है, तभी वह मायाके फन्देसे मुक्त हो सकता है। तब वह गुरुकी सेवा करते हुए कृष्णका भजन करता है, जिससे अति शीघ्र उसका मायाजाल छिन्न-भिन्न हो जाता है तथा वह कृष्णके चरणोंको प्राप्त कर लेता है।

जीव भगवानकृष्णके सेवक हैं। कृष्ण जीवके नित्य प्रभु हैं। कृष्णकी सेवा करना ही जीवका नित्य एवं प्रधान कर्तव्य है। हम देह नहीं हैं, देही—अणुचैतन्य आत्मा हैं, यही शास्त्रोंका उपदेश है। किन्तु शास्त्रकी इन बातोंको भूलकर जब हम इस शरीर एवं मनको ही 'मैं' मानता हैं, तभी समस्त प्रकारकी असुविधाएँ आकर हमें घेर लेती हैं। तब हम देहकी उत्पत्ति जिस कुलमें हुई है, जिस देशमें हुई है, उस कुल एवं देशको ही अपना मान लेते हैं। तब हम स्वयंको ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, म्लेच्छ, स्त्री इत्यादि अभिमान करते हैं। देहके परिवर्तन अथवा आयुके भेदसे स्वयंको बालक, वृद्ध तथा युवक इत्यादि मानते हैं। उस शरीरको 'मैं' जानकर हम स्वयंको भारतवासी, बंगाली, इंग्लैण्डवासी, मुसलमान, मारवाड़ी, पंजाबी तथा बिहारी इत्यादि मानने लगते हैं। इसके अतिरिक्त आश्रमीके अभिमानसे स्वयंको

ब्रह्मचारी, गृहस्थ एवं संन्यासी मानने लगते हैं। इससे स्पष्ट हो जाता है कि इन अवस्थाओंमें ही परस्पर धर्मोंमें भेद एवं बहुतसे धर्मोंकी उत्पत्ति हुई है।

गीताके वक्ता स्वयं भगवान कृष्ण हैं। वे कह रहे हैं कि आत्मा नित्य है, अपरिवर्तनीय है। देह अनित्य एवं वृद्धि-क्षययुक्त है। जो देहके परिवर्तनके साथ ही परिवर्तनहीन आत्माका परिवर्तन या उसका जन्म-मृत्यु स्वीकार करते हैं, वे मूर्ख हैं। अतः इस श्लोकमें 'सर्वधर्म' का अर्थ है—देह और मनके प्रति आत्मबुद्धिके कारण जितने प्रकारके धर्म उत्पन्न हुए हैं। अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र ये चारों वर्ण, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास ये चारों आश्रम एवं इनके अतिरिक्त अन्त्यज आदि धर्म, लौकिक निज भोग या त्यागपर पारलौकिक धर्म, विशेषरूपसे कृष्णसेवाधर्मके अतिरिक्त चतुर्दश भुवनोंमें जितने धर्म हैं, वे सभी धर्म उस 'सर्वधर्म' के ही अन्तर्गत हैं, जिन्हें कृष्णने परित्याग करनेके लिए कहा है।

देह एवं मनके अनित्य धर्मको परित्यागकर आत्माके नित्यधर्म भगवानकी सेवा करनी चाहिए, करुणामय भगवानने कृपापूर्वक हमें यह शिक्षा प्रदान की है। परन्तु मायाभ्रमित जीव आसानीसे इस उपदेशको ग्रहण नहीं कर सकता। इसका प्रमाण इसी श्लोककी दूसरी पंक्तिमें मिलता है। इसमें भगवान कह रहे हैं—***'अहं त्वां सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि।'*** अर्थात् मैं तुम्हें समस्त पापोंसे मुक्त कर दूँगा। अनित्य, जड़ देह एवं मनके धर्मको छोड़कर नित्यधर्म भगवानकी सेवाके लिए अग्रसर होते समय आसक्ति एवं मोहके कारण जीव विचार करता है कि इन समस्त धर्मोंको छोड़नेसे मुझे पाप लगेगा। हाय! हाय! कितने दुःखकी बात है कि जिस नित्य धर्म (भगवानकी सेवा) का पालन न करनेसे महा अपराध और महापाप होता है, उसके प्रति उदासीन होकर मायाबद्ध जीव अनित्य धर्मोंको नित्य मानकर उसको परित्याग करनेमें पाप समझ रहा है। इतना ही नहीं, उसके लिए शोक भी कर रहा है। इसीलिए भगवान उससे कह रहे हैं कि इन अनित्य धर्मोंको परित्याग करनेसे तुम्हें किसी प्रकारका पाप स्पर्श नहीं करेगा। फिर भी यदि तुम्हें इसका भय है, तो मैं तुम्हें उन समस्त पापोंसे मुक्त कर दूँगा।

स्वयं भगवान श्रीकृष्ण इस जगतमें आकर भगवद् भजनकी बातें बता गये हैं। परन्तु क्या हम उनकी बातोंको मान रहे हैं? क्या उनके आदेश व निर्देशोंका पालन कर रहे हैं? यदि हम भगवानके उपदेशोंको न मानें, शास्त्रकी बात न सुनें, अपने मनके अनुसार ही आचरण करें, अकर्तव्यको कर्तव्य, कर्तव्यको अकर्तव्य मानें, साधु-गुरु एवं शास्त्रोंके वचनोंकी अवहेलना करें, अपना कर्तव्य स्वयं ही निर्धारित करें, तो दोष किसका होगा?

प्र. १५०—अनर्थोंको दूर करनेका उपाय क्या है?

उ.—हरिभजन न करनेपर जीव कर्मी, ज्ञानी या अन्याभिलाषी हो जाता है। इसीलिए सर्वदा ही भगवानको 'हरेकृष्ण महामन्त्र' का उच्चारणकर पुकारना चाहिए। अपने सामर्थ्यके अनुसार संख्यापूर्वक हरिनाम करनेसे अनर्थ

दूर होते हैं, साथ ही जाड्य और आलस्य इत्यादि भी दूर भाग जाते हैं। निरपराध होकर हरिनाम करनेसे समस्त प्रकारकी सिद्धियाँ सहजरूपमें ही प्राप्त हो जाती हैं।

प्र. १५१—हमें किस प्रकार रहना चाहिए?

उ.—बहिर्मुख लोगोंके मुखसे निरर्थक ग्राम्य कथाएँ निकलती ही रहेंगी। हमें ऐसी बातोंमें मनको नहीं लगाना चाहिए। यदि हमारी अपने कर्तव्य मार्ग (भगवानकी सेवा मार्ग) पर अग्रसर होनेकी इच्छा हो, तो किसी भी प्रकारकी बाधा-विपत्ति हमें लेशमात्र भी विचलित नहीं कर सकती। जगतके बहिर्मुख लोगोंका सम्मान करना चाहिए, किन्तु उनके व्यवहार इत्यादिको नहीं सीखना चाहिए। मन ही मन उनका परित्याग करना चाहिए। शरणागति, प्रार्थना, प्रेमभक्तिचन्द्रिका इत्यादि ग्रन्थोंका अवश्य ही पाठ करना चाहिए। वास्तवमें शास्त्रीय साधुसंग ही लाभदायक है। भजनकी शिक्षा प्राप्त करनेके लिए साधुसंग नितान्त आवश्यक है।

ॐविष्णुपाद १०८श्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजजीकी हरिकथा

(गताङ्कसे आगे)

श्रीलगुरुदेवने जो उपदेश प्रदान किये हैं, उनसे स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने मायावादका छेदन किया। साथ ही उन्होंने यह भी कहा है कि जबतक मायावाद अथवा निर्विशेषवाद इस जगतमें विद्यमान रहेगा, तबतक शुद्धभक्तिको लोग जान नहीं पायेंगे। उन्हें इस प्रकारका सुयोग नहीं प्राप्त हो सकता। नास्तिक्यवाद बहुत प्रकारका होता है। जीवब्रह्मैकवाद एक प्रकारका नास्तिक्यवाद है—जो कहते हैं कि समस्त जीव ही भगवान हैं। इसके अतिरिक्त कुछ लोग इसके विपरीत कहते हैं कि भगवान ही मनुष्य हैं, ये दोनों ही बातें भ्रमपूर्ण हैं। वास्तविक तथ्य तो यह है कि भगवान सब समय भगवान ही रहते हैं और जीव सब समय जीव ही रहता है। परन्तु ऐसे नास्तिक लोग मानो मनुष्यके ऊपर ही दया करके उसे भगवान कहते हैं। यदि कोई उनसे प्रश्न करे कि केवल मनुष्य ही क्यों भगवान होंगे, जीवमात्र ही भगवान है, ऐसे कहनेमें क्या दोष है? परन्तु वे इस बातको स्वीकार नहीं करते। वे 'मनुष्य-भगवान, मनुष्य-भगवान' कहते रहते हैं। यदि जीव ही भगवान है, और यदि कोई ऐसे भगवानरूपी जीवका वध करे या उनकी हिंसा करे, तो क्या भगवान खुश होंगे? गीता, भागवत आदिकी आलोचना करनेपर हम देखते हैं कि भगवान इससे खुश नहीं होते हैं, बल्कि बहुत दुःखी होते हैं, उन्हें बहुत कष्ट होता है।

येत्वनेवं विदोऽसन्तः स्तब्धाः सदभिमानिनः।
पशून् द्रुह्यन्ति विश्रब्धाः प्रेत्य खादन्ति ते च तान्॥

(श्रीमद्भा. ११/५/१४)

अर्थात् जो नामधारी साधु पापीलोग पशुओंकी हिंसा करते हैं और उन्हें खाते हैं, वे पशु ही उन्हें दूसरे जन्ममें खाते हैं।

भागवतमें ऐसा कहा गया है। अतः क्या हमें केवल मनुष्योंके ऊपर ही दया करनी चाहिए? मनुष्यके अतिरिक्त जो जीव जैसे पशु-पक्षी इत्यादि हैं, उनके ऊपर हमारी दया कहाँ है? केवलमात्र बाघ, अजगर, मगरमच्छ इनको संरक्षण देना ही क्या दयाका परिचय है? शास्त्र कहते हैं—मनुष्य ही भगवानकी सृष्टिका सर्वश्रेष्ठ जीव है। भगवानने अनन्त विश्वब्रह्माण्डोंकी सृष्टि की। उन्होंने वृक्ष, गुल्म, लता एवं प्राणियोंकी सृष्टि की। पशु एवं पक्षियोंकी भी सृष्टि की। परन्तु इतनी सृष्टि करनेके पश्चात् भी उन्हें प्रसन्नता नहीं हुई। भागवतमें ऐसा कहा गया है।

सृष्ट्वा पुराणि विविधान्यजयात्मशक्त्या
वृक्षाः सरीसृपपशून् खगदन्दशूकान्।
तैस्तैरतुष्टहृदयं पुरुषं विधाय
ब्रह्मावलोकधिषणं मुदमाप देवः॥
(श्रीमद्भा. ११/९/२८)

अर्थात् भगवान अपनी मायाशक्ति द्वारा वृक्ष, सरीसृप, पशु, पक्षी और हिंस्र प्राणियोंके शरीरकी सृष्टि करनेके बाद उसीसे सन्तुष्ट न होकर अन्तमें भगवद् अनुभूतिके लिए उपयुक्त मनुष्य शरीरकी सृष्टिकर तृप्त हुए।

भगवानको इन सबकी सृष्टि करनेके पश्चात् भी शान्ति नहीं मिली। अन्तमें उन्होंने अपने आकारकी भाँति एक आकार देकर मनुष्यकी सृष्टि की। इसीमें क्या भगवानका दोष हो गया? इसीलिए क्या भगवानको गाली-गलौज करना चाहिए कि भगवान ही मनुष्य बन गये? ऐसा नहीं। उन्होंने अपने रूपके समान एक आकारमात्र तैयार किया, जिसे मनुष्य कहते हैं। मुझसे पूर्व वक्ता महोदयने कहा था कि कृष्णने गीतामें अर्जुनको कहा है—अर्जुन, मेरा जन्म और कर्म अलौकिक, दिव्य एवं अप्राकृत है। इस प्रकार अर्जुनके माध्यमसे उन्होंने ऐसे लोगोंको सावधान किया है, जो भगवानको साधारण मनुष्य समझते हैं।

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितः।
परंभावमजानन्तो ममभूतमहेश्वरम्॥
(गीता ९/११)

जो मूढ़ व्यक्ति हैं, वे मुझे साधारण मनुष्य समझते हैं। वे मेरे भगवद् भावको नहीं जानते। इसके साथ ही वे कह रहे हैं—***जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेति तत्त्वतः।*** जो मेरे जन्म एवं मेरे कर्मको दिव्य या अलौकिक मानता है, उनका पुनर्जन्म नहीं होता। अर्थात् तत्त्वदर्शी व्यक्तिको और कर्म एवं कर्मफल भोग नहीं करना पड़ता। उनकी सद्गति हो जाती है। पुनः उन्हें इस दुःखमय संसारमें जन्मग्रहण नहीं करना पड़ता। हमें अच्छी बातोंको ग्रहण करना चाहिए। परन्तु ऐसा न कर हम खराब विषयोंको जल्दी ग्रहण कर लेते हैं। यही कलिकालका धर्म है। आजकल सब कुछ उल्टा ही चल रहा है। कलिकालके हिसाबसे ऐसा लगता है कि ऐसा ठीक है। इसीलिए कलिकालके प्रभावको जाननेके कारण ही द्वापरयुगके अन्तमें ऋषिलोग खूब चिन्तित हो गये थे। इसीलिए शौनक आदि ऋषियोंने सूत गोस्वामीसे प्रश्न पूछे—"हे सूतजी! भयङ्कर कलिकाल आ रहा है, हम अपने भजन-साधनकी रक्षा किस प्रकार कर पायेंगे?" भागवत एवं

विभिन्न शास्त्रोंमें कलिका वर्णन किया गया है। इसीलिए उस वर्णनको सुनकर ही वे ऋषिलोग चिन्तित हो चुके थे। यह सुनकर सूतगोस्वामीजीने कहा—"हाँ, ठीक यही प्रश्न परीक्षित महाराजजीने मेरे गुरुदेव श्रीशुकदेव गोस्वामीजीसे किया था। परीक्षितकी सभामें श्रीलगुरुदेवने जो उत्तर प्रदान किया था, वही उत्तर मैं आपके सामने वर्णन कर रहा हूँ। क्योंकि मैं कुछ नहीं जानता, मेरे गुरुदेव सब कुछ जानते हैं। उन्होंने ही इसका उत्तर दिया है। मैं उनका ही उत्तर आपलोगोंको सुना रहा हूँ। शास्त्रोंमें सर्वत्र ही ऐसा उत्तर दिया गया है। मैं कह रहा हूँ, तुम सुनो, ऐसा नहीं चलेगा। भगवानने ऐसा कहा है, शास्त्रोंने ऐसा कहा है, पूर्व-पूर्व गुरुवर्गने ऐसा कहा है, पूर्व-पूर्व गोस्वामियोंने ऐसा कहा है, अतः तुम इसे सुनो। वहाँपर ऐसा नहीं कहा गया है कि मैं कह रहा हूँ। वहाँपर सूत गोस्वामी शास्त्रोंके अनुसार आचरण करते हुए कह रहे हैं—मेरे गुरुदेवने ऐसा कहा है, इसलिए तुम उस उत्तरको सुनो। तत्त्वदर्शन हमको जानना होगा। ***कलेर्दोषनिधे राजन् अस्ति ह्येक महान गुणः।*** अर्थात् हे राजन्, यह कलिकाल समस्त दोषोंका भण्डार है। कलिका अर्थ क्या है? विवदमान युग। अर्थात् जिस युगमें विवाद ही विवाद हैं। जिस युगमें लोग परस्पर मारकाट करेंगे, परस्पर विश्वास उठ जायेगा, भगवान एवं भक्तिको परित्याग कर देंगे, भगवानका नाम एवं उनकी कथाओंको सुननेका सुयोग प्राप्त नहीं होगा, उसी युगको कलियुग जानना। कलिका वर्णन विभिन्न शास्त्रोंमें, पुराणोंमें एवं श्रीमद्भागवतमें भी है। तो हमें क्या करना चाहिए, जिसके लिए ऋषिगण तक चिन्तित हैं? इसका उत्तर देते हुए श्रीसूतगोस्वामी कह रहे हैं—कलियुग समस्त दोषोंका भण्डार होते हुए भी इसमें एक महान गुण है। कौन-सा महान गुण है? यह युग कलियुग है। जिस द्वापरमें स्वयं भगवान श्रीकृष्ण अवतरित होते हैं, उसके बादवाले कलिको विशेष कलियुग कहा गया है। उसको धन्यकलि भी कहा गया है। यह कलियुग अन्यान्य कलियुगोंकी भाँति नहीं होता। ***कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्गः परं व्रजेत्।*** अर्थात् इस कलियुगके जीव केवल कृष्णनाम कीर्तनके द्वारा ही मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं। यहाँपर कृष्णनाम कहा गया है। कोई अन्य नाम नहीं।

कृष्णनाम हरिनाम बड़इ मधुर।
जेइ जन कृष्ण भजे से बड़ चतुर॥

शास्त्रोंमें सर्वत्र ही कृष्णनामकी महिमा कही गयी है। आजकल बाजारमें जो ***"शिव काली शिव काली काली काली शिव शिव"*** इत्यादि नाम सुने जा रहे हैं, यह सब hotch-potch (खिचड़ी) है। सनातन धर्म—जिस धर्मका हम पालन करते हैं उसे सनातनधर्म कहते हैं। इसीका नाम भागवत धर्म, आत्मधर्म, वैष्णवधर्म, जैवधर्म एवं वैदिक धर्म इत्यादि है। (क्रमशः)

कृते यद्ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्त्तनात्॥ (श्रीमद्भागवत १२/३/५२)

श्रीनित्यानन्द त्रयोदशी

(ॐविष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीकी हरिकथा)

एक समयकी बात है, एक गाँवमें एक नाई था जो निमन्त्रण देनेके उद्देश्यसे इधर-उधर जाता रहता था। पूर्वकालमें नाई लोग ही निमन्त्रित करनेका कार्य करते थे। विवाह आदि उत्सवोंमें वह सब रिश्तेदारोंको निमन्त्रण-पत्र देनेके लिए जाता था, जिससे उसे कुछ अधिक रुपये भी मिलते थे। परन्तु कहीं भी जाते समय वह अपने औजारों [क्षुर (उस्तरा), कैंची, कंघा)] को भी सब समय साथमें रखता था।

एक दिन कहीं जाते समय रास्तेमें एक जङ्गल पड़ा। उस जङ्गलके भीतरसे गुजरते समय उसने देखा कि रास्तेमें एक सिंह लेटा हुआ है। उस सिंहने उसपर आक्रमण नहीं किया, बल्कि अपने पंजेको थोड़ा-सा ऊपर उठाकर उसे चाटता रहा। पहले तो नाई भयभीत हो गया, लेकिन बादमें उसने सोचा, "ऐसा लगता है कि उसके पैरमें कुछ चुभ गया है, जिसके कारण वह आक्रमण नहीं कर रहा है।" नाईने उसके पासमें जाकर देखा कि एक बड़ा-सा कांटा उसके पैरमें गम्भीर रूपसे चुभ गया है, जिसके कारण सिंह छटपटा रहा है। नाईने अपने क्षुरके द्वारा उस कांटेको निकाल दिया। उस स्थानसे रक्त बह रहा था, इसलिए उसने कुछ औषधीय पत्तोंको हाथसे पीसकर वहाँ लगा दिया और वहाँसे चल दिया।

तीन चार साल बीत गये। एक दिन वही नाई एक झूठे हत्याकाण्डमें फँस गया तथा उसे गिरफ्तार कर लिया गया। उसका अभियोग राजाके पास गया तथा राजाने उसकी सजा सुनाई—"कुछ दिन पहले हमने जङ्गलसे एक सिंह पकड़ा है। इस दोषीको उस सिंहके पिंजड़ेमें फेंक दो, वह इसे खा जाएगा। इसके लिए दूसरा कोई दण्ड नहीं हो सकता।"

उस नाईको सिंहके पिंजड़ेमें फेंक दिया गया। तत्क्षणात् सिंह खड़ा हो गया और गर्जन करने लगा। परन्तु जैसे ही वह नाईके पास आया, शान्त होकर बैठ गया। यह वही सिंह था जिसका नाईने कुछ साल पहले कांटा निकाला था। इतने सालोंके बाद भी उसने नाईको पहचान लिया और आक्रमण नहीं किया। इस आश्चर्यजनक दृश्यको देखकर राजा कहने लगे—"यह भयङ्कर जानवर उसपर आक्रमण नहीं कर रहा है। क्या बात है?" वे फिर सोचने लगे, "मैं अभी समझ रहा हूँ कि मैंने इसे गिरफ्तार करके भूल किया है। सिंह इसे मार नहीं रहा है। यदि सिंह इसके दण्डको स्वीकार नहीं कर रहा है तो मैं भी इसे दण्ड नहीं दूँगा।" राजाने नाईको आदर सहित मुक्त कर दिया तथा उससे क्षमा प्रार्थना की।

एक पशुमें भी इतनी कृतज्ञता रहती है। श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी कहते हैं कि श्रीमन् नित्यानन्द प्रभुकी कृतज्ञता इस प्रकार है। एक मिनटमें नाईने सिंहसे कांटा निकाल दिया और सिंह कितने सालों तक कृतज्ञ रहा। जो जानवर इतना भयङ्कर है

कि अगणित पशुओं तथा मनुष्योंको मारकर खा जाता है, वह अपने जीवनभर कृतज्ञ रहा। हम वही कृतज्ञताका गुण श्रीनित्यानन्द प्रभुके जीवनमें देखते हैं।

श्रीचैतन्य चरितामृतमें, श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामीने भगवानसे अभिन्न श्रीनित्यानन्द प्रभुकी जीवोंके प्रति करुणाका उदाहरण दिया है। वे कहते हैं कि किसी एक विशेष तिथिके अवसरपर एक स्थानपर अष्ट प्रहर (चौबीस घण्टे) कीर्तनका आयोजन किया गया था। आसपासके सभी वैष्णवोंको निमन्त्रित किया गया था। उनमें श्रीमन्नित्यानन्दप्रभुके एक नित्य पार्षद थे श्रीमीनकेतन रामदास। उनका ऐसा स्वभाव था कि उनकी कृपाको कोई सहजरूपसे समझ नहीं सकता था, परन्तु उनको जो जानते थे, वे ही समझ सकते थे। साधारणतः किसी प्रिय व्यक्तिके आनेपर उसे प्रणाम किया जाता है। परन्तु श्रीमीनकेतन रामदासजी किसी भी व्यक्तिके प्रणाम करनेपर उसे अपनी वंशी (जिसे वे सर्वदा अपने हाथमें धारण करते थे) से उसपर प्रहार करते थे, जिसे प्रणाम करनेवाला व्यक्ति बड़ी कृपा मानता था। यदि वे किसीके सिरपर अपने चरणकमलोंको रख देते थे, तो वह समझता था कि उसी दिनसे उसका सौभाग्य उदित हुआ। कभी कभी वे किसीको थप्पड़ मारकर पूछते थे, "आजकल तुम कहाँ हो?" उन्हें समझनेवाले भक्त जानते थे कि थप्पड़ खानेवाले व्यक्तिके ऊपर श्रीनित्यानन्द प्रभुकी प्रत्यक्ष कृपा हुई। कीर्तन चल रहा था। जब श्रीमीनकेतन रामदासजी वहाँ पहुँचे, सभी खड़े हो गये तथा प्रणामकर उन्हें स्वागत किया। वे किसीके कन्धेपर चढ़ गये, किसपर वंशीसे प्रहार किया तो किसीको चपेटाघात किया। उनकी आँखोंसे निरन्तर अश्रुधारा प्रवाहित होती थी तथा वे सर्वदा उच्च कण्ठसे बोलते रहते थे 'नित्यानन्द प्रभुकी जय'।

वहाँका पुजारी कुछ पढ़ालिखा था। श्रीमीनकेतनजीके आनेपर सभीने तो प्रणाम किया, परन्तु वह पुजारी न तो खड़ा हुआ न ही प्रणाम किया। हँसते हुए श्रीमीनकेतनजी कहने लगे, "यहाँ हमें दूसरा रोमहर्षण मिला है।" [प्रथम रोमहर्षण सूतके द्वारा अखण्ड गुरुतत्त्व (श्रीबलदेवजी) को सम्मान न करनेके अपराध हेतु श्रीबलदेवजीने उसका वध कर दिया था।] उसके बाद वे श्रीनित्यानन्द प्रभुके गुणकीर्तनमें मग्न हो गये। सभीने उच्चस्वरसे संकीर्तन किया। संकीर्तनके बाद श्रीकविराज गोस्वामीके भाईने उनसे पूछा, "आप तो सर्वदा श्रीनित्यानन्द प्रभुका गुणगान करते हैं, श्रीचैतन्य महाप्रभुका क्यों नहीं करते?" यह सुनकर वे कुछ दुःखी हुए।

वह व्यक्ति सोच रहा था कि श्रीनित्यानन्द प्रभु और श्रीचैतन्य महाप्रभुमें भेद है। परन्तु श्रीनित्यानन्द प्रभुकी जितनी भी लीलाएँ हैं, वे सभी श्रीचैतन्य महाप्रभुसे सम्बन्धित हैं। यदि कोई श्रीमती राधाजीका गुणगान करते हैं, तो क्या वे श्रीकृष्णका ही गुणगान नहीं कर रहे हैं? श्रीमती राधिकाजी श्रीकृष्णके प्रियजनोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं तथा श्रीकृष्णके प्रति उनकी सेवा भी सर्वश्रेष्ठ है। इसलिए श्रीराधाजीके गुणकीर्तनमें श्रीकृष्णका गुणकीर्तन निश्चित है। उसी प्रकार श्रीचैतन्य महाप्रभुका गुणकीर्तन

करनेसे श्रीश्रीराधाकृष्णका ही गुणकीर्तन होता है, क्योंकि श्रीमन्महाप्रभु श्रीश्रीराधाकृष्णके मिलित तनु हैं।

कविराज गोस्वामीके भाईने और भी कहा, "सभी समय आप 'नित्यानन्द, नित्यानन्द' बोलते रहते हैं, महाप्रभुका यश कीर्तन नहीं करते हैं। नित्यानन्दजीने तो विवाह किया, जब कि श्रीमन्महाप्रभुने घर-परिवारको त्यागकर संन्यास लिया।"

यह सुनकर श्रीमीनकेतन रामदासजीने वहींपर अपनी वंशीको तोड़ दी और चले गये। वे इतने अप्रसन्न हुए कि अपनी प्रिय वंशीको भी तोड़ दी तथा वहाँसे चले गये। उसी समय श्रीलकविराज गोस्वामी सोचने लगे कि अभी मेरे भाईका कुछ अनर्थ होगा। इस प्रकार अपराध करनेके बाद उसका मङ्गल कैसे होगा?

क्रमशः उनके भाईका सर्वनाश हो गया। 'सर्वनाश' का अर्थ आप क्या समझते हैं? उनकी भक्ति चली गयी। साधुकी कृपासे ही किसीको भक्ति मिलती है। परन्तु यदि उन साधुलोग अप्रसन्न हो जायेंगे, तो भक्तिमें क्या हमारा उत्साह रहेगा? नहीं। उसका सबकुछ चला गया तथा वह एक नास्तिक बन गया। इसलिए कविराज गोस्वामीने सोचा, "मैं इस प्रकारके नास्तिकका कभी सङ्ग नहीं करूँगा। उसे मैं कभी भी अपना भाई नहीं मानूँगा। यदि कृष्णभक्तिके अनुकूल नहीं हो, तो वह बन्धु बन्धु नहीं है, वह माता माता नहीं, पिता पिता नहीं तथा सम्बन्धी सम्बन्धी नहीं है। इसलिए आजसे उससे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं।" वे अपना गाँव त्यागकर चल पड़े।

झामटपुर गाँवमें पहुँचकर श्रीकविराज गोस्वामी कुछ विश्राम लेनेके लिए बैठ गये तथा सोचने लगे, "मैं यहाँ नहीं रहूँगा। कहाँ जाऊँ?" इस प्रकार सोचते समय उन्हें कुछ झपकी-सी आयी। तब स्वप्नमें उनके पास श्रीनित्यानन्द प्रभु आये। उनके हाथमें एक स्वर्णदण्ड शोभित हो रहा था। उनका शरीर विशाल तथा ज्योतिर्मय था। उनके कानोंमें कुण्डल शोभायमान हो रहा था। उनकी कान्ति बलदेव प्रभुकी भाँति थी। वे कहने लगे, "तुम क्यों रो रहे हो? क्यों चिन्तित हो? उठो, उठो! वृन्दावन जाओ और रूप-सनातनके चरणोंको अपने सिरपर धारण करो। जाओ। मेरे लिए तुमने अपने भाईका त्याग किया। मैं तुम्हारे ऊपर बहुत प्रसन्न हूँ। जो भक्ति दे सकता है, वह वास्तव भाई है; जो पिता भक्तिका उपदेश दे सकता है, वह वास्तव पिता है; जो माता कृष्णभक्तिकी प्रेरण देती है, वह वास्तव माता है। तुम्हारे भाईने मेरा थोड़ा-सा अपमान किया और तुमने उसे सदाके लिए त्याग दिया? मैं बहुत प्रसन्न हूँ। वृन्दावन जाओ। वहाँ तुम गोविन्द, मदनमोहन और गोपीनाथके दर्शन प्राप्त करोगे, रूप-सनातनकी कृपा प्राप्त करोगे तथा वृन्दावन धामकी भी कृपा होगी। जाओ!" (क्रमशः)

भ्रम-संशोधन

वर्ष ४७ संख्या ९, पृष्ठ २१३, दक्षिण स्तम्भ ११वीं पंक्तिमें 'विलागढ़' शब्दका संशोधित रूप 'विलासगढ़' होगा।

श्रीगौराङ्ग-सुधा

(वर्ष ४७, संख्या १०, पृष्ठ २३३ से आगे)

—श्रीपरमेश्वरी दास ब्रह्मचारी

प्रभुका गृहत्याग तथा भक्तोंका विलाप

इस प्रकार प्रभु शचीमाताको सान्त्वना देते जा रहे थे, परन्तु शचीमैया जड़की भाँति सुनते जा रही थीं। उनकी आँखोंसे अविरल अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी। उस समय जब कि उनके जीवनका एकमात्र सहारा उनके हृदयका टुकड़ा उन्हें हमेशाके लिए छोड़कर जा रहा था, उस समय वे पृथिवीके समान सहिष्णु बन गयी थी। उन्होंने इतना भी नहीं कहा कि 'बेटा! मत जा।' प्रभुने उनकी चरणधूलि मस्तकपर धारण की एवं उनकी परिक्रमाकर तीव्र गतिसे बाहर निकल गये। उनके सामने ही जब श्रीगौरसुन्दर निकल गये, शचीमैया जड़ मूर्तिकी भाँति दरवाजेपर बैठी रह गयीं। परन्तु भक्तोंको अभीतक पता नहीं था कि वे अनाथ हो चुके हैं। प्रातःकाल जब वे सभी गङ्गास्नानकर रोजकी भाँति प्रभुको प्रणाम करनेके लिए आये तो देखा कि मैया द्वारपर बैठी हुई है। उनकी आँखें सुनसान थीं। उनकी पलकें भी नहीं पड़ रही थीं। आँखोंसे झरझर अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी। उनकी ऐसी विचित्र अवस्था देखकर भक्तोंको कुछ संशय हुआ। कुछ डरते-डरते श्रीवासजीने पूछा—"मैया! आज आप द्वारपर इस प्रकार क्यों बैठी हैं?"

मैयाने कुछ उत्तर नहीं दिया। बस, आँखोंसे आँसु बहाती रहीं। श्रीवासजीके दो-तीन बार पूछनेके बाद धीरेसे बोलीं—"बेटा! भगवानकी वस्तुओंका अधिकारी उनके प्रिय वैष्णव ही होते हैं। अतः इसके अनुसार अब इस घरमें जो कुछ भी है, वह तुम्हारा ही है। अब इसका जो कुछ करना हो, तुम करो और मैं सब छोड़कर जा रही हूँ।" मैयाकी यह बात सुनते ही भक्तलोग समझ गये कि प्रभु गृहत्याग कर चुके हैं, अतः वे सभी लोग मूर्च्छित होकर भूमिपर गिर पड़े। कुछ क्षण पश्चात् जब इनकी मूर्च्छा दूर हुई, तो सभी वैष्णवलोग आर्तनाद करने लगे। एक दूसरेके गलेसे चिपटकर पागलोंकी भाँति फूट-फूटकर रोने लगे और कहने लगे—"हे गोपीनाथ! आजकी रात कैसी भयानक रात बीती, ऐसा कहकर कोई अपने हाथोंसे अपनी छाती पीटने लगा तो कोई सिरको पीटते हुए कहने लगा—"उस चाँद जैसे मुखका दर्शन न कर अब हम कैसे जीवित रहेंगे। ऐसे पापी जीवनको रखकर ही क्या लाभ?" इस प्रकार भक्तोंका क्रन्दन, उनका विषाद क्रमशः बढ़ता ही जा रहा था। इस प्रकार प्रभुका घर शोकसागरमें डूब गया। जो भी भक्त नित्यप्रतिकी भाँति प्रभुको प्रणाम करनेके उद्देश्यसे आ रहे थे, वे भी उस शोकसागरमें डूबते जा रहे थे। प्रभुका दर्शन न पाकर वे विलाप करते हुए कहने लगते—"मेरा धन, मेरा जन, मेरा जीवन किस कामका, जब प्रभु हमें छोड़कर चले गये? प्रभुने संन्यास लिया, परन्तु हममेंसे किसीको बताया नहीं।" ऐसा कहकर वे रोते-रोते जमीनपर लोटपोट खाने लगते। उन भक्तोंका करुण क्रन्दन सुनकर नवद्वीपके सभी लोग दौड़े-दौड़े प्रभुके

घर आये, परन्तु आज प्रभुके श्रीमुखका दर्शन न कर वे लोग भी विषादग्रस्त होकर अपना सिर, अपनी छाती पीटने लगे। इधर तो भक्तलोग विषादग्रस्त होकर विलाप कर रहे थे, परन्तु जो पाषण्डी लोग थे, वे आनन्दसे हँसते हुए कह रहे थे—बहुत अच्छा हुआ, वह निमाइ पण्डित चला गया। उसने सभीको परेशान कर रखा था।

बहुत समय तक विलाप करनेके पश्चात् भक्तलोग कुछ शान्त हो गये तथा शचीमाँको घेरकर बैठ गये। कुछ ही क्षणोंमें जङ्गलमें आगकी भाँति सारे नवद्वीपमें समाचार फैल गया कि द्विजमणि (ब्राह्मणश्रेष्ठ) श्रीगौरसुन्दरने संन्यास लेनेके लिए घर त्याग दिया है। सुनकर लोग आश्चर्यमें पड़ गये। जिसने भी सुना, वही प्रभुके घरकी ओर दौड़ा। आकर देखता है कि जिस घरमें कलतक उत्सवका-सा वातावरण रहता था, सब समय भजन-कीर्तन होता रहता था, आज वही घर सुनसान पड़ा हुआ था। जो भक्तलोग उद्दण्ड नृत्य करते रहते थे, आज वे शचीमाँको घेरकर बैठे हुए हैं। ऐसा लग रहा था, जैसे उनके शरीरोंसे प्राण निकल गये हों, सभीकी आँखें सुनी-सुनी-सी थीं। वहाँकी ऐसी स्थितिको देखकर वे पाषण्डीलोग जो कलतक प्रभुकी निन्दा करते थे, वे भी शोकग्रस्त हो गये तथा स्वयंको धिक्कार देते हुए कहने लगे—हाय! हाय! हम पापी लोग निमाइ पण्डितको समझ नहीं पाये और कितने प्रकारसे उनकी निन्दा की। ऐसा कहकर विलाप करते हुए भूमिपर लोटपोट खाने लगे। कोई कहने लगा—चलो, हमने जो भयङ्कर अपराध किया है, उसका प्रायश्चित करते हैं—जाकर अपने घरोंको आग लगाकर कानोंमें कुण्डल पहनकर योगी बन जाते हैं। क्योंकि जब ऐसे परमदयालु प्रभु ही इस नवद्वीपमें नहीं रहे, तो इस नवद्वीपमें रहनेसे क्या लाभ? इस प्रकार स्त्री, पुरुष, बूढ़े, बच्चे सभी लोग विलाप कर रहे थे। सारा नवद्वीप ही शोकसमुद्रमें डूब गया। इस प्रकार प्रभुका संन्यास लेनेका जो उद्देश्य था, वह उद्देश्य पूरा हुआ। कलतक जो प्रभुके विरोधी थे, आज प्रभुके विरहरूपी सर्पने उन्हें भी डँस लिया। आज वे ही प्रभुका नाम ले-लेकर पागलोंकी भाँति क्रन्दन कर रहे थे।

यहाँकी तो ऐसी अवस्था थी, उधर प्रभु गङ्गा पारकर कंटकनगर (वर्तमानमें काटोया) में पहुँचे। जिन-जिनको उन्होंने आनेका आदेश दिया था, जैसे नित्यानन्द, गदाधर, मुकुन्द, चन्द्रशेखर आचार्य एवं ब्रह्मानन्द, उन सभीको साथ लेकर प्रभु केशवभारतीके आश्रमपर पहुँचे। प्रभुके श्रीअङ्गसे निकलनेवाली ज्योतिको देखकर सौभाग्यवान केशवभारती झट उठकर खड़े हो गये। प्रभुने उन्हें दण्डवत् प्रणामकर उनकी स्तव-स्तुति की तथा कहने लगे—"हे महाशय! आप पतितपावन हैं, महाकृपालु हैं। आप यदि चाहें, तो किसीको भी कृष्णप्रेमधन प्रदान कर सकते हैं। क्योंकि कृष्ण सदा-सर्वदा आपके हृदयमें विराजमान रहते हैं। अतः मैं आपसे कुछ नहीं माँगता। मैं आपसे यही चाहता हूँ कि आप मुझे निष्कपटरूपसे ऐसे उपदेश प्रदान करें, जिससे मैं कृष्णकी सेवा प्राप्त कर पाऊँ।" ऐसा कहते हुए प्रभुके नेत्रोंसे गङ्गा-यमुनाकी भाँति अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी। अगले ही क्षण वे हुङ्कारकर नृत्य करने लगे। प्रभुको नृत्य करते देखकर मुकुन्द आदि भक्तवृन्द उच्च स्वरसे कीर्तन करने लगे। प्रभुका दर्शन करनेके लिए न जाने कहाँसे

अरबों-अरबों लोग आ रहे थे। प्रभुके अद्भुत सौन्दर्यका दर्शनकर सभीका चित्त मोहित हो गया था। उस समय प्रभुके नेत्रोंसे अश्रुधारा जिस प्रकार प्रवाहित हो रही थी, उसका वर्णन तो अनन्तदेव भी अपने अनन्त मुखोंसे नहीं कर सकते। नृत्य करते-करते प्रभु जब घूमते थे, उस समय उनकी नेत्रोंसे पिचकारीकी भाँति निकलनेवाली अश्रुधारा उपस्थित लोगोंको भिगो रही थी। सभीका शरीर प्रभुके प्रेमाश्रुओंसे भीग गया। स्त्री, पुरुष, बालक एवं वृद्ध सभी लोग 'हरि-हरि' कहकर नृत्य करने लगे। नृत्य करते-करते प्रभु जब पछाड़ खाकर जमीनपर गिर पड़ते थे, उस समय सभी लोग भयभीत हो जाते थे। अनन्त ब्रह्माण्डोंके नाथ दीनतापूर्वक हाथ जोड़कर उपस्थित सभी लोगोंसे कहने लगे—"आप सभी लोग कृपा करें कि मुझे कृष्णभक्ति प्राप्त हो।"

प्रभुका सौन्दर्य देखकर तथा उनके संन्यासकी बात सुनकर स्त्रियाँ विलाप करते हुए कहने लगीं—"इसकी मैया किस प्रकार अपना जीवन धारण करेगी? आजकी रात उसके लिए काल-रात बन गयी। कौन सौभाग्यवती होगी जिसे ऐसा पुत्र प्राप्त हुआ हो? अहो, कैसा दुर्भाग्य है। ऐसा पुत्ररत्न प्राप्त करके भी आज उसे खो रही है। जब इसे संन्यास लेते हुए देखकर ही हमारी यह अवस्था हो रही है, तो इसकी स्त्री और इसकी मैया किस प्रकार अपने प्राण धारण करेंगी।" ऐसा कहते-कहते वे स्त्रियाँ क्रन्दन करने लगीं। इस प्रकार सभी जीव श्रीगौरसुन्दरके प्रेमबन्धनमें पड़कर रोने लगे। कुछ समय पश्चात् प्रभुने अपना भाव संवरण (शान्त) किया तथा बैठ गये। उनके भक्त भी उन्हें घेरकर उनके चारों ओर बैठ गये। प्रभुकी भक्ति देखकर केशवभारती आनन्दसमुद्रमें डूब गये तथा उनकी स्तुति करने लगे—"जैसी भक्ति मैंने आपके हृदयमें देखी है, भगवानके अतिरिक्त और कहीं भी सम्भव नहीं है। मुझे पूर्ण विश्वास हो चुका है कि आप स्वयं जगद्गुरु (भगवान) हैं। आपके गुरु होनेकी योग्यता किसीमें सम्भव नहीं है। फिर भी लोकशिक्षाके लिए आपने मुझे अपना गुरु बनानेका निश्चय किया है।"

प्रभु कहने लगे—"हे महात्माजी! आप मेरी वञ्चना न करें। मैं पुनः-पुनः आपसे यही प्रार्थना करता हूँ कि आप मुझे ऐसी दीक्षा प्रदान करें कि मैं कृष्णका दास बन जाऊँ।" इस प्रकार कृष्णकथाप्रसङ्गमें ही सारी रात बीत गयी। प्रातःकाल उठकर प्रभुने चन्द्रशेखर आचार्यजीको आदेश दिया कि मैंने आपको अपने प्रतिनिधिके रूपमें वरण कर लिया है। संन्यास-विधिके योग्य जो-जो क्रियाएँ हों, आप उन्हें पूर्ण कीजिए। प्रभुका आदेश प्राप्तकर चन्द्रशेखर आचार्य संन्यास विधिके लिए उपयुक्त कार्योंमें जुट गये। अनेक गाँवोंसे भाँति-भाँतिके उपहार आने लगे। दूध, दही, घी, मूंग, ताम्बूल (पान), चन्दन, पुष्प, यज्ञसूत्र (जनेऊ), वस्त्र एवं अनेक प्रकारके खाद्य-पदार्थ इत्यादि लेकर हजारों लोग वहाँपर आने लगे। कौन कहाँसे लेकर आ रहा था, उसका कोई ठीक नहीं। सभी लोग आनन्दित होकर हरिध्वनि कर रहे थे। सभीके मुखपर 'हरि-हरि' ही था। तब प्रभु केश मुण्डन करानेके लिए बैठ गये। जब प्रभुके केश मुण्डन करनेके लिए नाई वहाँपर आया, तो चारों ओर क्रन्दनका स्वर गूंजने लगा। भक्तोंकी तो बात ही क्या, साधारण लोग भी इस लीलाका दर्शनकर क्रन्दन करने लगे। स्त्रियाँ

कहने लगीं—"आखिर विधाताने इस संन्यासाश्रमको क्यों बनाया?" ऐसा कहकर फूट-फूटकर रोने लगीं। आकाशमें देवतालोग भी क्रन्दन करने लगे। उस समय प्रभुने ऐसे कारुण्य-रसकी वर्षा की कि सूखी हुई लकड़ी एवं पत्थर इत्यादि भी पिघल गये। प्रभु भक्तिरसमें विह्वल थे। उनकी आँखोंसे अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी तथा वे 'हरिबोल-हरिबोल' कहते हुए नृत्य करन लगे। अब बैठनेपर भी वे स्थिर नहीं हो पा रहे थे। उस नाईका साहस नहीं हो रहा था कि वह प्रभुके सुन्दर घुँघराले केशोंका मुण्डन करे। इस प्रकार सन्ध्याके समय प्रभुका मुण्डन कार्य पूर्ण हुआ। मुण्डनके पश्चात् प्रभु गङ्गास्नानकर केशवभारतीके द्वारा दिये हुए आसनपर बैठ गये। वेद आदि शास्त्रोंमें प्रभुको शिक्षागुरु बताया गया है। अतः उन्होंने छलपूर्वक केशवभारतीसे कहा—"महात्माजी! सपनेमें किसीने मेरे कानमें संन्यासका मन्त्र दिया, मैं उसे आपको सुनाना चाहता हूँ कि वह ठीक है कि नहीं।" ऐसा कहकर उन्होंने केशवभारतीके कानमें उस मन्त्रको कह दिया। इस प्रकार छलपूर्वक प्रभुने उसीको अपना शिष्य बना लिया। प्रभुके मुखसे संन्यासमन्त्र सुनकर भारतीको बहुत आश्चर्य हुआ। वे कहने लगे—"यही वह श्रेष्ठ मन्त्र है। कृष्णकी कृपासे किसीने इसे तुम्हें प्रदान किया।" तब प्रभुके आदेशसे केशवभारतीने वही मन्त्र पुनः प्रभुको प्रदान किया। उस समय चारों ओर हरिनामकी ध्वनि गूँज रही थी। इस प्रकार वैकुण्ठनायक श्रीगौरसुन्दरने संन्यासवेष धारण किया। जब उन्होंने संन्यासके उपयुक्त अरुण (गेरुए) वस्त्र धारण किये, तो उनका सौन्दर्य और भी निखर आया। उस समय वे करोड़ों-करोड़ों कामदेवोंसे भी सुन्दर लग रहे थे। उन्होंने मस्तकपर चन्दन धारण किया था तथा उनके गलेमें पुष्पमाला सुशोभित हो रही थी। उनके एक हाथमें दण्ड, एक हाथमें कमण्डलु सुशोभित हो रहा था। वे प्रेमसे विभोर हो रहे थे। उनके नेत्रोंसे अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी। उस समय संन्यासी वेषमें उनका कैसा अद्भुत स्वरूप हो रहा था, इसका वर्णन स्वयं वेदव्यास ही करेंगे। श्रीविष्णुसहस्रनाममें श्रीवेदव्यासजीने जो वर्णन किया कि किसी अवतारमें प्रभु संन्यासवेष भी धारण करेंगे, आज द्विजश्रेष्ठ श्रीमन्महाप्रभुने उनकी वाणीको सत्य कर दिया—

संन्यासकृच्छमः शान्तो निष्ठाशान्तिपरायणः।

(महाभारत दानधर्म १४९ अध्याय)
(सहस्रनामस्तोत्रमें संख्या ७५)

वेष प्रदान करनेके पश्चात् अब केशवभारती उन्हें नाम प्रदान करनेके विषयमें विचार करने लगे। चौदह लोकोंमें ऐसा वैष्णव असम्भव है। अतः जो नाम आजतक किसीको न दिया गया हो, यदि मैं इन्हें वह नाम प्रदान करूँ, तभी मेरा जीवन सार्थक होगा। साधारण विधिके अनुसार भारतीका शिष्य भारती होना उचित है, परन्तु वह नाम तो इनके योग्य नहीं है। जब वे महाभाग्यवान इस विषयमें चिन्ता कर ही रहे थे, उनकी जिह्वापर शुद्धा सरस्वती विराजमान हो गयीं। उनकी कृपासे उचित नाम पाकर केशवभारतीने प्रभुके वक्षःस्थलपर हाथ रखकर कहा—सारे जगतको चैतन्य कराकर तुमने सबके मुखसे 'कृष्ण-कृष्ण' उच्चारण करवाया है। इसलिए तुम्हारा नाम कृष्णचैतन्य ही उचित है। उनकी बात सुनकर सभी लोगोंने प्रभुकी जयध्वनि दी एवं उनपर पुष्पवृष्टि की। तत्पश्चात् प्रभुके भक्तोंने केशवभारतीको प्रणाम किया। स्वयं प्रभुने भी प्रणाम किया। इस प्रकार प्रभुका नाम 'श्रीकृष्णचैतन्य' हो गया।

(क्रमशः)

उलट जले मछली चले

नदीके विपरीत प्रवाहमें भी छोटी-छोटी मछलियाँ अनायास ही विचरण करती रहती हैं, किन्तु हाथी जैसे बड़े-बड़े पशु नदीके प्रवाहमें बह जाते हैं। मछलियाँ जलके प्रति पूर्ण रूपसे शरणागत होती हैं, इसलिए नदीके विपरीत स्रोतमें भी सञ्चरण करना उनके लिए सहज और स्वाभाविक है। हाथी जलके प्रवाहके साथ संग्राम करनेको उद्यत होनेके कारण विपरीत स्रोतमें उसकी गति बाधाप्राप्त होती है। जलप्रवाह उसकी इच्छाके विरुद्ध उसे अन्यत्र बहाकर ले जाता है।

जो भगवानके शरणागत हैं, उनके लिए भगवानकी कृपा प्राप्त करना सहज है। नाना प्रकारकी प्रतिकूल अवस्था और समस्याएँ आनेपर भी शरणागत भक्त सहज और स्वच्छन्द गतिसे अपने कल्याणके मार्गपर अग्रसर हो पाते हैं। जो अपने साधन बलपर भगवानका दर्शन करनेकी दाम्भिकता प्रकाश करते हैं, वे न जाने कहाँ बह जाते हैं। अर्थात् ऐसे लोग भगवानका दर्शन, कृपा और सेवा प्राप्त नहीं कर सकते हैं। कर्मी, ज्ञानी, योगी आदि साधक साधनके बलपर भगवानके राज्यपर विजय प्राप्त करना चाहते हैं, वे भगवानके प्रति शरणागत नहीं हैं। वे लोग प्रतिकूल अवस्थाको अतिक्रम नहीं कर सकते हैं। भक्त एकमात्र भगवानकी कृपाके कङ्गाल हैं। वे कहते हैं—

''कृपाविन्दु दिया कर एइ दासे,
तृणापेक्षा अति हीन।
सकल सहने बल दिया कर,
निज माने स्पृहाहीन॥

★ ★ ★

कबे हेन कृपा लभिया ए जन,
कृतार्थ हइबे नाथ।
शक्ति-बुद्धिहीन, आमि अति दीन,
कर मोरे आत्मसात्॥
योग्यता विचारे किछु नाहि पाइ,
तोमार करुणा सार।
करुणा ना ह'ले, काँदिया काँदिया,
प्राण ना राखिब आर॥''

★ ★ ★

''मारबि राखबि जो इच्छा तोहारा।
नित्यदास प्रति तुया अधिकारा॥''

(शरणागति)

अर्थात् हे भगवन्! आप अपनी कृपाकी मात्र एक बूँद प्रदानकर अपने इस दासको तृणसे भी अधिक सुनीच बना दीजिए। आप मुझे ऐसी शक्ति प्रदान कीजिए कि मैं सब कुछ सहनकर सकूँ तथा अपने सम्मानकी स्पृहासे निर्मुक्त हो जाऊँ। हे नाथ! कृपाकर मुझे सबका यथायोग्य सम्मान करनेकी शक्ति प्रदान कीजिए, जिससे मैं हरिनाम कीर्तन करता रहूँ तथा कीर्तनके प्रभावसे मेरे सारे अपराध नष्ट हो जाएँ। हे नाथ! यह दीनजन कब आपकी ऐसी अहैतुकी कृपा प्राप्तकर कृतार्थ होगा? यद्यपि मैं शक्तिहीन, बुद्धिहीन तथा अत्यन्त दीन हूँ, फिर भी आप कृपापूर्वक मुझे आत्मसात् (अङ्गीकार) कर लीजिए। हे नाथ! योग्यताका विचार करनेपर मैं स्वयंको सर्वथा इससे रहित पाता हूँ। इसलिए मुझे तो एकमात्र आपकी करुणापर ही विश्वास है। यदि आपकी अहैतुकी करुणा न हुई, तो मैं रोते-रोते अपने प्राणोंका विसर्जन कर दूँगा। आप मुझे मारें या रक्षा

करें, आपकी जैसी इच्छा है, वैसा करें, इस नित्यदासके ऊपर आपका पूर्ण अधिकार है।

कर्मी, ज्ञानी तथा योगियोंके चित्तका भाव इस प्रकार नहीं है। यद्यपि कभी-कभी वे लोग भक्तोंका अनुकरणकर इन पंक्तियोंका उच्चारण करते हैं, फिर भी वे 'मैं ब्रह्म हूँ', 'ध्यान और धारणा आदिके द्वारा सिद्धि अपनी मुट्ठीमें आ जाएगी', 'दास मनोभावके द्वारा मनुष्यत्वका नाश होता है', 'मैं और किसका भजन करूँ?', 'मैं वह हूँ', 'मैं मेरा ही भजन करता हूँ'—इत्यादि दाम्भिकतापूर्ण मनोभाव पोषण करनेके कारण हाथीकी भाँति शारीरिक शक्ति दिखानेपर भी मायाके स्रोतमें बह जाते हैं। ⑧

(श्रील प्रभुपादके 'उपाख्याने उपदेश' से)

प्राच्य और पाश्चात्यमें श्रीमन्महाप्रभुकी वाणीका प्रचार

मदीय शिक्षागुरुपादपद्म ॐविष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज गत २० नवम्बरसे Phillipines और Hawaii island में ग्रन्थ-लेखन सेवा तथा श्रीचैतन्य महाप्रभुकी वाणीके प्रचार-सेवामें व्यस्त हैं। Hawaii से वे Australia जायेंगे एवं फरवरी मासके अन्ततक श्रीगौरपूर्णिमासे पहले भारतमें प्रत्यावर्तन करेंगे।

अभीतक उनके द्वारा प्रचारके प्रमुख विषय थे—भगवन्नामकी महिमा, जगद्गुरु श्रील सरस्वती ठाकुर 'प्रभुपाद' और गौड़ीय सम्प्रदाय, मदीय गुरुपादपद्म श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके वर्तमान सभापति-अध्यक्ष परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजजीकी गुरुसेवाका वैशिष्ट्य, योगका तात्पर्य।

श्रील 'प्रभुपाद' के सम्बन्धमें श्रीलमहाराजजीने कहा कि ***'होनहार बीरवानके होत चिकने पात।'*** प्रभुपाद श्रील भक्तिविनोद ठाकुरको आश्रयकर श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्रमें माघी कृष्णा पञ्चमी तिथिमें इस पृथ्वीपर आविर्भूत हुए थे। जन्मके समय उनके द्वादश अङ्गोंमें गौड़ीय तिलक चिह्न तथा वक्षःस्थलपर यज्ञोपवीत सुशोभित थे। इससे यह निर्देशित हुआ कि समग्र विश्वमें गौड़ीय वैष्णव धर्म तथा दैव वर्णाश्रम धर्मका प्रचार करनेके लिए ही धरातलपर उनका प्राकट्य हुआ है। परवर्ती कालमें 'बालीघाइ' नामक स्थानपर उन्होंने वैष्णव धर्मकी मर्यादा प्रतिष्ठित की थी। नामकरण संस्कारके समय बालकका नाम रखा गया 'विमलाप्रसाद'। विमलाप्रसादका अर्थ है—विमलादेवीका प्रसाद या कृपा या अनुग्रह। विमलादेवी कौन हैं? श्रीक्षेत्राधिपति श्रीजगन्नाथदेवकी नित्यशक्ति। यथार्थतः श्रीब्रजेन्द्रनन्दन श्यामसुन्दरकी स्वरूपशक्ति गौड़ीयगणकी आराध्या, रासरासेश्वरी श्रीमती राधाठाकुरानीकी प्रकाश विग्रह हैं विमलादेवी। उनके नामसे यह प्रतिपादित हुआ कि वे श्रीमती राधिकाजीके निज जन हैं।

परवर्तीकालमें प्रभुपाद अपने उपदेशोंमें बोलते थे कि 'परम विजयते श्रीकृष्ण संकीर्तनम्' ही गौड़ीय मठका एकमात्र उपास्य है। श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु उपदिष्ट शिक्षाष्टकका यह प्रथम उपदेश है। हरिनाम संकीर्तनके द्वारा ही सार्वजनिक, सार्वकालिक, सार्वदेशिक समस्याओंका समाधान सहज रूपसे हो सकता है। कलियुगमें इसके अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय नहीं है। इस हरिनामके प्रति आकर्षित होकर जगतके लोग क्रमशः श्रीमन्महाप्रभुकी विचारधाराको अनुसरणकर वास्तव सुखके मार्गमें चल रहे हैं।

श्रीकृष्णदास ब्रह्मचारी—श्रीलमहाराजजी!

हरिनाम यदि सारी समस्याओंके समाधानका उपाय है, तो जगतके प्रमुख लोग जैसे आइनविद् (lawyer), Doctor, Engineer आदि श्रीहरिनामके प्रति क्यों आकर्षित नहीं हो रहे हैं?

श्रवण दास—श्रील गुरुदेव! मेरा भी वही प्रश्न है।

श्रीलमहाराजजी—श्रीमान् माधव महाराज! इनके प्रश्नका समाधान कर दीजिए।

श्रीपाद माधव महाराज—हमारे सङ्ग एक ब्रह्मचारी हैं, जो कृष्णदास प्रभुके साथ प्रचार करते हैं तथा उनके साथ ही रहते हैं। वे एक बड़े lawyer हैं। Cambridge University से degree प्राप्तकर London High Court में कुछ दिन practice कर आप (श्रीलमहाराजजी) की सेवामें नियुक्त हैं। श्रीपाद ज्ञानदास प्रभु एक बड़े रसायनविद् हैं। श्रवण प्रभुके देशके वंशीवदन प्रभु जो Newyork में एक सरकारी आफिसमें कार्य करते हैं, एक विशिष्ट वैज्ञानिक हैं। उनकी धर्मपत्नी मञ्जुदेवी Washington में कार्यरता lawyer हैं। विशेष रूपसे अतुलकृष्ण प्रभु एक सुदक्ष computer scientist हैं। आष्ट्रेलियाके लीलाशुक प्रभु Gene Scientist हैं। सिंगापुरके श्रीपाद हृषीकेश महाराज Neurologist हैं। लीलाशुक प्रभु और श्रीहृषीकेश महाराजके द्वारा रचित book विश्वके विभिन्न देशोंके पाठ्यक्रमके अन्तर्भुक्त है। विश्वके समस्त देशोंसे उदाहरण दे सकता हूँ। अमेरिकाके दो सौसे अधिक व्यक्ति आपके आश्रित हुए हैं। दिल्ली, मथुरा तथा भारतके विभिन्न प्रान्तोंकी बात तो कृष्णदास प्रभु जानते ही हैं।

श्रीलमहाराजजी—वर्तमान जगत श्रीनामजपकी महिमाको समझा है। एक उदाहरण देनेसे स्पष्ट होगा। श्रीमान् माधव महाराज! मेरे नोट बुकके अन्दर एक संवादपत्रका कुछ अंश है, उसे लाकर ब्रजनाथ प्रभुको दीजिए। ब्रजनाथ प्रभु उसे पाठकर सबको सुनायेंगे।

श्रीब्रजनाथ दासाधिकारी—

Sunday Times of India, Kolkata, 23 March, 2003. Page No.-13

The rhythm divine of group chanting

Sound. In isolation, it has the power to heal, to soothe, to motivate. But when sound exists in the plurality of united voices, it takes the mind and body to another plane, more so when this sound emanates from the collective power of group chanting.

The tradition of group chanting is still maintained in monasteries today. Proof of this tradition stems from the fact that the Buddha's teachings were preserved orally in various chant forms till 80 BC.

Chanting has a healty, strengthening effect on the mind—it develops concentration, patience and determintation. There are two supplementary aspects to this: anyone can join in the chanting exercise; and, even if the chants are completely unfamiliar, the steady pitch can have a very calming and peaceful effect on the mind of both the chanter and the listener. This effect is enhanced when there is no set stopping place for the

chant. The whole experience moves like a gentle flow, like a rolling tide of sound with a simple range of sound patterns. There are numerous groups which congregate with a view to learning chants. Group chanting is about the development of superior human qualities — and the development of these qualities adds a meditative dimension to one's personality. Are you ready to break the sound barrier?

श्रीलमहाराजजी—माधव महाराज! तुम संक्षेपमें इसका भावार्थ व्याख्याकर सुना दो।

श्रीपाद माधव महाराज—हमें पहले यह जानना होगा कि कीर्तन किसे कहते हैं। 'ओष्ठ स्पन्दनमात्रेण कीर्तनं भवति।' अर्थात् भगवानके नाम-रूप-गुण-लीला होंठके द्वारा स्पन्दित (उच्चारित) होनेसे उसे कीर्तन कहा जाता है। अनेक व्यक्ति सम्मिलितरूपसे जो कीर्तन करते हैं, उसे संकीर्तन कहा जाता है। यहाँ बताया गया है कि उच्च संकीर्तन संकीर्तनकारीके मन और शरीरको परजगतमें ले जाता है। तन्मय होकर कीर्तन करनेसे यह सम्भव है। श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुने स्वयं आचरणकर जगज्जीवोंको यह शिक्षा प्रदान की है। श्रीमन्महाप्रभु उच्चकीर्तन करते-करते अधिकांश समय अचेतन हो जाते थे। सेवानिष्ठ भक्तोंके उच्च संकीर्तनके माध्यमसे वे संज्ञा (होश) प्राप्त होकर पूछते थे—"क्या मैं चैतन्य हूँ? मैं तो वृन्दावनमें श्रीकृष्णके साथ जलक्रीड़ा कर रहा था, मुझे यहाँ कौन ले आया?" ऐसा कहकर वे निरन्तर क्रन्दन करते रहते थे। श्रीमन्महाप्रभु और उनके अनुयायी जनोंके आनुगत्यमें ही इस प्रकार संकीर्तन सम्भव है। इसलिए श्रीमन्महाप्रभु द्वारा उपदिष्ट श्रीशिक्षाष्टकमें श्रीनामकी इतनी महिमा सुनी जाती है। उनके ही आनुगत्यमें प्रभुपाद श्रील सरस्वती ठाकुरने कहा है—'परम विजयते श्रीकृष्ण संकीर्तन ही गौड़ीय मठका एकमात्र उपास्य है।'

इस प्रसङ्गमें बताया गया है—'आज भी मठ-मन्दिरोंमें संकीर्तनकी व्यवस्था देखी जाती है।' यह तो स्वाभाविक है, उच्च संकीर्तन ही गौड़ीय वैष्णवोंके भजनका प्राण है। प्राचीन कालमें सत्य, त्रेता, द्वापर युगोंमें भी मुनि-ऋषियोंके आश्रममें भक्तगण सभी मिलकर उच्च संकीर्तन करते थे। द्वापर युगमें देखा जाता है कि ब्रजेन्द्रनन्दन श्यामसुन्दरके रासलीलाके बीचमें ही अन्तर्धान हो जानेसे गोपियाँ श्रीकृष्णके दर्शनके लिए कोई दूसरा उपाय न देखकर उच्च संकीर्तन करने लगीं। केवल वही नहीं, रोदन करते करते वे श्रीकृष्णका गुणगान करने लगीं। श्रीकृष्ण आत्माराम, आप्तकाम होनेपर भी स्थिर नहीं रह सके। वे अपने आत्माराम गुणको त्यागकर भक्तवात्सल्य गुणके द्वारा वशीभूत होकर गोपियोंके सामने प्रकट हो गये। इसलिए ही श्रील सनातन गोस्वामी भक्तवात्सल्य गुणको ही भगवत्ताकी चरम सीमाके रूपमें मन्तव्य देकर बोले हैं—***'श्रीमतो भगवत्त्वस्य भगवत्स्वभावस्य सीम्नः सीमायाः परा चरम काष्ठा निष्ठा, भक्तवात्सल्य विशेषरूप महागुणाविष्कारात्।'*** अर्थात् प्रेष्ठ जनोंके वशीभूत होना नागरशेखर श्रीकृष्णका परमप्रिय है तथा श्रीमद्भगवत्त्वकी सीमाकी भी पराकाष्ठारूप है। विशेषतः भक्तवात्सल्यरूप महागुणका आविष्कार ही भगवत्स्वभावकी चरमसीमा है।

तमोपहा दासाधिकारी—श्रील गुरुदेव! इसके सम्बन्धमें आपके कुछ बतानेसे अच्छा होगा।

श्रीलमहराजजी—इस article में उल्लेख है कि 'नामजप मनके ऊपर अत्यधिक प्रभाव

डालता है। मनको एकाग्र करता है, धैर्य तथा दृढ़ता लाता है। जपकारी तथा श्रोता दोनोंके मनको श्रीनामजप peaceful कर देता है।'

रमेश दासाधिकारी—गुरुदेव! मैं इसे ठीक-ठीक समझ नहीं सका। श्रीनाम किस प्रकार मनको peaceful कर देता है? यह मेरी समझके बाहर है।

श्रीलमहाराजजी—तुम्हारा मन जब कृष्णेतर अर्थात् कृष्णके अतिरिक्त दूसरे विषयोंके द्वारा प्रभावित होकर अत्यधिक तप्त हो जाता है, तब तुम माला हाथमें लेकर पूर्वोक्त विषयमें इस प्रकार आविष्ट हो जाते हो कि एक घण्टेमें एक माला भी नहीं होती है।

कुछ श्रोता (हाथ उठाकर)—हाँ गुरुदेव! एक घण्टा क्यों? दो तीन घण्टेमें भी एक माला हरिनाम नहीं होता है, मालामें हाथ रहनेपर भी श्रीहरिनाम उच्चारित नहीं होता है।

सुन्दरगोपाल ब्रह्मचारी—श्रील गुरुदेव! इस प्रकारकी स्थितिसे उद्धार प्राप्तिका उपाय क्या है?

श्रीलमहाराजजी—इस स्थितिसे उद्धार पानेका सहज उपाय है—***'उच्चस्वरे कर हरिनाम रब।'*** अर्थात् उच्च स्वरसे हरिनाम उच्चारण करो। उच्चस्वरसे हरिनाम करनेसे आपलोग देखेंगे कि तप्त मन स्वाभाविकरूपसे ही शीतल हो जाएगा। उक्त प्रबन्धमें और भी वर्णित हुआ है—मनको एकाग्र करो। मन एकाग्र होनेसे स्मरण होता है। प्रभुपाद श्रील सरस्वती ठाकुरने इसलिए तो कहा है—***कीर्तन प्रभावे स्मरण हइबे सेकाले निर्जन भजन सम्भव।*** अर्थात् कीर्तनके प्रभावसे जब स्मरण होता है, तब निर्जन भजन सम्भव होता है। अन्यथा नहीं। आपलोग नामाचार्य श्रीहरिदास ठाकुरके विषयमें अवश्य जानते हैं। इस प्रबन्धमें जो बताया गया है—'Chanting....it develops.... determination.', श्रील हरिदास ठाकुर इसके श्रेष्ठ उदाहरण हैं। मुसलमान काजी समस्त प्रकारकी चेष्टा करनेपर भी श्रीहरिदास ठाकुरके मुखसे हरिनाम उच्चारणको बन्द नहीं कर सका। इससे क्रोधित होकर दुष्ट काजीने उनको बाइस बाजारोंमें पिटवानेका आदेश दिया। इससे तनिक भी विचलित न होकर वे बोले—

खण्ड खण्ड हय देह यदि जाय प्राण।
तबु त बदने ना छाड़ि हरिनाम॥

अर्थात् मेरे शरीरके टुकड़े-टुकड़े होनेपर भी मैं मुखसे हरिनामका उच्चारण नहीं छोड़ूँगा।

जहाँ दो-तीन बाजारमें पीटनेसे किसी व्यक्तिकी मृत्यु हो जाती है, वहाँ बाइस बाजारमें पिटाई खाकर भी उन्होंने हरिनाम उच्चारणको बन्द नहीं किया। इसलिए उस समयके मुसलमान शासकने श्रीहरिदास ठाकुरको 'जिन्दा पीर' नामसे घोषित किया था। दूसरी ओर प्रेम पुरुषोत्तम श्रीशचीनन्दन गौरहरिने उनके इस प्रिय भक्तको 'नामाचार्य' उपाधिसे विभूषित किया है।

It develops concentration, patience and determination. भक्तप्रवर प्रह्लाद महाराज इसके सर्वश्रेष्ठ उदाहरण हैं। उस समय हिरण्यकशिपु समग्र पृथ्वीका एकछत्र (तानाशाह) सम्राट था। स्वर्गराज्यमें भी उसका आधिपत्य था। वह अपनी अपूर्व राजशक्ति, मायाशक्ति, आसुरिक शक्ति, दैवीशक्तिका प्रयोग करके श्रीप्रह्लाद महाराजके concentration, patience and determination को दूर करनेमें समर्थ नहीं हो सका।

श्रीचैतन्य महाप्रभुके मनोभीष्ट संस्थापक श्रील रूप गोस्वामीपादने श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु ग्रन्थमें ६४ प्रकारकी भक्ति, नवविधा, पञ्चविधा, त्रिविधा

तथा एकदा भक्तिकी बात लिखी है। उनमें नामसंकीर्तन is common to all. श्रीमन्महाप्रभुके अन्तरङ्ग परिकर श्रील रूप गोस्वामीके अग्रज श्रील सनातन गोस्वामीने कहा है—***'मन्यामहे कीर्तनमेव सत्तमं'*** अर्थात् समस्त प्रकारके भक्ति-अङ्गोंमें कीर्तनको ही श्रेष्ठ मानता हूँ। यदि कोई प्रश्न करें कि उन्होंने कीर्तनको क्यों श्रेष्ठ माना? गोस्वामीपादने स्वयं इसका उत्तर दिया है—चञ्चल स्वभाव मनको कीर्तनके अतिरिक्त अन्य उपायसे स्थिर नहीं किया जा सकता है। कीर्तन वाक्-इन्द्रियमें स्फूर्त होकर मनमें भी विहार करता है। अन्तमें वह कीर्तन ध्वनि श्रवणेन्द्रियको कृतार्थकर अन्यान्य इन्द्रियोंको भी अपने सेवककी भाँति अधीन कर लेती है। श्रीकृष्णके विविध प्रकारके कीर्तनोंमें नामसंकीर्तन ही मुख्य है। अर्थात् वेद-पुराणोंका पाठ, कथा, गीत तथा स्तुति इत्यादि भेदसे अनेक प्रकारके कीर्तनोंमें श्रीकृष्णका नाम संकीर्तन ही मुख्य है। क्यों मुख्य है, इसके उत्तरमें श्रील सनातन गोस्वामीने कहा है—'तत्प्रेमसम्पर्ज्जनने स्वयं द्राक्' अर्थात् श्रीकृष्णके नाम संकीर्तन द्वारा ही अति शीघ्र श्रीकृष्णप्रेमरूप सम्पत्तिका आविर्भाव होता है। यह श्रीनाम संकीर्तन ही प्रेमसम्पत्तिके उत्पादनके लिए समर्थ है।

श्रीनामकीर्तन या श्रीनामके सम्बन्धमें आपलोगोंका क्या कोई अन्य प्रश्न है?

सभाके निरुत्तर रहनेपर श्रीलमहाराजजीने newspaper की article के सम्बन्धमें अपना मन्तव्य दिया कि यह लेख निश्चय ही किसी धार्मिक व्यक्तिके द्वारा लिखा गया है। अन्तमें श्रीकृष्णदास प्रभुके द्वारा उच्च स्वरसे नाम-संकीर्तन करनेके बाद जयध्वनिके साथ सभाकी समाप्ति हुई।

श्रीसमितिके अन्यान्य प्रचारकोंमें श्रीपाद भक्तिवेदान्त वन महाराज England में प्रचारके बाद Brazil में प्रचार-सेवामें व्यस्त हैं। श्रीपाद भक्तिवेदान्त अरण्य महाराज, श्रीपाद भक्तिवेदान्त भक्तिसार महाराज Hong kong, China में प्रचारके बाद Newzealand में प्रचार कर रहे हैं। श्रीपाद भक्तिवेदान्त दामोदर महाराज Europe के विभिन्न देशोंमें प्रचारके बाद अभी North America में प्रचार कर रहे हैं। इसके बाद वे South America के विभिन्न स्थानोंमें भी प्रचार करेंगे। श्रीपाद भक्तिवेदान्त पद्मनाभ महाराज Phillipines में विभिन्न स्थानोंमें प्रचारमें व्यस्त हैं। श्रीपाद भक्तिवेदान्त सज्जन महाराज Indonesia में प्रचारके बाद Australia और Newzealand में प्रचार-सेवामें व्यस्त हैं। सभी प्रचारक श्रीगौरपूर्णिमासे पहले भारतमें प्रत्यावर्तन करेंगे।

वाञ्छाकल्पतरुभ्यश्च.....वैष्णवेभ्यो नमोनमः।

(त्रिदण्डिभिक्षु श्रीभक्तिवेदान्त माधव)

विशेष विज्ञप्ति

श्रीभागवत-पत्रिका अगले १२ वें अंकके बाद अपना ४७ वाँ वर्ष पूर्णकर ४८ वें वर्षमें पदार्पण कर रही है। अतः सविनय अनुरोध है कि जिन सदस्योंने वर्ष ४७ के लिए सदस्यता शुल्क नहीं भेजा है, वे पूर्व वर्ष और अगले वर्षका सदस्यता शुल्क एकसाथ भेजकर हमारा सहयोग करें। जिनकी सदस्यता इस वर्षके लिए पूर्ण हो गयी है, वे अगले वर्षके लिए अपनी सदस्यता शुल्क अति शीघ्र भेजें। आपकी सहायताके लिए धन्यवाद। भिक्षा भेजनके लिए पता—श्रीभागवत-पत्रिका कार्यालय, श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, जवाहर हाट, मथुरा, उ. प्र. (२८१००१)। ड्राफ्ट 'श्रीभागवत-पत्रिका' के नामसे बनावें। ⑧

श्रीभक्तिवेदान्त नारायण महोदयाष्टकम्

—डा. श्रीवासुदेवकृष्ण चतुर्वेदी, सप्ताचार्य

श्रीद्वारकेशो जयति

(श्रील १०८श्री मध्व गौड़ीय वैष्णवाचार्य श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायणजी महाराजानां युगाचार्य उपाधि प्राप्ति समये वृन्दावनस्थ श्रीराधाश्यामसुन्दर विग्रह प्रतिष्ठा समारोहे श्रीआनन्दस्वरूप केला महोदयायोजिते सन्तसमागमावसरे दिनांक ६/११/०३ दिने तदिच्छया पठितं चाष्टकम्)

श्रील श्रीभक्तिवेदान्त नारायण महोदयम्।
युगाचार्य प्रतिष्ठायां भजे ह्यानन्दसंस्थितम्॥१॥

श्रीमद् १०८ भक्तिवेदान्त नारायण महाराजको इसी मास युगाचार्य सम्मान पदसे गौरवान्वित किया है, आज श्रीवृन्दावन स्थित आनन्द धाममें विराजित उनको अनेक नमन।

श्रीचैतन्य कृपापात्रं व्रजधाम प्रियं सदा।
दुर्वासा मन्दिरोद्धार कीर्तिध्वजमहं भजे॥२॥

महाप्रभु श्रीचैतन्यके कृपापात्र, सर्वदा व्रजधामके प्रेमी, मथुराके दुर्वासा आश्रम मन्दिरके भव्य मन्दिर निर्माणकी कीर्तिपताका धारण करनेवाले आचार्यजीकी वन्दना करता हूँ।

यद् यात्राप्रेमतस्तुष्टे राधाकुण्डे पयोऽभवत्।
श्रीराधास्नेहसंपुष्टोवन्धः श्रीनारायणः॥३॥

अभी ४५ देशोंके भक्तोंके साथ जब राधाकुण्डकी ओर गये तो वहाँ दूधकी अजस्र धार बहने लगी, जिसे हजारों भक्तोंने देखा, मानों उनके प्रति श्रीराधारानीके स्नेह और वात्सल्यका प्रतीक हो, ऐसे वन्दनीय हैं श्रीलनारायण महाराजजी।

श्रीनारायणभट्टैश्च तथा रूपसनातनैः।
यथा चैतन्य सच्छिष्यैस्तथोद्धारे भजे मुनिम्॥४॥

व्रजके उद्धारमें जैसे श्रीनारायणजी भट्ट, श्रीरूप और सनातन तथा अन्य गोस्वामियोंने योगदान दिया, वैसे ही व्रजकी पुण्य लीलास्थलियोंके उद्धारक मुनि श्रीलनारायण महाराजजीको नमस्कार करता हूँ।

वृन्दावनस्थिते ख्याते ह्यानन्दधाममञ्चके।
प्रतिष्ठाकारकं वन्धं नारायण मुनिं भजे॥५॥

श्रीवृन्दावन धाममें नवनिर्मित आनन्द धाममें श्रीराधा–श्यामसुन्दरजी एवं अन्य विग्रहोंकी अपने करकमलोंसे स्थापना करनेवाले इन महाराजजीको नमन करता हूँ।

वेदवेदान्ततत्त्वज्ञः सर्वशास्त्रविशारदः।
मध्वगौडीयसिद्धान्तरत्नमालधरं भजे॥६॥

वेद और वेदान्तके तत्त्वज्ञानी, अनेक शास्त्रोंमें निष्णात, मध्व गौड़ीय सिद्धान्तके रत्नोंकी माला धारण करनेवाले महाराजजीको प्रणाम करता हूँ।

जैवधर्मे कृत रतिं माययारहितं मुनिम्।
भगवद्धर्म चर्चासु निमग्नं संभजे मुदा॥७॥

जैवधर्म आदि अनेक ग्रन्थोंका प्रकाशन करनेवाले, मायारहित, भगवद्धर्मकी चर्चामें निमग्न इन महाराजकी वन्दना करता हूँ।

भक्तिवेदान्त वन्द्यं तं वासुदेवप्रियं सदा।
नानादेश नरैः पूज्यं नारायणमहं भजे॥८॥

वन्दनीय श्रीभक्तिवेदान्त नारायण महाराज जो वासुदेवके सदा प्रिय हैं, जिन्हें अनेक विदेशके भक्तोंका सम्मान प्राप्त है, गुरु हैं, पूज्य हैं, उन्हें नमन करता हूँ।

शिष्याभिप्रायमालम्ब्य वासुदेवेनधीमता।
ऊर्जे शुक्लत्रयोदश्यां मङ्गलाशासनं कृतम्॥९॥

महाराजजीके शिष्योंकी भावनासे आचार्य वासुदेवकृष्ण चतुर्वेदीने कार्तिक शुक्ल त्रयोदशीके दिन इस अष्टककी रचनाकर आनन्दधाममें ही सभामें श्रवण कराया और समर्पित किया। ⑧

श्रीश्रीगुरु–गौराङ्गौ–जयतः

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे

वैकुण्ठ–वार्त्तावह

बृहत्–मृदङ्ग

श्रीभागवत–पत्रिका

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः।
ज्ञान वैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना॥

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा॥

आराध्यो भगवान् व्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावनं, रम्या काचिदुपासना व्रजवधूवर्गेण या कल्पिता।
श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान्, श्रीचैतन्य महाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो नः परः॥

एक भागवत बड़ भागवत शास्त्र । आर एक भागवत भक्तिरसपात्र॥
दुई भागवत द्वारा दिया भक्तिरस । ताहाँर हृदये तार प्रेमे हय वश॥

वर्ष ४७ | श्रीगौराब्द ५१७ | वि. सं. २०६० फाल्गुन मास, सन् २००४, ७ फरवरी—६ मार्च | संख्या १२

श्रीश्रीगोपालराजस्तोत्रम्

(श्रील–रघुनाथदास–गोस्वामि–विरचितम्)

श्रीश्रीगोपालराजाय नमः

वपुरतुल–तमालस्फीत–बाहूरुशाखो–परिधृत–गिरिवर्य–स्वर्णवर्णैक–गुच्छः।
कटिकृत–परहस्ता–रक्तशाखाग्रहृद्यः प्रतपति गिरिपट्टे सुष्ठु गोपालराजः॥१॥

जिनके देह रूप निरुपम तमालवृक्षकी सुदीर्घ बाहुरूप शाखाके ऊपर धारण किये गये गिरिराज गोवर्द्धन स्वर्णवर्णके एक गुच्छकी भाँति सुशोभित हो रहे हैं और जिनका दाहिना हाथ कमरपर रखा होनेके कारण करस्थित लाल–लाल अंगुलियोंके अग्रभाग अतिशय मनोहर एवं शोभाविशिष्ट हो रहे हैं, वे गोपालराज गिरिपट्टमें अर्थात् गोवर्द्धन–पर्वतके एक प्रान्तमें राजाके बैठने योग्य एक उपयुक्त स्थानमें प्रतापी होकर सुन्दर रूपसे विराजमान हो रहे हैं॥१॥

रुचिरदृगभिधाने पङ्कजे फुल्लयन्तं सुभग–वदनगात्रं चित्रचन्द्रं दधानः।
विलसदधर–बिम्ब–घ्रायि–नासा–शुकौष्ठः प्रतपति गिरिपट्टे सुष्ठु गोपालराजः॥२॥
चल–कुटिलतर–भ्रूकार्मुकान्तर्दृगन्त क्रमण–निशितबाणं शीघ्रय दधानः।
दरयितुमिव राधाधैर्य–पारीन्द्रवर्यं प्रतपति सुष्ठु गोपालराजः॥३॥
असुलभमिह राधावक्त्र–चुम्बं विजानन्निव विलसितुमेतच्छाययापि प्रदूरात्।
मुकुर–युगलमच्छं गण्डदम्भेन विभ्रत् प्रतपति गिरिपट्टे सुष्ठु गोपालराजः॥४॥
रुचि–निकर–विराजद्दाडिमीपक्वबीज–प्रकरविजयि–दन्तश्रेणी–सौरभ्यवातैः।
रचित–युवति–चेतः कीर–जिह्वाति–लौल्यः प्रतपति गिरिपट्टे सुष्ठु गोपालराजः॥५॥
वचन–मधु–रसानां पायनैर्गोपरामा–कुलमुरुधृत–धामाप्युन्मदीकृत्य कामम्।
अभिमत–रतिरत्नान्याददानस्ततो द्राक् प्रतपति गिरिपट्टे सुष्ठु गोपालराजः॥६॥
कुवलयनिभभा कौंकुमद्रावपुण्ड्रं दधदिव घनषण्डे निश्चलच्चञ्चलाग्रम्।
रचयितुमिव साध्वी–कीर्त्ति–मुग्धालि–भीतिं प्रतपति गिरिपट्टे सुष्ठु गोपालराजः॥७॥

जो अति सुन्दर मुखरूप चन्द्रको धारण करके मनोहर नयन नामक दो कमलोंको प्रस्फुटित कर रहे हैं, जिनकी शुकपक्षी जैसी सुन्दर नासिका विलास–शाली अधरबिम्बका आघ्राण कर रही है, वे गोपालराज गिरिपट्टमें प्रतापयुक्त होकर मनोहर रूपसे विराजमान हो रहे हैं॥२॥

जिन्होंने श्रीमती राधिकाके धैर्यरूप सिंहराजको विदीर्ण करनेके लिए मानो चञ्चल और कुटिल भ्रूरूपी धनुषपर अपाङ्ग–सञ्चालन (कटाक्ष) रूप द्रुतगामी तीक्ष्ण शरका सन्धान किया है, वे गोपालराज गिरिपट्टमें प्रतापयुक्त होकर मनोहर रूपसे विराजमान हो रहे हैं॥३॥

श्रीराधिकाका अधर–पान करना मेरे लिए अत्यन्त दुर्लभ हैं–ऐसा जानकर जो अत्यन्त दूरसे ही उनके प्रतिबिम्ब द्वारा विलासानुभव करनेके लिए अपने गण्डस्थलसे सटाकर दो दर्पण धारण किये हैं, वे गोपालराज गिरिपट्टमें प्रतापयुक्त होकर मनोरम रूपसे विराजमान हैं॥४॥

जो अतिशय कान्तियुक्त अनारके सुपक्व बीजोंको अपनी कान्तिद्वारा पराभूत करनेवाले अपनी दन्तपंक्तिकी सुगन्धिसे ओतःप्रोत वायु द्वारा ब्रज–रमणियोंकी चित्तरूप शुक–जिह्वाको चञ्चल बना रहे हैं, वे गोपालराज गिरिपट्टमें प्रतापयुक्त होकर मनोरम रूपसे विराजमान हैं॥५॥

गोप–रमणियाँ अत्यन्त प्रभावशालिनी होनेपर भी उनको जो वाणीरूप मधु–रस पान कराकर प्रचुर उन्मत्त बनाकर उनसे शीघ्र ही स्वाभीष्ट रति–रत्न ग्रहण कर रहे हैं, वे गोपालराज गिरिपट्टमें प्रतापयुक्त होकर मनोरम रूपसे विराजमान हैं॥६॥

जिन्होंने अपने नील–कमल सदृश नीलाभ मस्तक पर कुंकुमका मनोहर तिलक धारण कर रखा है, मानो नीले बादलोंके बीच स्थिररूपसे बिजली जगमगा रही हो और जिनका वह तिलक सती–रमणियों–गोपियोंकी कीर्त्ति अर्थात् सतीत्वरूप मुग्ध भ्रमरको भयभीत करनेवाला है, वे गोपालराज गिरि–पट्टमें प्रतापयुक्त होकर मनोरम रूपसे विराजमान हैं॥७॥

श्रवण–मदन–रज्जू सज्जयँल्लज्जि–राधा–नयन–चल–चकोरौ बन्धुमुत्कः किशोरौ।
कृत–मकरवतंस–स्निग्धचन्द्रांशुचारः प्रतपति गिरिपट्टे सुष्ठु गोपालराजः॥८॥
युवतिकरण–रत्नव्रातमाच्छिद्य नेत्र–भ्रमण–पटुभटैस्तं न्यस्य हृत्सौधमध्ये।
गरुडमणिकवाटेनोरसाघुष्य हृष्टः प्रतपति गिरिपट्टे सुष्ठु गोपालराजः॥९॥
त्रिवलि–ललित–तुन्दस्यन्दि–नाभीह्रदोद्य–त्तनुरुहतति–सर्पीमत्र विभ्राण उग्राम्।
युवतिपतिभयाखुग्रासनायेव सद्यः प्रतपति गिरिपट्टे सुष्ठु गोपालराजः॥१०॥
मरकत–कृतरम्भागर्व–सर्वङ्कषोरु–द्वयमुरुरसधाम प्रेयसीनां दधानः।
स्फुरदविरल–पुष्टश्रोणिभारातिरम्यः प्रतपति गिरिपट्टे सुष्ठु गोपालराजः॥११॥
मदन–मणिवराली–सम्पुट–क्षल्लजानु–द्वय–सुललित–जङ्घा–मञ्जु–पादाब्जयुग्मः।
विविध–वसनभूषा–भूषिताङ्गः सुकण्ठः प्रतपति गिरिपट्टे सुष्ठु गोपालराजः॥१२॥
कलित–वपुरिव श्रीविट्ठलप्रेमपुञ्जः परिजन–परिचर्या–धैर्य–पीयूष–पुष्टः।
द्युतिभरजितमाद्यन्मन्मथोद्यत्–समाजः प्रतपति गिरिपट्टे सुष्ठु गोपालराजः॥१३॥

जो लज्जावती श्रीराधिकाके नयनरूप चञ्चल एवं किशोर चकोर युगलको बाँधनेके लिए उत्सुक होकर श्रवणरूप मदन–रज्जुको मकराकृति कुण्डल द्वारा सुसज्जित करके मनोहर चन्द्र–किरणों (सौन्दर्य किरणों) का विस्तार कर रहे हैं, वे गोपालराज गिरि–पट्टमें प्रतापयुक्त होकर मनोरम रूपसे विराजमान हो रहे हैं॥८

जो व्रजयुवतियोंकी इन्द्रियरूप रत्नराशिको नेत्र सञ्चालनरूप कुशल योद्धाद्वारा हरण कराकर अपने हृदयरूप अट्टालिकामें डालकर गरुड़मणि द्वारा निर्मित कपाटरूप वक्षःस्थलद्वारा नीवीबन्धमें मुद्रादिकी भाँति स्थापन कर उल्लसित हो रहे हैं, वे गोपालराज गिरिपट्टमें अत्यन्त प्रतापपूर्वक मनोहर रूपसे विराजमान हो रहे हैं॥९॥

जिन्होंने व्रज–युवतियोंके पतिभयरूप चूहेको निगलनेके लिए अपने त्रिरेखाङ्कित सुललित उदर पर तरल वस्तुकी तरह धाराके रूपमें प्रवाहित अथवा नाभि–ह्रदसे उदीयमान रोमराजिको धारणकर रखा है, वे गोपालराज गिरिपट्टमें अत्यन्त प्रतापपूर्वक मनोहर रूपसे विराजमान हैं॥१०॥

जो श्रीमती राधा आदि प्रेयसियोंके रसाश्रयके स्थान स्वरूप हरिद्वर्ण मरकतमणिद्वारा निर्मित कदली वृक्षके गर्वको चूर्ण–विचूर्ण करनेवाले उस उरु–युगलको धारण किये हैं एवं जो परस्पर संलग्न और परितुष्ट नितम्ब भारसे रमणीय हो रहे हैं, वे गोपालराज गिरिपट्टमें अत्यन्त प्रतापपूर्वक मनोहर रूपसे विराजमान हैं॥११॥

मदन–मणि–निर्मित सम्पुट अर्थात् ताम्बूल–पेटिका भी जिनके निकट क्षुद्र प्रतीत होती है, वैसे जानुद्वयद्वारा जिनके जंघे और मनोज्ञ चरणकमल सुललित हैं और जिनके अङ्ग नाना प्रकारके वस्त्राभूषणोंसे विभूषित हैं, वे सुकण्ठ गोपालराज गिरिपट्टमें अत्यन्त प्रतापपूर्वक मनोहर रूपसे विराजमान हैं॥१२॥

जो अपने विशेष–अवतार–श्रीविट्ठलके मूर्त्तिमान–प्रेमराशि–स्वरूप हैं, परिजनोंके परिचर्या–रूप उत्कृष्ट अमृत भोगसे जिनका अङ्ग पुष्ट है और जो कान्तिमाला द्वारा समुद्यत मन्मथ–समाजको पराजित कर रहे हैं, वे गोपालराज गिरिपट्टमें प्रतापशाली होकर मनोहर रूपसे विराजमान हैं॥१३॥

विविध–भजन–पुष्पैरिष्टनामानि गृह्णन् पुलकित–तनुरिह श्रीविट्ठलस्योरुसख्यैः।
प्रणयमणिसरं स्वं हन्त तस्मै ददानः प्रतपति गिरिपट्टे सुष्ठु गोपालराजः॥१४॥
गिरिकुलपति–पट्टोल्लासि–गोपालराज–स्तुतिविलसित–पद्यान्युद्भटप्रेमदानि ।
नदयति रसनाग्रे श्रद्धया निर्भरं यः स सपदि लभते तत्प्रेमरत्नं प्रसादम्॥१५॥
इति श्रीमद्रघुनाथ–दासगोस्वामि–विरचित स्तवावल्यां श्रीगोपालराजस्तोत्रं सम्पूर्णम्।

जो श्रीविट्ठलके सख्यप्रधान विविध भजनरूप पुष्प द्वारा पुलकित होकर इष्टनाम ग्रहणपूर्वक उक्त श्रीविट्ठलेश्वरको प्रणयरूप मणिमाला अर्पण कर रहे हैं, वे गोपालराज गिरिपट्टमें प्रतापयुक्त होकर मनोहर रूपसे विराजमान हैं॥१४॥

जो गिरिराज गोवर्द्धनके पट्टदेशमें उल्लासशील गोपालराजकी स्तुति सुशोभित इस पद्यावलीका अतिशय प्रेमप्रदरूपसे रसनाके अग्रभागमें श्रद्धापूर्वक नृत्य करते हैं अर्थात् निरन्तर पाठ करते हैं, वे शीघ्र ही श्रीकृष्णकी प्रसन्नतासे युक्त प्रेमरत्न लाभ करनेमें समर्थ होते हैं॥१५॥ ❽

प्रश्नोत्तर

शक्ति तत्त्व

(गताङ्कसे आगे)

—ॐ विष्णुपाद जगद्गुरु श्रीलभक्तिविनोद ठाकुर

प्र.१०—ह्लादिनीका क्या स्वरूप है ?

उ.—ह्लादिनी नामकी महाशक्ति भगवानकी अनन्त शक्तियोंमेंसे सबसे श्रेष्ठ शक्ति है। श्रीराधिका उसी ह्लादिनी शक्तिकी सार–भावस्वरूपा हैं।

(जै. ध. ३३ वाँ अ.)

प्र.११—ह्लादिनी शक्तिका विक्रम क्या है ?

उ.—ह्लादिनी–शक्तिकी कृपा बिना जीव प्रेमरूप प्रयोजनको प्राप्त करनेके अधिकारी नहीं होते। ह्लादिनीका बल पाकर जीवोंकी चित्तवृत्ति ब्रह्मधामको भेदकर परव्योममें प्रवेश कर सकती है।

(श्री म. शि. ११ वाँ प.)

प्र.१२—चिच्छक्ति और माया शक्तिमें सन्धिनी, सम्वित् और ह्लादिनीके क्या–क्या कार्य हैं ?

उ.—चित् शक्तिके प्रभावसे चिज्जगत्, जीव शक्तिके प्रभावसे जैव जगत् और मायाशक्तिके प्रभावसे जड़ जगत् प्रादुर्भूत हुए हैं। प्रत्येक प्रभावमें सन्धिनी, सम्वित् और ह्लादिनी—ये तीनों वृत्तियाँ लक्षित होती हैं। चिच्छक्तिमें जो सन्धिनी वृत्ति है, उससे चिन्मयधाम, शरीर और चिन्मय उपकरण समूह आदि समस्त चिद्वैभव उदित हुए हैं। कृष्णनाम, कृष्णरूप, कृष्णगुण और कृष्णलीला आदि सभी तत्त्व सन्धिनीके कार्य हैं। चिच्छक्तिगत सम्वित् वृत्तिसे अप्राकृत जगतके समस्त चिन्तामणि भावोंका उदय हुआ है। चिच्छक्तिगत ह्लादिनी वृत्तिद्वारा समस्त प्रेमानन्दका अनुशीलन होता है। जीव शक्तिगत सन्धिनीद्वारा जीवोंकी चिन्मयसत्ता, नाम और स्थान आदिका उदय हुआ है। उसमें जो सम्वित् शक्ति है, उसके कार्यस्वरूप ब्रह्मज्ञानादिका उदय होता है। उसमें जो ह्लादिनी है उसके कार्यस्वरूप ब्रह्मानन्दकी क्रिया होती है। अष्टाङ्गयोगगत समाधि–सुख या कैवल्य–सुख भी उसीका कार्य

विशेष है। मायाशक्तिगत सन्धिनीवृत्तिके कार्यस्वरूप चौदह भुवनमय अखिल जड़–विश्व, बद्धजीवोंके जड़ और लिङ्ग शरीर, बद्धजीवोंके स्वर्गादि लोकसमूह और सारी जड़ेन्द्रियाँ निर्मित हुई हैं। बद्धजीवोंके जड़ीय नाम, जड़ीयरूप जड़ीय गुण और जड़ीय कार्य–ये सभी सम्वित् वृत्तिके कार्य हैं। मायागत सम्वित्वृत्तिके द्वारा जड़बद्ध जीवोंकी चिन्ता, आशा, कल्पना और विचार समुदाय उदित हुए हैं। मायागत ह्लादिनी वृत्तिके द्वारा स्थूल जड़ानन्द और स्वर्गादि सूक्ष्म जड़ानन्द उदित हुए हैं। (श्री म. शि. ४र्थ प.)

प्र.१३–चिन्मय देश किस प्रकार प्रकाशित हुआ है ?

उ.–भगवानकी अचिन्त्य–शक्ति विशेषरूपसे विक्रम प्रकाशकर भगवद्–वपु और जीव–शरीर तथा इन दोनोंके अवस्थान भावरूप चिन्मय–देशको प्रकाशित करती है। (प्रे. प्र. ९ वाँ प.)

प्र.१४–तटस्था शक्ति किसे कहते हैं ?

उ.–जो शक्ति चिदचित् रूप उभय जगतके लिए उपयोगी है, वह तटस्था शक्ति है।

(श्री म. शि. ६वाँ प.)

प्र.१५–योगनिद्रा क्या है ?

उ.–स्वरूपानन्द रूप आनन्द समाधि ही 'योगनिद्रा' है। (ब्र. सं. ५/१२)

प्र.१६–योगमाया क्या तत्त्व हैं ? वे क्या करती हैं ?

उ.–चिच्छक्तिका दूसरा नाम योगमाया है। वे कृष्णलीलामें कोई ऐसा अद्भूत प्रभाव प्रकाश करती हैं, जिससे जड़माया–आविष्ट द्रष्टा उस लीलाको एक दूसरे रूपमें ही देखते और अनुभव करते हैं। वे ही गोलोकस्थ परोढ़ा अभिमानोंको नित्यप्रियाओंके साथ लाकर व्रजमें उन उन अभिमानोंको पृथक् सत्त्वरूपोंमें स्थिति प्रदान करती हैं।

(जै. ध. ३२वाँ अ.)

प्र.१७–कामगायत्रीका क्या स्वरूप है ?

उ.–वेदमाता गायत्री गोपीजन्ममें कृष्णसङ्ग लाभ कर 'कामगायत्री' हुई। नित्यसिद्धाओंके सम्बन्धमें जो मायाकल्पित (योगमाया विरचित) व्रज–लीला है, वह निर्दोष है। क्योंकि वह माया जड़–माया नहीं हैं। चिच्छक्तिरूपा योगमायाने इस व्रज–लीलाको कृष्णकी इच्छासे प्रकाश किया है। उन उपनिषदों, देवियों तथा गायत्रीने नित्यसिद्धाओंके साथ सालोक्य प्राप्तकर परकीयाभावसे कृष्णसेवा प्राप्त की थी। (चै. शि. ७/७)

प्र.१८–जड़ जगतमें पूजिता दुर्गाका क्या कार्य है ?

उ.–चौदह भुवनोंको ''देवीधाम'' कहते हैं। दुर्गा उसकी अधिष्ठात्री देवी हैं। वे दस कर्मरूप दस भुजाओंसे युक्त हैं, वीरता और प्रतापकी प्रतीक होनेके कारण सिंहवाहिनी हैं। पापको दमन करने वाली होनसे महिषासुर मर्दिनी हैं। शोभा और सिद्धिरूप दो सन्तान वाली हैं अर्थात् कार्तिक और गणेश इनके पुत्र हैं। षडैश्वर्य और जड़विद्या संगिनीरूप लक्ष्मी और सरस्वतीकी मध्यवर्त्तिनी हैं। पाप दमन करनेके लिए वेदोक्त धर्मरूप बीस प्रकारके अस्त्रोंको धारण करनेवाली हैं। काल–शोभा विशिष्ट होनेके कारण सर्प–शोभिनी हैं। दुर्गा–इन सभी विशेषताओंसे युक्त हैं। 'दुर्ग' शब्दका अर्थ कारागार है, तटस्थाशक्ति प्रसूत जीवगण कृष्णसे बहिर्मुख होनेपर जिस प्रापञ्चिक कारागारमें बँध जाते हैं, वही दुर्गाका दुर्ग है। कर्मचक्र ही उनका दण्ड है, बहिर्मुख जीवोंके प्रति ऐसी शोधन प्रणाली विशिष्ट कार्य ही गोविन्दकी इच्छानुरूप कर्म है। सर्वदा यह कार्य सम्पादन करती हैं। जब सौभाग्य क्रमसे साधुसङ्गमें जीवोंकी वह बहिर्मुखता दूर होकर अन्तर्मुखता उदित होती है, उस समय पुनः गोविन्दकी इच्छासे दुर्गा ही उन जीवोंकी मुक्तिका कारण होती हैं। इसलिए अन्तर्मुख भाव दिखलाकर कारागार–

स्वामिनी दुर्गाको परितुष्ट कर उनकी निष्कपट कृपा प्राप्त करनेकी चेष्टा करना हमारे लिए उचित है। धन, धान्य, पुत्रके आरोग्य प्राप्ति इत्यादि वरोंको दुर्गाकी कपट–कृपा समझना चाहिये। वे दुर्गा ही दस महाविद्याओंके रूपमें प्रापञ्चिक जगतमें कृष्ण बहिर्मुख जीवोंके लिए 'जड़ीय आध्यात्मिक–लीला' विस्तार करती हैं। (ब्र. सं. ५/५४)

प्र.२०—महामाया, दुर्गा, काली इत्यादि क्या चिच्छक्ति हैं ? उनका कार्य क्या है ?

उ.—जगतमें मायादेवीका 'दुर्गा', 'काली' इत्यादि नाना नामोंसे पूजन होता हैं। चिच्छक्ति ही कृष्णकी स्वरूपगत शक्ति हैं। मायाशक्ति उनकी छाया है। कृष्णबहिर्मुख जीवोंको शोधनकर क्रमशः कृष्णोन्मुख करना ही मायाका उद्देश्य है। मायाकी दो प्रकारकी कृपा है—निष्कपट कृपा और सकपट–कृपा। जहाँ वे निष्कपट कृपा करती हैं, वहाँ अपनी विद्या–वृत्ति द्वारा वे कृष्णभक्ति प्रदान करती हैं। जहाँ सकपट कृपा करती हैं, वहाँ जड़ीय अनित्य सुख देकर जीवोंको जड़ संसारमें चालित करती हैं। जहाँ नितान्त अकृपा करती हैं, वहाँ जीवोंको ब्रह्मनिर्वाणमें फेंक देती हैं। वहीं जीवोंका सर्वनाश है।

('श्रुतिशास्त्रनिन्दा', ह. चि.)

प्र.२१—श्रीकृष्णकी पीठावरणस्थ दुर्गा और भुवनपूजिता दुर्गामें क्या पार्थक्य है ?

उ.—भगवद्धामके आवरणमें जो मन्त्रमयी दुर्गा हैं, वे चिन्मयी कृष्णदासी हैं, छाया–दुर्गा उन्हींकी दासीके रूपमें जगतमें कार्य करती हैं।

(ब्र. सं. ५/४४)

प्र.२२—भौम–गोकुल और भौम–नवद्वीपमें योगमाया क्या कार्य करती हैं ?

उ.—योगमायाके बलसे जिस प्रकार श्रीकृष्ण–स्वरूपका भौम–गोकुलमें जन्मादि लीला होती हैं, ठीक उसी प्रकार योगमायाके बलसे श्रीगौर–स्वरूपकी भौम–नवद्वीपमें शचीगर्भमें जन्मादि लीलाएँ हुआ करती हैं। यह स्वाधीन चिद्विज्ञान–तत्त्व है, मायाधीन चिन्ता–प्रसूत कल्पना नहीं है।

(ब्र. सं. ५/५)

प्र.२३—गोलोकस्थ दुर्गाका क्या कार्य है ?

उ.—चिच्छक्तिगता दुर्गा कृष्णकी लीलापोषिका शक्ति हैं।

(जै. ध. १४ वाँ अ.)

प्र.२४—शुद्ध शाक्त और शुद्ध वैष्णवमें क्या भेद है ?

उ.—शाक्त और वैष्णवोंमें कोई भेद नहीं है। चिच्छक्तिको छोड़कर केवल माया–शक्तिमें जिनकी रति है, वे शाक्त होकर भी वैष्णव नहीं हैं, बल्कि केवल विषयी हैं। ★★★ शक्ति दो नहीं है, बल्कि एक ही शक्ति चित्स्वरूपसे राधिका और जड़स्वरूपसे जड़शक्ति है। विष्णुमाया निर्गुण अवस्थामें चिच्छक्ति और सगुण–अवस्थामें जड़शक्ति है।

(जै. ध. ९वाँ अ.)

प्र.२५—परमेश्वर या उनकी शक्तिको क्यों मानना होगा ?

उ.—ऋतुओंके गमनागमन द्वारा मेघादिकी उत्पत्ति और वर्षण, लौह आदि धातुओंके अग्निसंयोगसे पर्वत–विदारण और भूकम्प एवं तिथि योगसे जलकी वृद्धि और ह्रास—ये सभी भगवानके ईक्षण–जनित नियम हैं। आकर्षण और उत्ताप कदापि स्वतः सिद्ध गुण नहीं हैं। चेतन स्वयं विधातृ स्वरूप हैं और आकर्षणादि विधिमात्र हैं। अतएव विधाताको अस्वीकार करके केवल विधि स्वीकार करना युक्तियुक्त नहीं है। (त. सू. २२वाँ सू.)

प्र.२६—भगवानमें विरुद्ध–धर्मका सामञ्जस्य कैसे होता है ?

उ.—

"विरुद्ध धर्मसामञ्जस्यं तदचिन्त्यशक्तित्वात्।"

अर्थात् उस तत्त्वमें अचिन्त्यशक्ति होनेके कारण सविशेष निर्विशेषरूप दोनों धर्म उनमें समञ्जसरूपसे वर्त्तमान हैं। (शक्तिमत्तत्त्वप्रकरण आ. सू. ६)

प्र.२७—श्रीकृष्ण तत्त्वमें किस प्रकार विरुद्ध–धर्मका युगपत् समन्वय सम्भव है ?

उ.—सच्चिदानन्द–स्वरूप श्रीकृष्णमें अविचिन्त्य विरोध–भञ्जिका नामक एक शक्ति है। उस शक्तिके प्रभावसे ही उनमें परस्पर विरोधी समस्त धर्म ही अविरोध रूपसे युगपत् नित्य वर्त्तमान हैं। स्वरूपता और अरूपता, विभूता और श्रीविग्रह, निर्लेपता और भक्त–कृपालुता, अजत्व और जन्मवत्ता, सर्वाराध्यत्व ओर गोपत्व, सार्वज्ञ और नरभावता, सविशेषत्व और निर्विशेषत्व आदि अनन्त विरोधी धर्म सभी श्रीकृष्णमें सुन्दररूपसे अपना–अपना कार्य कर ह्लादिनी महाभावमयी श्रीराधाजीकी सेवा–सहायतामें निरन्तर नियुक्त हैं। (श्रीम. शि. ४र्थ प.)

श्रील प्रभुपादजीका उपदेशामृत

प्र. १५२—तृणादपि सुनीचता किसे कहते हैं ?

उ.—वैष्णव सर्वोत्तम होनेपर भी स्वयंको तिनकेसे भी अधिक निकृष्ट मानते हैं। वास्तवमें वे अधम अथवा नीच नहीं हैं, बल्कि भगवानके प्रिय पात्र हैं। भक्त सभीके पूजनीय होते हैं। इसीलिए उनके लिए नीच शब्दका उपयोग न कर सुनीच शब्दका प्रयोग किया गया है।

मैं गुरुपादपद्मकी चरणधूलि हूँ। मैं गुरु एवं कृष्णका दास हूँ, यह अप्राकृत अभिमान ही तृणादपि सुनीचता है। जीवके प्रति दया, नाममें रुचि एवं वैष्णव–सेवा— महाप्रभुकी ये तीन शिक्षाएँ हैं। तृणादपि सुनीचताका अर्थ कपटता नहीं है, मुख–ही–मुखमें या बाह्य अभिनयमें नीचता प्रदर्शन नहीं है। किन्तु तृणादपि सुनीचताका अर्थ—वास्तविक रूपसे कीर्तनमें अधिकार अर्थात् नाममें रुचि—श्रीनामका सेवक अभिमान है। गुरु–वैष्णवोंकी सेवा ही नाममें रुचिका द्वारस्वरूप है। गुरु–वैष्णवोंकी सेवा ही तृणादपि सुनीचता है। अवैष्णवोंके निकट नीचता नहीं, बल्कि वैष्णवोंके निकट ही नीचता, दैन्य प्रकाश या कृपाभिक्षा करनी चाहिए। हर किसीके आगे दैन्य नहीं दिखाना चाहिए। यही महापुरुषोंका उपदेश है। गुरु–वैष्णवोंके विद्वेषी एवं पाषण्डियोंके निकट, रावणके निकट अथवा ढोंगी विप्रके निकट नीचता प्रदर्शन, वैष्णव सेवा या तृणादपि सुनीचता नहीं है। उसके द्वारा कभी भी कीर्तनमें अधिकार या नाममें रुचि नहीं हो सकती। वास्तवमें इसके द्वारा जीवके प्रति हिंसा करना ही हो जाता है। रामभक्त हनुमानजीने लङ्काको जलाकर भस्म कर दिया । यही वास्तविक रूपमें तृणादपि सुनीचता है।

प्र. १५३—जीवके प्रति दयाका अर्थ क्या है ?

उ.—श्रीचैतन्यदेवने जीवको विष्णु और वैष्णवोंकी सेवामें नियुक्त करनेको ही "जीवे दया" कहा है। यही श्रीचैतन्यमहाप्रभुकी दयाकी अधिक चमत्कारिता है।

प्र. १५४—भगवान जो करते हैं, क्या वह सब मङ्गलप्रद ही होता है ?

उ.—अवश्य ही। दयामयका सभी कुछ दया ही है। मङ्गलमयके विधानमें अमङ्गल रह ही नहीं सकता है। भगवान जब जो करते हैं, सब मङ्गलके लिए ही करते हैं। जो इन्द्रियतर्पणमें व्याघातको अमङ्गल या भगवानकी निष्ठुरता मानते हैं, वे बद्धजीव दावा (पासा) के केवल एक चालको ही समझते हैं। चौथे अथवा पाँचवें चालके बाद क्या होगा, वे इसका अनुमान

नहीं लगा सकते हैं।

श्रीचैतन्यदेव एवं उनके भक्तोंकी दया अमन्दोदय दया (जिस दयाके द्वारा किसीका अपकार नहीं होता) है। उनकी दयामें किसी भी प्रकारका अमङ्गल नहीं रहता है। एक रोगीको जब वैद्य कड़वी औषधि प्रदान करता है, तो रोगी वैद्यको दयाहीन एवं निष्ठुर कहता है, किन्तु जब उसका रोग दूर हो जाता है, तब वह समझ पाता है कि वैद्यने कड़वी औषधि प्रदानकर उसपर कैसी कृपा की।

प्र. १५५–मन्त्रमें जो नमः शब्द है, उसका अर्थ क्या है ?

उ.–अहङ्कार अथवा स्वतन्त्रताका परित्यागकर प्रणत या शरणागत होना ही नमः शब्दका अर्थ है। हे गुरुदेव! हे कृष्ण! आजसे मैं आपका आश्रित सेवक हो गया। आप कृपापूर्वक मेरा मार्गदर्शन करें, अपनी सेवामें नियुक्त करें। आजसे मैंने अपना कर्त्तृत्व अथवा अहङ्कारका सम्पूर्णरूपसे परित्याग कर दिया है। अब आपका आदेश, उपदेश एवं निर्देश ही मेरे जीवनका ध्रुवतारा या नियामक हो। यही मेरी प्रार्थना है।

मैं कर्त्ता हूँ, मै भोक्ता हूँ, मैं द्रष्टा हूँ, मैं पालक हूँ–यह सब जड़ अभिमान परित्याग करनेका नाम ही नमस्कार है। मैं कर्त्ता हूँ–ऐसी दुर्बुद्धि श्रीगुरुदेवकी कृपासे दूर होनेपर ही वास्तविक दीक्षा एवं दिव्यज्ञान प्राप्त होता है।

कृष्णप्रिय श्रीगुरुदेवके प्रकट कालमें ही उनकी विश्रम्भ (प्रीतिपूर्वक) सेवा द्वारा सिद्धि प्राप्त कर लेनेमें ही बुद्धिमत्ता है। किन्तु उन अतिमर्त्य श्रीगुरुदेवके प्रति प्रीतिविशिष्ट न होनेके कारण यदि सिद्धि प्राप्त न कर पाएँ, उन्हें हृदयका देवता जानकर हृदयसे यदि सम्यक्रूपमें निष्काम भावसे उनकी सेवा न कर पाएँ, तो अवश्य ही हमें वञ्चित रहना पड़ेगा। मेरे एकमात्र रक्षक, एकमात्र उद्धारकर्त्ता, एकमात्र निरुपाधिक बन्धुको अपने निकट पाकर भी मैंने अपने दुर्भाग्यके कारण उन्हें खो दिया। ऐसा मेरा दुर्भाग्य है ! गङ्गाके तटपर आकर भी जल लानेके लिए पुनः मरुस्थलकी ओर मैं दौड़ रहा हूँ। रत्नभण्डारको पाकर भी रत्न प्राप्तिकी आशासे पुनः मनोहारी दुकानमें काँचके टुकड़ोंकी चमकसे लुब्ध हो रहा हूँ, कैसा सर्वनाशका विषय है।

जो सुबुद्धिवान् होते हैं, वे निष्कपट तथा अन्याभिलाषशून्य होकर श्रीगुरुदेवके चरणोंमें शरणागत होकर आनुगत्यमय जीवन व्यतीत करनेके लिए दृढ़सङ्कल्प करते हैं। अन्यथा वञ्चित होना पड़ता है।

प्र. १५६–भगवानका दर्शन कैसे होगा?

उ.–भगवान स्वप्रकाश वस्तु हैं। वे दयाके सागर हैं। सेवोन्मुख होनेपर भगवान कृपाकर अपना आकार कैसा है, अपना रङ्ग कैसा है, इन समस्त वस्तुओंको चेतन (जीवमात्र) की वृत्तिमें प्रकाशित कर देते हैं।

भोक्ता सर्वदा ही कर्त्ताभिमानमें व्यस्त रहता है। कर्त्ताभिमानसे युक्त होकर उनको जो दर्शन करनेकी प्रचेष्टा की जाती है, उससे भगवानका दर्शन नहीं होता। गुरु–वैष्णवोंके श्रीमुखसे श्रवणके फलसे शुद्ध चित्तमें ही भगवानका दर्शन सम्भव है। किसी भी प्रकारकी जड़ अभिज्ञता चेतन वस्तु (भगवान) का दर्शन नहीं कर सकती। चेतनकी वृत्तिद्वारा, चिन्मय चक्षुओंके द्वारा ही चेतन–वस्तु भगवानका दर्शन होता है। केवलमात्र सेवक ही सेव्यका दर्शन पाते हैं। सेव्य कृपाकर सेवकको ही दर्शन देते हैं। सर्वप्रथम अन्तर्दर्शन, तत्पश्चात् बहिर्दर्शन होता है।

प्र. १५७–जीवका बद्ध अभिमान कबतक रहता है ?

उ.–जबतक आनन्द धर्म या भक्तिधर्म जीवके हृदयमें प्रस्फुटित नहीं होता है, तबतक जीव स्वयंको भगवानके सेवकके रूपमें नहीं जान सकता और तभी

तक बद्धजीवके हृदयमें कर्त्ताभिमान रहता है। यदि अप्राकृत (शुद्ध) अभिमान न हो, तो जड़ाभिमान किस प्रकार दूर हो सकता है ?

प्र. १५८—हमलोग सम्पूर्णरूपसे भगवानपर निर्भर क्यों नहीं हो पा रहे हैं ?

उ.—अणुचेतन हमारा एकमात्र स्वभाव शरणागत होना, बृहत् चेतनका आश्रय ग्रहण करना है। परन्तु बहिर्जगतकी वस्तुओंमें आविष्ट रहनेके कारण भगवानके प्रति हमारी श्रद्धा नहीं हो पाती है। जो सांसारिक किसी वस्तुकी आकांक्षा नहीं करते हैं, जो अकिञ्चन हैं, प्राकृत जगतकी कोई भी वस्तु जिसके लिए अवलम्बनीय नहीं हैं, केवल वे ही भगवानके प्रति श्रद्धाविशिष्ट हो सकते हैं एवं भगवानपर निर्भर रह सकते हैं। जीवन्तशास्त्र साधुओंके श्रीमुखसे वीर्यवती कथाओंको श्रवण करते–करते हम भगवानपर सम्पूर्णरूपसे निर्भर रह सकते हैं।

प्र. १५९—हमारा मङ्गल कब होगा?

उ.—साधुओंके श्रीमुखसे भगवानकी कथाओंको सुनकर जब हम उनका आनुगत्य करते हैं, तभी हमारा मङ्गल हो सकता है। यदि pottery work (कुम्हारका कार्य) करना हो, तो उसके लिए अभिज्ञ कुम्हारके निकट शिक्षा लेकर ही कार्य आरम्भ किया जाता है। मिठाई तैयार करते समय हलवाईसे उचित विधिको जान लेना पड़ता है। उसी प्रकार किसी श्रेष्ठ अभिज्ञ व्यक्तिका आनुगत्य न कर स्वतन्त्ररूपसे अपना कल्याण करनेका विचार करनेपर अनेक प्रकारकी असुविधाएँ उपस्थित हो जाती हैं। उस समय हम शास्त्रोंका वास्तविक अर्थ न समझकर मनोधर्मके वशीभूत हो जाते हैं।

श्रीगुरुपादपद्मोंका आश्रय करना ही हमारा कर्त्तव्य है। आम्नाय धारा (गुरु–परम्परा) को ग्रहण किये बिना सत्य वस्तुकी उपलब्धिका अन्य उपाय नहीं है। निष्किञ्चन महापुरुषोंकी चरणधूलिमें अभिषिक्त हुए बिना हमें कदापि भगवत् दर्शन नहीं हो सकता। वैष्णवगण ही हमें भोग्यदर्शन या कुदर्शनके हाथसे रक्षा कर सकते हैं। जैसे ही हम श्रीगुरुपादपद्मोंका आश्रयकर गुरुके होकर कृष्णसेवाको अपना जीवन बनाते हैं, तभी वास्तव सत्यकी उपलब्धि होती है।

ॐविष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजजीकी हरिकथा

(वर्ष ४७, संख्या ११, पृष्ठ २५० से आगे)

यह दुर्लभ मनुष्य जन्म प्राप्तकर केवल खाने–पीनेमें ही इसको नष्ट कर देना चाहिए क्या? इस विषयमें भागवतमें कहा गया है—**"लब्ध्वा सुदुर्लभमिदं बहुसम्भवान्ते मानुष्यमर्थदमनित्यमपीह धीरः।"** यह शरीर परमार्थप्रद है। अर्थात् इसके द्वारा भगवानके चरण–कमलोंकी सेवा प्राप्त की जा सकती है। **"नरतनु भजनेर मूल"**—यह मनुष्य शरीर केवल हरिभजनके लिए ही है। किन्तु सुविधावादी लोग कहते हैं—अभी तो हमारे खाने–खेलनेके दिन हैं, जब बूढ़े हो जायेंगे, तब भजन करेंगे। परन्तु अन्तमें भगवानका भजन न कर वे "शिव–काली, शिव–काली" इत्यादि करते हैं। "कृष्ण–नामका कीर्तन करो"—यह बात किसीके मुखसे नहीं सुनी जा रही है। वास्तवमें जैसा करनेसे हमारा आत्यन्तिक कल्याण हो सकता है, हमारी सर्वसिद्धि हो सकती है, हम वैसा नहीं कर रहे हैं। परन्तु शास्त्रोंने इस विषयको अच्छी तरहसे समझाया है। शास्त्रोंमें

स्पष्ट रूपसे कहा गया है कि कृष्णनामके अतिरिक्त गति नहीं है–

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्यैव नास्त्यैव नास्त्यैव गतिरन्यथा॥

अर्थात् हरिनाम, हरिनाम, हरिनाम–इसके अतिरिक्त गति नहीं है। इस प्रकार देखा जा रहा है कि शास्त्रोंमें हरिनाम, कृष्णनामकी ही बात कही गयी है। अन्यान्य देवी–देवताओंकी बात नहीं कही गयी है। अन्यान्य देवी–देवताओंका नाम जप करनेसे हमें मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती, भक्ति प्राप्त नहीं हो सकती। भाव–भक्ति, प्रेमभक्ति तो बहुत दूरकी बात है। यदि मुक्ति प्राप्त करनी हो, तो भी हमें कृष्णभजन ही करना होगा। मुक्ति कौन दे सकता है *?* **"मुक्तिप्रदाता सर्वेषां कृष्णैव न संशयः।"** अर्थात् एकमात्र कृष्ण ही मुक्ति प्रदान कर सकते हैं, इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है। भक्ति प्राप्त करनेके लिए कृष्णके चरण–कमलोंका आश्रय ग्रहण करना पड़ता है। इन समस्त बातोंको शास्त्रोंमें अच्छी प्रकारसे समझाया गया है।

राजा मुचकुन्दने पहाड़की गुफामें भगवानका दर्शन प्राप्त किया। भगवानने उन्हें सब कुछ दे दिया। भगवान बोले–"राजन् ! तुम मुझसे वर माँगो। मैं वर प्रदान करनेवाला भगवान हूँ।" उन्होंने भगवानका दर्शन तो किया, परन्तु भगवान बोले–"तुमने क्षत्रिय जन्ममें अनेक पशुओंका शिकार किया है। अतः तुम्हारे पाप अभी हैं। तुम्हारे इन पापोंको मुझे नष्ट करना होगा।" यहाँपर भगवानने उनकी सिद्धिमें दूसरे जन्मकी अपेक्षाकी बात कही है। इसे क्या अस्वीकार किया जा सकता है ? वर्तमान नास्तिक जगत कर्म अथवा कर्मफल नामकी किसी वस्तुको स्वीकार नहीं करना चाहता। अच्छा कार्य करनेसे अच्छा फल प्राप्त होता है। बुरा कार्य करनेसे बुरा फल प्राप्त होता है, मूढ़ जगत इस बातको नहीं मानना चाहता। लोग बुरे कार्य करनेपर भी अच्छा फल प्राप्त करना चाहते हैं, यह कैसे हो सकता है ? यदि अच्छे और बुरेके सम्बन्धमें हमें ज्ञान न हो, तो हम किसको छोड़ेंगे और किसको ग्रहण करेंगे? बुरे कार्य अर्थात् भजनविरोधी कार्योंको छोड़कर भक्ति–पथपर अग्रसर होना चाहिए, इस सम्बन्धमें हमें ज्ञान होना चाहिए। शास्त्रोंमें इसे भी अच्छी तरहसे बताया गया है। परन्तु हम इतने सुन्दर उपदेशोंको कहाँ समझ पा रहे हैं ? हमारे पास इतना सुन्दर अवसर कहाँ है ? और यदि अनेक सौभाग्यसे ऐसा सुअवसर प्राप्त होता भी है, तो हम उसको ग्रहण नहीं करना चाहते। जहाँपर शास्त्र कहते हैं कि मनुष्य जन्म प्राप्तकर सद्व्यवहार करना चाहिए, भक्तिमय जीवन व्यतीत करना चाहिए। केवल हँसते, खाते, खेलते–कूदते इस संसारसे चले जाना बहादुरीकी बात नहीं है। हमें साधन–भजन करना होगा, आत्मानुशीलन करना होगा–यह बात उपनिषदोंमें, गीता, भागवत आदि शास्त्रोंमें अच्छी प्रकारसे बतायी गयी है।

ब्राह्मणजातिमें जन्मग्रहण करनेके कारण केवल अहङ्कार करनेसे ही काम नहीं चलेगा। **"ब्रह्म जानातीति ब्राह्मणः"**, अर्थात् जो ब्रह्म (भगवान) को जानता है, वही ब्राह्मण है। किसी स्थानपर किसीने कहा है–**"जन्मना ब्राह्मणो ज्ञेयः संस्कारैर्द्विजोच्यते।"** इसका अर्थ क्या होगा, हमें कौन समझा सकता है ? शास्त्रोंमें वर्णन है, अत्रि–संहितामें लिखा गया है–**"जन्मना जायते शूद्रः संस्कारात् द्विजोच्यते।"** अर्थात् जन्मके समय सभी शूद्र ही होते हैं, बादमें जब उनका उपनयन संस्कार होता है, तब उन्हें द्विज कहा जाता है। मातृगर्भसे एक जन्म तथा उपनयन संस्कारके द्वारा द्वितीय जन्म होता है। इसके पश्चात् एक और संस्कारकी बात कही गयी है–**"वेद पाठाद्भवेद्विप्रः"**–जब वे वेद पाठ करने लगते हैं, तब

उन्हें विप्र कहा जाता है। **ब्रह्म जानाति इति ब्राह्मणः**– जब ब्रह्मको जान जाता है, तब उसे ब्राह्मण कहा जाता है। इन बातोंको हम क्यों नहीं मान रहे हैं ? सद्गुरु जगतको इन सब विषयोंकी शिक्षा प्रदान करते हैं। शास्त्रोंके जो चरम उपदेश हैं, उन्हें हमें समझना होगा, जानना होगा। केवल खाने, पीने, खेलने तथा सांसारिक कार्योंमें ही हमें व्यस्त नहीं रहना चाहिए। भगवानसे प्रेम करना चाहिए, उनका भजन–साधन करना चाहिए, शास्त्रोंमें हजारों स्थानोंपर यह उपदेश देखनेको मिलता है। हमारी जितनी प्रचेष्टाएँ हैं, वे सभी केन्द्रीभूत होंगी। **"येन केनाप्युपायेन मनः कृष्णे निवेशयेत्।"** जिस किसी भी उपायसे हमें अपने चित्तको स्थिरकर साधन–भजन करना होगा। सद्गुरु इस विषयकी शिक्षा ही प्रदान करते हैं। जगतके लिए वे क्रन्दन करते हैं। वे परदुःखदुःखी होते हैं। यदि किसीको विषयियोंमें रमा हुआ देखते हैं, तो उनका हृदय दुःखसे भर जाता है। किसीने भूखे व्यक्तिको एक मुट्ठी अन्न खानेको दिया अथवा किसी पीड़ित व्यक्तिकी चिकित्सा करवाई, इससे कुछ समयके लिए उसे शान्ति तो प्राप्त हो सकती है, परन्तु सदाके लिए नहीं।

गुरुवर्गने इन सब विषयोंपर विचार करनेकी शिक्षा प्रदान की है। हमें शास्त्रोंके तात्पर्यको समझना होगा। जीवोंका जो चरमकल्याण है, उसे प्राप्त करना होगा। जितने प्रकारके साधन–भजनकी प्रक्रियाएँ हैं, उन सबमें सर्वश्रेष्ठ नामकीर्तन ही है। शास्त्रोंमें सर्वत्र ही इसे हम देख पाते हैं।

सत्ययुगमें लोग तपस्या करते थे। तपस्याके द्वारा वे अपने आत्मकल्याणकी चिन्ता करते थे। त्रेतायुगमें लोग यज्ञ इत्यादि करते थे, द्वापर युगमें विशेष रूपसे पूजा, अर्चना इत्यादि करते थे। परन्तु **"कलौतद्धरि–कीर्तनात्"** अर्थात् कलियुगमें तपस्या, यज्ञ एवं पूजा–अर्चन द्वारा जो कुछ फल प्राप्त किया जा सकता था, वह फल कलियुगमें केवल हरिनाम–कीर्तनसे ही प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकार नाममें आकर सब साधन समाप्त हो जाते हैं अर्थात् सभी साधन नामके अधीन हैं। विशेष रूपसे कलियुगमें नामके अतिरिक्त और किसी प्रकारका साधन–भजन नहीं चलेगा। अतः सर्वदा नाम कीर्तन करना चाहिए। नामापराधयुक्त नाम, नाम नहीं है। जो नाम नामापराधशून्य है, वही शुद्धनाम है। ऐसे शुद्धनामके द्वारा ही हमारा कल्याण हो सकता है। इस विषयमें शास्त्रोंमें बहुत बातें हैं।

ईषत् विकशि पुनः, देखाय निज रूप गुण
चित्त हरि लये कृष्ण पाश।

भगवत् कृपा, नाम, नामी अभिन्न हैं। उस नामकी साधना करते–करते नामी परब्रह्म भगवान हमारे ऊपर कृपा करेंगे, इस आशाके साथ हमें नामकीर्तन करना चाहिए। गुरुवर्गकी महिमाका अन्त नहीं है। उनके तत्त्वकी आलोचना करनेमें घण्टों लग सकते हैं। मैं उस विषयमें न जाकर संक्षिप्त रूपसे दो–एक बातें कहने जा रहा हूँ। आज जिस उपलक्ष्यमें हमलोग उपस्थित हुए हैं, उन गुरुवर्गके उपदेश–निर्देशोंका पालन करें, जिससे हमारा जीवन सफल हो सके, हम धन्य हो सकें, यह मेरी विशेष प्रार्थना है। उनके जो सेवक हमारे निकटमें हैं अथवा दूरमें हैं, मैं सबसे निवेदन कर रहा हूँ–**"गुरुर सेवक हय मान्य आपनार।"** जितने दिन मेरे शरीरमें प्राण हैं, उतने दिन शास्त्रोंके इन विचारोंको लेकर भगवत् कथा कीर्तन कर सकूँ। मैं अपने ज्येष्ठ गुरुभ्राताओंके निकट, पूज्य वैष्णववृन्दके निकट, अपने गुरुवर्गके निकट यही प्रार्थना कर अपना वक्तव्य समाप्त कर रहा हूँ।

वाञ्छाकल्पतरुभ्यश्च कृपासिन्धुभ्य एव च।
पतितानां पावनेभ्यो वैष्णवेभ्यो नमोनमः॥

श्रीनित्यानन्द त्रयोदशी

(गताङ्कसे आगे)

(ॐविष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीकी हरिकथा)

इसलिए कविराज गोस्वामीने लिखा है—"मैंने केवल अपने भाईका त्याग किया और उसीके लिए श्रीनित्यानन्द प्रभुने मुझपर प्रचुर कृपा की। उसी कृपासे मुझे वृन्दावन–धामका दर्शन प्राप्त हुआ।"

उन्हें किस प्रकारका दर्शन हुआ? क्या हमारे जैसा? नहीं। उन्होंने दर्शन किया—श्रीकृष्ण गौओंको चरानेके लिए ले जा रहे हैं, गोपियाँ उन्हें तृषार्त्त नेत्रोंसे निहार रही हैं। श्रीश्रीराधाकृष्णकी दिव्य लीलाओंका उन्होंने दर्शन किया।

श्रीरूप–सनातनकी कृपाका क्या अर्थ है ? श्रीसनातन गोस्वामीकी कृपासे कविराज गोस्वामीने सम्बन्ध ज्ञान तथा शास्त्रज्ञान प्राप्त किया। परन्तु इन ज्ञानोंको प्राप्त करनेपर भी रसज्ञान नहीं हो सकता है। उन्होंने श्रीरूप गोस्वामीसे रसका ज्ञान प्राप्त किया। उसके बाद ही वे श्रीचैतन्य चरितामृत तथा श्रीगोविन्द– लीलामृत जैसे महान ग्रन्थोंकी रचना कर सके, जिनमें रसका सुन्दर वर्णन है। उनपर श्रीरूपगोस्वामीकी कृपासे ही ऐसा सम्भव हुआ।

इस जगतमें एक प्राणी भी अपने समग्र जीवनके लिए उसका ऋणी हो जाता है, जो उसके एक काँटेको निकाल देता है। उसी प्रकार हम गुरु–वैष्णवोंके प्रति ऋणी हैं। जिन्होंने हमारी जड़ वस्तुओंके प्रति आसक्तिरूपी काँटेको हमारे हृदयसे उखाड़ फेंका है तथा हमें भक्तिरस पानके प्रति आकर्षित करनेके लिए भरसक प्रयास किया है, उनके प्रति हम कृतघ्न कैसे हो सकते हैं ? ऐसे गुरु और वैष्णवोंके प्रति हमें सर्वदा कृतज्ञ रहना चाहिए। यदि कभी गुरुदेव हमारे प्रति थोड़े–से कठोर हो जाते हैं, तो हम एक मिनटमें ही कृतघ्न हो जाते हैं ऐसा सोचकर कि "अहो, उनको मेरे प्रति अब स्नेह नहीं रहा।" यह कैसे दुर्भायकी बात है। हम सदैव ही गुरुदेव और वैष्णवोंके प्रति ऋणी रहेंगे तथा हम कभी भी उनके ऋणसे उऋण नहीं हो सकते। यदि कोई श्रीकृष्णदास कविराजके इस वाक्यको समझ नहीं सकता है, तो उसका बड़ा दुर्भाग्य है। परन्तु जो इसे समझता है, वह अपने पूरे जीवनके लिए भी अपनी कृतज्ञताको नहीं भुला सकता है। यहाँ तक कि देहत्यागके बाद भी वह इसे भूल नहीं सकता एवं अपने अगले जन्मोंमें भी इसे याद रखता है।

यह कृतज्ञता स्वयं भगवानके प्रमुख गुणोंमेंसे एक है। क्योंकि नित्यानन्दप्रभु भगवानके अभिन्न प्रकाश हैं, इसलिए वे किसीके प्रति उसी प्रकार ऋणी रहते हैं, जिस प्रकार श्रीकृष्ण गोपियोंके प्रति ऋणी थे—

न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां
स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः।
या माभजन् दुर्जरगेहश्रृङ्खलाः
संवृश्च्य तद्वः प्रतियातु साधुना॥

(श्रीमद्भा. १०/३२/२२)

अर्थात् मेरे साथ तुमलोगोंका संयोग विशुद्ध प्रेममय है। दुर्जय गृहबन्धनको छिन्नकर तुमलोगोंने मेरा भजन किया है। इसलिए देवताओंकी भाँति दीर्घायु प्राप्त होनेपर भी मैं तुम्हारे ऋणसे उऋण नहीं हो सकता हूँ; अतएव अपने–अपने साधुकृत्य द्वारा उऋण हो जाओ।

उसी प्रकार नित्यानन्दप्रभु कहते हैं—"जो संसार–आसक्तिरूपी बेड़ीको तोड़कर मेरी सेवाके लिए आया है, जिसने सांसारिक जीवनके प्रति परवाह नहीं की है, जिसने भजन करनेके लिए अपने परिवार, धनसम्पत्तियोंका त्याग कर दिया है, क्या मैं उसको कभी त्याग कर सकता हूँ ? मैं कभी ऐसा नहीं कर सकता।"

श्रीकविराज गोस्वामीने और भी लिखा है—

सङ्कर्षणः कारणतोयशायी
गर्भोदशायी च पयोब्धिशायी।
शेषश्च यस्यांशकलाः स
नित्यानन्दाख्य–रामः शरणं ममास्तु॥

(चै. च. आ. १/७–११)

सङ्कर्षण, कारणाब्धिशायी, गर्भोदशायी, पयोब्धिशायी और शेषशायी विष्णु जिनके अंश और कला हैं, उन्हीं श्रीनित्यानन्दरामकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ॥

वैकुण्ठमें एक स्तरमें अनेक विभाग हैं तथा उच्चतर स्तरोंमें अन्य विभाग हैं। नृसिंह, कल्कि और वामन आदि अवतार वैकुण्ठ धाममें समान स्तरमें हैं। एक ही फर्शपर वे अवस्थान करते हैं, परन्तु उनका अपना–अपना प्रकोष्ठ है। सबसे नीचे विरजा, उसके ऊपर सिद्धलोक है जो वैकुण्ठके बहिर्देशके रूपमें परिचित है। भगवानके द्वारा जिन दुष्टोंका संहार होता है, उन्हें इस लोककी प्राप्ति होती है। सिद्धलोक उन लोगोंके लिए भी है, जो "अहं ब्रह्मास्मि" का जप करते हैं तथा सोचते हैं कि अन्तमें जीव ब्रह्ममें लीन हो जाता है। परन्तु वास्तवमें जीव अपनी स्वतन्त्रताको खो नहीं सकता है। अन्तमें ब्रह्मके साथ एक होना सम्पूर्ण मिथ्या (झूठ) ही है। हाँ, वे आपसमें उसी प्रकार मिलते हैं, जिस प्रकार भक्तलोग एकत्रित होकर हरिकथाका आस्वादन करते हैं। श्रीकृष्ण गोप, गोपी, यशोदा, नन्दबाबा आदिके साथ तथा श्रीरामचन्द्र हनुमान आदिके साथ आते हैं; परन्तु क्या वे घुल–मिलकर एक होकर आते हैं ? कहीं भी ऐसा उदाहरण नहीं मिलता है। वे मिलते हैं, ठीक है, परन्तु स्वतन्त्र रहते हैं। जीव कभी ब्रह्म नहीं हो सकता। अनेक बड़े–बड़े पण्डित इस भ्रान्त तथ्यको लेकर प्रवचन देते हैं तथा हजारों लोग उसे सुननेके लिए आते हैं। वे अपने प्रवचनोंमें कहते हैं–"कृष्णभक्तिके समान कुछ भी नहीं है तथा गोपियोंकी भक्ति सर्वश्रेष्ठ है और जो गोपियोंकी तरह भक्तिको प्राप्त करता है, वह ब्रह्मके साथ एक हो जाता है।" इस प्रकारकी हरिकथा सम्पूर्ण निरर्थक है। वे लोगोंको ठग रहे हैं। इसलिए हमें उस प्रकारके आयोजनोंमें नहीं जाना चाहिए, जहाँ वे कहते हैं कि हम राधाकृष्णसे मिलकर एक हो जायेंगे।

सिद्धलोकके ऊपर सदाशिव लोक है। उसके ऊपर नारायण लोक है, जहाँ मुक्त चतुर्भुज भक्तोंका निवास है। सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सार्ष्टि–इन चार प्रकारकी मुक्तियोंको प्राप्त करनेवाले भक्त श्रीनारायणके निकट रहकर ऐश्वर्य भावसे उनकी सेवा करते हैं। पासमें ही करोड़ों विशेष प्रकोष्ठ हैं, जिनमें वराह, नृसिंह, कल्कि तथा अन्य अवतारोंका निवास है। जब आवश्यक होता है, वे पृथ्वीपर अवतीर्ण होते हैं; अन्यथा वहाँ वे अपने भक्तोंसे सेवा ग्रहणकर सदैव निवास करते हैं। उसके ऊपर श्रीरामचन्द्रका लोक है। उसके ऊपर श्रीकृष्णका लोक है, जो गोलोकके नामसे प्रसिद्ध है। गोलोक शब्दसे किसीको कुछ शङ्का हो सकती है, इसलिए मैं इसे कुछ स्पष्ट कर देता हूँ।

जब इन्द्र श्रीकृष्णका अभिषेक कर रहे थे, उस समय वे साथमें सुरभिको लाये थे। सुरभिका निवास स्थान गोलोक है। लेकिन यह मत सोचिए कि इन्द्र उन्हें गोलोक–वृन्दावनसे लाये। इस ब्रह्माण्डमें तथा प्रत्येक ब्रह्माण्डमें हरिलोक है, जिसमें क्षीरोदशायी विष्णुका निवास है। देवतालोग श्रीविष्णुका प्रत्यक्ष दर्शन नहीं कर सकते हैं, किन्तु कभी–कभी ब्रह्माजी अपने ध्यानमें उनका दर्शन करते हैं तथा उनसे सृष्टि करनेकी शक्ति प्राप्त करते हैं। इस प्रकार प्रत्येक ब्रह्माण्डमें एक–एक गोलोक है जिसे सुरभि–लोक या श्वेतद्वीप कहा जाता है। इन्द्र वहाँ तक जा सकते हैं। उन्होंने वहाँ जाकर सुरभिसे प्रार्थना की–"आप गोमाता हैं, कृपया मेरी ओरसे श्रीकृष्णसे प्रार्थना कीजिए।"

इसलिए गोलोक और गोलोक–वृन्दावन एक नहीं है। उसी प्रकार चिज्जगत स्थित नवद्वीप धाम जो कि

श्वेतद्वीपके नामसे भी परिचित है, वह इस ब्रह्माण्ड स्थित क्षीरोदशायी विष्णुका निवास स्थान श्वेतद्वीपसे भिन्न है।

गोलोक–धामका निम्नांश, द्वारकाके निम्नदेशमें स्वकीया भाव है। वहाँ राधा–कृष्णकी लीलाएँ होती हैं, परन्तु वहाँ ऐश्वर्यभावमय राधा–कृष्ण लक्ष्मी–नारायणके विस्तार रूपकी भाँति हैं। जो वैधी–भक्ति मार्गमें राधा–कृष्णका अर्चन करते हैं, उनको इस धामकी प्राप्ति होती है। जो राधा–कृष्णका अर्चन रागानुग भाव समन्वित वैधी–भक्तिके माध्यमसे करते हैं, वे मथुरा अथवा द्वारकाको गमन करते हैं। जो 'लोभ' के साथ पूर्णरूपसे शुद्ध रागानुगा मार्गके अनुगामी हैं, वे गोलोक–वृन्दावनमें जाते हैं। उस धामकी आकृति कमल फूल सदृश है तथा उस कमलके मध्यस्थलमें नन्दभवन है। जो भक्त रागानुगा भक्तिमें सम्पूर्ण आविष्ट हैं, उन्हें श्रीकृष्णकी लीलाओंमें स्थान प्राप्त होता है, गोचारणके सखाओंके रूपमें अथवा श्रीमती राधिकाकी सखियोंके रूपमें। यही सर्वोच्च सिद्धि है।

वहाँ श्रीकृष्ण वृन्दावनविहारी, श्यामसुन्दर, गोविन्द, गोपीनाथ आदिके रूपमें जाने जाते हैं तथा उनके प्रथम विस्तार हैं श्रीबलदेव। श्रीकृष्णकी लकुटी, मुकुट स्थित मोर पङ्ख, श्रीकृष्णके सभी प्रकारके आभरण, गोपियोंके आभरण, वृन्दावन धाम—ये सभी सन्धिनी–शक्तिका प्रकाश है तथा इसी शक्तिका मूर्तिमान् विग्रह हैं श्रीबलदेव प्रभु। ह्लादिनी शक्तिकी मूर्तिमान् विग्रह हैं श्रीमती राधिका एवं श्रीकृष्ण चित् शक्ति या सम्वित् शक्तिके अधिकारी हैं। ये तीनों एकत्रित होकर सच्चिदानन्द श्रीकृष्णका सम्पूर्ण रूप होता है। श्रीराधिका और श्रीबलदेव श्रीकृष्णसे पृथक् नहीं हैं, सम्मिलित होकर वे एक ही हैं।

श्रीबलदेव प्रभुसे ही नित्यसिद्ध कृष्णभक्तोंका प्रकाश होता है। जब कृष्ण द्वारका जाते हैं, वे वसुदेवके पुत्र वासुदेव हो जाते हैं। द्वारकामें बलदेव भी अपनेको देवकीके पुत्ररूपमें अनुभव करते हैं। परन्तु अपने मूल स्वरूपमें वे रोहिणीके पुत्र हैं तथा नन्दबाबा उनके पिता हैं। यह नहीं है कि जड़जगतके पिता–पुत्रोंकी भाँति कोई भी बलदेवजीके पिता बन सकते हैं। परन्तु नन्दबाबाका स्वरूप उनके पिताके रूपमें ही है। नन्दबाबाके स्वरूपमें यह दृढ़ अभिमान है कि वे कृष्ण एवं बलदेव दोनोंके पिता हैं। साधारण जागतिक पण्डित इस तथ्यको ग्रहण नहीं कर सकते। वे इस बातको समझ नहीं सकते कि जिसके अन्दर श्रीकृष्णके पिता होनेका सर्वाधिक तीव्र अभिमान है, वही उनके पिता हैं। उन पण्डितोंमें अधिकांश विवेचन करते हैं कि कृष्ण वसुदेवके पुत्र हैं एवं बहुत कम इस बातको स्वीकार करते हैं कि कृष्ण वास्तवमें नन्दनन्दन हैं।

इस प्रकार बलदेव प्रभु कृष्णके वैभव–प्रकाश हैं। वे सर्वदा श्रीकृष्णकी सेवा करते हैं। कृष्ण–सेवा ही उनका सर्वस्व है, चाहे वृन्दावन, मथुरा या द्वारकामें भी क्यों न हो। जब वे मथुरा और द्वारकामें अभेद रूप धारणकर प्रवेश करते हैं, तब वे प्रथम चतुर्व्यूह वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्धके रूपमें प्रकाशित होते हैं। मूल–सङ्कर्षणसे महा–सङ्कर्षण प्रकाशित होते हैं। महा–सङ्कर्षणसे कारणोदशायी विष्णु, कारणोद– शायीसे गर्भोदशायी प्रकाशित होते हैं। फिर गर्भोदशायी क्षीरोदशायीके रूपमें प्रकाशित होते हैं। क्षीरोदशायी विष्णु अपनेको असंख्य रूपोंमें विस्तारकर समस्त जीवोंके हृद्देशमें साक्षीरूपमें स्थित होते हैं, जो कि परमात्माके नामसे जाने जाते हैं। वही बलदेव उनकी व्यष्टि (विस्तार) अन्तर्यामी क्षीरोदशायी रूपमें हमारे हृदयोंमें साक्षीस्वरूप हैं। क्षीरका अर्थ है दूध। जिस प्रकार माँ हमें दूध पिलाकर हमारा पालन–पोषण करती है, उसी प्रकार वे भी हमारा पालनपोषण करते हैं।

क्षीरोदशायी विष्णुके निकट ब्रह्मा और शङ्कर हैं तथा उनकी इच्छा एवं शक्तिसे जड़जगतोंकी सृष्टि और संहार संघटित होता है। शेषनागके रूपमें उनके अनन्त फनोंके ऊपर वे अनन्त ब्रह्माण्डोंको सरसोंके बीजोंकी भाँति धारण करते हैं; युगपत् वे शय्याका रूप धारण करते हैं, जिसपर तीन पुरुषावतार शयन करते हैं।

श्रीबलदेव प्रभुके छः प्रकार प्रकाश हैं—वृन्दावनमें उनके मूल स्वरूपसे मथुरा और द्वारकाके मूल—सङ्कर्षण, वैकुण्ठमें महा—सङ्कर्षण, उसके बाद कारणोदशायी विष्णु, गर्भोदशायी विष्णु, क्षीरोदशायी विष्णु तथा अन्तमें शेष। जो इन गम्भीर तथ्योंको जान लेता है, वह पुनर्बार इस जन्म—मृत्यु—चक्रमें नहीं फँसता है।

पुरुषावतारको पुरुष कहा जाता है, क्योंकि वे जड़जगतकी सृष्टिसे सम्बन्धित हैं। वे परोक्ष रूपसे मायाके संसर्गमें आते हैं सृष्टि एवं पालनके उद्देश्यसे, किन्तु स्वयं मायासे पृथक् रहते हैं। हाँ, वे सब जीवात्माओंमें हैं, परन्तु युगपत् किसीमें भी नहीं हैं। वे सब कुछ करते हैं, दूसरोंको कुछ भी करनेके लिए प्रेरणा देते हैं, परन्तु साथ—ही—साथ वे कुछ भी नहीं करते हैं। अतः वे पुरुषावतार कहे जाते हैं। इनसे प्रकाशित होते हैं—मन्वन्तर—अवतार समूह, युगावतार समूह तथा अन्य अनेक अवतार। वे कारणोदशायी विष्णु अथवा गर्भोदशायी विष्णुसे प्रकाशित होते हैं, इसलिए इन्हें अवतारी कहा जा सकता है।

जब कृष्ण इस जगतमें किसी भी रूपमें अवतरित होते हैं, तब धाम तथा नित्य पार्षदोंके रूपमें बलदेव प्रभु निश्चय ही आते हैं। वृन्दावनमें लीलाविलास आदि करनेके लिए श्रीकृष्णके अवतरणसे पहले बलदेव प्रभु देवकीजीके हृदयमें प्रवेश करते हैं तथा उनके गर्भमें सङ्कर्षणके रूपमें स्थित होते हैं। तभी कृष्ण स्वयंको प्रकाशित कर सकते हैं। इसी प्रकार बलदेव धामके रूपमें पहले ही आकर कृष्णकी सेवा करते हैं।

यदि कोई कहे कि कृष्ण कारणोदशायीके एक अवतार हैं अथवा दूसरा कोई कहता है कि वे गर्भोदशायीके अवतार हैं, तो यह अनावश्यक रूपसे द्वन्द्वका कारण बन जाएगा। किसी—किसी स्थानपर ऐसे वर्णन मिलते हैं। कभी—कभी वर्णन आता है कि कृष्णका जन्म नर—नारायणके केशसे हुआ है, केशावतार नर—नारायणके अवतार हैं। हमें ऐसी उक्तियाँ मिलनेपर भी वास्तवमें—

एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।

(श्रीमद्भा. १/३/२८)

अर्थात् भगवानके सभी अवतार पुरुषावतारकी कलाएँ अथवा कलाओंके अंश हैं, परन्तु कृष्ण स्वयं भगवान् हैं।

जब यह कहा जाता है कि कृष्ण एक अवतार हैं, तो यह उसी प्रकारकी बात है जैसे एक साधारण वृद्ध महिला प्रधानमन्त्रीको आशीर्वाद देती हुई कहती है—"मेरे पुत्र, एक दिन तुम एक पुलिस कमिश्नर बनो।" उसकी समझमें वही सर्वोच्च पद है। उसने इस बातको प्यारसे कहा है, परन्तु वह नहीं समझती कि कौनसा पद उच्चतर है। उसी प्रकार कोई—कोई कहते हैं कि कृष्ण गर्भोदशायी या कारणोदशायी विष्णुके अवतार हैं।

जब श्रीरामचन्द्र अवतीर्ण हुए, तब बलदेव लक्ष्मणके रूपमें आये। रामचन्द्रकी लीलाएँ ऐसे विरह और आत्मोत्सर्गसे परिपूर्ण हैं कि सभीको रुला देती हैं। प्रायः बिना किसी कारणके श्रीरामचन्द्रने सीता—देवीका परित्याग किया, केवल एक बार नहीं, दो बार। लक्ष्मणकी इच्छा नहीं थी कि राम वनमें जाएँ, इसलिए जब वे वनवासके लिए निकल पड़े थे, तब उन्होंने रामसे कहा—"मैं अभी महाराज दशरथको हमारे पिता नहीं मानता हूँ। अत्यन्त कामासक्त होनेके कारण वे एक स्त्रीके वशीभूत हो गये हैं तथा इस वृद्धावस्थामें उनकी बुद्धि कम हो गयी है। मुझे उनका वध करना चाहिए। देखिए, कोई आ रहा है! यदि यह भरत होगा तो मैं उसका भी वध कर दूँगा।"

(क्रमशः)

श्रीगौराङ्ग–सुधा

(वर्ष ४७, संख्या ११, पृष्ठ २५७ से आगे)

–श्रीपरमेश्वरी दास ब्रह्मचारी

संन्यास ग्रहणकर वृन्दावन जानेको उद्यत एवं छलपूर्वक नित्यानन्दके द्वारा शान्तिपुरमें लाना

संन्यास ग्रहण करनेके पश्चात् प्रभु प्रेममें उन्मत्त होकर वृन्दावन जानेके लिए उद्यत हुए। उनकी अवस्था अद्भुत हो गयी थी। उन्हें दिशाका ज्ञान भी न रहा कि वे किस ओर जा रहे हैं। यहाँ तक कि अब दिन है या रात, इसका भी उन्हें ज्ञान न रहा। नित्यानन्द, चन्द्रशेखर एवं मुकुन्द भी उनके पीछे–पीछे चलने लगे। परन्तु प्रभुको इसका कुछ ज्ञान नहीं कि उनके पीछे–पीछे वे चल रहे हैं। मार्गमें जो भी व्यक्ति प्रभुका दर्शन करता, वही प्रेमावेशमें "हरि–हरि' बोलने लगता तथा उसके समस्त प्रकारके दुःख–कष्ट नष्ट हो जाते थे। कुछ आगे चलनेपर कुछ गोपबालक गायें चरा रहे थे। उन्होंने जब प्रभुका दर्शन किया, तो वे भी उच्च स्वरसे "हरि–हरि' कहने लगे। उन बालकोंके मुखसे हरिनाम सुनकर प्रभु उनके निकट चले गये तथा अत्यन्त ही स्नेहसे उनके सिरपर हाथ फेरते हुए कहने लगे–"तुम सब अति भाग्यवान हो, क्योंकि तुमलोगोंके मुखसे भगवानका नाम निकलता है तथा तुमलोगोंने हरिनाम सुनाकर मुझे भी कृतार्थ कर दिया।

उसी समय नित्यानन्दप्रभुने चुपकेसे उन बालकोंको सिखा दिया कि यदि प्रभु तुमलोगोंसे वृन्दावन जानेका मार्ग पूछें तो तुम उन्हें यह गङ्गाके किनारेवाला मार्ग दिखा देना। इतनेमें ही प्रभुने उनसे पूछ भी लिया–"बच्चो! मुझे यह तो बताओ कि मैं वृन्दावन किस रास्तेसे जाऊँ?" इसपर बच्चोंने नित्यानन्दप्रभुके कहे अनुसार गङ्गातीरका पथ दिखा दिया। अब प्रभु आविष्ट होकर उसी रास्तेपर चल पड़े। नित्यानन्दजीने चन्द्रशेखर आचार्यसे कहा कि आप अति शीघ्र शान्तिपुरमें श्रीअद्वैताचार्यजीके घर चले जाइए तथा उनसे कहिए कि वे नाव लेकर गङ्गाके किनारे पर तैयार रहें, मैं प्रभुको उनके घर ला रहा हूँ। उन्हें सूचना देनेके बाद आप तुरन्त नवद्वीप जाकर शचीमाता एवं समस्त भक्तोंको आचार्यके घर ले आना। चन्द्रशेखर आचार्यको शान्तिपुर भेजनेके बाद नित्यानन्दप्रभु श्रीमन्महाप्रभुके सामने आ गये। उन्हें अपने समक्ष देखकर प्रभु पूछने लगे–"श्रीपाद नित्यानन्दजी! आप कहाँ जा रहे हैं ?'' नित्यानन्दप्रभु बोले–"प्रभो! मैं आपके साथ वृन्दावन जा रहा हूँ।" यह सुनकर प्रभुने पूछा–"वृन्दावन अभी कितनी दूर है ?" नित्यानन्दप्रभुने उन्हें गङ्गाको दिखाकर कहा कि प्रभु वह देखिए, सामने ही यमुनाजी हैं। इतना कहकर वे प्रभुको गङ्गाके तटपर ले गये तथा प्रभुने भावावेशमें गङ्गाको यमुना ही समझा। अहो! मेरा महा सौभाग्य है कि आज मैंने यमुनाजीका दर्शन किया, ऐसा कहकर वे श्रीयमुनाजीकी स्तुति करने लगे–

चिदानन्दभानोः सदानन्दसूनोः
परप्रेमपात्री द्रवब्रह्मगात्री।
अघानां लवित्रि जगत्क्षेमधात्री
पवित्रि क्रियान्नो वपुर्मित्रपुत्री॥

"अर्थात् निर्विशेष ब्रह्म जिनकी अङ्गकान्ति है, उन नन्दनन्दन श्रीकृष्णकी जो नित्य परमप्रेयसी है और जलरूप द्रवब्रह्म जिनका शरीर है, (अर्थात् श्रीयमुनाका चिन्मय जल ब्रह्मकी द्रवीभूत अवस्था ही है) दर्शन–मात्रसे ही जो समस्त प्रकारके पापोंको नाश करने

वाली हैं, जगतका कल्याण करनेवाली हैं, वे ही सूर्यकन्या श्रीयमुनाजी हमारे शरीरको पवित्र करें।"

इस प्रकार स्तुति करनेके पश्चात् उन्होंने गङ्गाजीको प्रणामकर स्नान किया। उस समय उनके शरीरपर एकमात्र कौपीन था, दूसरा कोई भी वस्त्र उनके शरीरपर नहीं था। उसी समय अद्वैताचार्यजी नावपर सवार होकर वहाँ उपस्थित हुए। उनके हाथोंमें नया कौपीन तथा बाह्य वस्त्र भी थे।

जब उन्होंने सामने आकर प्रभुको दण्डवत् प्रणाम किया, तो प्रभुको कुछ संशय हुआ। उन्होंने कुछ शङ्कित होकर पूछा—आप तो अद्वैताचार्य हैं न! आप यहाँ कैसे पहुँच गये? आप कैसे जान गये कि मैं वृन्दावन आया हूँ। यह सुनकर श्रीअद्वैताचार्य हाथ जोड़कर बोले—"प्रभो! आप जहाँ कहीं भी रहें, वही स्थान वृन्दावन है। मेरा परम सौभाग्य ही आपको गङ्गाके तटपर ले आया है।"

यह सुनकर अब प्रभुको बाह्यज्ञान हुआ। वे कहने लगे—"श्रीपाद नित्यानन्दजीने मुझे धोखा दिया। गङ्गाके तटपर लाकर मुझे इसे यमुना बता दिया।"

अद्वैताचार्य मुस्कराते हुए बोले—"प्रभो! नहीं, नित्यानन्दजीने गलत नहीं कहा। इस समय आपने श्रीयमुनाजीमें ही स्नान किया है। क्योंकि गङ्गा एवं यमुना एक धारा होकर प्रवाहित हो रही हैं। पश्चिम तटपर यमुना एवं पूर्व तटपर गङ्गा प्रवाहित हो रही है और आपने स्नान किया पश्चिम तटपर। इस प्रकार आपने यमुनामें ही स्नान किया। अतः अब अपना भीगा हुआ कौपीन बदलकर यह नया कौपीन तथा बाह्यवस्त्र धारण कीजिए। आप प्रेमाविष्ट रहनेके कारण तीन दिनसे भूखे हैं, अतः आज सर्वप्रथम मेरे घर चलकर कुछ भिक्षा ग्रहण कीजिए तथा वहींपर वास कीजिए।"

ऐसा कहकर वे प्रभुको नावमें चढ़ाकर अपने घर ले आये। सर्वप्रथम उन्होंने आनन्दित होकर प्रभुके श्रीचरणोंको धोया। अद्वैताचार्यजीकी पत्नी श्रीसीता–देवीने पहले ही रसोई बना रखी थी। आचार्यने स्वयं भगवानका भोग तीन भागोंमें सजाया। श्रीकृष्णका भोग सोने–चाँदीके बर्तनोंमें तथा दो भोग केलेके पत्तोंमें सजाये। पत्रोंके बीचमें सुगन्धित पीले–पीले घी मिले हुए चावल रखे एवं उसके चारों ओर अन्यान्य व्यञ्जनोंके दोने सजाये। सजानेके पश्चात् उन पात्रोंमें तुलसी मञ्जरी प्रदान की। भोगपात्रोंके निकट ही तीन पात्रोंमें सुवासित जल भी रखा। तत्पश्चात् तीन सुन्दर आसन प्रदानकर श्रीकृष्णको साक्षात्रूपमें भोजन कराया। भोगके पश्चात् आरतीके समय उन्होंने दोनों (श्रीगौरसुन्दर तथा श्रीनित्यानन्द) को बुलाया। उनके साथ अन्यान्य सभी लोगोंने भी आरती दर्शन किये। आरतीके पश्चात् आचार्यने श्रीकृष्णको शयन कराया और प्रभुसे भोजनके लिए अन्दर पधारनेकी प्रार्थना की। यह सुनकर दोनों भाई भोजन करनेके लिए उठे। उन्होंने मुकुन्द एवं हरिदासको भी भोजनके लिए अन्दर चलनेके लिए कहा। परन्तु मुकुन्द हाथ जोड़कर कहने लगे—"प्रभो! मेरा कुछ नित्य कृत्य अभी बाकी है। मैं उसे पूर्ण करनेके पश्चात् पाऊँगा। आप जाकर पाइए।" हरिदासजी बोले—"प्रभो! मैं पापी और अधम हूँ। आपके प्रसादके पश्चात् मैं बाहर ही एक मुट्ठी प्रसाद पा लूँगा।" अद्वैताचार्य दोनों प्रभुओंको भीतर ले गये। अनेक प्रकारके प्रसाद देखकर प्रभुको बहुत आनन्द हुआ। वे बोले—"जो कृष्णको ऐसे व्यञ्जन खिलाते हैं, मैं जन्म–जन्ममें उनके श्रीचरणोंको अपने सिरपर धारण करता हूँ।"

प्रभुने सोचा कि ये तीनों भोग कृष्णको अर्पण किये गये हैं, वे अद्वैताचार्यजीके मनकी बात समझ न पाये। प्रभु बोले—"आचार्यजी! बैठिए, हम तीनों एक ही साथ प्रसाद पाएँगे।" आचार्य बोले—"प्रभो! आप

दोनों पाइए। मैं परिवेशन करूँगा।" यह सुनकर प्रभुने पूछा–"हम दोनों कहाँ बैठें ? हमारे लिए दो पत्तल लाइये और उनमें थोड़ा–थोड़ा अन्न आदि रख दीजिए।" आचार्य बोले–"आप दोनों इन दो आसनोंपर बैठिए।" ऐसा कहकर उन्होंने दोनोंको उन आसनोंपर बैठा दिया। प्रभु बोले–"आचार्य! हम संन्यासी हैं। संन्यासियोंको ऐसे सुस्वादु व्यञ्जन नहीं खाने चाहिए। क्योंकि ऐसे सुस्वादिष्ट व्यञ्जनोंको खाकर इन्द्रियोंको वशमें करना कठिन है।" आचार्य बोले–"प्रभो! कृपया आप मुझे मत छलिए। मैं आपके संन्यासकी चालाकीको अच्छी तरह जानता हूँ। अतः आप चतुराई छोड़कर भोजन कीजिए।" प्रभु मुस्कराते हुए बोले–"परन्तु आचार्य! मैं इतना अन्न नहीं खा सकता।" आचार्य बोले–"आप जितना खा सकते हैं, खाइए, बाकी छोड़ दीजिएगा।" प्रभु बोले–"मैं इतना अन्न नहीं खा सकता तथा उच्छिष्ट रखना संन्यासीका धर्म नहीं है।" अद्वैताचार्य बोले–"नीलाचल (जगन्नाथपुरी) में आप जगन्नाथजीके रूपमें चौवन बार कैसे खाते हैं ? वह भी एक–एक बारमें सौ–सौ भार अन्न। जगन्नाथजीके रूपमें तीन जनोंका भोजन आपके एक ग्रासके समान ही होता है, अतः उसकी तुलनामें यह अन्न तो कुछ भी नहीं है। मेरे सौभाग्यसे ही तो आज आप मेरे घरमें उपस्थित हुए हैं। अतः चतुराई परित्यागकर इन सब व्यञ्जनोंको ग्रहणकर मुझे कृतार्थ करें।"

ऐसा कहकर उन्होंने दोनोंके हाथोंमें जल दिया। अतः वे दोनों हँसते हुए भोजन करने लगे। नित्यानन्दजी उस समय हास–परिहास करते हुए कहने लगे–"हम तीन दिनोंसे उपवासी हैं। अतः आज मेरी पारण करनेकी इच्छा थी। जब इस ब्राह्मणने हमें निमन्त्रण दिया, तो मैं प्रसन्न हो गया था कि चलो आज भरपेट प्रसाद पायेंगे। परन्तु यहाँ आकर देखा इसने मात्र एक मुट्ठी अन्न ही खानेके लिए दिया है, अतः लगता है कि आज भी हमें भूखा ही रहना होगा। क्योंकि जो इसने खानेको दिया है, वह तो मेरा एक ही ग्रास है।" सुनकर अद्वैताचार्यजी बोले–"आप तो तैर्थिक संन्यासी हैं, जिन्हें भरपेट खाना नहीं मिल पाता है। तीर्थोंमें भ्रमण करते हुए कभी तो फल–मूल खाकर ही आपको रहना पड़ता है तथा कभी–कभी भूखा भी रहना पड़ता है। आज इस दरिद्र ब्राह्मणके घर जो आपको एक ग्रास अन्न भिक्षामें मिला है, इसीमें सन्तुष्ट हो जाइये, अधिक लोभ मत कीजिए। यह संन्यासीको शोभा नहीं देता।" यह सुनकर नित्यानन्दजी कुछ तुनककर बोले–"जब आपने निमन्त्रण दिया, उस समय तो कहा था कि जितना खाओगे खिलाऊँगा। परन्तु अब दरिद्र ब्राह्मण बन रहे हैं।"

यह सुनकर अद्वैताचार्यजी प्रेमपूर्वक उलाहना देते हुए कहने लगे–"मुझे ऐसा लगता है कि तुम्हारे जैसे भ्रष्ट एवं अवधूतने केवल पेट भरनेके लिए ही तथा मेरे जैसे दरिद्र ब्राह्मणोंको उद्वेग प्रदान करनेके लिए ही संन्यास लिया है। तुम तो पचास मन चावल खा सकते हो। उतना मैं गरीब ब्राह्मण कहाँसे लाऊँगा? अतः जो मिला है, चुपचाप उसीको खाकर जल्दीसे उठो, अधिक पागलपन मत करो। पत्तलमें अपना जूठन भी मत छोड़ना।" इस प्रकार अपूर्व हास–परिहासके साथ दोनों भाई भोजन करने लगे। प्रभुके पात्रमें जो भी वस्तु आधी हो जाती, आचार्य तुरन्त उसे फिरसे भर देते। इस प्रकार वे पुनः पुनः परिवेशन कर रहे थे। एक बार प्रभुका दोना खाली होनेके बाद फिरसे उसे भर देते, तथा प्रभुसे प्रार्थना करते–"प्रभो! बस इतना–सा और खा लीजिए।" प्रभु बोले–"आचार्य! मैं और कितना खाऊँगा? मेरा पेट भर गया है।" यह सुनकर आचार्य कहने लगे–"प्रभो!

अब अधिक नहीं दूँगा, बस अपके पात्रमें जो है, उसीको समाप्त कर दीजिए।" हँसते हुए उन्होंने पुनः उन पात्रोंको भर दिया। यह देखकर प्रभु बोले—"आचार्य! मैं अब बिल्कुल नहीं खा पाऊँगा।" आचार्य विनति करते हुए बोले—"प्रभो! कृपाकर जो दे दिया है, उसको आधा तो खा ही लीजिए। बाकी छोड़ दीजिएगा।" इस प्रकारसे यत्नकर दैन्यपूर्वक आचार्यने प्रभुको भोजन कराया। प्रभुने भी उनकी इच्छा पूर्ण की।

उसी समय नित्यानन्दजी कुछ बिगड़कर बोले—"तेरे अन्नसे मेरा आधा पेट भी नहीं भरा। मैंने तुम्हारा अन्न नहीं खाया ले जाओ अपना अन्न।" ऐसा कहकर उन्होंने एक मुट्ठी अन्न लिया और क्रुद्ध जैसे होकर उसे ऊपरकी ओर उछाल दिया, जिससे कुछ–कुछ आचार्यके शरीरपर भी गिर गया। शरीरपर लगते ही वे पागलोंकी भाँति नाचते हुए कहने लगे—"उस अवधूतका जूठा मेरे शरीरपर क्या पड़ा, मैं तो परम पवित्र हो गया।" अद्वैताचार्यजी फिर हँसते हुए कहने लगे—"तुमको निमन्त्रण देनेका फल मुझे मिल गया है। पागल ! तुम्हारी तो जाति और कुलका कुछ ठीक ही नहीं है, और तुम मुझे भी अपना जैसा ही बनाने पर तुले हो। मैं एक ब्रह्मण हूँ। तुम्हें इसका भी भय नहीं है। जो तुमने अपना जूठा मेरे ऊपर फेंक दिया।" नित्यानन्दजी कुछ प्रणयरोष पूर्वक बोले—"बड़े ब्राह्मण बनते हो। परन्तु कृष्णके प्रसादको जूठा कह रहे हो। यह तुम्हारा अपराध हो गया है। अब यदि एक सौ संन्यासियोंको भोजन कराओगे, तब तुम्हारा यह अपराध नष्ट होगा।" आचार्य बोले—"नहीं, मैं संन्यासियोंको भोजन नहीं कराऊँगा। क्योंकि संन्यासीने मेरा धर्म नष्ट कर दिया है।" ऐसा कहकर उन्होंने दोनोंको आचमन कराया। तत्पश्चात् उन्होंने दोनों प्रभुओंको उत्तम शय्यापर शयन कराया। अद्वैताचार्यजी प्रभुकी चरणसेवा करना चाहते थे। परन्तु सङ्कोचपूर्वक प्रभु बोले—"आचार्य! आपने मुझे बहुत नचा दिया है। अब नचाना छोड़िए तथा मुकुन्द एवं हरिदासको लेकर भोजन कीजिए।" प्रभुका आदेश पाकर आचार्यने दोनोंको साथ लेकर आनन्द–पूर्वक भोजन किया। (क्रमशः)

यस नो वैरी गुड

एक ग्रामीणने शिक्षित लोगोंसे अंग्रेजी सुनते–सुनते कुछ शब्द सीख लिये थे, जैसे—'यस, नो, वैरी गुड'। किन्तु किस शब्दका क्या अर्थ होता है और कौन–सा शब्द कहाँ व्यवहार करना चाहिए, यह नहीं जानता था; न ही उसने जाननेकी कोशिश की। वह समझता था कि इन तीन शब्दोंको लोगोंके निकट बोलनेसे अंग्रेजी पढ़े–लिखे लोगों जैसा सम्मान मिलेगा।

एक समय कुछ दुष्ट लोगोंने एक व्यक्तिकी निर्ममतापूर्वक हत्याकर अपनेको छिपानेके लिए उस ग्रामीण व्यक्तिको मूर्ख समझकर पुलिसके हाथों पकड़वा दिया। जब इस व्यक्तिको विचार करनेके लिए सम्मुख बुलाया गया और विचारक महाशयने पूछा—तुमने खून किया है ? इसपर ग्रामीण सोचने लगा यदि मैं दो एक अक्षर अंग्रेजीके बोल देता हूँ तो हाकिम मुझे अंग्रेज साहबके अनुचर समझेंगे और यथेष्ट सम्मान भी देंगे तथा मुझे इस मिथ्या अभियोगसे मुक्त कर देंगे। इस आशासे पूछे गये प्रश्नोंके उत्तरमें उस व्यक्तिने कहा—'यस' (हाँ)। विचारकने पुनः पूछा—तुम्हारे साथ और कोई था? इस प्रश्नके उत्तरमें ग्रामीणने कहा—'नो' (नहीं)। तब हाकिमने कहा—"तब तो तुम्हें जेल जाना होगा। क्या तुम जेल जानेके लिए प्रस्तुत हो ?" ग्रामीण विचार करने लगा मेरे पास अन्तिम एक अस्त्र और है, उसका प्रयोगकर इस अन्यायपूर्ण विचारका प्रतिवाद करूँगा। उसने खून

नहीं किया है, अतः किसी भी स्थितिमें उसे जेल नहीं हो सकती है, इस भावनाको व्यक्त करनेके लिए उसने हाकिमके प्रश्नके उत्तरमें कह दिया—'वैरी गुड' (बहुत अच्छा)।

भक्तिराज्यमें भी अनेक लोग शुद्ध भक्तोंके उपदेश, परिभाषा (विशेष विशेष संज्ञा या शब्दोंके द्वारा संक्षेपमें जिन तात्पर्योंको निर्देशित किया जाता है) और सिद्धान्तोंका वास्तव मर्म न जानकर केवल तोतेकी भाँति उन वाक्योंका उच्चारण करते हैं। वे इस उपायसे लोगोंसे सम्मान पानेकी इच्छा करते हैं। ऐसे मनुष्योंकी दशा इस ग्रामीण व्यक्तिकी भाँति ही होती है। साधु और शास्त्र–वाक्योंका असद् व्यवहार होनेसे साधु–समाज ऐसे व्यक्तिको कभी भी आदर नहीं करता है। फलस्वरूप वह मायाके दण्ड–भोगसे भी बच नहीं सकता। तथाकथित बड़े–बड़े जागतिक पण्डित एवं आधुनिक शिक्षित व्यक्तियोंको भी भक्ति, भगवान और भक्तके सम्बन्धमें सभा–समिति तथा साहित्यमें इस प्रकारकी हास्यास्पद उक्ति करते हुए देखा जाता है। परन्तु शुद्ध–भक्तिसिद्धान्तके परीक्षक एवं विचारकगण ऐसे लोगोंकी उक्तिको उस ग्रामीण व्यक्तिके "यस, नो, वैरीगुड" के समान ही देखते हैं। इस प्रकारके पाण्डित्यका प्रदर्शन करनेपर भी इन सभी व्यक्तियोंको मायाके जेलखानेमें दण्ड भोगना पड़ता है। ⑧

(श्रील प्रभुपादके "उपाख्यानमें उपदेश" से)

आशीर्वाद–पत्र

[जगद्गुरु नित्यलीलाप्रविष्ट ॐविष्णुपाद **श्रीश्रीमद्भक्ति– सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर "प्रभुपाद"** के शिष्य ॐविष्णुपाद **श्रीश्रीमद्भक्तिकुमुद सन्त गोस्वामी महाराज**, संस्थापक–अध्यक्ष श्रीचैतन्य आश्रम, बेहाला, कोलकाता से समग्र विश्वमें श्रीचैतन्य महाप्रभुकी वाणी प्रचार–रत श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके उपाध्यक्ष ॐविष्णुपाद **श्रीश्रीभद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज** के प्रति दिनाङ्क २७–१–२००४ को प्रेरित आशीर्वाद सूचक पत्र (मूल बंगला भाषासे अनुवादित)]

कल्याणभाजनेषु

स्नेहास्पद **नारायण महाराज** ! सुदूर हावाई द्वीपसमूहसे लिखित आपके पत्रको पाकर अत्यन्त सुखी हुआ। गिर जानेसे कमरकी हड्डी टूटनेके कारण मैं दीर्घ दिनोंसे शय्याशायी हूँ। कुछ दिनके बाद फिर सन्तुलन खो बैठनेके कारण और दो स्थानोंमें हड्डी टूट गयी। कुछ दिन अस्पतालमें भर्ती होनेके बाद अभी मठमें हूँ। चलना–फिरना एकदम बन्द है। इस अवस्थामें आपने मुझे इस प्रकार लिखा है, इससे मेरा कहनेका कुछ भी नहीं है। आप मुझपर श्रद्धा करते हैं, इसे मैं अपने श्रीगुरुदेवकी अपार करुणाका प्रकाश ही मानता हूँ। मुझे स्मरणपथमें रखकर आपके प्रचारकार्योंमें सफलताकी बात बताकर आप शान्ति लाभ करते हैं, इससे अवगत होकर अत्यन्त सुखी हुआ। श्रीश्रीगुरु–गौराङ्ग तथा आपके श्रीगुरुदेवकी असीम करुणा आपके ऊपर है। इस विषयमें सन्देह नहीं है। परम करुणामय श्रील प्रभुपाद आपको और भी अधिक शक्ति प्रदान करें जिससे क्रमशः पृथ्वीपर सर्वत्र श्रीमन्महाप्रभुकी वाणी प्रचारमें आप साफल्य–मण्डित हों। अनेक बाधाएँ आयेंगी, उनकी उपेक्षाकर आप अपना कार्य करते जाइए।

मेरी उम्रके ९० साल पूर्ण हुए। वार्द्धक्यजनित शक्तिरहित अवस्था आ पहुँची है। फिर भी आपके प्रचारकार्यमें सफलताकी वार्ता ज्ञात होकर अत्यन्त आनन्दका अनुभव करता हूँ। आप मेरे आशीर्वादको स्वीकार कीजिएगा तथा आपके साथ जो प्रचारमें हैं, उन सभीको भी मेरा आशीर्वाद दीजिएगा। अधिक क्या लिखूँ। इति।

आशीर्वादक

श्रीभक्तिकुमद सन्त

विविध संवाद

श्रीव्यासपूजा और श्रीविग्रह–प्रतिष्ठा महोत्सव

बहुरूपिणी मायाके धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके मिथ्या मोहजालको दूर हटाकर पञ्चम पुरुषार्थ कृष्णप्रेमका सन्धान प्रदान करनेके लिए श्रीगुरुपादपद्म जिस तिथिमें अपने आलोकमय श्रीपादपद्मको प्रकट करते हैं, उन निखिल कल्याणकारी तिथिवराकी हम सर्वप्रथम वन्दना करते हैं। हम अनादि बहिर्मुख, पतित, दुर्बल, अन्ध और पङ्गु (लँगड़े) जीव हैं। गोलोक राज्य, नित्यसेवाके राज्यका कोई सन्धान हमें यहाँ नहीं मिलता है। अत्यन्त हतभाग्य हमारे प्रति करुणाकर आत्यन्तिक कल्याण वितरण करनेके लिए सनातन श्रीगुरुपादपद्म गोलोकसे भूलोकपर पात्रराजरूपमें किसी विशेष स्थानपर करुणाविग्रहरूपमें अवतीर्ण होते हैं। निराश्रय, असहाय हम श्रीगुरुपादपद्मके नित्य आश्रयको प्राप्तकर द्वितीयाभिनिवेशजनित भय एवं ईश–विमुखता वशतः विपर्यय और विस्मृतिके हाथसे निस्तार लाभका सुयोग प्राप्त करते हैं। श्रीगुरु–पादपद्मकी आविर्भाव तिथि इसलिए हमारी आदरणीय है। प्रति वर्ष यह तिथि शुभागमनकर श्रीगुरुपादपद्मकी असमोर्द्ध करुणाकी बातका हमें स्मरण करा देती है। भजनबलदात्री यह तिथि नित्यकाल कीर्तनमुखसे हमारी वरणीय, अर्चनीय तथा स्मरणीय है।

प्रपञ्च (संसार) में श्रीगुरुपादपद्मका आविर्भाव नित्य है। परन्तु प्रपञ्चमें आविर्भूत होनेपर भी वे प्रपञ्चके क्षुद्र स्थान, कालके अन्तर्गत पात्रविशेष नहीं हैं। श्रीगुरुदेव भूलोकमें अवतीर्ण होनेपर भी नित्य गोलोकवासी हैं, नररूपमें प्रकटित होनेपर भी नरोत्तम हैं। अर्थात् समस्त रसोंके एकमात्र विषय नरलील श्रीब्रजराज–नन्दनके समस्त इन्द्रियोंकी सम्पूर्ण तृप्तिविधानकारिणीके वे अभिन्न विग्रह हैं। अव्यर्थदर्शी सूरिगण नित्यकाल श्रीगुरुपादपद्मको उन तृप्ति–विधानकारिणीके आनुगत्यमें आश्रय–समाश्लिष्ट विषय–विग्रह पुरुषोत्तम भगवानके विलासपरा–काष्ठा–साधनकी सबसे अधिक निपुणा सेविकाके रूपमें दर्शन करते हैं।

शुद्धभक्तिसिद्धान्तवाणीका कीर्तन ही श्रीव्यास–गुरुका कार्य है। उनके श्रीमुखसे श्रवण की गयी वाणीके द्वारा ही गङ्गा–जलके द्वारा गङ्गा–पूजाकी भाँति व्यासपूजा है। भक्तिसिद्धान्त वाणीका उल्लङ्घन कर कोई कुसिद्धान्त वाणीके द्वारा व्यासपूजा नहीं होती है। पूजककी पूजाके प्रारम्भसे पहले भूतशुद्धिका विचार है, श्रीगुरुपादपद्ममें आत्मनिवेदनसे ही वही भूतशुद्धि सम्पादित होती है।

आत्मदान ही श्रीव्यासपूजाका मूल उपचार है, उसे संग्रह न करने तक गुरुपूजा केवल लोक–दिखावा है। गुरुदेव पूर्ण वस्तु हैं, वे चाहते हैं कि हमारा पूर्णस्वरूप कैसे उनके पादपद्मोंके प्रति आकृष्ट हो। आत्मदान अर्थात् शरणापत्ति ही भक्तिका बीज—श्रद्धा है।

भूलोक तथा गोलोकमें श्रीगुरुपादपद्मकी युगपत् स्थिति नित्य सिद्ध है। भूलोकमें श्रीगुरुपादपद्म उनके स्वांश और विभिन्नांशोंके रूपमें सर्वत्र प्रकाशित होकर सर्वदा विधि–निषेधमूलक शिक्षाओंके द्वारा हमें अपराधोंसे मुक्तकर श्रीगुरुदेवके आनुगत्यमें आचरणका सुयोग प्रदान करते हैं। उनका जयगान करते हुए आज हमलोग श्रीगुरुपादपद्मोंमें अञ्जलि प्रदानकी आशा करते हैं।

जगद्गुरु नित्यलीलाप्रविष्ट आचार्य–केशरी ॐ विष्णुपाद १०८श्री श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज द्वारा प्रतिष्ठित श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके वर्तमान सभापति–आचार्य ॐविष्णुपाद १०८श्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजकी ८३ वीं

आविर्भाव तिथि श्रीसमितिके अन्यतम प्रचारकेन्द्र वैद्यवाटी स्थित श्रीनिमाईतीर्थ गौड़ीय मठमें अत्यन्त उत्साहपूर्वक मनायी गयी। इस उपलक्ष्यमें श्रीसमितिके सभी मठोंसे संन्यासी, ब्रह्मचारी तथा भारतके विभिन्न प्रान्तोंसे उनके आश्रित और श्रद्धालु भक्तगण उक्त मठमें सम्मिलित हुए थे।

श्रीव्यासपूजाके अधिवास दिवस १६–१२–२००३ को अपराह्णके समय शङ्ख, घण्टा, मृदङ्ग, करताल, बैंड पार्टीके साथ एक आकर्षक नगर–संकीर्तन शोभायात्रा वैद्यवाटी शहरके प्रमुख मार्गोंसे निकाली गयी। इस शोभायात्रामें सबसे आगे दोनों हाथियोंके पीठपर श्रीगुरुवर्गके चित्रपट तथा सुसज्जित घोड़ोंके रथपर श्रीमन्महाप्रभुके चित्रपटकी शोभा निराली थी। सायंकालको आयोजित धर्मसभामें परम पूज्यपाद श्रीमद्भक्तिवेदान्त पर्यटक महाराजके सभापतित्वमें 'श्रीव्यासतत्त्व' और 'श्रीगुरुतत्त्व' के सम्बन्धमें विशेष आलोचनाएँ हुईं।

१७–१२–२००३, पौष कृष्ण नवमी, व्यास–पूजाके दिन प्रातःकालसे वृष्टिपात होने लगी। इस प्राकृतिक प्रतिकूल अवस्थामें भी एक ओर श्रील गुरुमहाराजजीकी भजन–कुटीमें उनके श्रीचरण–कमलोंमें पुष्पाञ्जलि प्रदानका कार्यक्रम चलता रहा तथा दूसरी ओर संन्यासी–ब्रह्मचारीगण हरिकथाके द्वारा भक्तोंको आनन्द प्रदान करते रहे। इसके उपरान्त श्रीश्रीगौर–राधाविनोदविहारीजीकी मध्याह्न आरतीके बाद उपस्थित सभी भक्तोंको सुस्वादु महाप्रसादका परिवेशन किया गया।

सायंकालकी धर्मसभामें परम पूज्यपाद श्रीमद् भक्तिवेदान्त पर्यटक महाराजके सभापतित्वमें श्रीमद् भक्तिवेदान्त आचार्य महाराज, श्रीमद्भक्तिवेदान्त मधुसूदन महाराज, श्रीमद्भक्तिवेदान्त विष्णु महाराज, श्रीमद्भक्तिवेदान्त भागवत महाराज, श्रीमद्भक्तिवेदान्त साधु महाराज, श्रीमद्भक्तिवेदान्त गिरि महाराज, श्रीमद्भक्तिवेदान्त गोस्वामी महाराज, श्रीमद्भक्तिवेदान्त परमहंस महाराज, श्रीमद्भक्तिवेदान्त बोधायन महाराज, श्रीमद्भक्तिवेदान्त गोविन्द महाराज, श्रीमद्भक्तिवेदान्त हृषीकेश महाराज, श्रीमद्भक्तिवेदान्त तीर्थ महाराज, श्रीमद्भक्तिवेदान्त शान्त महाराज आदि संन्यासियोंने 'श्रीगुरुतत्त्व और श्रीव्यासतत्त्व' तथा श्रीगुरुपादपद्मकी अप्राकृत गुणावली और वैशिष्ट्यके सम्बन्धमें वक्तव्य प्रदान किये।

१८–१२–२००३ को श्रीनिमाईतीर्थ गौड़ीय मठमें श्रीश्रीगौर–राधा–विनोदविहारीजीके श्रीविग्रह प्रकाशित हुए। पूज्यपाद श्रीमद्भक्तिवेदान्त पर्यटक महाराज एवं श्रीमद्भक्तिवेदान्त मधुसूदन महाराजने इस विग्रह–प्रतिष्ठा कार्यको विधिवत् सम्पन्न किया।

उसी दिन सात मठवासी सेवकोंने त्रिदण्ड संन्यास एवं एकने बाबाजी वेष ग्रहण किया। (१) **श्रीदामसखा ब्रह्मचारी–श्रीमद्भक्तिवेदान्त शिखी महाराज,** (२) **श्रीसदाशिव ब्रह्मचारी–श्रीमद्भक्तिवेदान्त याचक महाराज,** (३) **श्रीश्यामानन्द ब्रह्मचारी–श्रीमद्भक्ति–वेदान्त परमार्थी महाराज,** (४) **श्रीगोकुलानन्द ब्रह्मचारी–श्रीमद्भक्तिवेदान्त बृहद्व्रती महाराज,** (५) **श्रीनित्यपद ब्रह्मचारी–श्रीमद्भक्तिवेदान्त निरीह महाराज** (६) **श्रीकृष्णकान्ति ब्रह्मचारी–श्रीमद्भक्तिवेदान्त अकिञ्चन महाराज,** (७) **श्रीकृष्णगोविन्द ब्रह्मचारी–श्रीमद्भक्तिवेदान्त तपस्वी महाराज,** (८) **श्रीनृसिंहानन्द ब्रह्मचारी–श्रीगोवर्द्धनदास बाबाजी महाराज** के नामोंसे परिचित हुए हैं। परम पूज्यपाद श्रीमद्भक्तिवेदान्त पर्यटक महाराज, श्रीमद्भक्तिवेदान्त आचार्य महाराज और श्रीमद्भक्तिवेदान्त मधुसूदन महाराजने श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामी कृत वैष्णवस्मृति 'संस्कार–दीपिका' के विधि–विधानके अनुसार संन्यासग्रहण यज्ञ–हवन आदिकी परिचालना की। उसके बाद नवीन संन्यासियोंने भिक्षा याचनाकर श्रीमुकुन्द–सेवामें भिक्षुक आश्रमोचित वृत्तिकी मर्यादाको प्रदर्शित किया।

माघ कृष्ण द्वादशी, १९ जनवरी २००४ को श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके पूर्वतन साधारण सम्पादक,

मासिक श्रीगौड़ीय पत्रिकाके पूर्वतन सम्पादक नित्यलीलाप्रविष्ट श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम गोस्वामी महाराजजीका आविर्भाव उत्सव समितिके सभी मठोंमें मनाया गया। सभी भक्तोंके द्वारा उनके सेवादर्श, त्यागमय जीवन, भजन–निष्ठा, सिद्धान्त–निपुणता, श्रीमन्महाप्रभुकी वाणी प्रचारमें दक्षता आदि गुण और श्रीसमितिके प्रति उनके अवदानोंका स्मरण किया गया।

माघ मौनी अमावस्या, २१ जनवरी २००४ को श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके वर्तमान उपसभापति परिव्राजकाचार्य ॐ विष्णुपाद १०८श्री श्रीमद्भक्ति–वेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीकी ८३वीं आविर्भाव तिथिको समग्र विश्वमें श्रीसमितिके सभी मठोंमें तथा अन्य श्रद्धालुओंने बड़े उत्साहपूर्वक मनाया। अमेरिकाके हावाई द्वीपपुञ्जमें अवस्थानकर गोस्वामी–ग्रन्थोंकी अनुवाद–सेवामें व्यस्त श्रीलगुरु–महाराजीने उसी दिन अपने गुरुपादपद्म तथा गुरु–परम्पराकी पूजा की। उसी दिन प्रदत्त उनके प्रवचनको हम अगले अङ्कमें देनेका प्रयास करेंगे। विशेषरूपसे मथुरास्थित श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ तथा श्रीरूप–सनातन गौड़ीय मठमें मथुरा–वृन्दावनके सभी वैष्णवोंने सम्मिलित होकर उनकी अप्राकृत गुणावलियोंका कीर्तन किया। श्रीवेदान्त समितिके अतिरिक्त अन्यान्य गौड़ीय मठोंके वैष्णवोंने उनके द्वारा समग्र विश्वमें श्रीचैतन्य महाप्रभुकी वाणीका विपुल प्रचार, हिन्दी तथा कई विदेशी भाषाओंमें गौड़ीय ग्रन्थोंका प्रकाशन, ब्रजके लुप्त तीर्थोंका उद्धार, ब्रजके कुण्डोंके जलका शोधन आदि सेवाओंके लिए उनकी भूरि–भूरि प्रशंसा की।

२८ जनवरीको महाविष्णुके अवतार श्रीअद्वैताचार्य प्रभुकी तथा ४ फरवरीको बलदेव प्रभुके अवतार श्रीनित्यानन्द प्रभुकी आविर्भाव तिथियाँ मनायी गयीं।

९ फरवरी को श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रतिष्ठाता नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद १०८श्री श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीकी १०६वीं आविर्भाव तिथिपूजा, श्रीव्यासपूजा समितिके सभी मठोंमें सम्पन्न हुई।

११ फरवरी को विश्वव्यापी गौड़ीय मठोंके मूल प्रतिष्ठापक, दैव वर्णाश्रमके प्रवर्तक श्रीकृष्णचैतन्य–नवमाधस्तनान्वय–वर जगद्गुरु नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद १०८श्री श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर 'प्रभुपाद' की आविर्भाव तिथि विश्वके सभी गौड़ीय मठोंमें मनायी गयी। आज समग्र विश्वमें गौड़ीय वैष्णव–धर्मका जो प्रचार देखा जा रहा है, उसका सम्पूर्ण श्रेय श्रीलप्रभुपादको ही जाता है। उनके ही सुयोग्य शिष्य–प्रशिष्यगण इस धाराको समग्र पृथ्वीके सभी गाँव–नगरोंमें प्रवाहित करते जा रहे हैं। जिससे श्रीचैतन्य महाप्रभुकी भविष्यवाणी "पृथिवीते आछे यत नगरादि ग्राम, सर्वत्र प्रचार हइबे मोर नाम' साफल्यमण्डित हो रही है। श्रीलप्रभुपादके आदर्शोंको सिरपर धारणकर उनके अनुगत सभी वैष्णव सम्मिलितरूपसे सद्भावनापूर्वक श्रीमन्महाप्रभुकी वाणीप्रचारकी मन्दाकिनीको आगे प्रवाहित करनेके उद्देश्यसे श्रीब्रजमण्डलके सभी गौड़ीय मठोंके समस्त वैष्णव एकत्रित होकर नगर भ्रमण करते हुए विपुल हरिनाम संकीर्तन तथा श्रीलप्रभुपादकी गुणावलियोंके विपुल कीर्तनके माध्यमसे इस उत्सवको मनाया। ⑧

(**निजस्व संवाददाता**)

भ्रम–संशोधन

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठसे प्रकाशित श्रीवैष्णव–व्रतोत्सव तालिकामें श्रीगौर पूर्णिमा, श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुकी आविर्भाव तिथि ५ मार्च, शुक्रवार को न होकर ६ मार्च, शनिवार को होगा।